अथर्ववेदीय-कौशिक-गृह्यसूत्रम् ।

कौशिकाचार्येण प्रणीतम् ।

[दारिलकेशवयोस्संक्षिप्तटीकया सहितम्]

अथर्ववेदस्य शौनकीया जाजला अकसाला ब्रह्मवादा इति चतसृणां शाखानां गृह्यप्रतिपादकम् ।

जिसको—

सर्वदर्शनसंग्रह, जीवन्मुक्तविवेक, महावाक्यरत्नावली, संस्कृत-प्रवेशिका, सिद्धान्तशिरोमणि (गोलाध्याय), सूर्य्यसिद्धान्त, आर्यभटीय, सभाष्यगोतमीयन्यायदर्शन, गोभिल-गृह्यसूत्रसटीक, द्राह्यायण-गृह्यसूत्रसटीक, खादिर-गृह्यसूत्रसटीक, वाराह-गृह्यसूत्र

के

हिन्दी अनुवादक—

श्री ठा० उदयनारायण सिंह

ने

अपने शास्त्रप्रकाश भवन मधुरापुर, डाक-विद्दूपुर बाजार, जि० मुज़फ्फरपुर (बिहार) से सानुवाद प्रकाशित किया ।

प्रथमावृत्ति । } संवत् १९९९ साल । { मूल्य ४५)

॥ समर्पणम् ॥

इस अथर्ववेदीय कौशिकगृह्यसूत्र को माननीय उदार चेता
प्रत्यात्मवेत्ता, विहाररत्न संस्कृत, हिन्दी, संगीत
और
हिन्दू धर्म के परम श्रद्धालु
श्री बा० उमाशङ्कर जी जमीन्दार और रईस
मुजफ्फरपुर-जिन-
की
आर्थिकसहायता से अमेरिका में मुद्रित और प्रकाशित
पुस्तक को भारत में हिन्दी अनुवाद के साथ
प्रकाशन करने का मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ,
उनके कर कमल में सादर
एवं सप्रेम
समर्पित करता हूँ।

अनुवादक—
ठा. श्रीउदयनारायण सिंह।

कौशिकगृह्यसूत्रकी
विषय-सूची

—०—

अध्याय ॥ १ ॥

अध्याय ॥ ४ ॥

अध्याय ॥ ५ ॥

क. सूत्र | पृष्ठ

अध्याय ॥ ९ ॥

अध्याय ॥ १० ॥

अध्याय ॥ ११ ॥

अध्याय ॥ १२ ॥

अध्याय ॥ १३ ॥

प्रस्तावना ।

प्रायः मनुष्यमात्र अनादि काल से यह विचार करते आते हैं कि यह संसार क्या है, यह कब और कैसे बना, और कब, कैसे नष्ट होगा। इस विषय में अनेकों मतभेद होते हुए भी सब विद्वान् एक ही बात में सहमत हैं कि ज्ञान की पहिली पुस्तक जो अब ही तक उपलब्ध हुई है वह वेद है और वेद के विद्वान् इस पुस्तक को सृष्टि विज्ञान की पूर्ण पुस्तक मानते हैं और उनका दावा है कि मनुष्य की जो उन्नति होती है, हुई है और होगी वह सब इसी वैदिकविज्ञान के आश्रय से है। संसार में मानव सभ्यता के प्राचीनतम काल से लेकर पाश्चात्य वैज्ञानिक आविष्कारों के युग तक समस्त विज्ञान का आधार भूमण्डल में केवल चार ही वस्तु हैं। वे हैं जल, अग्नि, वायु, और मिट्टी। इन्हीं चारों पदार्थों के स्थूल और सूक्ष्म ज्ञान को वेद कहते हैं। ज्ञान दो प्रकार का है एक प्रत्यक्ष जिसको लौकिक या दृष्टवाद और दूसरा अलौकिक या अदृष्टज्ञान कहते हैं। भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक इनमें भूलोक से लेकर स्वर्ग तक तीन लोकों की सृष्टि होती है और इन्हीं तीनों का प्रलय भी होता है। बाकी १४ लोकों या १४ भुवनों में से ११ का पाञ्चभौतिक लोकों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है और इनमें से सायंस (विज्ञान) और पदार्थों में शक्ति या गुण क्यों है? इसका ज्ञान दर्शनशास्त्र (अध्यात्म शास्त्र) से होता है। ये दोनों प्रकार के ज्ञान वेद से होता है।

वेद चार क्यों हैं? अधिक या कम क्यों नहीं? इसका उत्तर अग्नि, जल, वायु और पृथिवी इन्हीं चार भिन्न २ पदार्थों की अलग २ शक्तियाँ स्थूल और सूक्ष्म का ज्ञान वेदों से होता है इसलिये अग्नि का ज्ञान पूर्ण रूप से ऋगवेद से, यजुर्वेद से, वायु के प्रकार कार्य्य इत्यादि जाने जाते हैं। सामवेद से जल सम्बन्धी सारी बातों का पूर्ण ज्ञान होता है और अथर्ववेद से यही पृथिवीतत्व का पूर्णतया ज्ञान होता है। इसीलिये ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इस प्रकार चार वेद हैं।

वेदोंकी शाखा।

अग्नितत्त्व के ज्ञान के लिये वेद में २१ प्रधान विभाग हैं। अतएव ऋगवेद की २१ शाखायें हैं। जलतत्त्व के प्रधान एकहजार विभाग हैं इसलिये सामवेद की १००० शाखायें हैं। यजुर्वेद में वायु के प्रधान १०१ विभाग हैं। अतएव उतनी ही उसकी शाखायें हैं और मिट्टी के ९ प्रधान विभाग हैं। इसलिये अथर्ववेद की नौ शाखायें हैं। ये सब मिलकर ११३१ शाखायें हैं। साम शब्द का अर्थ है जल, ऋक् का अग्नि, यजुः का अर्थ वायु और अथर्व का अर्थ मिट्टी। प्रत्येक वेद में जल, अग्नि, वायु, और मिट्टी पारिभाषिक शब्द हैं और उनसे हमारे इस जल, अग्नि, वायु, मिट्टी ही का तात्पर्य्य नहीं है; किन्तु इन चारों पदार्थों के आदि स्वरूप प्रकृति की अव्यय अवस्था से लेकर स्थूलतम अवस्था तक जितने रूप, प्रकारान्तर से अवान्तर विभाग इत्यादि बनते हैं, उन सब का जातिवाचक नाम जल, अग्नि, वायु और मिट्टी वेद में हैं। जल से वेद में घृत, मधु, सुरा, जल, इत्यादिक समस्त जलीय पदार्थो से अभिप्राय है। और जल के सूक्ष्म कण जो भाप रूप से आकाश में स्थित हैं, उनको वेद जल ही कहकर पुकारता है। वेद की शाखा का विभाग इस रूप से किया गया है कि एक एक शाखा में हम चार मूल पदार्थों के एक विभाग के गुण, कर्म, स्वभाव इत्यादिकों का विस्तृत वर्णन आ जाय। जैसे सामवेद की १००० शाखाओं में से १००० विभागों में एक एक विभाग का एक एक शाखा में विस्तृत वर्णन मिलेगा। अर्थात् एक जल पर एक शाखा प्रचलित हुई। इसी प्रकार अन्य वेदों की भी शाखायें हैं। प्राचीन ऋषियों ने प्रकृति की अवस्था से अन्त्य अवस्था तक योग बल से पूर्णावलोकन प्रत्येक देश में उस देश की प्राकृतिक रचना को देखकर इन शाखाओं का विस्तृत और क्रमपूर्वक प्रचार किया। उदाहरण स्वरूप उत्तर देश जल और वायु प्रधान होने से विन्ध्य पर्वत के ऊपर साम और यजुर्वेद का प्रचार हुआ और विन्ध्य से नीचे दक्षिण देश अग्नि और भूमि की प्रधानता होने से वहाँ ऋग्वेद एवं अथर्ववेद का प्रचार हुआ। इससे साफ २ दीखता है कि हमारे ऋषियों ने सृष्टि का कितना सूक्ष्म और विस्तृत अध्ययन किया था। वर्तमान समय में हमारे अभाग्य से वेद की ११३१ शाखाओं में से भारतवर्ष में केवल छः ही उपलब्ध हैं। और जर्मन देश में १०३ शाखायें मिलती

हैं। जिनको वहाँ की सरकार ने सुरक्षित कर रक्खी हैं। जिनका अध्ययन केवल वहाँ के शिखा रखने वाले ही द्वारा कराया जा सकता है। वेद का अर्थ निरुक्त से होता है। प्राचीन काल में प्रत्येक शाखा के भिन्न २ वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष) होते थे। इस समय के पहिले १८ निरुक्त कई एक व्याकरण, ज्योतिष आदि मिलते थे। अब तो भारत में एक व्याकरण, निरुक्त (व्यास्कीय) एक मिलते हैं। परन्तु जर्मन देश में निरुक्त ३ मिलते हैं। वेद में अनेक प्रकार के वायुयानों का उल्लेख हैं; जिनमें से इस समय तक १८ प्रकार के वायुयानों का पता जर्मनों ने लगाया है। वेद के द्वारा हमारे ऋषि सूर्य आदि अन्य मण्डलों में जा सकते थे। इस समय का वायुयान केवल अधिक से अधिक १०१ मील तक जा सकेगा। अभी केवल २१ ही मील तक जा सकता है। ९ प्रकार के विद्युत को हमारे ऋषिगण जानते थे, एक विद्युत के प्रकाश से जिसको उत्तरी ध्रुव के नीचे बिन्दु सरोवर के ऊपर रक्खा जाता था उसी से सम्पूर्ण एशिया में प्रकाश होता था। इत्यादि आश्चर्यमय विषयों का वर्णन वेदों की सारी शाखाओं में उपदिष्ट हैं। हमारे दुर्भाग्य से वेदों की सब शाखायें नहीं मिल रही है। आज हमने पाठकों के अवलोकनार्थ अमेरिका में प्रकाशित अथर्ववेदीय कौशिक गृह्यसूत्र को सानुवाद प्रकाशित किया है।

आज तक जितने वैदिक गृह्यसूत्र उपलब्ध हुए हैं उनमें लोकहित की ऐसी बातें प्रकाशित नहीं पाई गई हैं जैसा कि इस सूत्र में अलौकिक आश्चर्य शक्ति वाले पदार्थों का वर्णन इसमें पाया जाता है जिनको पाठकवर्ग देखकर उनसे लाभ उठावेंगे।

अनुवादक

भूमिका।

—⁕—

वेद से बढ़कर संसार में कोई प्राचीन और प्रामाणिक ग्रंथ आजतक उपलब्ध नही हुआ है। मनुष्यों के लिये इस्से बढ़कर किसी भाषा या धर्म सम्प्रदाय में ग्रंथ आज तक नहीं पाया गया है। इस विषय में एक सुप्रसिद्ध जर्म्मन देश के विद्वान् भट्ट मैक्षमूलर साहब यों लिखते हैं' कि वैदिक संहिता भाव, भाषा, तात्पर्य, रचना, प्रणाली और व्याकरण घटित विलक्षणता की बिवेचना कर देखने से मालूम होता है कि संस्कृत भाषा में संसारकी विभिन्नजाति और देश की किसी भाषा में वैदिक संहिता के समान कोई दूसरी पुस्तक नहीं है। यह अलौकिक संस्कृत साहित्य का प्राचीन तम ग्रंथ "ऋग्वेद संहिता" है। यही मनुष्य जाति के हित के लिये पहिला ग्रंथ है। मानवीय सभ्यता का एक मात्र पहिला निदर्शन मनुष्य जाति का प्राचीनतम इतिहास और धर्म विश्वास का प्रथम मार्ग दर्शक है। इस लिये मनुष्य मात्र को यह वेद आदरणीय है। मनुष्य जाति के जिस समय का इतिहास कहीं नहीं पाया जाता है जिस

I—The veda has a two fold interest, it belongs to the History of the world and to the History of India. In the History of the world the veda fills a gape which literary work in other languages could fill. It carries us back to time of which we have no records any where and gives us the very words of generaration of men of whom otherwise we could form the vaguest estimate by means of conjectures and inferences. As long as man continues to take an interest in the history of his race and as long as we collect in literaries and museums the relics of farmer ages the place in that long row of books which contains the records of the Aryan branch of man kind belongs for ever to the regveda the most ancient than the Zindavasta and Homer (940-850. B. C.

Professor Max mullar's History of Ancient Literature p. 63.

समय की चिन्ता, धर्म, विश्वास, सभ्यता, उपासना, पद्धति देवोत्थान, सामाजिक, रीति, नीति, आशा, भरोसा और हृदय का भाव काल के अनन्त स्रोत के गर्भ में विलीन हुए हैं, जिस समय के इतिहास के उद्धार के लिये अन्य उपाय विद्यमान नहीं उसी स्मरणातीत समय का इतिहास सुप्रणाली बद्धरूप वेदों में ही सोने के अक्षरों में लिपिबद्ध हैं। इसी निमित्त सभ्य जगत् के सर्वत्र पण्डित मण्डली में वेदों की संहिताओं का इतना सम्मान और आदर है। वेदों की संहितायें चार हैं—ऋग्वेद यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद जिनमें से—यहां अथर्ववेद के सम्बन्ध में लिखा जाता है।

अथर्ववेद की उत्पत्ति।

दैवीं वाचमजनयन्त देवास्तां, विश्वरूपा पशवो वदन्ति।
मन्द्रेष मूर्जं दुहाना, धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतै तु ॥ १ ॥

भा० टी०—दैवी वाणी को देवताओं ने उत्पन्न किया, उसी को अनेक प्रकार के पशु बोलते हैं, गम्भीरनादमय धेनुस्वरूप वह वाणी हमारे द्वारा अभिष्टुत होकर अन्न तथा बल को देती हुई हमको प्राप्त हो ॥१॥

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव, विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता ॥
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठा मथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥ १ ॥
अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्मा अथर्वातां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम्।
स भरद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भरद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥ २ ॥

भा० टी०—विश्वरचयिता और उसका पालयिता देवताओं में पहिले ब्रह्मा हुए। वह सारी विद्याओं में प्रतिष्ठित वेदविद्या को अपने सबसे बड़े पुत्र अथर्व ऋषि को कहने लगे ॥ १ ॥ ब्रह्मा ने जिस वेद विद्या को अथर्वा से कहा, अथर्वा ने उसी को पहिले अङ्गिरा के प्रति कहा, अङ्गिरा ने भरद्वाज से कहा, और भरद्वाजने उसी परावरविद्याको आङ्गिरस से कहा ॥२॥ अथर्ववेद की मुण्डकोपनिषद् की इन दो श्रुतियों से वेदमात्र का पहिला वक्ता ब्रह्मा ही सिद्ध होते हैं।

अथर्ववेद में प्राकृतिक पदार्थों के गुण वर्णन द्वारा, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि के रोगों की दवा का उपदेश है। जैसे—पृथिवी (मिट्टी) इसमें सर्प के विष को चूषने का गुण है (सर्प के काटे को भूमि में गढ़ा खोद कर श्वास लेने, जितना भाग छोड़ कर गाड़ देने से--सर्प विष

दूर हो जाता है)। पृथिवी सम्भृत् (ऊषर पड़त मिट्टी) अर्थात् रेह मिट्टी में कफ वाली खांसी को हटाने का गुण है। देवी मिट्टी में (सौराष्ट्र मृत्तिका) केशोंको काले, लम्बे और दृढ़ बनाने का गुण है और खान-पान आदि में दिये स्थावर बिष को नष्ट करती है। उपजीकोद्भृत् (दीमक की मिट्टी) व्रण (घाव के गिरते पीव) स्राव को और नशा करने वाले स्थावर विष से हुई मूर्च्छा और सर्प विष को भी नष्ट करती है। ऊँचे टीले और पहाड़ों पर दौड़ कर चढ़ जाने से तुरन्त काटे सर्प का विष निर्बल हो जाता है। अब जल का गुण कहते हैं। आपः (जल) जल में तुरन्त के घाव, स्वप्नदोष, नींद का न होना, और क्षेत्रिय (वंश परम्परागत रोग) को दूर करने का गुण है। और जल नेत्र-दृष्टि-वर्द्धक है। नदी के प्रवाहित जल में तैरने से सर्प विप दूर होता है। अवत्क (ऊँचे से नीचे गिरता हुआ जल) हिमालय पर्वत से निकलते हुए झरने का जल, हृदय जलन, और नेत्र जलन को दूर करता है। नये कूप का जल और ऊँचे से नीचे गिरता हुआ (फाल का) जल व्रणस्राव नाशक है। मेघवृष्टि धारा रुके मूत्र को निकाल देती है। और जल सब ही रोगों का नाशक है।

अग्नि—शीत रोग को दूर करता है, सर्प विप को जला कर नष्ट कर देता है। कृमि दूषित आहार को शुद्ध करता है। रुके मूत्र को निकालता है और सुख से प्रसव कराता है। और सब रोगों का नाशक और रसायन है। भूरिधायस पर्जन्य (पार्थिव अग्नि) और होमाग्नि (होम का अग्नि) इन अग्नियों के गुण ऊपर कहे गये जानो। विद्युत या बिजुली इन्द्र (विद्युत् शक्ति वाला) इसके द्वारा सारे रोग दूर होते हैं। वरुण (विद्युत् धारा) भोजन में से कृमि दोष को दूर करता है। रुके मूत्र को बाहर निकालता है और रसायन है। वायु—मरुत् (साधारण चलता हुआ वायु) वायु स्वास्थ्यप्रद है, शरीर में दवा का काम करता है। सुख से प्रसव कराता है। सब रोग नाशक है। रुके मूत्र को बाहर निकालता है और रसायन है। वेधा (प्रत्येक ऋतु का वायु) बृहस्पति (ऊपर का वायु) मित्र (साधन या यंत्र से प्रेरित वायु) इन सबों में उपर कहे गुण हैं। मेघ, वृषा (बादल) गर्जना कर बरसता हुआ सर्प विष नाशक है। चन्द्र (चन्द्रमा) चन्द्रमा की चान्दनी रुके मूत्र को बाहर निकालती है और क्षेत्रिय रोगों को दूर करती है। सूर्य—हृदय रोग, हलीमक, कामला, अपची, गण्डमाला, शिरोरोग को नष्ट करता

है। सुख से प्रसव कराता है, और सब ही जानवरों के विष को नष्ट करता है। क्षेत्रिय रोग को नष्ट करता है, कृमि नाशक है। रुके मूत्र को बाहर निकालता है। क्षेत्रिय रोग को नष्ट करता है। और सर्व रोगनाशक रसायनरूप है। सूर्य के पर्य्यायवाची नाम—सूर्य, अर्यमा, सविता और आदित्य हैं।

आठ वसु जिनका वर्णन वेदों में है, उन आठ वसुओं के भिन्न २ गुणों के कहने के पश्चात् अब अकारादि क्रम से अथर्ववेदोक्त दवाओं के गुणों का वर्णन करते हैं। अग्नि—(चित्रक या चीता दवा) यह दवा योनि दोष, गर्भ संस्राव, जातघातक रोगों तथा योनि एवं गर्भाशय में होने वाले कृमियों का नाशक है। अङ्ग (बोल नाम की दवा) बुखार को दूर करता है। अजश्रृङ्गी (मेढ़ासिंगी) शरीर में विष तुल्य मादक प्रभाव लानेवाले कृमियों को नष्ट कर देती है, भूत के द्वारा उन्माद का नाशक है। अदिति (गौ के दूध, घी, दही, माठा आदि पञ्चगव्य) सांप के विष को दूर करता है। अपामार्ग (श्वेत अपामार्ग, लाल अपामार्ग, चिड़चिड़ी) सफेद चिड़चिड़ी मन्दाग्नि, ग्लानि, बमन, बन्ध्यापन, सन्तान स्तम्भन को दूर करता है, और लाल चिड़चिड़ी तृष्णा रोग, भस्मक रोग, पुरुषेन्द्रिय की निर्बलता को हटाता है। और अधः स्थान (गुदा, लिङ्ग, योनि) के अर्श रोग (बवासीर) और ऊर्ध्व स्थान (मुख, नाक) के अर्बुदों को नष्ट करता है। वीर्य्य स्तम्भक बाजीकरण है। संक्रमित होने वाले छूत रोगों को नष्ट करता है। अर्क (आक, अकवन) जननेन्द्रिय (लिङ्ग) में हर्ष एवं वृद्धि करने वाली बाजीकरण है। अर्जुनकाण्ड (कुह वृक्ष) क्षेत्रिय रोग को नष्ट करता है। और खेत के अनुपज को नष्ट करता है। अश्वत्थ "शमीस्थ" (पीपलबन्दा, शमी वृक्ष पर लगा हुआ) गर्भ स्थापन कारक है, और पुरुष द्वारा सेवन करने से पुत्र पैदा होता है एवं स्त्री द्वारा सेवन करने से कन्या होती है। और पुरुष के वीर्य्य एवं स्त्री के रज का बढ़ाने वाला है। अश्ववार (कांस) सर्प काटे विष का बन्धन रोकने वाला है। असिक्नी (नीलिनी, नील) केशों की सफेदी, श्वेत कुष्ट, गलित कुष्ठ को दूर करती है। आञ्जन (अञ्जन सुरमा) हलीमक, पाण्डु, विषय भोग से हुए रोग, अङ्गभेदक, विसल्यक फैलनेवाले विसर्प, हृदय और श्वास रोग को दूर करनेवाला आयुवर्द्धक है। आञ्जनमणि—सर्पकाटे विष एवं स्थावर विष को नष्ट करता है। मोहरूप मानसिकरोग का नाशक है। स्वप्न-

दोष, निद्राक्षय को दूर करता है। एवं विषतुल्य मादक प्रभाववाले कृमियों को नष्ट करता है। हलीमक-पाण्डु, विषभोगजन्यक्षय, अङ्गफूटन विसर्प, श्वास, हृदयरोग, नेत्ररोग को नष्ट करता है एवं आयु बढ़ाने वाला रसायन है। पशुओं को स्वास्थ्य, पुष्टि और सन्तति शक्ति देने वाला है। आसुरी—सफेद सरसों—श्वेतकुष्ट, गलितकुष्ट को नष्ट करती है। स्त्रियों में सुभागत्व और सौन्दर्य कान्ति बढ़ाती है। इन्द्र (इन्द्रायण लाल फल उछलनेवाले, फूंकारनेवाले, लिपटनेवाले और तिरछी रेखावाले सर्पों के विष को दूर करता है और सब ही सर्पों के विष को नष्ट करता है। उपजीका—'उपजीकानुषिक्त (दीमकों का मुखस्राव) नशा करने वाले स्थावर विष को नष्ट करता है। उपजीका–उपजीकोद्भृत् उखाड़ी-उगली वल्मीकमृत्तिका, व्रणस्राव को नष्ट करती है। ऋषभ (अष्टवर्ग की ऋषभक दवा) वन्ध्यापन और गर्भपात रोगको नष्ट करती है और गर्भ स्थापन शक्ति देती है। औक्षगन्धि—(वृष्यगन्धाबला) बिष तुल्य मादक प्रभाव करने वाले कृमियों को, भूतोन्माद को दूर करती है। औदुम्बरमणि (गूलर वृक्ष) पुष्टि, बल और सन्तति उत्पन्न करने की शक्ति देता है। और पशुओं को स्वास्थ्य एवं सन्तान शक्ति देता है। कनक्नक (टङ्कण सुहागा) सर्प विष नाशक है। खाने से सर्प विष को बाहर ले आता है। कन्या (बड़ी इलायची) इसकी जड़ से सर्प विष नष्ट होता है। करम्भ (फूल प्रियङ्गु, मालकौनी) खान पान में दिये स्थावर विष के प्रभाव को नष्ट करती है। कल्याणी (माषपर्णी) काम-शक्तिवर्द्धक वाजीकरण है। कश्यपवीवर्हं (चमरी मृगपुच्छ) इसका झाल सारे रोगों में हितकर है। कान्दा विष (कन्द विष) सर्प विषनाशक, अर्थात् सर्प विष को बाहर ले आता है। कुमारिका (बांझक कोड़ा) सर्प विष नाशक है (इसके फल नहीं आते, जङ्गलों में होती है) कुसुम्भक (नेवलाप्राणी) सर्प के विष को चूसने वाला है। इसके मळ मूत्र, लार, रोम, अङ्ग, सर्प बिष को निर्बल कर बाहर निकाल देते हैं। कुष्ठ (पर्वत पर का कुष्ठ) शिरोरोग, नेत्रान्ध, रक्तदोष को दूर करता है। नपुंस-कता नाशक वृष्य है। एवं तृतीयक, चातुर्थिक, सन्तत और ऋतु के ज्वर को एवं मलेरिया ज्वर को नष्ट करता है। कृष्णा—(नीलिनी, नील) पहिले ही इसके गुण कहे गये। केशबर्धिनी (भृङ्गराज, भांगरा) कान्ति देने, तेज बढ़ाने, धातु वृद्धि, और केशों को बढ़ाने वाली है। गन्धारि (कचूर) ज्वर नाशक है। गुग्गुल (गूगल) शरीर के कठिन रोगों,

शापकृत मानसिकखेद, छूत रोग, वात रोग को दूर करता है और विष तुल्य मादक प्रभावकारी कृमियों को नष्ट करता है। भूतोन्माद का नाशक है। घृताची-देखो बड़ी इलायची चीपद्रु (चीड़वृक्ष) विविध फुन्सी, फोड़ों विद्रधि को नष्ट करता है। जङ्गिडमणि—मोह आदि मानसिक रोगों को दूर करती है। और अनेक प्रकार के असाध्य रोग कृत्या द्वारा किये रोगों को नाश करता है। जीवन्ती—जीवन देने, रोग दूर करने, स्वास्थ्य रक्षक, बल पुष्टि देनेवाली रसायन है। जीवला—(सिंह पिप्पली) पशुओं के रोगों को दूर करती है। तरुणक—(तृण रोहिष तृण) सर्प के काटे विष को नष्ट करती है। तस्तुव—(कड़वी तोरी) सर्प विष को नष्ट को नष्ट करती है। तिल पिञ्जी (तिलों की मञ्जरी एवं नाल) क्षेत्रिय रोगों को नष्ट करती है और तिल नाल के भस्म खेतों के अनुपज दोष को दूर करती है। तौदी—(बड़ी इलायची) देखो पूर्व कहा। दर्भ (दाभ) सर्प के काटे विष का बन्धक है। दर्भमणि—स्वास्थ्य एवं दीर्घायु देने वाला रसायन है। दश वृक्ष (दशमूल) सन्धिवात मस्तिष्कवात (मृगी,) रोगों का नाशक है। दासी-(काकजङ्घा) ज्वर को नष्ट करता है। दत्ति (जोक प्राणी) सर्प काटे विष को चूसने वाली है। देवी (सौराष्ट्र की मट्टि) केशों को लम्बे, काले, दृढ़ बना देती है। नघमार—(कुष्ठभेद मीठा कुष्ठ) शिरो रोग, तृतीयक, सन्तत, ऋतु ज्वर को नष्ट करता है। नघारिष—(कुष्ठभेद कड़वाकूठ) उपरोक्त गुण वाला है। नमः—(वज्र अभ्रक) दर्भमणि के गुण जानो। नलदी (जटामांसी) विषतुल्य मादक प्रभाव वाले कृमियों को नष्ट करती है। नवती (पिपीलिकायें) सर्प काटे विष को नष्ट करती है। परुषवार—(मूंज) सर्प काटे विप का बन्धक है। पर्जन्य (दारु हल्दी) स्वास्थ्य और आयु को प्रदान करती है, रसायन है।

पर्णमणि=इसमें सोमलता के सब गुण हैं। पाढा (पाठा, पाढ़) शस्त्र प्रहार के घाव को अत्यन्त लाभ दायक है। पिङ्ग (हरिताल) प्रसूति रोग, गर्भ भक्षक कृमियां, मृतवत्सा रोग जन्म कर सन्तान मरजाने के रोग को नष्ट करती है। पिप्पली (पीपल दवा) आक्षेपक, पक्षाघात, गठिया, आदि वातरोग को नष्ट करती है। जीवन देनेवाली रसायन है। पीला (पिप्पली) विषतुल्य मादक प्रभावकारी, कृमियों को नष्ट करती है। भूतोन्माद नाशक है। पृश्निपर्णी (पृष्टिपर्णी) बवासीर, दाद, कुष्टरोग, योनिविकार, गर्भक्षय, आदि कृमियों से आक्रान्त रोगों को नष्ट

करती है। विशेषतः योनिदूषक और गर्भघातक कृमियों को नष्ट करती है। पैद्व (सफेद आक या अर्क) सर्प के काटे घाव पर लेप करने से विष को अत्यन्त निर्बल करती है, वमन विरेचन द्वारा विष प्रभाव को बहुत ही नष्ट करती है। प्रक्री-(सोमलता) नशा करने वाले स्थावर विष की मूर्च्छा और उसके प्रभाव को अत्यन्त नष्ट करती है। प्रमन्दनी (प्रमदिनी घातकी) विषतुल्य, मादक प्रभावकारी कृमियों को नष्ट करती है, भूतोन्माद नाशक है। ब्रह्म (ब्रह्म-वृक्ष उदुम्बर गूलर) 'योनिदोष, गर्भस्राव, जात घातक रोग और योनि एवं गर्भाशय में होने वाले कृमियों को नष्ट करती है। भद्रा—(कृष्ण सारिवा) रुधिर वहने, चोट से पिस जाने, दण्डेजाने, कट आने, जल जाने और हड्डी टूट जाने में हितकर हैं। भरी मूल दर्भ (उशीर-खस) क्रोध, मन के उद्वेग रूप भ्रम और उन्माद को शान्त करती है। मगध (पिप्पली) गुण पहिले कहे गये हैं। मधु (शहद) सर्प काटे विषका नाशक है। मधु-जाता (शहद की खाँड) टेढ़े चलने वाले सर्प आदि और मच्छर जैसे विष कृमियों के विष को दूर करती है)—आगे लिखी दवाओं में ये ही गुण हैं। मधुला (कपिलद्राक्षा), मधुश्चुत (महुआ) मधू (मुलहठी) मयूरी (मोरनी, उसके बच्चे) सर्पविषको चूसने नष्ट करनेवाले हैं। मित्र (अतीस) सर्पविष नाशक है। मुनि देवमूल (अगस्त्य वृक्षकी जड़) अपची-गण्डमालाओं को नष्ट करती है। यव पलाली (जौ की मञ्जरी, जौ की नाल) क्षेत्रिय रोग को हटाती है और नाल की भस्म खेत के अनुपज दोष को दूर करती है। रामा (नीलिनी, नील) गुण पहिले कहे गये। रोपणका (दूब) हलीमक, कामला, पाण्डु को नष्ट करती है। रोहणी, (मांस रोहिणी) रुधिर स्राव, चोटसे पिसजाने, दरेडेजाने, जलजाने, कट जाने, हड्डी टूटजाने में हितकर है। लवण (नमक) ग्रीवा, कक्षा, वंक्षणमें होनेवाली विवर्ण हुई कठोर, बहने वाली अपची गण्डमालाओं का नाशक है। लाक्षा (लाख) टूटे को जोड़ने, पुराने घावों को भरने, नयों को शीघ्र ही ठीक करने, चोटको अच्छा करने वाली है। बचस्-(बचा, बच्छ) गुण पहिले कहे गये। दर्भ मणि के समान गुण। बरणमणि (वरना) वरणावती और वरण नामों में देखो। वरणावती (वरणों की पञ्चाङ्ग खान पान में स्थावर बिष को नष्ट करती है। वरुण (वरदाय वृक्ष) सर्प विषनाशक, शिरोरोग नाशक है। वाक (बक पञ्चाङ्ग अगस्त्य वृक्ष का पञ्चाङ्ग) मन्या. ग्रीवा, स्कन्ध

अपची गोंठा को नष्ट करता है। बाद (मूर्वाकन्द) सर्पविष नाशक है। विक्षर (समुद्र फेन) कफमय खांसी को नष्ट करता है। विश्वरूपा (काला अगर) पशुओं के रोगों को दूर करता है। विष (स्थावरविष) सर्प के काटे विषका नाशक है। विषाणा (मृगश्रृङ्ग) क्षेत्रिय रोगों को या जन्म के हृदय रोग को नष्ट करता है। विषाणा (मेढा सींगी) रक्त-स्राव और वात रोग को दूर करती है। विष्पुलिङ्ग का (गुद पुच्छ को निरन्तर ऊपर नीचे को उचकने वाली चिड़िया) सर्प के काटे विष को नीचे के गुदा अङ्ग से चूसने वाली है। वृषा (कपिकच्छ, कौंच) दुबलेपन को दूर करती, नष्ट वीर्य में पुनः वीर्य्य स्थापन करती एवं पुरुषत्व शक्ति देती है। और स्वास्थ्य प्रद है और वशीकरण एवं रसायन है। शकुन्तिका (भासपक्षी) सर्प काटे विषको चूसन कर लेती है। शङ्खमणि (शङ्खमुक्ता मासिकरोगों को नष्ट करती है। तथा विषनाशक है। शतवार मणि (ऋष-भक ओषधि) पुत्रोत्पत्ति शक्ति को देती, नपुंसकता, गर्भघातक कृमियों को नष्ट करती है; ज्वर नाशक है एवं ज्वर एवं सन्दिग्ध रोगों को हटाती एवं रसायन है। शुक (तोता पक्षी) हलीमक, कामला, पाण्डु रोगों को नष्ट करता है। रोगी के उसके पास रहने से उक्त "रोगों को आकर्षित करता है। शूद्रा (प्रियंगु लता) ज्वर को नष्ट करती है। शोचि (कुशा) सर्प के काटे विष का बन्धन करती है। श्वेत (अलर्क सफेद) वमन विरेचन प्रलेप आदि द्वारा सर्प विषका अत्यन्त नाशक है। समिध (सुगन्ध काष्ठ या शुद्ध काष्ठ) पेटके अन्दर कीड़ों को नष्ट करती है। सहदेवी (महाबला) पशुओं के रोगों को दूर करती है। समुद्रफल— ईर्ष्या, मानसिक, दाह को नष्ट करता है। सुपर्ण (गरुड़ पक्षी) चूषने से या अपने मलमूत्र आदि से सर्प काटे विष को निर्वल करता है। सुभा (शालपर्णी) पशुओं के रोगों को दूर करती है। सोम (सोमलता सोम-वल्ली, महौषधि) सर्प के काटे विषको दूर करने की महौषधि है। मूर्छा-दि मानसिक रोगों, अयोग्य हीनदृष्टि, दूषित वाणी को ठीक करती हैं। खान पान में से कृमि दोषों को दूर करती है। स्त्री के प्रति प्रसङ्ग से हुए उरःक्षत, राजयक्ष्मा को दूर करती है। क्षेत्रिय रोगों को दूर करती है हवि (घृत, घृतादि सुगन्ध होम) राजयक्ष्मा, वातव्याधि, सन्दिग्ध रोग, क्षेत्रिय रोग, इत्यादि रोगों को नाश करती है। स्वास्थ्य और आयु को बढ़ाती है। हारिद्रव (दारुहल्दी के वृक्ष) इनमें रहने, इनके दर्शन, वायु सेवन, और स्वरस कषाय के पान और अन्य योगों के सेवन

प्रलेप आदि से हलीमक, कामला, पाण्डुरोग नष्ट होते हैं। इसी अथर्व-वेद का यह कौशिक सूत्र—है जिसमें १६ संस्कारों को वर्णन करने के अतिरिक्त-संसार के अत्यन्त प्रयोजनीय विषयों का-उल्लेख और वर्णन है—जिनको संक्षिप्त रूप से आगे दिखलाया गया है।

कौशिक गृह्यसूत्रम्

कौशिक सूत्र—शौनकीय आदि ४ शाखाओं का संहिता का कल्पसूत्र नामक अङ्ग का एक गृह्यसूत्र है। इस पर पं० दारिल एवं केशव संक्षिप्त टीका मूल और संस्करण श्रीमिस्टर मारीस की ब्लूमफिल्ड साहेब ने अमेरिका से प्रकाशित किया है। अब तक संसार में इसके सिवाय अन्यत्र यह कहीं नहीं प्रकाशित हुआ है। इसका अङ्गरेजी भाषा में किसी २ अंश का अनुवाद ब्लूमफिल्ड साहब कृत Hymns of Atharva veda नामक ग्रंथ में सन्निविष्ट हुआ है। इस सूत्र में अथर्ववेदोक्त मन्त्रोच्चारण के साथ अनेक प्रकारके णीय प्रक्रिया का विस्तृत विवरण है। जैसे—अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के दूसरे सूक्त में और दूसरे काण्ड के तृतीय सूक्त में देह से अत्यधिक स्राव। जैसे—उदरामय, आमाशय, इत्यादिकों के निवारण करने के लिये मुञ्जघास (Sacch arom arrya) और झरना का जल लेकर दो मंत्रों से प्रयोग लिखा है। कौशिक सूत्र के इन दो मंत्रों के उच्चारण के साथ निम्नलिखित करणीय प्रक्रिया का भी विवरण है। "इन दो मंत्रों के उच्चारण करते समय (जो उच्चारण करते रहें वह) एक पेड़ मुञ्जघास के सूत से रोगी के शरीर में कवच, या यंत्र (तावीज) की भांति बांध देवे। उसके बाद थोड़ी दीमक की मिट्टी को पीस कर जल में मिला कर इस जल को रोगी को पान करावे। उसके बाद रोगी को घी लगा देवे और रोगी के गुह्य स्थान में फूक देवे।" इस प्रकार अनेक मंत्रों के साथ अनेक प्रकार के करणीय प्रक्रिया का विवरण कौशिक सूत्र में है। यह सूत्र लिखित प्रक्रिया आदि अथर्ववेद में भी है। इस विषय में इस समय भी मतभेद

१—Koushik sutra of the Atharveda, with extract from the commentaries of daril and Keshava, edited by Maurice Bloom field, insided as vol XIV of the journal of the American oriental society.

हैं। *(किसी २ के मत में यह है जो, यह प्रक्रिया सब अथर्ववेद के मंत्र रचना समय या उसके परवर्ती काल में परिवर्त्तित हुआ है। इस कौशिकसूत्र में वर्णित प्रक्रियाओं के भैषज्यविज्ञान और चिकित्सा में अधिकतर ज्ञान दृष्ट होने से स्वतः ही मन में होता है, जो ये प्रक्रियायें अथर्ववेद के समय रहने पर भी परवर्ती काल में बदल गयी थी। प्रक्रियाओं को बदलने के सम्बन्ध में मतभेद होने पर भी कौशिक सूत्र अथर्ववेद के पीछे और आयुर्वेद ग्रन्थों के पहिले रचित हुआ था—ऐसा मानना ही पड़ेगा।

अथर्ववेद के "भैषज्यानि" और "आयुष्याणि" समुदायमन्त्र।

इन सब मंत्रों में अथर्ववेद के समय हिन्दुओं को आयुर्वेद के ज्ञान का परिचय पाया जाता है। कौन २ मंत्र किस २ रोग को सम्बोधन करके रचित और मंत्र रोगों के प्रतिषेधक भेषज और धातु को सम्बोधन कर उच्चरित हुए। जो सब मंत्र रोगों के प्रति सम्बोधित हैं, उनमें विशेष २ लक्षण वर्णित हैं। दृष्टान्त स्वरूप जैसे—"तक्षण" वा "ज्वर"। इस लक्षण के अनेकों सूक्तों में वर्णित हैं—प्रथम काण्ड, २५ सूक्त, पञ्चम काण्ड, ४ सूक्त, २२ सूक्त ; छठा काण्ड, ३ सूक्त, २० सू०, ९५ सू०, १०२ सू०, ११६ सू०, इन सूक्तों में ज्वरों के अनेक लक्षण वर्णित हुए हैं। और उनका औषध स्वरूप "कुष्ठ" नामक भेषज को (costus speciosus or Arabicus) आह्वान किया गया है (५ का० सू० ४) जो सब मंत्र किसी भेषज को सम्बोधित कर सब भेषज या उसका रस सेवन का

---

*—The practices mere (in the Koushika Sutras) invelve a mare extentive medcen etc and to mare elaborate theropenties, but it is difficult to define in detail the extent to which practices similar to those of the sutras must be presupposed from the start with the charms of the Atherva Veda—Bloom field's the Atherva Veda. page 68.

The value of the sutra is primarily as a help to the understanding of the ritual and general purposes of a given hymn and so mediatedly its exegeses. Whitney—"Hymns of the Athervaveda." General Introduction p. 1. XXV.

(Internal application) विशेष उल्लेख अथर्ववेद में भी पाया जाता। ये सब भेषज गले में, हाथ में, शरीर के अन्य स्थान में यंत्र (या तागा परिहस्त वलय) बन्धन किया जाता है। कौशिकसूत्र में इस प्रकार बन्धन के साथ अन्य २ द्रव्य सेवन करने की व्यवस्था भो है। जैसे—कौशिकसूत्र २५।६।९, २०।१०।१९, २९।२८।२९ इत्यादि। धातु घटित औषधों में भूतयोनि को भगाने के लिये सीसा का यंत्र (१ का० सू० ६) और एक सौ वर्ष परमायु और प्रभूत शक्ति पाने के लिये सोने का यंत्र (१ का० सू० १६) धारण करने की व्यवस्था है। चिकित्सा शास्त्रों के इतिहास की आलोचना करने से जाना जाता है जो पहिले औषधों का बाहरी व्यवहार (external application) और पीछे अभिज्ञता की वृद्धि के साथ २ भीतरी व्यवहार (Internal administration) हो जाता है। पहिले हाथ या गले में धारण, पीछे मालिस या प्रलेप रूप से व्यवहार और शेष में औषध रूप से अति सूक्ष्म मात्रा में सेवन, इसी प्रकार औषध सेवन का क्रम विकाश संघटित हो जाता है। हम लोग अथर्ववेद में औषधियों को बाहर धारण में हिन्दू चिकित्सा के पहिले उन्मेष देखने में आता है। जिन भेषजों का (जैसे—अश्वत्थ, खैर, हरिद्रा, अपामार्ग, मुञ्ज, शमी, पृश्निपर्णी इत्यादि) यंत्रों या बूटियों या औषधों को अथर्ववेद में बाहरी (शरीर के किसी भाग में) भाग में धारण करना बतलाया है। पीछे उन्हीं सब भेषजों को औषधि रूप से सेवन की व्यवस्था बतलाई गई। धातुओं में से सीसा और स्वर्ण की अथर्ववेद में शरीर के बाहरी भाग में धारण करने की व्यवस्था है। पीछे के तन्त्र ग्रन्थों में ये दोनों एवं अन्यान्य धातुओं के भस्म औषध रूप से सेवन करने की व्यवस्था हुई है। निम्नलिखित कई एक पृष्ठों में अथर्ववेद के प्रत्येक काण्डों में जो सब रोग और भेषज मूलक सूक्त हैं, उनका अति सूक्ष्म विवरण दिया गया है।

प्रथम काण्ड ॥ १ ॥

दूसरा सू०। देह से अत्यधिक स्राव (उदरामय, आमाशयादि) निवारण के लिये मुञ्जघास लेकर मंत्र) २तीय काण्ड में ३रे सू० में इसी उद्देश्य से "झरना का जल लेकर और एक मंत्र है। छठा काण्ड में ४४ सू० में और भी एक मंत्र है। मुञ्जघास को यंत्र रूप से बांधने की प्रक्रिया कौशिक सू० में (२५।६) और दारिल की टीका में विस्तृत भाव से लिखा है।

तीसरा सू०। कोष्टबद्ध और प्रस्राव विरुद्ध में मंत्र। इसी सूक्त में परवर्त्ती काल चिकित्सकों का बस्ति यन्त्र की नाईं एक प्रकार के तृण की सहायता से चिकित्सा विषय का उल्लेख है। कौशिक सू० में इस विषय की जो विस्तृत व्यवस्था है, उसका अनुवाद नीचे दिया हुआ है। कौशिक सूत्र (२५।१०।१९) इन मंत्रों के उच्चारण करते समय मूत्र का वेग जिसमें हो, ऐसा द्रव्य रोगी के शरीर में बान्ध देवे। उसके बाद दीमक की माटी पूतिका (Guilandina bonduc) सूखा गुण्डान प्रमन्द और काठ का गुँडा जल में भिंजा कर वही जल रोगी को पीने को देवे। इस सूक्त का शेष दो मंत्र उच्चारण करते २ मलद्वार में एक शलाका—एक सलाई (Enema) प्रवेश करा देवे। उसके बाद मूत्रनाली में शलाका दिलवा दे। शेष रोगी को आल, पद्म का शिकड़ और उल इन तीन द्रव्यों का पाचन सेवन करने को देवे। कोष्ठबद्ध होने पर भी इसी प्रकार व्यवस्था है। १६ सूक्त। सीसा का ताबीज। भूतों को भगाने के लिये व्यवस्था है। १७सूक्त रुधिर गिरने को रोकने के लिये मंत्र। टीकाकार गण कहते हैं जो रक्त स्राव का अर्थ कटने से रक्तस्राव और अत्यधिक रजोनिस्सरण ये दोनों समझना होगा। इन मंत्रों के सहित कौशिक सूत्र (२६।१०) धूलि और पत्थर का चूर्ण जखम की जगह चढ़ा देने से रक्त बन्द करने की व्यवस्था दी है। २२वें सू०। पाण्डु (कामला—केशव की टीका) रोग के प्रति मंत्र। इस सूक्त में विशेष कोई जानने के लिये भेषज का उल्लेख नहीं। कौशिक सूत्र में (२६, १४) इस मंत्र के साथ करणीय प्रक्रिया का विवरण है। २३।२४ सूक्त। श्वेत कुष्ठ रोग के प्रति मंत्र। रजनी (हरिद्रा) (Cacuma longer) इस रोग को दूर करने के लिये उल्लिखित हुई है। आयुर्वेद ग्रंथों में कुष्ठ रोग में हरिद्रा का व्यवहार अधिकता से हुआ है। कौशिक सूत्र में (२६।२२।२४) मंत्रों के साथ करणीय आनुषङ्गिक प्रक्रिया वर्णित हुई है। सायनाचार्य और केशव ने अपनी २ टीका में कुष्ठ के लिये भृङ्गराज, हरिद्रा, इन्द्रवारुणी, और नीलिका का उल्लेख किया है। २५ सू०। तक्षण (ज्वर) इस सूक्त का और नीचे लिखे सूक्तों का विषय ५ का० ४ सूक्त, २२ सूक्त; ६ का० २० सू०, ९५ सू०, ३ सू०, १०२ सू०, ११६ सू०; १९ का० ३९ सू०। सुश्रुत जैसे ज्वर को रोगों का राजा कहा है उसी प्रकार अथर्ववेद में "तक्षण" को सबकी अपेक्षा भयानक कह कर लिखा है। इन सब सूक्तों में ज्वर के लक्षणादि भली-भांति स्पष्ट हुआ है। लक्षणादि मलेरिया

ज्वर के साथ बहुत मिलते हैं। प्रधान लक्षण पर्याय क्रम से उत्ताप और शीतावस्था, ज्वर को छोड़ कर और दो तीन दिन अन्तर देकर ज्वर होना। ज्वर के साथ मस्तक व्यथा, खांसी बलास (क्षय रोग) पामन् (तक्षण का भाई, चूलकना) और पाण्डु (कामला) आकर योग देता है। उत्ताप ज्वर का प्रधान लक्षण होने से उल्लिखित हुआ है। १ का० १२ सू० में "विद्युत्को" जान पड़ता है अग्नि का रूपान्तर कहा है, ज्वर, माथा व्यथा, काश के कारण होने से निर्दिष्ट हुआ है। ज्वर दूर करने के लिये मंत्रोच्चारण और कुष्ठ नामक (Costus specios or arabicus) वृक्ष के यंत्र धारण की व्यवस्था सूचित हुई है। कौशिक सूत्र में और भी अनेक आनुषङ्गिक प्रक्रिया वर्णित हुई है; विस्तार भय से उन विषयों का उल्लेख नही किया गया। कौ० सू० सानुवाद में देखना (३५ सू०)। सोने का यंत्र एक सौ वर्ष परमायु और प्रभुत शक्ति लाभार्थ धारण करना चाहिये ऐसा लिखा है।

॥ द्वितीय काण्ड ॥

२ रा सू० प्रथमकाण्ड दूसरा सू० देखो। चतुर्थ सू० विभिन्न रोग और भूत योनि के लिये "जङ्गिड" नामक वृक्ष को उपलक्ष कर मंत्र। टीकाकारगण इस जङ्गिड वृक्ष के स्वरूप को अब तक निश्चय नहीं कर पाये। सीधे लिखा है "वाराणस्यां" प्रसिद्धः।—काशी में मशहूर है। १४ काण्ड ३४ सू० में और १९ काण्ड १५ सूक्त में इस सम्बन्ध में और भी दो मंत्र है। ८ म० सू० क्षेत्रिय (Hereditaridiseases, Pulmonary consumption Greffiths—इसका अनुवाद रामक रोग का मंत्र इस रोग को टीकाकारगण पुरुषानुक्रमसे प्राप्त यक्ष्मा रोग कहकर निर्देश किया है। इस यक्ष्मा रोग के सम्बन्ध में अनेक मंत्र हैं। तीसरे काण्ड में ६ ठा सू० में हरिण के शृङ्ग के यंत्र की व्यवस्था है। १९ काण्ड में ३९ सू० में कुष्ठ वृक्ष को अन्य २ रोगों में यक्ष्मा को आरोग्य करने के लिये प्रस्तुत हुआ है। ९ सूक्त अथर्ववेद में अनेक स्थलों में भूतयोनि, अप्सरा, गन्धर्व प्रभृति अमानुषिक प्राणिको रोग के कारण कहकर निर्देश किया है (६।३७) इस सू० में यह सब भूत योनि के आक्रमण से रोगी की रक्षा करने के लिये दश प्रकार के वृक्षों का यंत्र धारण करने की व्यवस्था की है। २५ सू० पृश्निपर्णी (Hemianitis Cordifolia) वृक्ष के प्रति मंत्र। रोग के हेतुभूत कण्वनामक दैत्य

को विनाशार्थ पृष्णिपर्णी नामक वृक्ष को अनुरोध किया गया है। सुश्रुत ने गर्भस्राव रोग में दूध के साथ पृष्णिपर्णी की व्यवस्था कियी है।

३१ और ३२ सूक्त में पशु के कृमि का "गोः कृमिः"—केशव की टीका है। और पञ्चम काण्ड २३ सू० में शिशुओं (बच्चे) की कृमि के मंत्र हैं। इन तीन सूक्तों में अनेक प्रकार के कृमियों का वर्णन देख पड़ता है। सादा, काला, तीन मस्तक वाले, चतुर्मस्तक, नाना रंगों के कृमियों का वर्णन है। इन सब सूक्तों में किसी प्रकार के भेषज का वर्णन नहीं पाया गया। केवल मंत्रों की सहायता से कृमिनाश की व्यवस्था है। तीसरा काण्ड ५ म सूक्त में आर्थिक उन्नति लाभ के लिये पर्णवृक्ष का यंत्र। इस पर्णवृक्ष को परवर्त्ती काल में पलास (Butin Frondosa) नाम से कहा गया है। ६ ठे० सू० में अश्वत्थ वृक्ष को शत्रुनाश के लिये और हरिण शृङ्ग का यंत्र धारण करे। (२ का० ८ मसू०)।

॥ चतुर्थ काण्ड ॥

४ र्थ सू०। नष्टवीर्य (Impotency) उपद्धार के लिये कपित्थक (Feronia Elephantum) नामक वृक्ष का उद्देश्य के लिये मंत्र। ६।७ सू० विष झाड़ने का मंत्र किसी औषधिके नाम का उल्लेख नहीं। ९ वम सू० पाण्डु, यक्ष्मा, दोषस्थ ज्वर के लिये मलहम (Oeintment) कौशिक सूत्र में (५८।८) लिखा गया है कि विधि से उसमें मलहम का यंत्र बान्ध देना चाहिये। १० सू० इस सू० में दीर्घजीवन के लिये मुक्तायत्र धारण की व्यवस्था की है। मुक्ता की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हम लोगों में जो प्रवाद प्रचलित है कि स्वाती नक्षत्र का जल सीप में पड़ने से मुक्ता रूप से परिणत होता है, उसी प्रवाद की सूचना इस सूक्त में पाई जाती है॥ १५॥

१२ सू० में क्षत आरोग्य के लिये अरुन्धती नामक लता के उद्देश्य से यह सूक्त रचित हुआ है। इस सम्बन्ध में पञ्चम काण्ड ५म सू० में और भी एक मंत्र है। उस मंत्र में (५, ५, ५,) कहा गया है—"हे अरुन्धति ! तू पलाश, अश्वत्थ, खदिर, धव प्रभृति वृक्ष के अवलम्ब से उठी है इस सू० में अरुन्धती को शिलादि और लाक्षा (Lac) कह

1—Born in the sky, ocean born, brought nether out of the river, this gold born shell farms a life protonging ammulet IV, 10, 4.

कर सम्बोधन किया गया है किसी २ ने कहा है कि अरुन्धती का स्वरूप नहीं मालूम होता है। अनेक लोगों ने लाक्षारूप होने से निर्देश किया है। दोनों सूक्तों में अरुन्धती क्षतरोग के आरोग्यता के लिये निर्दिष्ट हुई है ।, ६ ठा काण्ड १०९ सू० में पिप्पली (Heppercam) क्षत के आरोग्यार्थ स्तुत हुआ है। १७,१८, १९ सूक्त। ये तीन सूक्त अपामार्ग (चिड़चिड़ी) (Achryranthes aspera) नामक औषधि के उद्देश्य से रचित हुए हैं। इस अपामार्ग और इस का क्षार परवर्त्ती काल के आयुर्वेद ग्रन्थों में बहुत परिमाण से व्यवहृत हुआ है। इन तीन सूक्तों में अपामार्ग की बहुत प्रशंसा वर्णित है। प्रत्युत इसको भेषजों की राणती कह कर निर्दिष्ट की गयी है। यह भेषज सब प्रकार के दोष युक्त रोगों, दैत्य और पाप को दूर करने में समर्थ है। २० सू० इस सू० में छिपी हुई भूत योनि आविष्कार करने के लिये मंत्र है। पहिले ही कहा गया है जो, भूत योनि को अनेक रोगों का कारण कहकर अथर्बवेद में निर्दिष्ट हुआ है। कौशिक सूत्र (२८।७) इस विषय में करणीय प्रक्रिया वर्णित है। दारिल अपनी टीका में प्रसङ्ग वश सद्म्पुष्प व्यवहार के लिये उल्लेख किया है।

॥ पञ्चम काण्ड ॥

. ४र्थ सू० "तक्षण" (ज्वर) ज्वर दूर करने के लिये कुष्ट नामक वृक्ष को आहवाहन किया गया है (१म का० २५ सू०) ५म सू०। क्षत आरोग्य कल्प में अरुन्धती की आराधना है। ४ का० १२ सू०।)

१३ सू०। सर्प बिष का मंत्र षष्ठ काण्ड, १२, १३ सू० सूक्त में सर्प विष के और दो मंत्र हैं। अनेक प्रकार के सरीसृप का उल्लेख इन तीन सूक्तों में देखने में पाया जाया जाता है। जैसे—किरातन, धूसर वर्ण, कृष्णवर्ण, चाका चाग का दाग विशिष्ट इत्यादि। इस प्रसङ्ग में मधु का उल्लेख देखने में आता है। कौशिक सूत्र में (२९।२८।२९) सर्प विषकी चिकित्सा में रोगी को शीघ्र मधुपान कराने की व्यवस्था दियी गयी है। २२ सू०। तक्षण—(१ म का०, २५ सू०।) २३ सू०। शिशुओं के कृमि (२ का०, ३१ सू०।)

॥ षष्ठ काण्ड ॥

तीसरा सू०। तक्ष्मण (१म का० २३ सू०।) १२ सू० सर्प विष का मंत्र—(५म का० २३ सू०।)

१४ सू० । बलास (क्षय रोग Consumption) रोग के निवारण का मंत्र ।

१६ सू० । चक्षु रोग (Ophthalmia) आरोग्य का मंत्र टीकाकार गण इस सूक्त को चक्षु रोग में सरिसों का (mustard) व्यवहार सूचित होता है । कौशिक इस सूत्र के मंत्र में (३०।१।७) इस सम्बन्ध में विस्तृत व्यवस्था दृष्ट होती है । इस मंत्र के उच्चारण के साथ सरिसों वृक्ष के यंत्र, सरसों के तैल सिक्त करके बान्ध देवे, सरसों के पत्ते का रस सेवन करने को देवे । और पत्ते को पीस कर नेत्र के ऊपर प्रलेप करे ।
२० सू० । तक्षण (१म का० २५ सू० ।)

२१ सू० केशवृद्धि के मंत्र । ६ ठा काण्ड १३७ और १३ श सू० में नितत्नी नामक लता को केश बढ़ाने के लिये की गई है इस नितत्नी लता का स्वरूप स्थिर नही हुआ है । मंत्र में यहां तक कहा गया है जो यह लता को जमदग्नि अपनी कन्या के लिये मट्टी से उखाड़ा था । इस लता को सम्बोधन करके कहते हैं—"हे लते ! तू पुरातन केश को दृढ़ कर, नये केश को उत्पादन कर, और वर्तमान केशों को घन कर दो (६।१३६।२)। छठे काण्ड में ३० सू० में "शमी वृक्ष" (Drosopis spicogera or Acun sum) केश बढ़ाने के लिये बुलाया गया है ।

२४ सू० । शोथ (Dropsry) वक्षः पीड़ा (heart disease) इस पीड़ा के लिये स्रोत (सोते के) के जल की व्यवस्था की गयी है । १ का० ८३ सूक्त में भी शोथका और भी एक मंत्र है । कौशिक सूत्र (३२।१४) २५ सू० शरीर के ऊपर गण्डमाला का मंत्र है । कौशिक सूत्र (३०।१४) ८३ सू० में एक और मंत्र है । ५७ सू० में गण्डमाला की चिकित्सा में जालस गोमूत्र व्यवहृत हुआ है । ३० सू० में केश वृद्धि के लिये शमी वृक्ष को बुलाया गया है । (२१ सू०) ३७ सू० रोग का मूल कारण अप्सरा, गन्धर्व सबको दूर करने के लिये "अजश्रृङ्गी" को (Odinapinata) आह्वान किया गया है । ४४ सू० । देह से अत्यधिक स्राव निवारण का मंत्र १म काण्ड, २रा सू० । ५७ सू० गण्डमाला की दवा इस सूक्त में कही गयी है । जालस् अर्थात् गोमूत्र इस रोग में व्यवहृत होता है । कौशिक सूत्र (२२।११।१३) में वर्णित है जो गण्डमाला पर गोमूत्र का फेन लेपन करे । (२५।८३ सू० देखो । ८०म सू० पक्षा-घात आरोग्य करने में सूर्य को इस सूक्त से स्तव किया गया है । ८३ म

सू० इस सू० में अपची गण्डमाला (केशव और सायन) रोग के आरोग्यार्थ मंत्र विहित हुआ है। २५ सू० देखो। ८५म सू० में यक्ष्मा रोग को दूर करने के लिये "भरण" वृक्ष के (भरणी Luffa foctidas or Caratoena roseburgeict) यन्त्र धारण की व्यवस्था कियी है। कौशिक सूत्र में (२६।३३।३७) यह बन्धन प्रक्रिया सविस्तर वर्णित है।

९० सू०। इस सू० में—"शूल रोग" (कौलिक) निवारण कल्प में मंत्र है। इस सू० में किसी भी दवा का नाम नहीं है। केवल मंत्र की सहायता से प्राचीन लोग इस रोग को आरोग्य करते थे। ९१ सू० में ज़ल मिश्रित यव (barley) सब रोगों में प्रयुज्य होती—इस सूक्त में लिखा है। ९५ सू० में तक्षण कां० १।२५ सू० १०२ सू० तक्षण—१ काण्ड २५ सू० १०९ क्षुत रोग की चिकित्सा में पिप्पली का (papper carm) व्यवहार सूचित होता है। ४ थे कां० में १२ सू० १११ सू० में पागलपन की दवा है। ११६ सू० में तक्षण—१ म काण्ड, २५ सू०। १२७ सू०। इस सूक्त में "चोपद्रु वृक्ष" सब रोगों के प्रशमनार्थ उल्लेख किया गया है। १३६-१३७ इन दो सूक्तों में केश वृद्धि के लिये नितत्नी नामक लता को सम्बोधन किया गया है। २१ सू० देखो।

सप्तम काण्ड ॥ ७ ॥

५६ सू० सर्प विष का मंत्र—५ म काण्ड १३ सू० ७४।७६ सू० इन दो सू० में—"जायान्य" नामक अर्बुद की चिकित्सा का मंत्र है। ८३ सू० में शोथ रोग का मंत्र है।

चतुर्दश काण्ड ॥ १४ ॥

३८ सू०। २ काण्ड। ४ सू० देखो।

उनविंश काण्ड ॥ १९ ॥

३५ सू०। २ रा काण्ड और ४ था सू० देखो। इस सू० में गुग्गूल का (Beclelleum) मीठे गगनपूर का रोग नाशक की शक्ति का वर्णन है। ३९ सू० में कुष्ठवृक्ष की आराधना का मंत्र है। इस स्थान में कुष्ठवृक्ष को सब प्रकार के रोग जैसे—ज्वर, कास, रोग इत्यादि आरोग्य करने के लिये बुलाया गया है। १ म काण्ड २५ सू०।

उपरि उल्लिखित तालिका देखने से पता लगता है जो, प्राचीन हिन्दुओं की चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान का उत्तम आभास पाया जाता है। अथर्ववेद में जिन सब रोगों की चिकित्सा या जिन सब भेषजों का रोग नाशक क्षमता मन्त्रों में सूचित हुई है उन्हीं सब रोग और भेषज के सम्बन्ध में कौशिक सूत्र में विस्तृत वर्णन है।

और देशव्यापी अद्भुत या अलौकि-सामुहिक दैविक घटना होने की सूचना-प्रकृति के विपरीत कार्य्यों से वर्षों, महीनों, दिनों पहिले से होती है। इसका भी विशेष उपयोगी वर्णन आया है। यह कौ० सू० अनेकों उपकारी उपदेश रत्नों से पूरित सबको देखने तथा रखने योग्य है।

भवदीय—

उदयनारायण सिंह।

❀ श्रीगणेशाय नमः ❀

अथर्ववेदीय-कौशिकसूत्रम्

अथ विधिं वक्ष्यामः ॥ १ ॥ स पुनराम्नायप्रत्ययः ॥ २ ॥ आम्नायः पुनर्मन्त्राश्च ब्राह्मणानि च ॥ ३ ॥ तद्यथा ब्राह्मणविधिरेवं कर्मलिङ्गा मन्त्राः ॥ ४ ॥ तथान्यार्थाः ॥५॥ तथा ब्राह्मणलिङ्गा मन्त्राः॥ ६॥ तदभावे सम्प्रदायः ॥७॥ प्रमुक्तत्वाद्ब्राह्मणानाम् ॥ ८ ॥ यज्ञं व्याख्यास्यामो देवानां पितॄणां च ॥ ९ ॥ प्राङ्मुख उपांशु करोति ॥१०॥ यज्ञोपवीती देवानाम् ॥११॥ प्राचीनावीती पितॄणाम् ॥१२॥

भाषार्थः—वेद की संहिता भाग को पढ़ लेने के अनन्तर वेदमंत्रों से यज्ञ, संस्कार आदि का विधान हुआ है। अब उस विधि को कहते हैं। अर्थात् शान्तिक, पौष्टिक, आभिचारिक और अद्भुत कर्म संहिताविधि में उपदिष्ट है। यह कर्म तीन प्रकार का है। विधिकर्म, अविधिकर्म और उच्छ्रय कर्म। इनमें से विधिकर्म तीन प्रकार का है।—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ॥१॥ उक्त विधि का ज्ञान वेद से होता है। और वेद में विधि ज्ञापक मंत्र हैं और ब्राह्मण ग्रन्थ में वेद मंत्रों का कर्मों में विनियोग है ॥२॥ जैसे ब्राह्मण विधि हैं उसी प्रकार कर्म-लिङ्ग मंत्र हैं ॥३॥४॥ इसके अभाव में वेदाचार्य्यों की परम्परा से यज्ञादिकों के करने की प्राचीन प्रथा भी प्रमाण है ॥५॥६॥७॥ आचार्यों के पठन-पाठन के विशृङ्खल होने और पढ़ाने की परम्परा नष्ट होने और प्रमाणों की विस्मृति होने से यज्ञादि करने की प्रक्रिया ने विकृत रूप धारण कर लिया है ॥८॥ अतएव देवताओं एवं पितरों के यज्ञों का उपदेश करेंगे ॥९॥ पूर्व मुख होकर देवकार्य उपांशु (विना मंत्र बोले) करे ॥१०॥ देवकार्य करने में यजमान यज्ञोपवीती होकर करे और पितृकार्य में प्राचीनावीती हो करे ॥११॥१२॥

प्रागुदग्वा देवानाम् ॥१३॥ दक्षिणा पितॄणाम् ॥१४॥ प्रागुदगपवर्गं देवानाम् ॥१५॥ दक्षिणप्रत्यगपवर्गं पितॄणाम् ॥१६॥ सकृत्कर्म पितॄणां त्र्यवरार्धं देवानाम् ॥१७॥ यथादिष्टं वा ॥१८॥ अभिदक्षिणमाचारो देवानां प्रसव्यं पितॄणाम् ॥१९॥ स्वाहाकारवषट्कारप्रदाना देवाः ॥२०॥ स्वधाकारनमस्कारप्रदानाः पितरः ॥२१॥ उपमूललूनं बर्हिः पितॄणाम् ॥२२॥ पर्वसु देवानाम् ॥२३॥ प्रयच्छ पर्शुमिति दर्भाहाराय दात्रं प्रयच्छति ॥२४॥ ओषधीर्दान्तु पर्वन्नित्युपरि पर्वणां लूत्वा तूष्णीमाहृत्योत्तरतोऽग्नेरुपसादयति ॥२५॥ नाग्निं विपर्यावर्तेत ॥२६॥ नान्तरा यज्ञाङ्गानि व्यवेयात् ॥२७॥ दक्षिणं जानु प्रभुज्य जुहोति

पूर्व या उत्तर मुख करके दैवकर्म और दक्षिण की ओर मुख कर के पितृकर्म करे ॥ १३ ॥ १४ ॥ दैवकर्म की समाप्ति पूर्व या उत्तर दिशा में और दक्षिण या पश्चिम दिशा में पितृकर्म की समाप्ति करे ॥१५॥१६॥ पितरों का कर्म एक ही बार होता है। और तीन अवरार्ध कर्म देवताओं का होता है ॥१७॥ या आदेशानुसार कर्म करे ॥१८॥ दहिने हाथ को सम्मुख करके दैवकर्म करे और अपसव्य होके पितृकर्म करे ॥१९॥ देवताओं के नाम के अन्त में स्वाहा, वषट् जोड़कर (चतुर्थी विभक्ति के पीछे) देवताओं को हवन आदि करे ॥२०॥ और पितरों के लिये "स्वधा" और "नमः" लगाकर पिण्डादि देवे ॥२१॥ मूल सहित कुश पितरों के लिये (जड़ के पास से टूटा) ॥२२॥ और जो कुश गिरहों पर से टूटा हो उसका व्यवहार देवकार्य में करे ॥२३॥ "प्रयच्छ पर्शुम्" इत्यादि मंत्र पढ़ के दाँत वाला अस्त्र कुश को काट कर लाने के लिये देवे ॥२४॥ "ओषधीर्दान्तुपर्वन्०" मंत्र पढ़कर कुश के गिरहों पर से काटकर तूष्णीं लावे और अग्नि के उत्तर भाग में धर देवे ॥२५॥ एवं यजमान या उसकी पत्नी या ब्रह्मा कार्य समाप्त होने पर अग्नि के विरुद्ध मुख होके न जावे ॥२६॥ यज्ञ की वेदी की ओर अङ्गों को न फैलावे ॥२७॥ दहिने जानु को भूमि पर टेक कर आहुति देवे ॥२८॥ चतुर्दशी

॥२८॥ या पूर्वा पौर्णमासी सानुमतिर्योत्तरा सा राका ॥२९॥ या पूर्वामावास्या सा सिनीवाली योत्तरा सा कुहूः ॥३०॥ अद्योपवसथ इत्युपवत्स्यद्भक्तमश्नाति ॥३१॥ मधुलवणमांसमाषवर्जम् ॥ ३२ ॥ ममाग्ने वर्च इति समिध आधाय व्रतमुपैति ॥३३॥ व्रतेन त्वं व्रतपत इति वा ॥३४॥ ब्रह्मचारी व्रस्यधः शयीत ॥३५॥ प्रातर्हुतेऽग्नौ कर्मणे वां वेषाय वां सुकृताय वामिति पाणी प्रक्षाल्या-परेणाग्नेर्दर्भानास्तीर्य तेषूत्तरमानडुहं रोहितं चर्म प्राग्-ग्रीवोत्तरलोम प्रस्तीर्य पवित्रे कुरुते ॥ ३६ ॥ दर्भावप्र-च्छिन्नप्रान्तौ प्रक्षाल्यानुलोममनुमार्ष्टि विष्णोर्मनसा पूते स्थ इति ॥ ३७ ॥ १ ॥

त्वं भूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे। त्वां पवित्रमृषयो भरन्तस्त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मदिति

युक्त पौर्णमासी को अनुमति और परिवा युक्त पौर्णमासी को राका कहते हैं ॥२९॥ चतुर्दशी युक्त अमावास्या को सिनीवाली और परिवा युक्त अमावास्या को कुहू कहते हैं ॥३०॥ चतुर्दशी युक्त पौर्णमासी पूर्वा कह-लाती है और परिवा युक्त उत्तरा कहलाती है। इसी प्रकार पूर्वा अमावास्या को उपवास करे एवं उत्तरा अमावास्या को यज्ञ करे॥ और उपवास करने वाला भात खावे ॥ और क्षार लवण, मांस, उड़ीद को न खावे ॥३१॥३२॥ "ममाग्ने वर्च०" इत्यादि पढ़कर समिध लेवे एवं व्रत करे ॥३३॥ या "व्रतेन त्वं व्रतपत०" से करे ॥३४॥ व्रत करनेवाला ब्रह्मचारी भूमि पर सोवे, खाट आदि पर नहीं ॥३५॥ प्रातःकाल की आहुतियाँ अग्नि में डालकर "कर्मणे वां०" इत्यादि मंत्र से लाल रंग के बैल के चर्म को पूर्व की ओर गला और ऊपर को लोम भाग करके बिछाकर कुश के पवित्रे को बनावे ॥३६॥ कुशों के प्रान्त भाग को तोड़कर जल से प्रक्षालन कर "विष्णोर्मनसा पूते स्थ०" मंत्र से अनुमार्जन करे ॥३७॥ यह प्रथम कण्डिका समाप्त हुई ॥१॥

"त्वं भूमि मत्येष्योजसा०" इत्यादि मंत्र से पवित्रे को चमड़े और

पवित्रे अन्तर्धाय हविर्निर्वपति देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्नये जुष्टं निर्वपामीति ॥१॥ एवमग्नीषोमाभ्यामिति ॥२॥ इन्द्राग्निभ्यामित्यमावास्यायाम् ॥३॥ नित्यं पूर्वमाग्नेयम् ॥४॥ निरुप्तं पवित्राभ्यां प्रोक्षत्यमुष्मै त्वा जुष्टमिति यथादेवतम् ॥ ५ ॥ उलूखलमुसलं शूर्पं प्रक्षालितं चर्मण्याधाय व्रीहीनुलूखल ओप्यावघ्नंस्त्रिर्हविष्कृता वाचं विसृजति हविष्कृदा द्रवेहीति ॥६॥ अपहत्य सुफलीकृतान्कृत्वा त्रिः प्रक्षाल्य तण्डुलानग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वाध्यरुक्षदिति चरुमधिदधाति ॥७॥ शुद्धाः पूता इत्युदकमासिञ्चति ॥८॥ ब्रह्मणा शुद्धा इति तण्डुलान् ॥९॥ परिस्त्वाग्ने पुरं वयमिति त्रिः पर्यग्नि करोति ॥१०॥ मेक्षणेन त्रिः प्रदक्षिणमुदायौति ॥११॥ अत ऊर्ध्वं यथाकामम् ॥१२॥ उत्तरतोऽग्नेरुपसादयती-

---

व्रीहियों के भीतर धर कर "देवस्य त्वा" इत्यादि मंत्र से हवि का निर्वपण करे ॥१॥२॥३॥ सदैव पहिले आग्नेयविधि को करना चाहिये ॥४॥ निरुप्त हवि को पवित्रे से "अमुष्मै त्वा०" (जिस देवता के नाम हवि करना हो उसका नाम लेकर) मंत्र से प्रोक्षण करे ॥५॥ पुनः उलूखल, मुसल, सूप, जो प्रक्षालन किये हुए हों, उनको चमड़े में धरकर धान्यों को ओखरी में डालकर तीन बार कूट कर "हविष्कृदा द्रवेहि०" से वाक् संयम करे। और व्रीहि को कूट छाट कर सूप से फटक कर साफ करके चावलों को तीन बार प्रक्षालन कर "अग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वा०" इत्यादि मंत्र से चरु को आग पर चढ़ावे और "शुद्धाः पूताः०" से जल सिक्त करे ॥६॥७॥८॥ "ब्रह्मणा शुद्धा०" से चावलों को जल से सींचे। "परित्वाग्ने०" इत्यादि मंत्र से तीन बार चरु का पर्यग्नि करण करे ॥९॥ ॥१०॥ मेक्षण द्वारा तीन बार प्रदक्षिण चलावे ॥११॥ इसके पश्चात् घोटना, या न घोटना या प्रदक्षिण करना, या न करना—अपनी इच्छा पर है करे या न करे ॥१२॥ अग्नि के उत्तर भाग में इध्मों को और इसके

ध्मम् ॥१३॥ उत्तरं बर्हिः॥१४॥ अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीतीध्मम् ॥१५॥ पृथिव्या इति बर्हिः ॥१६॥ दर्भमुष्टिमभ्युक्ष्य पश्चादग्नेः प्रागग्रं निदधात्यूर्णम्रदं प्रथस्व स्वासस्थं देवेभ्य इति ॥१७॥ दर्भाणामपादाय ऋषीणां प्रस्तरोऽसीति दक्षिणतोऽग्नेर्ब्रह्मासनं निदधाति ॥१८॥ पुरस्तादग्नेरास्तीर्य तेषां मूलान्यपरेषां प्रान्तैरवच्छादयन्परिसर्पति दक्षिणेनाग्निमा पश्चार्धात् ॥१९॥ परिस्तृणीहीति सम्प्रेष्यति ॥२०॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूतः प्रशिषा परिस्तृणामीति ॥२१॥ एवमुत्तरतोऽयुजो धातून्कुर्वन् ॥२२॥ यत्र समागच्छन्ति तद्दक्षिणोत्तरं करोति ॥२३॥ स्तीर्णं प्रोक्षति हविषां त्वा

उत्तर में बर्हि को धरे ॥१३॥१४॥ "अग्नये त्वा०" इत्यादि मंत्र से इध्मों का प्रोक्षण करे ॥१५॥ "पृथिव्या०" से कुश का प्रोक्षण करे ॥१६॥ "ऊर्ण म्रदं प्रथस्व०" इत्यादि मंत्र से दाभ की मुष्टि को अभ्युक्षण करके अग्नि के पश्चिम भाग में पूर्वाग्र धरे ॥१७॥ और कुशों को लाकर "ऋषीणां०" मंत्र से अग्नि के दक्षिण भाग में ब्रह्मा का आसन धरे ॥१८॥ अग्नि के आगे कुशों को इस प्रकार बिछावे जिसमें कुशों की जड़ सब अन्य कुशों के प्रान्त भाग को ढाकते हुए रहें और दक्षिण अर्थात् वेदि के मध्य प्रदेश से लेकर बिछावे—जिसमें सब कुशों के अन्त भाग को ढाकता हुआ अग्नि के दक्षिण भाग तक और वेदि के पश्चिम भाग तक बिछ जावें ॥१९॥ तब ब्रह्मा कर्त्ता को "परिस्तृणीहि०" संप्रेषण करे ॥२०॥ "देवस्य त्वा०" इत्यादि से वेदि के स्तरण के लिये कुश की मुट्ठी को पकड़ कर बिछावे ॥२१॥ जिस प्रकार वेदि के दक्षिणार्द्ध में संप्रेपणादि द्वारा स्तरण किया है उसी प्रकार वेदि के उत्तरार्द्ध में भी संप्रेषणादि से स्तरण करना चाहिये। दक्षिण भाग में जितनी मुट्ठियाँ हों उतनी ही उत्तरभाग में करे। उत्तर भाग में बे जोड़ (विषम) कहा गया है, इससे दक्षिण भाग में एकत्र समझने के लिये जानो ॥२२॥ दक्षिण उत्तर भाग के स्तरणों का संगम जहाँ हो वह दक्षिण उपकारि कार्य उत्तर का जानो

जुष्टं प्रोक्षामीति ॥२४॥ नानभ्युक्षितं संस्तीर्णमुपयोगं लभेत ॥२५॥ नैधोऽभ्याधानम् ॥२६॥ नानुत्पूतं हविः॥२७॥ नाप्रोक्षितं यज्ञाङ्गम् ॥२८॥ तस्मिन्प्रक्षालितोपवातानि निदधाति ॥२९॥ स्रुवमाज्यधानीं च ॥३०॥ विलीनपूतमाज्यं गृहीत्वाधिश्रित्य पर्यग्नि कृत्वोदगुद्वास्य पश्चादग्नेरुपसाद्योदगग्राभ्यां पवित्राभ्यामुत्पुनाति॥३१॥विष्णोर्मनसा पूतमसि ॥३२॥ देवस्त्वा सवितोत्पुनातु ॥३३॥ अच्छिद्रेण त्वा पवित्रेण शतधारेण सहस्रधारेण सुप्वोत्पुनामीति तृतीयम् ॥३४॥ तूष्णीं चतुर्थम् ॥३५॥ शृतं हविरभिघारयति मध्वा समञ्जन्घृतवत्कराथेति ॥३६॥ अभिघार्योदञ्चमुद्वासयत्युद्वासयाग्नेः शृतमकर्म हव्यमासीद पृष्ठममृतस्य धामेति ॥३७॥ पश्चादाज्यस्य निधायालङ्कृत्य समानेनोत्पुनाति ॥३८॥ अदारसृदित्यवेक्षते ॥३९॥

॥२३॥ बिछाये हुओं का "हविषां त्वा०" मंत्र से प्रोक्षण करे ॥२४॥ बिछाये हुए कुश विना अभ्युक्षण के काम के योग्य नहीं होते ॥२५॥ विना अभ्युक्षण के समिद् का आधान भी नहीं हो सकता है॥२६॥ विना उत्पवन के हवि—नहीं हो सकती है। और न विना प्रोक्षण के यज्ञ का अङ्ग ही हो सकता है ॥२७॥२८॥ उस प्रक्षालित एवं उत्पवन किये उपकरणों को यज्ञ के लिये आसादन करे। स्रुव और आज्यधानी को भी ॥२९॥३०॥ पिघले हुए शुद्ध घृत को अग्नि पर चढ़ाकर गर्म कर और पर्यग्नि करके तथा शुद्ध जल से उद्वासन करके अग्नि के पश्चिम भाग में धर कर उत्तराग्र पवित्रे से केश, कीट, आदि से रहित कर देवे—जिसका मंत्र "विष्णोर्मनसा पूतमसि०" इत्यादि मंत्र पढ़ कर उत्पवन तीसरी बार करे। और चौथी बार विना मंत्र के करे ॥३१॥३२॥३३॥३४॥३५॥ गर्म किये हुए आज्य को "मध्वा०" इत्यादि मंत्र से अभिघार दे कर "उद्वासयत्यु०" इत्यादि मंत्र से उत्तर की ओर उद्वासन करे ॥३६॥३७॥ आज्य के पीछे धर कर अलङ्कृत्य कर के "समानेन०" से उत्पवन करे ॥३८॥ "अदार सृद्०" मंत्र से उठ कर देखे ॥३९॥

उत्तिष्ठतेत्यैन्द्रम् ॥४०॥ अग्निर्भूम्यामिति तिसृभिरुपस-
मादधात्यस्मै क्षत्राण्येतमिध्ममिति वा ॥४१॥२॥

युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन हव्यायास्मै वोढवे जात-
वेदः । इन्धानास्त्वा सुप्रजसः सुवीरा ज्योग्जीवेम बलि-
हृतो वयं त इति ॥१॥ दक्षिणतो जाङ्मायनमुदपात्रमुप-
साद्याभिमन्त्रयते तथोदपात्रं धारय यथाग्रे ब्रह्मणस्पतिः ॥
सत्यधर्मा अदीधरद्देवस्य सवितुः सव इति ॥२॥ अथो-
दकमासिञ्चति, इहेत देवीरमृतं वसाना हिरण्यवर्णा अन-
वद्यरूपाः । आपः समुद्रो वरुणश्च राजा संपातभागान्
हविषो जुषन्ताम् ॥ इन्द्र प्रशिष्टा वरुणप्रसूता अपः
समुद्राद्दिवमुद्वहन्तु । इन्द्रप्रशिष्टा वरुणप्रसूता दिव-
स्पृथिव्याः श्रियमा वहन्त्विति ॥३॥ ऋतं त्वा सत्येन प-
रिषिञ्चामि जातवेद इति सह हविर्भिः पर्युक्ष्य जीवाभि-
राचम्योपोत्थाय वेदप्रपद्भिः प्रपद्यत ओं प्रपद्ये भूः प्रपद्ये
भुवः प्रपद्ये स्वः प्रपद्ये जनत्प्रपद्य इति ॥४॥ प्रपद्य पश्चा-
त्स्तीर्णस्य दर्भानास्तीर्याहे दैधिषव्योदतस्तिष्ठान्यस्य सदने

भाषार्थ—"उत्तिष्ठत०" से ऐन्द्रहवि को देखे ॥४०॥ "अग्निर्भूम्यां०" इत्यादि तीन ऋचाओं से आधान करे। या "अस्मै क्षत्राण्येत०" से इध्म को देखे ॥४१॥४२॥ यह दूसरी कण्डिका समाप्त हुई ॥ २ ॥

"युनज्मित्त्वे०" इन पाँच ऋचाओं से इध्म का आधान करे। और काँसे का पात्र लाकर "तथोदपात्रं धारय०" इत्यादि मंत्र से अभिमंत्रण करे ॥१॥२॥ अन्य जल से "इहेत देवी०" इत्यादि मंत्रों को पढ़ कर आसिंचन करे ॥३॥ "ऋतं त्वा सत्त्येन०" इत्यादि से हवि के साथ पर्युक्षण कर के "जीवास्थ०" इत्यादि चार मंत्रों से एक बार जल भक्षण करे, कर्त्ता और ब्रह्मा जल से आचमन करे॥ उपोत्थाय वचन से मंत्र की प्रतीति कराई गई है। और "वेदप्रपद्भिः" से प्रपद करे॥ "ओं प्रपद्ये भूः०" इत्यादि से प्रपद करावे ॥४॥ प्रपद कराके पश्चिम भाग में बिछाये हुए

सीद् योऽस्मत्पाकतर इति ब्रह्मासनमन्वीक्षते ॥५॥ निरस्तः पराग्वसुः सह पाप्मना निरस्तः सोऽस्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यश्च वयं द्विष्म इति दक्षिणा तृणं निरस्यति ॥६॥ तदन्वालभ्य जपतीदमहमर्वाग्वसोः सदने सीदाम्यृतस्य सदने सीदामि सत्यस्य सदने सीदामीष्टस्य सदने सीदामि पूर्त्तस्य सदने सीदामि मामृषदेव बर्हिः स्वासस्थं स्वाध्यासदेयमूर्णम्रदमनभिशोकम् ॥७॥ विमृग्वरीमित्युपविश्यासनीयं ब्रह्मजपं जपति बृहस्पतिर्ब्रह्मा ब्रह्मसदन आसिष्यते बृहस्पते यज्ञं गोपाय यदुदुद्वत उन्निवतः शकेयमिति ॥८॥ दर्भैः स्रुवं निर्मृज्य निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातयः प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातय इति प्रतप्य ॥९॥ मूले स्रुवं गृहीत्वा जपति विष्णोर्हस्तोऽसि दक्षिणः पूष्णा दत्तो बृहस्पतेः । तं त्वाहं स्रुवमाददे देवानां हव्यवाहनम् ॥ अयं स्रुवो विदधाति होमाञ्छताक्षरश्छन्दसा जागतेन । सर्वा यज्ञस्य समनक्ति विष्ठा बार्हस्पत्येष्टिः शर्म्मणा दैव्येनेति ॥१०॥ ओं भूः शं भूत्यै त्वा गृह्णे भूतय इति प्रथमं ग्रहं गृह्णाति ॥११॥ ओं भुवः शं पुष्ट्यै त्वा गृह्णे पुष्टय इति द्वितीयम् ॥१२॥ ओं स्वः

कुशों को आस्तरण करके "आहे दैधिषव्यो०" इत्यादि मंत्र से ब्रह्मा अपने आसन को देखे ॥५॥ "निरस्तः, पराग्वसु०" इत्यादि मंत्र से आसन से तृण लेकर वाम हाथ से दक्षिण की ओर फेंक देवे ॥६॥ उस को लेकर "इदमह मर्वाग्वसो०" इत्यादि मंत्रों से उपवेशन करके आसनीय ब्रह्म जप "बृहस्पतिर्ब्रह्मा०" इत्यादि मंत्र का जप करे ॥७॥८॥ कुशों से स्रुवा को मार्जन करके "विष्टप्तं रक्षो०" इत्यादि मंत्र से तपा कर स्रुव को जड़ में पकड़ कर "विष्णोर्हस्तोऽसि०" इत्यादि मंत्र का जप करे ॥९॥ १०॥ "ओं भूः शं भूत्यै०" इत्यादि से प्रथम ग्रह को ग्रहण करे । "ओं भुवः०" इत्यादि से दूसरे को पकड़े ॥ "ओं स्वः०" इत्यादि से तीसरे

शं त्वा गृह्णे सहस्रपोषायेति तृतीयम् ॥१३॥ ओं जनच्छं त्वा गृह्णेऽपरिमितपोषायेति चतुर्थम् ॥१४॥ राजकर्माभिचारिकेष्वमुष्य त्वा प्राणाय गृह्णेऽपानाय व्यानाय समानायोदानायेति पञ्चमम् ॥१५॥ अग्नावग्नि-र्हृदा पूतं पुरस्ताद्युक्तो यज्ञस्य चक्षुरिति जुहोति ॥१६॥ पश्चादग्नेर्मध्यदेशे समानत्र पुरस्ताद्धोमान् ॥१७॥ दक्षि-णेनाग्निमुदपात्र आज्याहुतीनां सम्पातानानयति ॥१८॥ पुरस्ताद्धोम आज्यभागः संस्थितहोमः समृद्धिः शान्ता-नामिति ॥१९॥ एतावाज्यभागौ ॥२०॥ ॥३॥

वृष्णे बृहते स्वर्विदे अग्नये शुल्कं हरामि त्विषीमते । स न स्थिरान्बलवतः कृणोतु ज्योक्क नो जीवातवे दधात्स्वग्नये स्वाहेत्युत्तरपूर्वार्द्धे आग्नेयमाज्यभागं जुहोति॥१॥दक्षिणपूर्वार्द्धे सोमाय त्वं सोम दिव्यो नृचक्षाः सुगा अस्मभ्यं पथो अनुख्यः । अभि नो गोत्रं विदुष इव नेषोऽछा नो वाचमुशतीं जिगासि सोमाय स्वाहेति ॥२॥

को, "ओं जनच्छं०" इत्यादि से चौथे को पकड़े ॥११॥१२॥१३॥१४॥ राजकर्म्म और आभिचारिक कर्म्मों में "अमुष्य त्वा०" इत्यादि से पञ्चम को पकड़े ॥१५॥ "अग्नावग्निर्हृदा०" इत्यादि से अविधिकर्म होने से एक एक स्रुव करके आज्यधानी से आज्य की आहुतियाँ देवे ॥१६॥ अग्नि के पश्चात् मध्य देश में समान ही पुरस्ताद्धोम, अग्नि के दक्षिण भाग में जलपात्र आज्याहुतियों के संपातों को लावे अर्थात् हुतशेषों को लावे ॥ पुरस्ताद्धोम, आज्य भाग, संस्थित होम, समृद्धि होम, और शान्त होमों के बचे होमों को उदपात्र में रक्खे और इन आज्यभाग की दो आहुतियों को भी ॥१७॥१८॥१९॥२०॥ यह तीसरी कण्डिका समाप्त हुई ॥ ३ ॥

"वृष्णे बृहते०" इत्यादि मंत्र से अग्नि के उत्तर पूर्वार्द्ध में आग्नेय आज्य भाग की आहुति देवे ॥१॥ और दक्षिण पूर्वार्द्ध में "त्वं सोम दिव्यो०" इत्यादि से आहुति करे ॥२॥ पुरस्ताद्धोम और आज्यभाग के

मध्ये हविः ॥३॥ उपस्तीर्याज्यं संहताभ्यामङ्गुलिभ्यां द्विर्हविषोऽवद्यति मध्यात्पूर्वार्द्धाच्च ॥४॥ अवत्तमभिघार्य द्विर्हविः प्रत्यभिघारयति ॥५॥ यतो यतोऽवद्यति तदनुपूर्वम् ॥६॥ एवं सर्वाण्यवदानानि ॥७॥ अन्यत्र सौविष्टकृतात् ॥८॥ उदेनमुत्तरं नयेति पुरस्ताद्धोमसंहतां पूर्वाम् ॥९॥ एवं पूर्वां पूर्वां संहतां जुहोति ॥१०॥ स्वाहान्ताभिः प्रत्यृचं होमाः ॥११॥ यामुत्तरामग्नेराज्यभागस्य जुहोति रक्षोदेवत्या सा यां दक्षिणतः सोमस्य पितृदेवत्या सा ॥१२॥ तस्मादन्तरा होतव्या देवलोक एव हूयन्ते ॥१३॥ यां हुत्वा पूर्वामपरां जुहोति सापक्रामन्ती स पापीयान्यजमानो भवति ॥१४॥ यां परां परां संहतां जुहोति साभिक्रामन्ती स वसीयान् यजमानो भवति ॥१५॥

होम के मध्य भाग में प्रधान हवि की आहुतियाँ देवे ॥३॥ आज्य को उतार कर स्रुव से उपस्तरण मिली हुई दो अङ्गुलियों से (मध्यमा और प्रदेशिनी से) स्रुच में एक स्रुव धर कर दो अङ्गुलियों से अवदान करे पूर्वार्द्ध मध्य से ॥४॥ अवदान को अभिघार कर दो बार आहुति कर के पुनः अभिघार देवे ॥५॥ जैसे २ अवदान करे उसी क्रम से उस हवि का ढार देवे ॥६॥ इसी प्रकार उक्त अवदान नियम से प्रत्येक ऋचा से अवदान करे ॥७॥ सौविष्ट कृत को छोड़ कर अन्यत्र समझना ॥८॥ "उदेनमुत्तरं नय०" इस प्रथम ऋचा से पुरस्ताद्धोम देश की आहुति देवे ॥९॥ इस २ प्रकार पूर्व २ देश में मिली हुई पूर्व २ आहुतियाँ देवे ॥१०॥ प्रत्येक आहुति के स्वाहान्त मंत्र के साथ करे ॥११॥ अग्नि के उत्तर भाग में जो आज्य भाग की आहुति होती है वह रक्षो देवता के लिये जानो । जो दक्षिण भाग में सोम की आहुति होती है वह पितरों के लिये जानो ॥१२॥ इसलिये मध्य में आहुति देवे—यह आहुति देव लोक ही में होती है जानो ॥१३॥ जिस आहुति करके—पूर्वा अपरा आहुति होती है, वह अपक्रामन्ती नाम की आहुति है जिसके करने से यजमान पापी होता है ॥१४॥ जो परा परा मिली आहुति होती है

यामनग्नौ जुहोति सान्धा तया चक्षुर्यजमानस्य मीयते सोऽन्धंभावुको यजमानो भवति ॥१६॥ यां धूमे जुहोति सा तमसि हूयते सो ऽरोचको यजमानो भवति ॥१७॥ यां ज्योतिष्मति जुहोति तया ब्रह्मवर्चसी भवति तस्मा-ज्ज्योतिष्मति होतव्यम् ॥१८॥ एवमस्मै क्षत्रमग्नीषोमा-वित्यग्नीषोमीयस्य ॥१९॥४॥

अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः । सं देवत्रा बभूवथुः ॥ युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् । युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमा-वमुञ्चतं गृभीतान् ॥ अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम् । स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्य-श्नवत् ॥१॥ इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद्वां चेति प्रवीर्यम् ॥ श्नथद्वृत्रमुत सनोति वाज-मिन्द्रा यो अग्नी स हुरी सपर्यात् । इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ॥ इन्द्राग्नी अस्मान् रक्षतां यौ प्रजानां प्रजावती । स प्रजया सुवीर्यं विश्व-मायुर्व्यश्नवत् ॥ गोमद्धिरण्यवद्वसु यद्वामश्वावदीमहे ।

उसको अभिक्रामन्ती कहते हैं—उससे यजमान ईश्वर (शक्तिशाली) होता है ॥१५॥ जो आहुति अग्नि बुत जाने पर भस्म में होती है उसका करने वाला यजमान नेत्र से दृष्टि हीन होता है ॥१६॥ जो धूमयुक्त अग्नि में आहुति करता है वह गुणयुक्त होता हुआ भी प्रकाश रहित होता है ॥१७॥ जो ज्वालायुक्त अग्नि में आहुति करता है वह यजमान ब्रह्म-वर्चस्वी होता है अतएव ज्वालायुक्त अग्नि में आहुति देवे ॥१८॥ इसी प्रकार "अस्मै क्षत्रम्०" इत्यादि से अग्नीषोमीय देवताओं की आहुतियाँ देवे ॥१९॥ यह चौथी कण्डिका पूरी हुई ॥४॥

"अग्नीषोमा०" इत्यादि से लेकर "तद्वनेमहि स्वाहा" तक के मंत्रों

इन्द्राग्नीतद्वनेमहि स्वाहेति ॥२॥ ऐन्द्राग्नस्य हविषोऽमावास्यायाम् ॥३॥ प्राक्स्विष्टकृतः पार्वणौ होमौ समृद्धिहोमाः काम्यहोमाश्च ॥४॥ पूर्णापश्चादिति पौर्णमास्याम् ॥५॥ यत्ते देवा अकृण्वन् भागधेयमित्यमावास्यायाम् ॥६॥ आकूत्यै त्वा स्वाहा। कामाय त्वा स्वाहा । समृधे त्वा स्वाहा। आकूत्यै त्वा कामाय त्वा समृधे त्वा स्वाहा। ऋचा स्तोमं समर्धय गायत्रेण रथन्तरम्। बृहद्गायत्रवर्तनि स्वाहा ॥७॥ पृथिव्यामग्नये समनमन्निति सन्नतिभिश्च ॥८॥ प्रजापते न त्वदेतान्यन्य इति च ॥९॥ उपस्तीर्याज्यं सर्वेषामुत्तरतः सकृत्सकृदवदाय द्विरवत्तमभिघारयति ॥१०॥ न हवींषि ॥११॥ आ देवानामपि पन्थामगन्मयच्छक्नवाम तदनुप्रवोढुम्॥ अग्निर्विद्वान्सं यजात्स इद्धोता सोऽध्वरान्स ऋतून्कल्पयात्यग्नये स्विष्टकृते स्वाहेत्युत्तरपूर्वार्द्धेऽवयुतं हुत्वा सर्वप्रायश्चित्तीयान् होमाञ्जुहोति ॥१२॥ स्वाहेष्टेभ्यः स्वाहा । वषडनिष्टेभ्यः स्वाहा । भेषजं स्विष्ट्यै स्वाहा । निष्कृतिर्दुरिष्ट्यै स्वाहा । दैवीभ्यस्तनूभ्यः स्वाहा ॥ अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिश्च सत्यमित्त्वमया

को पढ़कर आहुतियाँ देवे ॥२॥ अमावास्या को ऐन्द्राग्नी की आहुतियाँ देवे ॥३॥ और स्विष्टकृत होम के पहिले दो होम पार्वण के—समृद्धि होम और काम्य होम ॥४॥ "पूर्णा पश्चात्०" इत्यादि से पौर्णमासी को होम करे ॥५॥ "यत्ते देवा०" इत्यादि से अमावास्या को होम करे ॥६॥ "आकूत्यै स्वाहा०" इत्यादि "वर्त्तनि स्वाहा" तक ॥७॥ और "पृथिव्यां०" इत्यादि से लेकर "त्वदेतान्यन्य०" तक मंत्रों से आज्य की आहुतियाँ देवे ॥८॥ ॥९॥ आज्य उपस्तरण करके सबके उत्तर भाग में एक २ बार लेकर दो अवदान का अभिघार करे और एक हवि की आहुति देवे ॥१०॥११॥ "आदेवानामपि०" इत्यादि मंत्रों से उत्तर पूर्वार्द्ध भाग में अवयुत होम की आहुति देकर सर्व प्रायश्चित्तीय होमों की "स्वाहेष्टेभ्यः स्वाहा०"

असि । अयासा मनसा कृतोऽयास्यं हव्यमूहिषे । अया नो धेहि भेषजं स्वाहेत्यों स्वाहा भूः स्वाहा भुव स्वाहा स्वः स्वाहों भूर्भुवःस्वःस्वाहेति ॥१३॥५॥

यन्मे स्कन्नं मनसो जातवेदो यद्वा स्कन्दद्धविषो यत्र यत्र । उत्प्रुषो विप्रुषः संजुहोमि सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः स्वाहेति ॥१॥ यन्मे स्कन्नं यदस्मृतीति च स्कन्नास्मृति होमौ ॥२॥ यदद्य त्वा प्रयतीति संस्थितहोमाः ॥३॥ मनसस्पत इत्युत्तमं चतुर्गृहीतेन ॥४॥ बर्हिराज्यशेषेऽनक्ति पृथिव्यै त्वेति मूलमन्तरिक्षाय त्वेति मध्यं दिवे त्वेत्यग्रम् ॥५॥ एवं त्रिः ॥६॥ सं बर्हिरक्तमित्यनुप्रहरति यथा देवतम् ॥७॥ स्रुवमग्नौ धारयति ॥८॥ यदाज्यधान्यां तत्संस्रावयति संस्रावभागास्तविषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठा बर्हिषदश्च देवाः । इमं यज्ञमभि विश्वे गृणन्तः स्वाहा देवा अमृता मादयन्तामिति ॥९॥ स्रुवोऽसि घृतादनिशितः । सपत्नक्षयणो दिवि षीद । अन्त-

---

इत्यादि मंत्रों से आहुतियाँ देवे ॥१२॥१३॥ यह पाँचवी कण्डिका समाप्त हुई ॥५॥

"यन्मे स्कन्नं०" इत्यादि से आज्य की आहुति देवे॥१॥"यन्मे स्कन्नं०" और "अस्मृति" द्वारा स्कन्न और अस्मृति होम करे ॥२॥ "यदद्य०" से संस्थित होम की आहुति करे ॥३॥ "मनसस्पते०" से संस्थित होम के अन्त में चतुर्गृहीत द्वारा आहुति देवे ॥४॥ वेदि के पास के स्तरण को लाकर आज्य शेष जो आज्यधानी में रहे उसको "पृथिव्यै०" से मूल को "अन्तरिक्षाय त्वा०" से मध्य को "दिवे त्वा०" से अग्रभाग को सिक्त करे ॥५॥ इसी प्रकार तीन बार करे ॥६॥ "सं बर्हिरक्तं०" इत्यादि से यथा दैवत देवे ॥७॥ स्रुव को अग्नि में स्थापन करे ॥८॥ जो आज्यधानी में हो उसे "संस्रावभागा हविषा०" इत्यादि से संस्रव होम करे ॥९॥ और "स्रुवोऽसि०" इत्यादि से पूर्व भाग में दण्ड की भाँति स्रुवको

रिक्षे सीद पृथिव्यां सीदोत्तरोऽहं भूयासमधरे मत्सपत्ना इति स्रुवं प्राग्दण्डं निदधाति ॥१०॥ विमुञ्चामि ब्रह्मणा जातवेदसमग्निं होतारमजरं रथस्पृतम् । सर्वा देवानां जनिमानि विद्वान् यथाभागं वहतु हव्यमग्नि-रग्नये स्वाहेति समिधमादधाति ॥११॥ एधोऽसीति द्वितीयां समिदसीति तृतीयाम् ॥१२॥ तेजोऽसीति मुखं विमार्ष्टि ॥१३॥ दक्षिणेनाग्निं त्रीन्विष्णुक्रमान् क्रमते विष्णोः क्रमोऽसीति दक्षिणेन पादेनानुसंहरति सव्यम् ॥१४॥ सूर्यस्यावृतमित्यभिदक्षिणमावर्तते ॥१५॥ अग-न्मस्वरित्यादित्यमीक्षते ॥१६॥ इन्द्रस्य वचसा वयं मित्र-स्य वरुणस्य च । ब्रह्मणा स्थापितं पात्रं पुनरुत्थापयाम-सीत्यपरेणाग्निमुदपात्रं परिहृत्योत्तरेणाग्निमापो हि ष्ठा मयोभुव इति मार्जयित्वा बर्हिषि पत्न्याञ्जलौ निन-यति समुद्रं वः प्रहिणोमीतीदं जनास इति वा ॥१७॥ वीरपत्न्यहं भूयासमिति मुखं विमार्ष्टि ॥१८॥ व्रतानि व्रतपतय इति समिधमादधाति ॥१९॥ सत्यं स्वर्तेनेति

धर देवे ॥१०॥ "विमुञ्चामि०" इत्यादि से समिध को लाकर धरे ॥११॥ "एधोऽसि०" से दूसरी समिध, "समिदसि०" से तीसरी, "तेजोऽसि" से मुख का मार्जन करे ॥१२॥१३॥ "विष्णोः क्रमोऽसि०" इत्यादि से वेदि के जघन प्रदेश से पहिले दहिने पद को आगे कर उसके पीछे २ वाम पद से तीन वार परिक्रमा करे ॥ और "सूर्यस्यावृतं०" इत्यादि से दहिने ओर फेरा लगावे ॥१४॥१५॥ और "अगन्म०" से सूर्य को देखे ॥१६॥ अग्नि के पश्चिम भाग से जलपात्र को लेकर अग्नि के उत्तर में "आपो हि ष्ठा०" इत्यादि से उसका मार्जन करके पत्नी की अञ्जलि में कुश धर कर कांसे के पात्र को "समुद्रं वः०" इत्यादि से या "इदं ज-नास०" से घुमावे ॥१६॥१७॥ "वीरपत्न्यहं०" इत्यादि से पत्नी अपने हाथ से मुख का मार्जन करे ॥१८॥ और "व्रतानि व्रतपतय०" से समिद्

परिषिच्योदङ्ङ्‍ हविरुच्छिष्टान्युद्वासयति ॥२०॥ पूर्णपात्रं दक्षिणा ॥२१॥ नादक्षिणं हविः कुर्वीत यः कुरुते कृत्यामात्मनः कुरुत इति ब्राह्मणम् ॥२२॥ अन्वाहार्यं ब्राह्मणान् भोजयति ॥२३॥ यद्वै यज्ञस्यानन्वितं भवति तदन्वाहार्येणान्वाह्रियते॥२४॥ एतदन्वाहार्यस्यान्वाहार्यत्वम् ॥२५॥ ईड्या वा अन्ये देवाः सपर्येण्या अन्ये देवाः । ईड्या देवा ब्राह्मणाः सपर्येण्याः ॥२६॥ यज्ञैरेवेड्यान् प्रीणात्यन्वाहार्येण सपर्येण्यान् ॥२७॥ तेऽस्योभे प्रीता यज्ञे भवन्तीति॥२८॥इमौ दर्शपूर्णमासौ व्याख्यातौ॥२९॥ दर्शपूर्णमासाभ्यां पाकयज्ञाः ॥३०॥ अथाप्यपरो हवनयोगी भवति ॥३१॥ कुम्भीपाकादेव व्युद्धारं जुहुयात्

का आधान करे एवं "सत्यं त्वर्तेन०" इत्यादि से जल का छींटा दे उत्तर की ओर जल के साथ बची हवि को कर्त्ता स्वीकार करे। पुनः ब्रह्मा और कर्त्ता के पोषणों के योग्य पूर्णपात्र (धान्यादि से भरा) दक्षिणा में देवे ॥१९॥२०॥२१॥ बिना दक्षिणा के हवन न करे। क्योंकि जो ऐसा करता है वह मानो अपना नाश करता है—ऐसा ब्राह्मणग्रंथ का वचन है ॥२२॥ ब्राह्मणों को ओदनादि भोजन करावे ॥२३॥ जो पदार्थ यज्ञ के अनुकूल होता है वही श्रद्धापूर्वक व्यवहृत होता है अर्थात् यज्ञार्थ लाया जाता है ॥२४॥ यह अन्वाहार्य्य का अन्वाहार्यत्व है ॥२५॥ ईड्य वा पूज्य अन्य देवता होते हैं और सपर्येण्य अन्य देवता होते हैं ॥ जिनमें यज्ञ से सत्कार योग्य देवगण होते हैं और वस्त्र, भोजन, धन, सेवा आदि से पूजने योग्य ब्राह्मण होते हैं। अतएव यज्ञों द्वारा देवगण को और भोजनादि द्वारा ब्राह्मणों को प्रसन्न करना चाहिये। ये दोनों ही (देव, ब्राह्मण) यजमान द्वारा यज्ञ में प्रसन्न होते हैं तब ही यज्ञों का फल यजमान को होता है ॥२६॥२७॥२८॥ इन दोनों दर्श और पौर्णमास का व्याख्यान हुआ और दर्श पौर्णमास द्वारा पाकयज्ञ सब कहे गये ॥२९॥३०॥ इसके अनन्तर दूसरा भी हवन योग्य है अर्थात् आग्नेय और अग्नीषोमीय के अतिरिक्त अन्य भी यज्ञ हैं ॥३१॥ कुम्भीपाक से ही लेकर आहुतियाँ देवे ॥

॥ ३२ ॥ अधिश्रयणपर्यग्निकरणाभिघारणोद्वासनालङ्करणोत्पवनैः संस्कृत्य ॥३३॥ अथापि श्लोकौ भवतः ॥ आज्यभागान्तं प्राक् तन्त्रमूर्ध्वं स्विष्टकृता सह । हवींषि यज्ञ आवापो यथा तन्त्रस्य तन्तवः । पाकयज्ञान् समासाद्यैकाज्यानैकबर्हिषः । एकस्विष्टकृतः कुर्यान्नानापि सति दैवनेति ॥३४॥ एतेनैवामावास्यो व्याख्यातः ॥३५॥ ऐन्द्राग्नोऽत्र द्वितीयो भवति ॥ ३६ ॥ तयोर्व्यतिक्रमे त्वमग्ने व्रतपा असि कामस्तदग्र इति शान्ताः ॥३७॥६॥

अश्नात्यनादेशे स्थालीपाकः ॥ १ ॥ पुष्टिकर्मसु सारूपवत्से ॥२॥ आज्यं जुहोति ॥३॥ समिधमादधाति ॥४॥

अधिश्रयण, पर्यग्निकरण, अभिघारण, उद्वासन, अलङ्करण, और उत्पवन आदि संस्कार करके आहुति देवे ॥ ३२॥३३ ॥ यहाँ दो श्लोक गोपथ ब्राह्मणों के हैं। आज्य भाग के अन्त के होम पूर्वतन्त्र स्विष्ट कृत के सहित हवियों के यज्ञ, यह आवाप (प्रधान) है । और जैसे तन्त्र की सन्तति वा सूत्र स्वरूप है। यदि पाक यज्ञ के करने में ऐसा अवसर आ पड़े कि एक आज्य हो और अनेक बर्हि। (हवि रखने के कुश के पात्र) हों तो एक ही स्विष्टकृत की आहुति करे। चाहे भिन्न २ अनेक दैवत हवन क्यों न हों ॥३४॥ इसीके द्वारा अमावास्या में कर्त्तव्य ऐन्द्राग्नि की व्याख्या हुई जानो ॥३५॥ यहाँ ऐन्द्राग्न दूसरा है जानो ॥३६॥ इन दोनों के व्यतिक्रम होने पर "त्वमग्ने व्रतपा असि", "कामस्तदग्र०" से शान्ता नाम की आहुति करनी चाहिये ॥३७॥ यह छठी कन्डिका पूरी हुई ॥ ६ ॥

इस संहिता विधि में जहाँ २ "अश्नाति" या "आशयति" करके कहा गया है वहाँ २ स्थालीपाक की विधि जानना ॥ १ ॥ जैसे पुष्टि कर्मों में "सारूपवत्सा" स्थालीपाक समझना ॥२॥ जहाँ "जुहोति" कहा गया है परन्तु हवन करने का विधान नहीं किया गया वहाँ घृत समझना ॥३॥ जहाँ होम का विधान हो परन्तु होतव्य (किस वस्तु का होम करे सो नहीं लिखा है) वहाँ आज्य की आहुति करे ॥ ३ ॥ जहाँ केवल

आवपति व्रीहियवतिलान् ॥ ५ ॥ भक्षयति क्षीरौदनपुरोडाशरसान् ॥ ६ ॥ मन्थौदनौ प्रयच्छति ॥ ७ ॥ पूर्वं त्रिषप्तीयम् ॥ ८ ॥ उदकचोदनायामुदपात्रं प्रतीयात् ॥ ९ ॥ पुरस्तादुत्तरतः संभारमाहरति ॥ १० ॥ गोरनभिप्रापाद्वनस्पतीनाम् ॥ ११ ॥ सूर्योदयनतः ॥ १२ ॥ पुरस्तादुत्तरतोऽरण्ये कर्मणां प्रयोगः ॥ १३ ॥ उत्तरत्त उदकान्ते प्रयुज्य कर्माण्यपां सूक्तैराप्लुत्य प्रदक्षिणमावृत्याप उपस्पृश्यानवेक्षमाणाग्राममुदाव्रजन्ति ॥ १४ ॥ आज्यबन्ध्याप्लवनयानभक्ष्याणि सम्पातवन्ति ॥ १५ ॥ सर्वाण्यभिमन्त्र्याणि ॥ १६ ॥ स्त्रीव्याधितावा प्लुतावसिक्तौ

समिद् का आधान लिखा है परन्तु यह नही लिखा है कि अमुककाष्ठ आदि हो । वहाँ होम के योग्य काठ ग्रहण करना चाहिये ॥४॥ व्रीहि (धान्य), जौ, और तिलों का आवपन करे अर्थात् अग्नि में डाल कर आहुति करे॥ ॥५॥ जहाँ "भक्षयति" का विधि हो वहाँ क्षीरोदन, पुरोडाश, रसों को भक्षण करे करावे ॥६॥ जहाँ "प्रयच्छति" का विधान हो वहाँ मन्थ और ओदन देवे ॥७॥ "पूर्व त्रिषप्तीयम्" कहने से "ये त्रिषप्ता०" इस सूक्त को लेवे ॥८॥ जहाँ उदक का संस्कार कहा गया हो वहाँ जलपात्र का संस्कार समझना ॥९॥ निवास स्थान से संभार लाकर वेदि के पूर्व उत्तर भाग में धरे ॥१०॥ जहाँ वनस्पतियों के पास के फूल, पत्र, आदि लाने का विधान हो, और उसके मिलने में कठिनता हो तो गौशाला के पास के वानस्पत्य के प्रयोजनीय अंश को लेवे ॥११॥ सूर्य्य के उदय समय संभार आदि को लावे ॥१२॥ निवास स्थान के पूर्व या उत्तर-जंगल में कर्म करे ॥१३॥ सब ही कर्म जल के उत्तर भाग में कर के "अम्बयो यन्ति शम्भुमयो भू हिरण्यवर्णादयः कृष्णं नियानं सस्रुषीः हिमवतः प्रस्रवन्ति वायोः पूतः०" ये जलसूक्त हैं । जलसूक्तों से नहा कर परिक्रमा कर जल को स्पर्श कर के पीछे न देखते हुए ग्राम को जावे ॥१४॥ "आज्य" आदि सबों में सम्पात् का अभिमंत्रण होता है । यज्ञार्थ सब ही पदार्थों का अभिमंत्रण करे ॥१५॥१६॥ स्त्री, रुग्ण पुरुष,

शिरस्तः प्रक्रम्याप्रपदात्प्रमार्ष्टि ॥ १७ ॥ पूर्वं प्रपाद्य प्रयच्छति ॥ १८ ॥ त्रयोदश्यादयस्तिस्रो दधिमधूनि वासयित्वा बध्नाति ॥ १९ ॥ आशयति ॥२०॥ अन्वारब्धायामभिमन्त्रणहोमाः ॥ २१ ॥ पश्चादग्नेश्चर्मणि हविषां संस्कारः ॥ २२ ॥ आनडुहः शकृत्पिण्डः ॥२३॥ जीवघास्यं चर्म ॥२४॥ अकर्णोऽश्मा ॥२५॥ आप्लवनावसेचनानामाचामयति च ॥२६॥ सम्पातवतामश्नाति न्यङ्क्ते वा ॥ २७॥ अभ्याधेयानां धूमं नियच्छति ॥ २८ ॥ शुचिना कर्मप्रयोगः ॥२९॥७॥

पुरस्ताद्धोमवत्सु निशाकर्मसु पूर्वाह्णे यज्ञोपवीती शालानिवेशनं समूहयत्युपवत्स्यद्भक्तमशित्वा स्नातोऽहतवसनः प्रयुङ्क्ते ॥१॥ स्वस्त्ययनेषु च ॥ २ ॥ इज्यानां

इनमें से स्त्री तो जल में गोता लगाकर स्नान करे और रुग्ण पुरुष शिर से पैर तक जल से मार्जन करे ॥१७॥ पहिले प्रपादन फिर मन्थौदन को देवे ॥१८॥ और त्रयोदशी आदि तीन तिथियों में दही, मधु, यज्ञ कराने वाले को कर्ता खिलावे और वासित को बान्ध देवे ॥१९॥ इसके पश्चात् अग्नि के पास जो चर्म है, उसमें हवि का संस्कार करे ॥२०॥ बैल के गोमय का पिण्ड बनावे। बलवान् जीवित पशु के चर्म को अर्थात् गोलाकार सींगवाले पशु के चर्म को लाकर धरे ॥२१॥२२॥२३॥२४॥२५॥ आप्लवन, अवसेचन, का कारयिता कर्ता से आचमन करावे ॥ २६ ॥ आहुति के सम्पात को आँखों में आञ्जे या खावे ॥ २७ ॥ अभ्याधेय पदार्थों के धूम को कारयिता स्वयं ग्रहण करे ॥२८॥ और कर्मों की समाप्ति में पवित्रता से कर्म का प्रयोग करे। नित्य, नैमित्तिक, काम्य कर्म्मों को स्नान कर के करे ॥२९॥३०॥ यह सातवी कण्डिका समाप्त हुई ॥७॥

पुरस्ताद्धोमवाले निशाकर्म्मों में पूर्वाह्ण में यज्ञोपवीती होकर अग्निशाला में बैठकर अग्नि का समूहन करे। उपवास रहकर, भात खाकर, नहाकर, अखण्ड चीरे दार नये वस्त्र धारण कर—कर्म करने में प्रवृत्त होवे ऐसा कोई आचार्य मानते हैं ॥१॥ स्वस्त्ययन कर्मों में भी ऐसा ही करे

दिश्यान् बलीन् हरति ॥ ३ ॥ प्रतिदिशमुपतिष्ठते ॥ ४ ॥ सर्वत्राधिकरणं कर्तुर्दक्षिणा ॥ ५ ॥ त्रिरुदकक्रिया ॥६॥ अनन्तराणि समानानि युक्तानि ॥७॥ शान्तं संभारम् ॥८॥ अधिकृतस्य सर्वम् ॥९॥ विषये यथान्तरम् ॥१०॥ प्रयच्छ पर्शुमिति दर्भलवनं प्रयच्छति ॥ ११ ॥ अरातीयोरिति तक्षति ॥१२॥ यत्त्वा शिक्व इति प्रक्षालयति ॥१३॥ यद्य-त्कृष्ण इति मन्त्रोक्तम् ॥ १४ ॥ पलाशोदुम्बरजम्बुकाम्पी-लस्रग्वङ्कशिरीषस्रक्त्यवरणबिल्वजङ्गिडकुटकगर्ह्यगलावल-वेतसशिम्बलसिपुनस्यन्दनारणिकाश्मयोक्ततुन्युपूतदार-वः शान्ताः ॥ १५ ॥ चितिप्रायश्चित्तिशमीशमका-

---

॥२॥ स्वस्त्ययन याग देवताओं के लिये प्रत्येक दिशाओं में बलि, उपहार देवे और प्रति दिशा में उपस्थान करे ॥३॥४॥ सब ही यज्ञकर्त्ता क दक्षिणा देवे ॥५॥ विधि कर्मों में जहाँ २ जल से कर्म करने का विधान हो वहाँ २ जल क्रिया तीन बार करे ॥६॥ संहिता में जो २ सूक्त अनन्तर कहे गये हैं, जिनके प्रयोजन समान हों उनको इकत्र कर प्रयोग करे ॥७॥ सब ही शान्तकर्मों में शान्तसम्भार, दर्भ, समिद्, आदि । अभिचार कर्मों में रौद्र, आङ्गिरस, सम्भार जानना ॥८॥ स्रुच्, स्रुव, समिद्, काष्ठ आदि मणि, द्रव्य काष्ठ करना चाहिये । मादानक शृत क्षीरोदन खावे । और मादानक के चमसा में एक रूप रंग के वत्स के गौ के दूध में क्षीरौदन पकावे । मंत्र कर्म में जहाँ द्रव्य का सन्देह हो वहाँ निकृष्ट द्रव्य ग्रहण करे ॥९॥१०॥ "प्रयच्छ पर्शु०" से दर्भ काटने का अस्त्र देवे ॥ ११ ॥ "अरातीयोः" से उलूखल, मुसल, काठ, एवं अन्य कार्य के लिये लकड़ी काटे, चीरे-फाड़े ॥१२॥ "यत्त्वाशिक" से प्रक्षालन करे ॥१३॥ "यद्यत्कृष्णः" से उलूखल मुसल को प्रक्षा-लन करे ॥१४॥ पलाश, उदुम्बर, जम्बु, काम्पील, स्रक्, वंघ, शिरीष, स्रक्त्य, वरण, बिल्व, जङ्गिड़, कुटक, गर्ह्य, गलावल, वेतस, शिम्बल, सिपुन, स्यन्दन, अरणिकाष्ठ, अश्मयोक्त, तुन्यु, पूतदारु ये शान्त कर्म में प्रयोजनीय हैं ॥१५॥ चिति, प्रायश्चित्ति, शमी, शमका, सवंशा, शाम्य-

सर्वंशाशाम्यवाकातलाशापलाशवाशाशिंशपाशिम्बल-सिपुनदर्भापामार्गाकृतिलोष्टवल्मीकवपादूर्वाप्रान्तव्रीहि-यवाः शान्ताः ॥ १६ ॥ प्रमन्दाशीरशलल्युपधानशक-धूमा जरन्तः ॥ १७ ॥ सीसनदीसीसे अयोरजांसि कृकलासशिरः सीसानि ॥ १८ ॥ दधि घृतं मधूदकमिति रसाः ॥ १९ ॥ व्रीहियवगोधूमोपवाकातलप्रियङ्गश्या-माका इति मिश्रधान्यानि ॥ २० ॥ ग्रहणमा ग्रह-णात् ॥ २१ ॥ यथार्थमुदर्कान्योजयेत् ॥ २२ ॥ इहैव ध्रुवामेह यातु यमो मृत्युः सत्यं बृहदित्यनुवाको वास्तो-ष्पतीयानि ॥ २३ ॥ दिव्यो गन्धर्व इमं मे अग्ने यौ ते मातेति मातृनामानि ॥२४॥ स्तुवानमिदं हविर्निस्साला-मरायक्षयणं शं नो देवी पृश्निपर्ण्या पश्यति तान्सत्यौ-जास्त्वया पूर्वं पुरस्तायुक्तो रक्षोहणमित्यनुवाकश्चात-नानि ॥ २५ ॥ ८ ॥

वाका, तलाशा, पलाशा, वाशा, शिंशपा, शिम्बल, सिपुन, दर्भ, अपा-मार्ग, आकृतिलोष्ट, वल्मीक, वपा, दूर्वा, प्रान्त, व्रीहि, यव ॥१६॥ प्रमन्द, उशीर, शलली, उपधान, शकधूम, ये सब पुराने लेना चाहिये ॥१७॥ लोहकीट, गिरगिट का शिर, और सीस कहा गया है वहाँ उनकी जगह नदीफेन लेना चाहिये ॥१८॥ रस के काम में दही, घी, मधु, जल लेना चाहिये ॥१९॥ धान्य, जौ, गोधूम, उपवाक, तिल, प्रियङ्गु, श्यामा इन को मिश्र धान्य कहते हैं ॥२०॥ संहिता विधि में अपरिमित प्रयोग में ग्रहण अनियम हैं अतएव जहाँतक ग्रहण हो उसको ग्रहण करे ॥२१॥ साकांक्ष वचन की परिसमाप्ति के लिये वचन् को "उदर्क" कहते हैं । जहाँ ऐसा हो वहाँ उदर्कान् वचनों की योजना करे ॥२२॥ "इहैव ध्रुवा मेह" इत्यादि अनुवाक "वास्तोष्पतीय" हैं ॥२३॥ "दिव्यो गन्धर्व" इत्यादि "मातृनाम" है ॥२४॥ "स्तुवानमिदं०" इत्यादि यह अनुवाक चातन गण है ॥२५॥ यह अष्टम कण्डिका समाप्त हुई ॥८॥

अम्बयो यन्ति शम्भुमयो भू हिरण्यवर्णा निस्सालां ये अग्नयो ब्रह्म जज्ञानमित्येका तदेव मृगारसूक्तानि ॥१॥ उत्तमं वर्जयित्वाऽप नः शोशुचदघं पुनन्तु मा सस्रुषोर्हिमवतः प्रस्रवन्ति वायोः पूतः पवित्रेण शं च नो मयश्च नोऽनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमं मह्यमापो वैश्वानरो रश्मिभिर्यमो मृत्युर्विश्वजित्संज्ञानं नो यद्यन्तरिक्षे पुनर्मैत्विन्द्रियं शिवा नः शं नो वातो वात्वग्निं ब्रूमो वनस्पतानिति ॥ २ ॥ पृथिव्यै श्रोत्रायेतित्रिः प्रत्यासिञ्चति ॥३॥ अम्बयो यन्ति शम्भुमयो भू हिरण्यवर्णाः शंतातीयं शिवा नः शं नो वातो वात्वग्निं ब्रूमो वनस्पतीनिति ॥४॥ पृथिव्यै श्रोत्रायेति त्रिः प्रत्यासिञ्चति ॥५॥ इति शान्तियुक्तानि ॥६॥ उभयतः सावित्र्युभयतः शं नो देवी ॥७॥ अहतवासाः कंसे शान्त्युदकं करोति ॥ ८ ॥ अतिसृष्टो अपां वृषभ इत्यपोऽतिसृज्य सर्वा इमा आप ओषधय इति पृष्ट्वा

"अम्बयो यन्ति" इत्यादि एक और "अग्नेर्मन्व०" इत्यादि ये "मृगार सूक्त" हैं ॥१॥ पहिले को छोड़ कर "अपनः" इत्यादि यह मृगारसूक्त है "पृथिव्यै श्रोत्राय" से तीन वार आसिंचन करे ॥२॥३॥ "अम्बयो यन्ति इत्यादि शान्तिगण हैं । इन सब सूक्तों से कौशिक का कहा बृहत् शान्ति-गण है ॥४॥ "पृथिव्यै श्रोत्रियाय"० से तीन वार प्रत्यासिञ्चन् करे अर्थात् शान्त्युदक के मध्य में शान्ति जल डाले फिर "पृथिव्यै श्रोत्राय" से अग्नि का पर्युक्षण करे । पूर्व गण को शांतिगण कहते हैं, और उत्तर भी शान्ति शब्द वाच्य हैं–दोनों की संज्ञा–पूर्वोत्तरा है ॥ शान्ति के आदि एवं अन्त में "सावित्री" और "शन्नो देवी" पढ़ना चाहिये ॥५॥६॥७॥ अखण्ड चीरेदार नये वस्त्र पहन कर काँसे के पात्र में शान्ति के जल को करे "अतिसृष्टो" इत्यादि से जल छोड़कर । ओषधियों के लाने वाले से कर्ता पूछे कि ' ये सब ओषधियाँ हैं ? आ० कहे "सब है ।" तब कर्ता ब्रह्मा से पूछे कि ये सब जल ओषधियाँ हैं ? ब्रह्मा जल को

सर्वा इत्याख्यात ओं बृहस्पति प्रसूतः करवाणास्यनुज्ञाप्यों सवितृप्रसूतः भवानित्यनुज्ञातः कुर्वीत ॥९॥ पूर्वया कुर्वीतेति गार्ग्यपार्थश्रवसभागलिकाङ्कायनोपरिबभ्रवकौशिकजाटिकायनकौरुपथयः ॥ १० ॥ अन्यतरया कुर्वीतेति युवा कौशिको युवा कौशिकः ॥११॥९॥

इत्यथर्ववेदे कौशिकसूत्रे प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥१॥

पूर्वस्य मेधाजननानि ॥१॥ शुकसारिकृशानां जिह्वा बध्नाति ॥२॥ आशयति ॥३॥ औदुम्बरपलाशकर्कन्धूनामादधाति ॥४॥ आवपति ॥५॥ भक्षयति ॥६॥ उपाध्यायाय भैक्ष्यं प्रयच्छति ॥ ७ ॥ सुप्तस्य कर्णमनुमन्त्रयते ॥ ८ ॥ उपसीदञ्जपति ॥९॥ धानाः सर्पिर्मिश्राः सर्वहुताः ॥१०॥

छूकर कहे—हाँ सब है। सब क्या ? चित्यादि सब मिल कर सब ओषधियों सहित गंगादि के सब नदियों का जल है । "ओं बृहस्पतिप्रसूतः करवाणि" ऐसी मुझे अनुज्ञा हो "सवितृप्रसूतः भवानि" अनुज्ञा पाने पर करो ॥ "बृहस्पति प्रसूतः" से करे यह मत गार्ग्य, पार्थ, श्रवस, भागलि, काङ्कायन, उपरि बभ्रव, कौशिक, जाटिकायन, कौरुपथि का है । "सवितृप्रसूतः" से करे यह मत युवा कौशिक का है ॥८॥९॥१०॥११॥ यह नवमी कण्डिका समाप्त हुई ॥९॥ यह अथववेद के कौशिक सूत्र के प्रथमाध्याय का भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥१॥

पूर्व के (त्रिषप्तीयसूक्त) अनुवाक से मेधा जनन कर्म करे ॥१॥ मेधा चाहने वाले कंटारिका के पत्ते को "अयं मे वरण उरसि०" और आश्यादि सूक्त से आज्याहुति के संपात से होमकर अपने गले में बाँधे ॥२॥ और कर्त्ता मेधा चाहने वाले को खवावे ॥३॥ उदुम्बर, पलाश, बैर के बड़े फल, इनको लावे ॥४॥ और उसे आवपन करे ॥५॥ ये त्रिषप्ता०" इस सूक्त से क्षीरौदन खावे और रस को प्राशन करे ॥६॥ "ये त्रिषप्ता०" सूक्त से उपनयन के अनन्तर-ब्रह्मचारी-एकत्रित की हुई भिक्षा को अभिमत्रण कर अध्यापक को समर्पण करे ॥७॥ रात में सोते हुए अध्यापक के कान में अभिमंत्रण करे ॥८॥ जब २ उपाध्याय घर

तिलमिश्रा हुत्वा प्राश्नाति ॥ ११ ॥ पुरस्तादग्नेः कल्माषं दण्डं निहस्य पश्चादग्नेः कृष्णाजिने धाना अनुमन्त्रयते ॥१२॥ सूक्तस्य पारं गत्वा प्रयच्छति ॥१३॥ सकृज्जुहोति ॥१४॥ दण्डधानाजिनं ददाति ॥१५॥ अहं रुद्रेभिरिति शुक्ल-पुष्पहरितपुष्पे किंस्त्यनाभिपिप्पल्यौ जातरूपशकलेन प्राक्स्तनग्रहात् प्राशयति ॥ १६ ॥ प्रथमप्रवदस्य मातु-रुपस्थे तालुनि सम्पातानानयति ॥ १७ ॥ दधिमध्वाश-यति ॥ १८ ॥ उपनीतं वाचयति वार्षशतिकं कर्म ॥१९॥ त्वं नो मेधे द्यौश्च म इति भक्षयति ॥ २० ॥ आदित्य-मुपतिष्ठते ॥२१॥ यदग्ने तपसेत्याग्रहायण्यां भक्षयति ॥ २२ ॥ अग्निमुपतिष्ठते ॥२३॥ प्रातरग्निं गिरावरगराटेषु

को जाया करे तब २ ब्रह्मचारी जप किया करे ॥९॥ लावा, घी, मिला-कर हवन करे ॥१०॥ तिल में घी मिलाकर हवन कर शेष हवि को प्राशन करे ॥११॥ काले रंग के दण्ड को अग्नि के पीछे धर कर काले रंग के मृग चर्म पर धाना धर कर उस का अनुमंत्रण करे ॥१२॥ सूक्त को पढ़ लेने पर देवे ॥१३॥ धान को अजिन के द्वारा एक बार आहुति देवे ॥१४॥ और उपाध्याय के लिये दण्ड धान अजिन देवे ॥१५॥ "अहं रुद्रेभिः" इत्यादि से शंखपुष्पिका, अन्धपुष्पिका, शंखनाभि, पिप्पली को सोने के शलाका से घस कर माँ के दूध पीने के पहिले बालक को चटावे ॥ और बच्चे को भली भाँति वर्चस्वी बनाने के लिये और मेधावि बनाने वाला पहिले माता के गोद में बच्चे को देकर "अहं रुद्रेभिः" सू० से पाँच कर्मों को जात कर्म में करे और सम्पात को तालु पर डाले ॥१६॥१७॥ और दही. मधु मिलाकर बच्चे को चटावे ॥१८॥ और बालक के पास "अहं रुद्रेभिः" सूक्त एवं "आयातु मित्र" इत्यादि गण के अन्त के वचन को पढ़े—जो बच्चे की आयुः सौ वर्ष की चाहे वह इस कर्म को करे ॥१९॥ "त्वं नो मेधे०" मंत्रों से भक्षण करावे ॥२०॥ आदित्य का उपस्थान करे ॥२१॥ "यदग्ने तपसे०" इत्यादि से आग्रयण की पौर्णमासी को मेधा-जनन कर्म कर के और बच्चे को शेष हवि भक्षण करावे ॥ २२ ॥ और

दिवस्पृथिव्या इति संहाय मुखं विमार्ष्टि ॥२४॥१॥१०॥

पूर्वस्य ब्रह्मचारि सांपदानि ॥१॥ औदुम्बर्यादयः ॥२॥ ब्रह्मचार्यावसथादुपस्तरणान्यादधाति ॥३॥ पिपीलिकोद्वापे मेदोमधुश्यामाकेषीकतूलान्याज्यं जुहोति ॥ ४ ॥ आज्यशेषे पिपीलिकोद्वापानोप्य ग्राममेत्य सर्वहुतान् ॥ ५ ॥ ब्रह्मचारिभ्योऽन्नं धानास्तिलमिश्राः प्रयच्छति ॥६॥ एतानिग्रामसाम्पदानि ॥ ७ ॥ विकारस्थूणामूलावतक्षणानि सभानामुपस्तरणानि ॥८॥ ग्रामीणेभ्योऽन्नम् ॥९॥ सुरां सुरापेभ्यः ॥ १० ॥ औदुम्बर्यादीनि भक्षणान्तानि सर्वसाम्पदानि ॥११॥ त्रिर्ज्योतिःकुरुते ॥१२॥ उपतिष्ठते ॥१३॥ सव्यात्पाणिहृदयाल्लोहितं रसमिश्रमश्नाति ॥ १४ ॥ पृश्निमन्थः ॥ १५ ॥ जिह्वाया उत्सादमक्ष्योः परिस्तरण-

---

अग्नि का उपस्थान करे ॥२३॥ "प्रातरग्नि०" इत्यादि पढ़ कर सोते से उठ कर मुख का प्रक्षालन करे ॥२४॥ १॥ यह दशमी कण्डिका पूरी हुई ॥१०॥

पौर्णमासी को निर्ऋति कर्म करके एक वार प्रातःकाल में ब्रह्मचारी "त्रिषप्तीय०" सूक्त से साम्पद कर्म करे ॥ उदुम्बर आदि १०।४ सूत्रोक्त अग्नि का आधान करे ॥२॥ ब्रह्मचारी अपने घर से तृणादि को लाकर आधान करे ॥३॥ चूँटियों से फेकी वा निकाली हुई मट्टी के छिद्र में मेद, मधु, श्यामक, शरपुष्प इनको आज्य के साथ आहुति देवे ॥४॥ आज्य शेष में पिपीलिका की मट्टी को थाली में धर कर ग्राम में आकर एक वार हवन करे ॥५॥ ब्रह्मचारियों के लिये अन्न, और तिल मिला धान देवे ॥६॥ पूर्व दिन में निर्ऋति कर्म करके ग्राम साम्पद का अधिकार होता है । समिद का विकार, स्थूणा (खूँटी) के जड़, इनके अवतक्षण (चीर, फाड़, कर,) को यज्ञ के उपस्तरण करे ॥७॥८॥ ग्रामीणों को अन्न, सुरा पीने वाले को सुरा देवे ॥९॥१०॥ औदुम्बर, पलाश, बैर आदि और क्षीरौदन, पुरोडाश, रस ये सर्वकामनाओं के लिये हैं ॥११॥ तीनवार ज्योतिःकरै ॥१२॥ तब उपस्थान करे ॥१३॥ सव्य हाथ से लाल सहजन को पानी में मिलाकर खावे ॥१४॥ गौ का मट्ठा ॥१५॥ मस्तु

मस्तृहणं हृदयं दूर्शे उपनह्य तिस्रो रात्रीः पल्पूलने वासयति ॥१६॥ चूर्णानि करोति ॥१७॥ मैश्रधान्ये मन्थ ओप्य दधिमधुमिश्रमश्नाति ॥ १८ ॥ अस्मिन् वसु यदा बध्नन्नव प्राणानिति युग्मकृष्णलं वासितं बध्नाति ॥१९॥ सारूपवत्सं पुरुषगात्रं द्वादशरात्रं सम्पातवन्तं कृत्वानभिमुखमश्नाति ॥ २० ॥ २ ॥ ११ ॥

कथं मह इति मादानकभृतं क्षीरौदनमश्नाति ॥१॥ चमसे सरूपवत्साया दुग्धे व्रीहियवाववधाय मूर्छयित्वा मध्वासिच्याशयति ॥ २ ॥ पृथिव्यै श्रोत्रायेति जुहोति ॥३॥ वत्सो विराज इति मन्थान्तानि ॥४॥ सहृदयं तदू षु संजानीध्वमेह यातु सं वः पृच्यन्तां सं वो मनांसि संज्ञानं न इति सांमनस्यानि ॥ ५ ॥ उदकुलिजं सम्पातवन्तं ग्रामं परिहृत्य मध्ये निनयति ॥६॥ एवं सुरा-

---

लङ्कक में धूलक आदि को पुराने वस्त्र में बांधकर तीन रात तक गौ के गोबर में वासे और चौथे दिन पुराने वस्त्र सहित को चूर्ण करे ॥ और मैश्रधान्य में मथन को डालकर दधि, मधु मिलाकर खावे ॥१॥१६॥१७॥१८॥ "अस्मिन्वसु यदा बध्नन्नव प्राणान् इस मंत्र से उक्त प्रतीकों में कृष्णमणि को वास कर सब कामना सिद्धि चाहने वाला इस को हाथ या गले में बांधे ॥१९॥ एक वर्ण बच्चे वाली गौके दूध में पके ओदन को पुरुषाकृति बनाकर १२ दिन तक उस पर दूध में पके ओदन को ढारे ॥२०॥२॥११॥ दूसरी कण्डिका पूरी हुई ॥२॥

सम्पत्ति चाहने वाला "कथमहं" इत्यादि मादानक वृक्ष के काठ से पके क्षीरोदन को खावे ॥१॥ चमसा में सरूप वत्सा गौ के दूध में व्रीहि, यव डालकर मूर्च्छना देकर उस में मधु देकर खावे ॥२॥ और "पृथिव्यै श्रोत्राय०" से आहुति देवे ॥३॥ "त्रिर्ज्योतिः कुरुते" इत्यादि से पृश्निमंथ—तक कर्म्म होते हैं ॥४॥ "सहृदयम्०" इत्यादि से सांमनस्य कर्म कहे गये हैं ॥५॥ चूने वाले घड़े को बनाकर गाँव में भ्रमण करावे

कुलिजम् ।७।। त्रिहायिण्या वत्सतर्याः शुक्तानि पिशिता-न्याशयति ॥८॥ भक्तं सुरां प्रपां सम्पातवत्करोति ॥९॥ पूर्वस्य ममाग्ने वर्च इति वर्चस्यानि ॥१०॥ औदुम्बर्यादीनि त्रीणि ॥ ११ ॥ कुमार्या दक्षिणमूरुमभिमन्त्रयते ॥१२॥ वपां जुहोति ॥ १३ ॥ अग्निमुपतिष्ठते ॥ १४ ॥ प्रातरग्निं गिरावरगराटेषु दिवस्पृथिव्या इति दधिमध्वाशयति ॥१५॥ कीलालमिश्रं क्षत्रियं कीलालमितरान् ॥१६॥३॥१२॥

हस्तिवर्चसमिति हस्तिनम्। १॥हास्तिदन्तंबध्नाति ।२। लोमानि जतुना संदिह्य जातरूपेणापिधाप्य ॥३॥ सिंहे व्याघ्रे यशो हविरिति स्नातकसिंहव्याघ्रबस्तकृष्णवृषभराज्ञां नाभिलोभानि ॥४॥ दशानां शान्तवृक्षाणां शकलानि ॥५॥ एतयोः प्रातरग्निं गिरावरगराटेषु दिवस्पृथिव्या इति

॥६॥ इसी प्रकार दारु के घड़े को भी करे ॥७॥ सांमनस्य चाहने वाला तीन वर्ष की वाच्छी के मांस को खट्टे में मिलाकर खावे ॥८॥ भात, शराब, जल इनको सम्पातवत् करके "पूर्व त्रिषप्तीयसूक्त के "ममाग्ने वर्च" से वर्चस्य कर्म करे और औदुम्बर्य्यादि तीन का आधान कर हवन करे ॥९॥१०॥११॥ कुमारी के दहिने जंघे को अभिमंत्रण करे और शान्त पशु की वपा की आहुति देवे ॥१२॥१३॥ और अग्नि का उपस्थान करे ॥१४॥ "प्रातरग्नि" इत्यादि मंत्र से दही, मधु खावे ॥१५॥ और कीलाल मिलाकर क्षत्रिय को देवे एवं केवल कीलाल वैश्यादिकों को देवे ॥१६॥३॥१२॥ यह बारहवी कण्डिका पूरी हुई ॥१२॥

"हस्ति वर्चसम्"–(ये त्रिषप्ता, अस्मिन्वसु, प्रातरग्नि, हस्तिवर्चसं, सिंह-व्याघ्रे यशोहविर्यशसंमेन्द्रो गिरा वरगराटेषु यथा सोमः प्रतिः सवने यच्च वर्चो अक्षेषु येन महानघ्न्या जन्घनम्" यह वर्चस्य हैं।) हाथी का दाँत को आज्य तंत्र से बान्धे ॥६२॥ हाथी के लोमों को लाख में गांथ कर सोना में भर कर "सिंहे व्याघ्रेयशोहविः" से सात मर्मों को सिंह, व्याघ्र, वस्त, काले वृषभ में श्रेष्ठ वृषभ के नाभि और लोमों को स्थाली पाक द्वारा पका कर खावे और "प्रात रग्निं०" इत्यादि मंत्रसे

सप्तमर्माणि स्थालीपाके पृक्तान्यश्नाति ॥६॥ अकुशलं यो ब्राह्मणो लोहितमश्नीयादिति गार्ग्यः ॥७॥ उक्तो लोममणिः ॥८॥ सर्वैराप्लावयति ॥६॥ अवसिञ्चति ॥१०॥ चतुरङ्गुलं तृणं रजोहरणं बिन्दुनाभिश्नोत्यथोपमथ्य ॥११॥ शुनि किलासमजे पलितं तृणे ज्वरो यो ऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तस्मिन् राजयक्ष्म इति दक्षिणा तृणं निरस्यति गन्धप्रवादाभिरलंकुरुते ॥१२॥४॥१३॥

पूर्वस्य हस्तित्रसनानि ॥१ रथचक्रेण सम्पातवता-

खावे ॥६॥ इस रुधिर को जो ब्राह्मण खावे उसका कल्याण नहीं होता है ऐसा गार्ग्य—कहते हैं ॥७॥ लोमणि के विषय में कहा गया ॥८॥ यह कर्म क्षत्रियों के लिये है ब्राह्मण के लिये नहीं ॥८॥ पाँच प्रतीकों से (मंत्रों से) जल से नहवा कर, जलसे उस को सेक करे ॥९॥१०॥ चार अङ्गुल परिमाण के तृण को—"रजउदक" कहते हैं। जिस के द्वारा धूलि निकल जाती है। आकाश के जल (मेघ-का पानी) द्वारा किसी पात्रमें नीचे छिद्रकर के उस में चार अङ्गुल वाला तृण लटका देवे और तृण के नीचे दूसरा जलपात्र धर देवे जिस में शुद्ध जल गिरेगा। "शुनि किलास समये" इत्यादि मंत्र से उस शुद्ध जल को मथकर तृण को दक्षिण दिशा में फेक देवे एवं यस्ते गन्धः" इत्यादि तीन ऋचाओं से यक्ष्मा रोग वाले के शरीर में सुगन्धित-पदार्थ उस जल में मिलाकर नित्य अनुलेपन करे तो रोग छूट जावेगा ॥९॥१०॥११॥१२॥४॥१३॥ यह तेरहवीं कण्डिका पूरी हुई ॥१३॥

अब राज कर्मों को कहेंगे ॥ इन में से युद्ध सम्बन्धि कर्मों के तंत्र को पहिले कहेंगे ॥१॥ अश्वत्थ वर्धक के वृक्ष के काठ की अरणियों द्वारा अग्नि मन्थन कर "इन्द्रो मन्थतु"० इत्यादि मंत्र से मन्थन करते हुए अनुमंत्रण करे और "पूति रज्जुः"० इत्यादि आधी ऋचा से अग्नि गिरने के स्थान में रज्जु को धरे। 'धूमं परादृश्य०" आधी ऋचा से उत्पन्न अग्नि को अनुमंत्रण करे। इस अग्नि का नाम "सेनाग्नि" है ॥ अभ्यचसश्च०" सेना अग्नि का प्रणयन, ग्रहण, पंच गृहीत आज्य। अभ्यातनान्त आहुतियाँ करके लाल अश्वत्थ की शाखा को उत्तर भाग में रोपन कर

प्रतिप्रवर्तयति ॥२॥ यानेनाभियाति ॥३॥ वादित्रैः ॥४॥ दृतिवस्त्योरोप्य शर्कराः ॥५॥ तोत्रेण नग्नप्रच्छन्नः ॥६॥ विद्मा शरस्य मा नो विदन्नदारसृत्स्वस्तिदा अवमन्युर्निर्हस्तः परिवर्त्मान्यभिभूरिन्द्रो जयात्यभिस्त्वेन्द्रेति साङ्ग्रामिकाणि ॥७॥ आज्यसक्तूञ्जुहोति ॥८॥ धनुरिध्मे धनुःसमिधमादधाति ॥९॥ एवमिष्विध्मे ॥१०॥ धनुःसम्पातवद्विमृज्य प्रयच्छति ॥११॥ प्रथमस्येषुपर्ययणानि ॥१२॥ द्रुघ्न्यार्त्नीज्यापाशतृणमूलानि बध्नाति ॥१३॥ आ-

---

प्रधान कर्म करे। इस के अनन्तर उत्तर तंत्र में विशेषता है। संनति होमांत तक करके "इमे जयंतु स्वाहेभ्य०" इत्यादि मंत्र से आज्य की आहुति देवे। पश्चात् बधक काष्ठ प्रज्वालित अग्नि में बायें हाथ से इङ्गिड की 'पराभिजयन्तादुराहामोभ्यः ओं स्वाहेति" मंत्र से आहुति देवे। तब शाखाओं पर दक्षिणा में—"नीललोहितेनामून्" मंत्र से डाले स्विष्ट-कृत् आदि उत्तर तंत्र-हुआ। यह सांग्रामिकतंत्र है। सांग्रामिक तंत्रों में सब जगह मंत्रों का उच्चारण ऊंचे स्वर से होगा परन्तु प्रधान मंत्रों ही को ऊंचे स्वर से बोलना चाहिये ॥ अब शत्रु के हाथियों को डराने के कर्म्मों का विधि कहेंगे ॥१॥ शत्रु सेना के हाथियों को युद्ध में प्रवर्तमान के सम्मुख राजा अपनी सेना की हस्तिनियों को आगे करे और रथचक्र के आगे हाथियों को प्रवृत करे घोड़े आदि को सम्पात् से संस्कृत करके शत्रु सैन्य के सम्मुख करे ॥ पुरोहित बाजों के (भेरी, मृदङ्ग झल्लरि आदि) साथ जावें, दृति (चमड़े का मोट) अनुवासना चर्म इन दोनों में शर्करा (अस्त्र विशेष) को डाल कर हाथी पर प्रतोद लेकर लग्न हो छिपाकर, हाथी को अङ्कुशादि से दण्ड देकर आगे शीघ्र चलावे ॥२॥३॥४॥५॥६॥ "विद्मा शरस्य०" इत्यादि सूक्तों से आज्य आहुतियाँ देवे ॥८॥ प्रादेशमात्र लम्बी सरपत की इध्म अग्नि में डाले ॥१०॥ और धनुष को सम्पात की तरह करके (अग्नि पर झुका कर) राजा को देवे ये विजय कर्म समाप्त हुए ॥ इन कर्म्मों से शत्रु से न लड़ने पर भी विजय होता है क्योंकि शत्रु सेना इन कर्म्मों को देखते ही भाग जायेगी॥११॥ इषु निवारण कर्म को कहते हैं। द्रुघ्नी, आर्त्नी, ज्या,

रेऽसावित्यपनोदनानि ॥१४॥ फलीकरणतुषबुसावतक्षणान्यावपति ॥१५॥ अन्वाह ॥१६॥ अग्निर्नः शत्रूनग्निर्नो दूत इति मोहनानि ॥१७॥ ओदनेनोपयम्य फलीकरणानुलूखलेन जुहोति ॥१८॥ एवमणून् ॥१९ एकविंशत्या शर्कराभिः प्रतिनिष्पुनाति ॥२०॥ अप्वां यजते ॥२१॥ संशितमिति शितिपदीं सम्पातवनोमवसृजति ॥२२॥ उद्वृधस्सुयोजयेत् ॥२३॥ इममिन्द्रेति युक्तयोः प्रदानान्तानि ॥२४॥ दिग्युक्ताभ्यां नमो देववधेभ्य इत्युपतिष्ठते ॥२५॥ त्वया मन्यो यस्ते मन्यो इति संरम्भणानि ॥२६॥ सेने समीक्षमाणो जपति ॥२७॥ भाङ्ग-

---

पाश, इन तृणों में किसी एक की जड़ को बांधे इस का फल शत्रु प्रयुक्त शस्त्रों का असर विरुद्ध-होगा अर्थात् शत्रु ही की सेना की हानि होगी ॥ ॥१४॥ चावल का गुण्डा, तुष, भूसा काठ का बुरादा इन को अग्नि में डाले ॥ ऐसा प्रति दिन करे (जब तक युद्ध जारी रहे) ॥१६॥ 'अग्निर्नः इत्यादि मंत्र के जप करने से परसेना का ज्ञान भ्रष्ट हो जाता है ॥१७॥ ओदन को पिण्ड के आकार बना कर और ओदन के साथ कणिका मिलाकर पिण्डीकृत करके सूर्य्य के सम्मुख हवन करे ॥ १८ ॥ १९ ॥ २१ शर्करा को लेकर साफ करे ॥२०॥ अप्वा देवता के लिये चरु पकावे और आज्यभागान्त आहुति करके "अग्निर्नः०" इत्यादि दो सूक्तों से चरु की आहुतियाँ करे। निर्वाप, प्रोक्षण बर्हिर्होम इन में विशेषता है ॥ 'अप्वायै त्वा जुष्टं निर्वपामि" अप्वातये इत्यादि से प्रोक्षण, और "अप्वां गच्छतुहविः" कहे ॥२१॥ उद्वेगकर कर्म्म कहा जाता है ॥ श्वेत पैर वाली बकरी को पुरोहित शत्रु सेना में छोड़ देवे या श्वेत पैर वाली भेड़ि या हरिणी को छोड़ देवे ॥२२॥ और जब शत्रु सेना उद्विग्न हो जावे तो उससे युद्ध करने की योजना करे ॥२३॥ युद्ध होते समय नमो देववधेभ्यः और इममिन्द्रे०" इत्यादि प्रदानान्ता सूक्त का जप करे ॥२४॥ येऽस्यांस्थ प्राच्यां दिशि प्राचीदिक्" इत्यादि दो मंत्रों से उपस्थान करे ॥२५॥ अपनी सेना के उत्साह बढ़ाने के लिये "त्वया मन्यो यस्ते मन्यो०" इत्यादि जप करे ॥२६॥ दोनों सेनाओं को देखता हुआ अपनी सेना को

मौञ्जान् पाशानिङ्गिडालंकृतान् सम्पातवतोऽनूक्तान्सेनाक्रमेषु वपति ॥२८॥ एवमामपात्राणि ॥२९॥ इङ्गिडेन संप्रोक्ष्य तृणान्याङ्गिरसेनाग्निना दीपयति ॥३०॥ यां धूमोऽवतनोति तां जयन्ति ॥३१॥५॥१४॥

ऋधङ्मन्त्रस्तदिदासेत्याश्वत्थ्यां पात्र्यां त्रिवृतिगोमयपरिचये हस्तिपृष्ठे पुरुषशिरसि वामित्राञ्जुह्वदभिप्रक्रम्य निवपति ॥१॥ वराहविहिताद्राजानो वेदिं कुर्वन्ति ॥२॥ तस्यां प्रदानान्तानि ॥३॥ एकेष्वाहतस्यादहन उपसमाधाय दीर्घदण्डेन स्रुवेण रथचक्रस्य खेन समया जुहोति ॥४॥ योजनीयां श्रुत्वा योजयेत् ॥५॥ यदि चिन्नु त्वा नमो देववधेभ्य इत्यन्वाह ॥६॥ वैश्याय प्रदाना-

---

हारती हुई देख कर जप करे ॥२७॥ और भाङ्ग मौञ्जपाशों को इंगिड से अलंकृत करके सम्पात वान् करके जिस ओर सेना आक्रमण करती हो, उसी प्रदेश में डाले ॥२८॥ इसी प्रकार कच्चे पात्रों को डाले ॥२९॥ इङ्गिड से संप्रोक्षण कर शर तृणों को चाण्डालाग्नि से जलावे ॥३०॥ जलाने पर धूम जिस सेना को ढाक लेवे उसकी हार समझो ॥३१॥ यह चौदहवी कण्डिका समाप्त हुई ॥५॥१४॥

"ऋधङ्मन्त्रस्तदिदाम०" इत्यादि मंत्र से तीन बार धरे हुए अश्वत्थ की पात्री हाथी के पीठ पर या पुरुष के शिर पर धर कर उसमें शत्रुओं के प्रति हवन करता हुआ धावा करे और पैदल चलने वाले पुरुष के शिर पर पात्री को धर कर उसमें भी आहुतियाँ करता जावे ॥१॥ यह जय कर्म है ॥ सूकर द्वारा निकाली हुई मट्टी से राजा लोग यज्ञ वेदि बनावें और उस में प्रदानान्त मंत्रों को पढ़ कर हवन करें ॥३॥ संग्राम में एक बाण से मरे हुए को दहन करने पर्य्यन्त इध्मों का आधान कर ने पर चक्र को रख कर बड़े दण्डे वाले स्रुव से रथ चक्र के छिद्र द्वारा पास ही आहुति देवे ॥४॥ और शत्रु सैन्य की तय्यारी देख कर अपनी सेना को धावा बोल देवे ॥५॥ पर सैन्य को लक्ष्य कर यदि "चिनुत्वा नमो देव वधेभ्यः" इस को प्रति दिन जप करें ॥६॥ वैश्य राजा प्रदानान्त

न्तानि ॥७॥ त्वया वयमित्यायुधिग्रामण्ये ॥८। नि तद्द-धिष इति राज्ञोदपात्रं द्वौ द्वाववेक्षयेत् ॥६॥ यन्न पश्येन्न युध्येत ॥ १० ॥ नि तद्दधिषे वनस्पते ऽयाविष्ठाग्न इन्द्रो दिशश्चतस्र इति नवं रथं राजानं ससारथिमास्थापयति ॥११॥ ब्रह्म जज्ञानमिति जोवितविज्ञानम् ॥१२॥ तिस्रः स्नावरज्जूरङ्गारेष्ववधाय ॥१३॥ उत्कुचतीषु कल्याणम् ॥१४॥ साङ्ग्रामिकमेता व्यादिशति मध्ये मृत्युरितरे सेने ॥१५॥ पराजेष्यमाणान्मृत्युरतिवर्तते ज्येष्यन्तो मृत्युम् ॥१६॥ अग्रेषूत्कुचत्सु मुख्या हन्यन्ते मध्येषु मध्या अन्तेष्ववरे ॥१७॥ एवमिषोकाः ॥१८॥६॥१५॥

तक करे ॥७॥ "त्वयावयं०" इत्यादि अस्त्र पर ग्राम में करें ॥८॥ अपनी सेना का जय पराजय और पुरुषों के मारे जाने की शंका में इसका विज्ञान यह है कि राजा अपने जलपात्र को अभिमंत्रण करके दो २ योद्धाओं को राजा देखे जिसको न देखे अर्थात् रहते हुए जो न दीख पड़े उसको न लड़ने देवे ॥९॥१०॥" नितद्दधिषे०" इत्यादि मंत्र पढ़ कर नये रथ को तय्यार कर पुरोहित राजा को उस पर सवार करावे ॥११॥ रोगी पुरुप के अच्छा होने का ज्ञान होने की विधि-पुरोहित "ब्रह्मजज्ञानं०" इत्यादि से जीवित ज्ञान के लिये कि यह रोगी जीवित रहेगा या नहीं ? इस संशय में तत्त्व जानने की चिन्ताकरके चमड़े के ताँत की तीन रज्जू को आग में डाल कर चिन्ता करे कि यह जीयेगा या नहीं ? यदि अङ्गर में की ज्वाला ऊपर को उठे तो जानना यह रोगी जीवेगा ॥१४॥ अब सांग्रामिक विधान को कहते हैं-तीन रज्जुओं में से एक अपनी सेना की रज्जू दूसरी मध्य में मृत्यु सूचक तीसरी रज्जू पर सेना सूचक हो। इस प्रकार संकल्प करके आग में तीनों रज्जुओं को डालकर जिसके ऊपर मृत्यु वाली रस्सी जावे उसकी सेना का जय होगा ॥१५॥१६॥ मृत्यु रज्जुके आगे सरपत की तीन इषिका अग्नि में डाले यदि पहिली इषिका-जल कर ऊपर को उठे तो सेना के प्रधानों की मृत्यु जानो, मध्यम इषिका फल—सेना के मध्यम पुरुषों की मृत्यु जानो

उच्चैर्घोष उपश्वासयेति सर्वंवादित्राणि प्रक्षाल्य तगरोशीरेण संधाव्य सम्पातवन्ति त्रिराहस्य प्रयच्छति ॥१॥ विहृदयमित्युच्चैस्तरां हुत्वा स्रुवमुद्वर्तयन् ॥ २ ॥ सोमांशुं हरिणचर्मण्युत्सीव्य क्षत्रियाय बध्नाति ॥३॥ परिवर्त्मानीन्द्रो जयातीति राजा त्रिः सेनां परियाति ॥४॥ उक्तः पूर्वस्य सोमांशुः ॥५॥ संदानं व आदानेनेति पाशैरादानसंदानानि ॥ ६ ॥ मर्माणि त इति क्षत्रियं संनाहयति ॥७॥ अभयानामप्ययः ॥८॥ इन्द्रो मन्थत्विति ॥९॥ पूतिरज्जुरिति पूतिरज्जुमवधाय ॥१०॥ अश्वत्थवधकयोरग्निं मन्थति ॥११॥ धूममिति धूममनुमन्त्रयते ॥१२।

और अन्तवाली इपिका फल-अपर पुरुषों की मृत्यु जानना ॥१७॥१८॥६ यह पन्द्रहवीं कण्डिका पूरी हुई ॥१५॥ "उच्चैर्घोष उप श्वासय०" इत्यादि सब बाजाओं को प्रक्षालन करके तगर और वीर द्वारा संधापन कर सम्पात वन्ति करके पुरोहित तीन बार लेकर दमयितृओं को देवे ॥१॥ विध्यम्०" इत्यादि मंत्र से ऊँचे स्वर से बोलकर आहुति देकर स्रुव ऊपर को बर्तता हुआ होम करे ॥२॥ और सोमलता को हरिण के चमड़े में सीकर क्षत्रिय के लिये बांध देवे ॥३॥ परिवर्त्मानीन्द्रो जयति" से राजा बैठी हुई सेना को "त्रिषप्तीय०" सूक्त से तीन बार परिक्रमा करे ॥ सोमलता के विषय में कहा गया सेना के आक्रमणों में केवल पचन का ही आदेश किया जावे ॥६॥ मर्माणित०" इत्यादि मंत्र से संनाह पहनावे ॥७॥ अब अभय कर्म को कहते हैं ॥ "स्वस्तिदा विशा ब्राह्मणेन को प्रयुक्तासि न तना अर्वारेणुक कण्ठो अभयं मित्रावरुणावभयं द्यावापृथिवी अस्मै ग्रामाय हत तद्पूषेमा आशा इन्द्रः सूत्रामा मैते पथा स्वस्तिदा विशां पतिर्नमस्ते घोषिणीभ्य आ ते राष्ट्रमिदमुच्छ्रेयो यत इन्द्र भयामह-"यह अभय गण है ॥८॥ 'इन्द्रो मन्थ" से अग्नि मन्थन करे और समिदाधान का प्रयोग करे ॥९॥ "पूति रज्जुः०" से पुरानी रज्जु को अग्नि रखने की जगह लावे ॥१०॥ अश्वत्थ और वधक काष्ठों से मन्थन कर अग्नि उत्पन्न करे ॥११॥"धूमम्०" इत्यादि से धूम का अनु-

अग्निमित्यग्निम् ॥१३॥ तस्मिन्नरण्ये सपत्नक्षयणी-रादधात्यश्वत्थबधकताजद्भङ्गाह्लखदिरशराणाम् ॥ १४ ॥ उक्ताः पाशाः॥१५॥आश्वत्थानि कूटानि भाङ्गानि जालानि ॥ १६ ॥ बाधकदण्डानि ॥ १७ ॥ स्वाहैभ्य इति मित्रेभ्यो जुहोति ॥१८॥ दुराहामीभ्य इति सव्येनेङ्गिडममित्रेभ्यो बाधके ॥ १९ ॥ उत्तरतोऽग्नेर्लोहिताश्वत्थस्य शाखां निहृत्य नीललोहिताभ्यां सूत्राभ्यां परितत्य नीललो-हितेनामूनिति दक्षिणा प्रहापयति ॥ २० ॥ ये बाहव उत्तिष्ठतेति यथालिङ्गं सम्प्रेष्यति ॥२१॥ होमार्थे पृषदा-ज्यम् ॥२२॥ प्रदानान्तानि वाप्यानि ॥२३॥ वाप्यैस्त्रिष-न्धीनि वज्ररूपाण्यर्बुदरूपाणि ॥२४॥ शितिपदीं सम्पा-

---

मंत्रण करे ॥ १२ ॥ "अग्निं" इस आधी ऋचा से उत्पन्नाग्नि का अनुमंत्रण करे ॥१३॥ इसी अग्नि में सेना कर्म करे। यह कर्म वन में होगा न कि सेना में ॥ शत्रुक्षयणी कहे इध्मों का अर्थात् अश्वत्थ, वधक, एरण्ड, पलाश, खदिर और शर इनका आधान करे ॥१४॥ इस कर्म में सूत्रोक्त पाश काम में लाये जाय जो भाङ्ग एवं मौज का प्रयोग करे॥१५॥ स्वाभा· विक गर्त्त को कूट कहते हैं। सेनाकार्य्य में पीपल का कूट बनावे और जानवरों को बांधने के लिये जाल होती है इसको भाङ्ग का बनावे॥१६॥ और बाधक वृक्ष का दण्ड करे॥१७॥ स्वाहैभ्यः इत्यादि और "अमित्रेभ्यो" से आहुति करे ॥१८॥ "दुराहामीभ्य०" को पढ़कर बधक के काठ से प्रज्वलित अग्नि में वाम हाथ से इङ्गिड को और शत्रु के लिये बाधक अग्नि में आहुति देवे ॥१९॥ अग्नि के उत्तर भाग में लाल अश्वत्थ की शाखा को काटकर नीले एवं लाल रंग के सूतों से लपेट करके "नील लोहितेनामून्"० इत्यादि से दक्षिण द्वार होकर छोड़ देवे ॥२०॥ "ये बाहव उत्तिष्ठत"० इत्यादि इस अनुवाक को शुद्ध समय में कर्ता जप करे॥ और संकेतानुसार संप्रेषण करे ॥२१॥ होम के लिये पृषदाज्य (दही का छिटा दिया घृत) लेवे ॥२२॥ सब स्थानों में—पाश में अश्वत्थ के कूट में, भाङ्ग के जालों में, बाधक दण्डों में, वज्र रूप पात्रों में और इङ्गिड के अलङ्करण में क्रुद्धानुमंत्रण करे ॥२३॥२४॥ शितिपदी

तवतीं दर्भरज्ज्वा क्षत्रियायोपासङ्गदण्डे बध्नाति ॥२५॥ द्वितीयामस्यति ॥२६॥ अस्मिन् वस्विति राष्ट्रावगमनम् ॥२७॥ आनुशूकानां व्रीहीणामाव्रस्कजैः काम्पीलैः शृतं सारूपवत्समाशयति ॥२८॥ अभीवर्त्तेनेतिरथनेमिमणिमयः सीसलोहरजतताम्रवेष्टितं हेमनाभिं वासितं बद्ध्वा सूत्रोतं बर्हिषि कृत्वा सम्पातवन्तं प्रत्यृचं भृष्टीरभीवर्तोत्तमाभ्यामाचृतति ॥२९॥ अचिक्रदद्दा त्वा गन्निति यस्माद्राष्ट्रादवरुद्धस्तस्याशायां शयनविधं पुरोडाशं दर्भेषूदके निनयति ॥३०॥ ततो लोष्टेन ज्योतिरायतनं संस्तीर्य क्षीरौदनमश्नाति ॥३१॥ यतो लोष्टस्ततः संभाराः ॥ ३२ ॥ तिसृणां प्रातरशिते पुरोडाशे व्हयन्ते

को पृषदाज्य से सम्पात करके दर्भरज्जु से क्षत्रिय के विश्रामार्थ उर्ध्वज दण्ड में बांध देवे ॥२५॥ और दूसरी शितिपदी को शत्रु सेना में फेंक देवे ॥२६॥ "अस्मिन्वसु"० से अपने राष्ट्र में प्रवेश करे ॥ जो शत्रु द्वारा अपने राष्ट्र से निकाला जाकर पुनः अपने राष्ट्र में जाता है उसके लिये यह प्रवेश विधि है ॥२७॥ आनुशूक (पहिले बार के काटे जाने पर फिर उत्पन्न हो) धान्य (यव आदि) के कटने पर श्रपण काठ और गुण्डारोचन लता से समान रूप रंग के बच्चा वाली गौ के दूध में पका कर राजा को खिलावे ॥२८॥ रथचक्र के बाहर पृष्ट के अवयव को मणि के आकार का बनाकर सीसा, लोहा, चान्दी, तामा, इनसे वेष्टित कर नाभिमणिद्वार को सुवर्ण मणिद्वार बनाकर कस्तूरी से त्रयोदशी आदि तिथि में बान्ध देवे और सूत से पोहकर कुश पर धरकर "अभीवर्तोत्तमामुदसोसपत्नक्षयण:" इत्यादि दो ऋचाओं से प्रत्येक ऋचा से दूध का ढार मणि से देवे ॥२९॥ जिस देश से शत्रु राजा द्वारा निकाला गया हो उस राष्ट्र की ओर के क्षेत्र से व्रीहि, जल, दर्भ आदि लेकर निवास देश में शयन स्थान में विधि पुरोडाश को करके-कुशों को बिछाकर मंत्र के अन्त में जल के साथ लावे ॥३०॥ परराष्ट्र की दिशा से मट्टी का ढेला लेकर चूर्णित करे एवं उसको अग्नि स्थान के उत्तर भाग में विकिर देवे। जहाँ से मट्टी का ढेला लेवे वहीं से अन्य साधनों

॥३३॥७॥१६॥ भूतो भूतेष्विति राजानमभिषेक्ष्यन्महानदे शान्त्युदकं करोत्यादिष्टानाम्॥१॥ स्थालीपाकं श्रपयित्वा दक्षिणतः परिगृह्याया दर्भेषु तिष्ठन्तमभिषिञ्चति ॥२॥ तल्पार्षभं चर्मारोहयति ॥३॥ उदपात्रं समासिञ्चेते ॥४॥ विपरिद्धाने ॥५॥ सहैव नौ सुकृतं सह दुष्कृतमिति ब्रह्मा ब्रूयात् ॥६॥ यो दुष्कृतं करवत्तस्य दुष्कृतं सुकृतं नौ सहेति ॥७॥ आशयति ॥८॥ अश्वमारोह्यापराजितां प्रतिपादयति ॥९॥ सहस्रं ग्रामवरो दक्षिणा ॥१०॥ विपरिधानान्तमेकराजेन व्याख्यातम् ॥११॥ तल्पे दर्भेष्वभिषिञ्चति ॥१२॥ वर्षीयसि वैयाघ्रं चर्मारोहयति ॥१३॥ त्वत्वा-

---

को भी ग्रहण करे ॥३२ ॥ राष्ट्र के तीन जनों के प्रातःकाल भोजन कर लेने पर पुरोडाश से हवन करे ॥३३॥७॥१६॥ यह सोलहवीं कण्डिका समाप्त हुई ॥१६॥

अब लघुअभिषेक विधि को कहेंगे ॥ माण्डलिक, सामन्त, युवराज, सेनापति, या अन्य किसी का अभिषेक कर्म जानना । राजा आदि अभिषेक करने की इच्छा वाला महानदी गंगा, यमुना आदि के जल से पुरोहित मंत्रोक्त जल से तैय्यार करे ॥१॥ स्थालीपाक को पकाकर अग्नि के दक्षिण भाग में बिछाये हुए कुशों पर बैठे राजा आदि को पुरोहित यथाविधि "भूतोभूतेषु"० इत्यादि अभिषेक गण मंत्रों से अभिषेक करे ॥२॥ पलङ्ग पर लाल बैल के चर्म को बिछा कर उसपर राजा को पुरोहित आरोहण करावे ॥ जलपात्र को जल से सिञ्चन करे ॥४॥ पुरोहित राजा के बदले "सह नौ सुकृतं सह दुष्कृतम्" ऐसा ब्रह्मा कहे ॥६॥ राजा उत्तर देवे । "यो दुष्कृतं करवत्तस्य दुष्कृतं सुकृतं नौ सह" ॥७॥ स्थाली पाक को भक्षण करे ॥८॥ राजा घोड़ा पर चढ़कर पश्चिम दिशा की ओर जावे ॥९॥ सहस्र गौ दक्षिणा में पुरोहित को देवे ॥१०॥ सार्वभौम राजा का अभिषेक, माण्डलिक राजा के अभिषेक की अपेक्षा भिन्न है ऐसा कहा गया जानना ॥११॥ मंचान पर, कुशों पर, बैठे हुओं को अभिषिंचन करे इसका विकार फिर कुशोंपर का कहना तल्प के सम्बन्धार्थ जानना ॥१२॥ अधिक उमर वाले व्याघ्र के

रो राजपुत्रास्तात्पाः पृथक् पादेषु शयनं परामृश्य सभां प्रापयन्ति ॥१४॥ दासः पादौ प्रक्षालयति ॥१५॥ महाशूद्र उपसिञ्चति ॥१६॥ कृतसम्पन्नानक्षानातृतीयं विचिनोति ॥१७॥ वैश्यः सर्वस्वजैनमुपतिष्ठत उत्सृजायुष्मन्निति ॥१८॥ उत्सृजामि ब्राह्मणायोत्सृजामि क्षत्रियायोत्सृजामि वैश्याय धर्मो मे जनपदे चर्यतामिति ॥१९॥ प्रतिपद्यते ॥२०॥ आशयति ॥२१॥ अश्वमारोह्यापराजितां प्रतिपादयति ॥२२॥ सभामुदायाति ॥२३॥ मधुमिश्रं ब्राह्मणान् भोजयति ॥२४॥ रसानाशयति ॥२५॥ महिषाण्युपयाति ॥२६॥ कुर्युर्गामिति गार्ग्यपार्थश्रवसौ नेति भागलिः ॥२७॥ इममिन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इति क्षत्रियं प्रातः प्रातरभिमन्त्रयते ॥२८॥ उक्तं समासेचनं विपरिधानम् ॥२९॥ सविता प्रसवानामिति पौरोहित्ये वस्य-

---

चर्म पर आरोहण करावे ॥१३॥ और राजपुत्र राजा के शयन-शय्या के पैर की ओर जब तक राजा को नींद न आवे तब तक शयन सम्बन्धि बातें करे और सभा को पहुँचावे ॥१४॥ शूद्रदास राजा के पैरों को प्रक्षालन करे ॥१५॥ महाशूद्र प्रक्षालन करते समय जल ढारा करे ॥१६॥ पुष्टिद्यूत के लिये बहेरा के फलों को चूने और द्यूत के लिये अक्षों को तैय्यार कर तीसरे पाशा को चून लेवे यों राजा द्यूत खेले ॥१७॥ "उत्सृज आयुष्मन्"० ऐसा कहकर वैश्य राजा के पास बैठे॥१८॥ "उत्सृजामि"० इत्यादि मंत्र राजा पढ़े और वैश्य, राजा के निकट पहुँचे ॥१९॥२०॥ सब वर्णों से आज्ञा पाकर वैश्य सब पटरानियों के घरों में जावे और राजा को घोड़े पर चढ़ाकर पश्चिम दिशा में पहुँचा कर सभा में राजा को लेकर आवे ॥२३॥ और मधु मिला अन्न ब्राह्मणों को भोजन करावे । रसों को भोजन करावे ॥२५॥ और सब महिषियों के घरों में राजा जावे ॥२६॥ "कुर्युर्गाम्"-ऐसा गार्ग्य पार्थश्रवस ये दो आचार्य मानते हैं और भागलि नहीं मानते हैं ॥२७॥ 'इममिन्द्र वर्धय क्षत्रियम्"० प्रति दिन प्रातः समय पुरोहित अभिमंत्रणा किया करे

-वैश्वलोपीः समिध आधाय ॥३०॥ इन्द्र क्षत्रमिति क्षत्रियमुपनयीत ॥३१॥ तदाहुर्न क्षत्रियं सावित्रीं वाचयेदिति ॥३२॥ कथं नु तमुपनयीत यन्न वाचयेत् ॥३३॥ वाचयेदेव वाचयेदेव ॥३४॥८॥१७॥ इत्यथर्ववेदे कौशिकसूत्रे द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥२॥

पूर्वस्य पूर्वस्यां पौर्णमास्यामस्तमित उदकान्ते कृष्णचैलपरिहितो निर्ऋतिकर्माणि प्रयुङ्क्ते ॥१॥ नाव्याया दक्षिणावर्ते शापेटं निखनेत् ॥२॥ अपां सूक्तैरवसिञ्चति ॥३॥ अप्सु कृष्णं जहाति ॥४॥ अहतवसन उपमुच्योपानहौ जीवघात्याया उदाव्रजति ॥५॥ प्रोष्य तामुत्तरस्यां साम्पदं कुरुते ॥६॥ शापेटमालिप्याप्सु निबध्य तस्मिन्नुपसमाधाय संपातवन्तं करोति ॥७॥ अश्नाति

॥२८॥ जलका आसेचन विपरिधान करके कहा गया है ॥२९॥ "सविता प्रसवाना"० इत्यादि मंत्र से अमावस्या को पुरोहित उपवास रहकर समिदाधान करे ॥३०॥ "इन्द्रक्षत्रम्"० से क्षत्रिय का उपनयन करे ॥३१॥ सो कहा है कि क्षत्रिय से सावित्री मंत्र न बचवावे ॥३२॥ तो कैसे उसका उपनयन किया जावे ? (जब सावित्री न बचवायी जावे) ॥३३॥ बचवावे ही बचवावे ही ॥३४॥ ८॥१७॥ यह सतरहवीं कण्डिका पूरी हुई ॥१७॥ और अथर्ववेद के कौशिकसूत्र के दूसरे अध्याय का भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥

"पूर्वं त्रिषप्तीयम्"० सूक्त के अनुसार पहिली पौर्णमासी को सूर्यास्त समय जल के पास जाकर काला वस्त्र पहन कर निर्ऋति कर्म्मों (दुरिता दूर करने के लिये) को करने में प्रयुक्त होवे ॥१॥ नाव के दक्षिण भाग में शापेट को खने और अप सूक्तों से जल से सिंचन करे ॥२॥३॥ और जो काला वस्त्र पहिना है उसको जल में छोड़ देवे ॥४॥ और अखण्ड नये वस्त्र और जीवित पशु को मारकर जो चर्म लिया गया हो उससे बने जूते को छोड़ पीछे लौट कर देखता हुआ घर को आवे ॥५॥ उस रात्रि में वहाँ रहकर दूसरी रात्रि में ब्रह्मचारि साम्पद करे ॥६॥

॥८॥ आधाय कृष्णं प्रवाहयति ॥९॥ उपमुच्य जरदुपानहौ सव्येन जरच्छत्रं दक्षिणेन शालातृणान्यादीप्य जीर्णं वीरिणमभिन्यस्यति ॥१०॥ अनावृतमावृत्स्य सकृज्जुहोति ॥११॥ सव्यं प्रहरत्युपानहौ च ॥१२॥ जीर्णं वीरिण उपसमाधायायं ते योनिरिति जरत्कोष्ठाद्व्रीहीञ्छर्करामिश्रानावपति ॥१३॥ आ नो भरेति धानाः ॥१४॥ युक्ताभ्यां सह कोष्ठाभ्यां तृतीयाम् ॥१५॥ कृष्णशकुनेः सव्यजंघायामङ्कमनुबध्याङ्के पुरोडाशं प्रपतेत इत्यनावृतं प्रपादयति ॥१६॥ नीलं सन्धाय लोहितमाच्छाद्य शुक्लं परिणह्य द्वितीययोष्णीषमङ्केनोपसाद्य सव्येन सहाङ्केनावाङ्प्स्वपविध्यति ॥१७॥ तृतीयया छन्नं चतुर्थ्या संवीतम् ॥१८॥ पूर्वस्य चित्राकर्म ॥१९॥ कुलाग्र शृतं

और शापेट को मट्टी से लीपकर जल में बांधकर उसमें उपसमाधान करके इसके पश्चात् नाव को दक्षिणावर्त करे ॥७॥ उपसमाधान कर स्थालीपाक पकाकर खावे ॥८॥ काले वस्त्र को जल में डालकर बहा देवे ॥९॥ एवं पुराने जूते को त्याग कर वाम हाथ से पुराने छाते को, दाहिने हाथ से शालातृणों को जलाकर पुराने वीरिण को डाल देवे ॥१०॥ प्रदक्षिण होकर नैर्ऋत्य कोण की ओर होकर "ये त्रिषप्ता०" इत्यादि सूक्त से आज्य की आहुति एक बार देवे ॥११॥ पुराने वीरिण को उपसमाधान करके "अयंयोनिः" पुराने कोष्ट से लेकर व्रीहि और शर्करा को मिलाकर आहुति करे ॥१३॥ "आनोभर०" इत्यादि से जरत्काष्ठ से लेकर पूर्ववत् करे ॥१४॥ समुचित दो सूक्तों काष्ठाभ्यां से तीसरी बार आहुति देवे ॥१५॥ काक जंघा में काले लोहे के काँटे को बांधकर उसमें पुरोडाश को बांधे ॥१६॥ एवं पीछे निर्ऋति दिशा के सम्मुख होकर "प्रपतेत" इस ऋचा से काक को छोड़ देवे ॥१७॥ नीले वस्त्र को नीचे पहन कर ऊपर लाल वस्त्र से ढाँप करके सफेद वस्त्र की पगड़ी पहन करके "या मा लक्ष्मीः०" इत्यादि मंत्र से लोह खण्ड द्वारा पगड़ी को जल में फेंक देवे ॥१८॥ "एक शतं लक्ष्म०" इस ऋचा से लाल

हरितबर्हिषमश्नाति ॥२०॥ अन्वक्ताः प्रादेशमात्रीराद्धाति ॥२१॥ नाव्ययोः संवेद्ये पश्चादग्नेर्भूमिपरिलेखे कीलालं मुखेनाश्नाति ॥२२। तेजोव्रतं त्रिरात्रमश्नाति ॥२३॥ तद्भक्षः ॥२४॥ शम्भुमयोभुभ्यां ब्रह्मजज्ञानमस्य वामस्य यो रोहित उदस्य केतवो मूर्धाहं विषासहिमिति सलिलैः क्षीरौदनमश्नाति ॥२५॥ मन्थान्तानि ॥२६॥ द्वितीयेन प्रवत्स्यन् हविषामुपदधीत ॥२७॥ अथ प्रस्येस्य ॥२८॥ अथ प्रस्येस्य ॥२९॥ अथ प्रार्थयमाणः ॥३०॥ अथ प्रार्थयमाणः ॥३१॥ चत्वारो धायाः पलाशय-

---

वस्त्र को लोहदण्ड के साथ जल में डाल देवे॥ "एता एना०" इस ऋचा से नील वस्त्र को लोह खण्ड के साथ जल में फेककर घर को आवे ॥ तब पौष्टिक और सम्पादन कर्मों को करे ॥ निर्ऋति कर्म समाप्त हुआ ॥ "त्रिषप्तीयं०" इत्यादि सूक्त से पौष्टिकादि कर्मों को चैत्र की पौर्णमासी को या चित्रा नक्षत्र में करे ॥१९॥ पक्षि के घोंसले को जलाकर पक्क स्थालीपाक को गर्म करके हरे कुश के साथ खावे ॥२०॥ प्रादेश बराबर समिधाओं को जल में भिगो कर आधान करे ॥२१॥ जिन दो नदियों में नौकायें आती जाती हों, उनके संगम पर अग्नि धर कर उसके पश्चिम भाग में भूमि पर रेखा करके परशु की भाँति मुख करके खावे हाथ से नही ॥२२॥ और तीन रात तक नित्य घी खावे ॥२३॥ उसको खाने वाला 'शम्भुमयोभुभ्यां०" इत्यादि सलिल गण के मंत्रों से क्षीरौदन खावे ॥२५॥ मन्थान्त कर्मों को "त्रिः ज्योतिः कुरुते०" से करे ॥२६॥ "ब्रह्मजज्ञानमवाप्ता"० इत्यादि से राह चलता मन्थान्त कर्मों को उपवास रहता हुआ हविष द्वारा आहुति करता हुआ करे ॥२७॥ जब मार्ग में जावे तब यह कर्म करे। जब गाँव जावे तब यह कर्म करे ॥ यह प्रस्थान-कर्म समाप्त हुआ ॥२८॥२९॥ यथार्थ याचना करने वाला द्रव्य की कामना से यह कर्म करे॥ या निष्काम भी यह कर्म करे ॥३०॥ ॥३१॥ अब समुद्र कर्म (सर्व फल कर्म) को कहेंगे ॥ अभ्यातानान्त कर्म करके चार फूलका पलाश की समिधाओं का, चार कुशों का फूल का बारी २ से (एक समिद्भारक, दूसरी उस पर दर्भ भारक) फिर उसी

ष्ठीनां भवन्ति ॥३२॥ दर्भाणामुपोलवानां चत्वारः ॥३३॥ तं व्यतिषक्तमष्टावरमिध्मं सात्रिकेऽग्नावाधायाज्येना-भिजुहुयात् ॥३४॥ धूमं नियच्छेत् ॥३५॥ लेपं प्राश्नीयात् ॥३६॥ तमु चेन्न विन्देदथ सत्रस्यायतने यज्ञायतनमिव कृत्वा ॥३७॥ समुद्र इत्याचक्षते कर्म ॥३८॥१॥१८॥

अम्बयो यन्ति शम्भुमयोभुभ्यां ब्रह्म जज्ञानमा गाव एका च म इति गा लवणं पाययत्युपतापिनीः ॥१॥ प्रजननकामाः ॥२॥ प्रपामवरुणद्धि ॥३॥ सं सं स्रव-न्त्विति नाव्याभ्यामुदकमाहरतः सर्वत उपासेचम् ॥४॥ तस्मिन् मैश्रधान्यं शृतमश्नाति ॥५॥ मन्थं वा दधिमधु-

---

प्रकार आठ ऊपर करके "ब्रह्मजज्ञानेन सहस्रधारेण" मंत्र से आज्य की आहुति देवे ॥३२॥३३॥३४॥ आज्य होम के अनन्तर तांत्रिकाग्नि का धूम भक्षण करे ॥३५॥ पलाश के डांड में से अग्नि के संयोग से "सिलि सिलिनः" इस मंत्र को पढ़कर प्राशन करे ॥३६॥ सात्रिक अग्नि का प्रणयन या यज्ञ स्थान में यह कार्य करे। इस कर्म का फल धन, धान्य, लक्ष्मी, पुत्र, यश, मेधा, धर्म, आयु, बल, प्रजा, सम्पत्, ग्राम, कूपादि की प्राप्ति होती है। इसलिये इस कर्म का नाम समुद्रकर्म है ॥३७॥३८॥१८॥ यह अठारहवीं कण्डिका समाप्त हुई ॥१८॥

"अम्बयो यन्ति, शम्भुमयोभुभ्यां ब्रह्मजज्ञानमागावएकाचमे"० इत्यादि मंत्रों से गौओं को लवण पान करावे-इससे सारे रोग छूट कर गौयें हृष्ट पुष्ट हो जाती हैं-परन्तु स्मरण रहे कि लवण देने पर थोड़ा जल भी पीने को न देवे ॥१॥ गौओं को हृष्ट पुष्ट अच्छे बच्चे नीरोग हों ऐसी कामनावाले गौ को लवण तो खवावे परन्तु उसे थोड़ा जल भी पीने को न देवें ॥ गौओं को बहुत दूध होवे, रोग रहित रहें, ज्वर, गण्डमालादि रोगों में और गर्भ रहने के लिये यह कर्म होता है ॥ ॥२॥ तड़ाग को रोक कर तब गौओं को जल पिलावे ॥३॥ सब ही प्रयो-जन के लिये पुष्टि कर्म्मों को कहते हैं। दो नदिओं के जल को लाकर उससे सब ओर उपसेचन करे ॥ ४ ॥ उस जल से दूध में मैश्रधान्य को पकाकर खावे ॥ ५ ॥ या मन्थ (दधि मधु मिला) खावे ॥ ६ ॥

मिश्रम् ॥ ६ ॥ यस्य श्रियं कामयते ततो व्रीह्याज्यपय आहार्यं क्षीरौदनमश्नाति ॥ ७ ॥ तदलाभे हरितगोमयमाहार्यं शोषयित्वा त्रिवृति गोमयपरिचये श्रृतमश्नाति ॥ ८ ॥ शेरभकेति सामुद्रमप्सु कर्म व्याख्यातम् ॥ ९ ॥ अनपहृतधाना लोहिताजाया द्रप्सेन संनीयाश्नाति ॥१०॥ एतावदुपैति ॥११॥ तृणानां ग्रन्थीनुद्ग्रथ्नन्नपक्रामति ॥१२॥ तानुदाव्रजन्नुदपात्रस्योदपात्रेणाभिप्लावयति मुखं विमार्ष्टि ॥१३॥ एह यन्तु पशवः सं वो गोष्ठेन प्रजावतीः प्रजापतिरिति गोष्ठकर्माणि ॥१४॥ गृष्टेः पीयूषं श्लेष्ममिश्रमश्नाति ॥१५॥ गां ददाति ॥१६॥ उदपात्रं निनयति ॥१७॥ समुह्य सव्येनाधिष्ठायार्धं दक्षि-

---

जिस धनी के धन को हरण करना चाहे उसके घर से व्रीहि, आज्य, दूध किसी प्रकार लावे और उसमें क्षीरौदन पकाकर खावे ॥ ७ ॥ यदि ऐसा न कर सके तो, गीला गोबर लाकर सुखा लेवें और उसको एकत्र कर उसे पकाकर खावे ॥८॥ यह पुष्टि कर्म समुद्र जल में किया जाता है। शापेटक को लीपकर जल में निविध कर उस पर अग्नि का प्रणयन कर "शेरभक०" इत्यादि सूक्त से भात को सम्पातन और अभिमंत्रण कर खावे ॥ ९ ॥ बिन टुकड़े किये हुए जौओं को लावा भून कर उसको लाल बकरी के दूध के मट्ठे के साथ मिलाकर खावे ॥ १० ॥ समुद्र जल से इस कर्म को–इस परिमाण से करे ॥११॥ तृणों को एकत्र कर उनमें गांठे देकर उन पर वधू को चलावे ॥१२॥ उन गांठे हुए तृणों को लेकर जल में जाकर जलपात्र को जल में प्रवाहित करे और अपने मुख को जल से मार्जन करे ॥ १३ ॥ "एह यन्तु०" इत्यादि मंत्रों से वक्ष्यमाण गोष्ठ कर्मों को करे ॥१४॥ दूसरी बार व्याई हुई गौ के पहिले दिन के दूध का नाम पीयूष है ॥ इस पीयूष को गौके मुँह के लार को मिलाकर खावे ॥१५॥ ब्राह्मण को गौ देवे ॥१६॥ जलपात्र को अभिमंत्रण कर उसको गोशाला में लावे ॥१७॥ गौ गृह के भीतर—स्थान को पञ्च भूसंस्कार करके गोशाला में धूलि को ढेर किये हुए के आधे भाग को दक्षिण

णेन विक्षिपति ॥१८॥ सारूपवत्से शकृत्पिण्डान् गुग्गुलुलवणे प्रतिनीय पश्चादग्नेर्निखनति ॥१९॥ तिसृणां प्रातरश्नाति ॥२०॥ विकृते संपन्नम् ॥२१॥ आयमगन्नयं प्रतिसरोऽयं मे वरणोऽरातीयोरिति मन्त्रोक्तान् वासितान् बध्नाति ॥२२॥ उत्तमस्य चतुरो जातरूपशकलेनानुसूत्रं गमयित्वावभुज्य त्रैधं पर्यस्यति ॥२३॥ एतमिध्ममिस्युपसमाधाय ॥२४॥ तमिमं देवता इति वासितमुल्लुप्य ब्रह्मणा तेजसेति बध्नाति ॥२५॥ उत्तमो असीति मंत्रोक्तम्

दिशा में फेक देवे ॥१८॥ सारूपवत्सवाली गौ के गोबर-पिण्डों को, गुग्गुल लवण में लाकर अग्नि के पश्चिम भाग में गाड़ देवे ॥१९॥ तीन रात बीत जाने पर प्रातःकाल उसे उखाड़ कर खावे ॥२०॥ और भूमि में गाड़े हुए पीयूष को निकालने पर वह तय्यार हुआ कि नहीं इसकी परीक्षा-उसका गन्ध, स्वाद, और रूप की देखभाल चखकर जानना। क्योंकि विकार रहित होने ही से यह ठीक हुआ समझना चाहिये ॥२१॥ "आयमगन्न०" इत्यादि मंत्र से मणि द्रव्यों को मंत्रों से अभिमंत्रण कर वासित करके त्रयोदशी आदि नियमों से वासित मणियों को "पुष्टिफलत्वं मह्यं ददतु पुष्टये ।" "अयमागन्न०" से पलाशमणि, आदि वृक्षोंके "अयं प्रतिसर ।" "अयं मे वरण" से वरण, आडे खादिर, चिबुका (मुचुकुन्दवृक्ष) ॥ उक्त मणि के सोने की ४ माला लाइ के साथ गांधने के योग्य करके टेढा करके एक २ माला को तीन २ बार लपेट कर बगल में सब तरफ लोहे के मोटे पत्तर से एक सौ दक्षिण सुवर्ण सूत्र करे ॥ ॥ तात्पर्य यह है कि यह प्रकरण सब कामनाओं की सिद्धि हेतु सर्वकाममणि शान्ति कहाता है ॥ पलाश मणि को तीन बार वासित करके डालकर अभिमंत्रण कर त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावास्या इन तीन तिथियों में दही, मधु में वासना देकर मणि को धारण करे ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥, "एतमिध्मम्०" से उपसमाधान करके "तमिमं देवता०" से मणि को छेदकर "ब्रह्मणा तेजसा०" से अपने उत्तमाङ्ग में बान्धे ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ "उत्तमो अस्योषधीनां तव वृक्षा०" से जिस द्रव्य का

॥२६॥ अक्षितास्त इति यवमणिम् ॥२७॥ प्रथमा ह व्युवास सेत्यष्टक्याया वपां सर्वेण सूक्तेन त्रिर्जुहोति ॥२८॥ समवत्तानां स्थालीपाकस्य ॥२९॥ सहहुतानाज्य-मिश्रान्हुत्वा पश्चादग्नेर्वाग्यतः संविशति ॥३०॥ महा-भूतानां कीर्तयन् संजीहिते ॥३१॥२॥१९॥

सीरा युञ्जन्तीति युगलाङ्गलं प्रतनोति ॥१॥ दक्षिण-मुष्टारं प्रथमं युनक्ति ॥२॥ एहि पूर्णकेस्युत्तरम् ॥३॥ कीनाशा इतरान् ॥४॥ अश्विना फालं कल्पयतामुपावतु

मणि हो उसी को इस मंत्र से बान्धे ॥२६॥ "अक्षितास्त०" से यव मणि को बान्धे ॥ २७ ॥ माघ मास की अष्टका में पूर्वाह्न समय यज्ञोपवीती होकर यज्ञशाला निवेशन के लिये पञ्च भूसंस्कार करके उपवास रहकर भात खाकर स्नानकर अखण्ड नये वस्त्र को पहन ओढ़-कर रात्रि में प्रयोग करे अर्थात् वश्य तन्त्रानुसार पाकयज्ञ विधान से धान आदि को पकाकर आज्यभागान्त होम करके अग्नि के पूर्वभाग में पश्चिम में गौ को धरे ॥ अग्नि के पश्चिम भाग में पूर्व मुख बैठ कर अन्वारब्ध हुआ शान्त्युदक करे ॥ "प्रथमा ह व्युवास स०" इत्यादि सम्पूर्ण सूक्त से घी की आहुति देवे ॥ सूक्त को तीन वार पढ़कर आहुतियां करे । इसके अनन्तर मांस होम में "प्रथमा ह व्युवास स०" इत्यादि सम्पूर्ण सूक्त से तीन वार आहुतियां देवे ॥ फिर 'प्रथमा ह व्युवास०" सम्पूर्ण सूक्त से स्थालीपाक की आहुति देवे ॥२९॥ सह हवन क्रियों के साथ आज्य मिला आहुति देकर अग्नि के पश्चिम भाग में वाक् संयम कर बैठे ॥३०॥ महाभूतों (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) के गुणों के वर्णन करता रहे, जिस्से नीन्द न आवे ॥३१॥२॥१९॥ यह उन्नीसवी कंडिका पूरी हुई ॥१९॥

"सीरायुञ्जन्ति०" इत्यादि से कर्त्ता हलके दहिने भाग मे और "उष्टारं प्रजन-यितारं०" मंत्र पढ़कर दाहिने युग धुरि में । उत्तरां युगं धुरि सेक्तारमेव "एहि पूर्णक०" से वाम भाग मे बैल जोते । "युनक्तसाराावियुगातनोत०" को पढ़कर जोतने वाले से कहे कि तुम खेत जोतो और अलग २ सीरोरे कर जोतो' ऐसा कहने पर कर्षक खेत जोते ॥१॥२॥३॥४॥ "अश्विना

बृहस्पतिः। यथासद्बहुधान्यमयदमं बहुपूरुषमिति फाल-मतिकर्षति ॥५॥ इरावानसि धार्तराष्ट्रे तव मे सत्रे राध्यतामिति प्रतिमिमीते ॥६॥ अपहताः प्रतिष्ठा इत्य-पूपैः प्रतिहत्य कृषति ॥७॥ सूक्तस्य पारं गत्वा प्रयच्छति ॥८॥ तिस्रः सीताः प्राचीर्गमयन्ति कल्याणीर्वाचो वदन्तः ॥९॥ सीते वन्दामहे त्वेत्यावर्तयित्वोत्तरस्मिन् सीता-न्ते पुरोडाशेनेन्द्रं यजते ॥१०॥ अश्विनौ स्थालीपाकेन ॥११॥ सीतायां संपातानानयन्ति ॥१२॥ उदपात्र उत्तरान् ॥१३॥ शष्पहविषामवधाय ॥१४॥ सर्वमनक्ति ॥१५॥ यत्र संपा-तानानयति ततो लोष्टं धारयन्तं पत्नी पृच्छत्यकृक्षतेति ॥१६॥ अकृष्यामेति ॥१७॥ किमाहार्षीरिति ॥१८॥ वित्तिं भूतिं पुष्टिं प्रजां पशूनन्नमन्नाद्यमिति ॥१९॥ उत्तरतो मध्य-

---

फालम्०" इत्यादि से फाल को अभिमंत्रित करे ॥५॥ "इरावानसि०" इत्यादि से खेत को नाप कर जोते ॥६॥ "अपहताः प्रतिष्ठा०" इत्यादि से फाल को अपूपों से वेष्टित कर जोते ॥ अपूप घी में पका हो। "लांगलं पवीरवत्" इत्यादि मंत्र पढ़कर जोते ॥७॥ और कर्त्ता हल को कर्षकों को देवे—तब तक स्वयं जोते जब तक पूरा सूक्त पढ़ना समाप्त न हो ॥८॥ "अभिवर्षतु निष्पद्यतां बहुधान्यं, आरोग्यम्" इत्यादि कल्याणी बातों को बोले जब तक तीन सीरावर पश्चिम की ओर जोते ॥९॥ "सीते वन्दा-महे त्वं०" इत्यादि मंत्र को चाप करते हुए लोट पोट करता रहे तब तक पुरोडाश से इन्द्रदेवता की पूजा करे ॥१०॥ "अश्विनौ०" देवता को स्थालीपाक से पूजा करे ॥११॥ सीरावरों पर आहुतियों का धार देवे ॥१२॥ जलपात्र को उत्तर दिशा में धरे ॥१३॥ शल्य (हरी दूब) की आहुति करके सब हलों को प्रक्षालन करे ॥ जहां सम्पातों को लावे वहां से ढेला लेते हुए को पत्नी पूछे तुमने जोता ? कारयिता कहे मैं सम्पातों को जोतता हूं। मट्टी के पिण्ड को लेकर धरे पत्नी (स्वामिनी) पूछे "अकृ-ष्याम०"१४।१५।१६।१७। फिर पत्नि पति को पूछे "किमाहार्षीः" तो उत्तर में पत्नी कहे—वित्ति, भूति, पुष्टि, प्रजा, पशु, अन्न, और अनाद्य इनको

मायां निवपति ॥२०॥ अभ्यज्योत्तरफालं प्रातरायोजनाय निदधाति ॥२१॥ सीताशिरःसु दर्भानास्तीर्य प्लक्षोदुम्बरस्य त्रींस्त्रींश्चमसान्निदधाति ॥२२॥ रसवतो दक्षिणे शष्पवतो मध्यमे पुरोडाशवत उत्तरे ॥२३॥ दर्भान् प्रत्यवभुज्य संवपति ॥२४॥ सारूपवत्से शकृत्पिण्डान् गुग्गुलुलवणे प्रतिनीयाश्नाति ॥२५॥अनड्‌त्सांपदम् ॥२६॥३॥२०॥

पयस्वतीरिति स्फातिकरणम् ॥१॥ शान्तफलशिलाकृतिलोष्ठवल्मीकराशिवापं त्रीणि कूदीप्रान्तानि मध्यमपलाशे दर्भेण परिवेष्ट्य राशिपल्येषु करोति ॥२॥ सायं भुञ्जते ॥३॥ प्रत्यावपन्ति शेषम् ॥४॥ आ भक्तयातनात्

लेती हूं ॥१९॥ बीच के सीरवर में के ढेला को वरे । और उत्तर देश में अश्विनौ देवता को स्थालीपाक से पूजे ॥२०॥ पूजाकर उस उत्तर सम्पादि संस्कृत जल से दूसरे दिन प्रातःकाल आयोजना होगी उसके लिये रख छोड़े ॥२१॥ सीता के शिर पर कुशों को आस्तरण करके प्लक्ष, गूलर के तीन २ इध्म को डाले ॥२२॥ रसवाले दक्षिण में शष्पवाले बीच में पुरोडाश वाले उत्तर में डाले ॥२३॥ कुशों को टेढा करके चमसों पर डाले ॥२४॥ सरूपवत्सा गौ के गोबर के पिण्डों को गुग्गुल लवण में मिलाकर खावे ॥२५॥ अनडुत्साम्पद (हमको बहुत बैल हो एसी इच्छावाले) करे ॥२६॥३॥२०॥ यह बीसवी कण्डिका पूरी हुई ॥२०॥

"पयस्वतीः०" इत्यादि से स्फातिकरण (किसी पदार्थ की वृद्धि) कर्म को करे ॥१॥ शान्तफल, शिलाकृति, मट्टी का ढेला, दीमक के मट्टी के ढेर को तीन कूदीप्रान्तों को, पलाश के पत्ते में कुश के साथ लपेट कर बान्धे और अन्न के ढेर पर या वखार में धरे ॥२॥ अन्न को नाप कर सायंकाल में भोजन करे ॥३॥ मनुष्य के हिसाब से अधिक कोष्ठागार में धरे और शेष को आहुति करे ॥४॥ जब २ भात पकावे, तब २ उसे अभिमंत्रित करे । और जब २ छाटने, कूटने, साफ करने, रंधन करने, परीक्षण करने, छन देने का काम करे तब २ उसे अभिमंत्रण करे ॥५॥

॥५॥ अनुमन्त्रयते ॥६॥ अयं नो नभसस्पतिरिति पल्येऽश्मानं सम्प्रोक्ष्यान्वृचं काशीनोप्यावापयति ॥७॥ आ गाव इति गा आयतीः प्रत्युत्तिष्ठति ॥८॥ प्रावृषि प्रथमधारस्येन्द्राय त्रिर्जुहोति ॥६॥ प्रजावतीरिति प्रतिष्ठमाना अनुमन्त्रयते ॥१०॥ कर्कीप्रवादानां द्वादशदाम्न्यां सम्पातवत्यामयं घास इह वत्सामिति मन्त्रोक्तम् ॥११॥ यस्ते शोकायेति वस्त्रसाम्पदी ॥१२॥ तिस्रः कूदीमयोरूर्णनाभिकुलाय परिहिता अन्वक्ता आदधाति ॥१३॥ अस्यन्तेषीका मौञ्जपरिहिता मधुना प्रलिप्य चिक्कशेषु पर्यस्य ॥१४॥ उत पुत्र इति ज्येष्ठं पुत्रमवसाययति ॥१५॥ मितशरणः सांपदं कुरुते ॥१६॥ अर्धमर्धेनेस्याद्र्रपाणी रसं ज्ञात्वा प्रयच्छति ॥१७॥ शान्तशाखया प्राग्भागमपाकृत्य ॥१८॥

॥६॥ "अयं नो नभसस्पतिः" से धन्यराशि में पत्थर को संप्रोक्षण करके प्रत्येक ऋचा से निर्वाप करे और दूसरा पुरुष आवपन करावे ॥७॥ यह स्फाति कर्म्म समाप्त हुआ ॥ जब गौयें जंगल आदि से चर कर गोशाला में आवें तो "आ गाव" से प्रत्युपस्थान करे ॥८॥ वर्षाऋतु में "प्रथमधारस्येन्द्राय" की आहुति देवे ॥१०॥ "कर्कीप्रवाद०" मंत्रों में से द्वादश नाम वाली ऋचा (सूर्यस्य रश्मीक इत्यादि) से सम्पातवती करके "अयं घास इह वत्सां" इत्यादि "इह वत्सां निबध्नीम०" इत्यादि से बच्चों के पैरों में बान्धे" "अयं घास०" से खाने को घास देवे गौ और बच्छरे दोनों की यह गोशान्ति समाप्त हुई ॥ "यस्ते शोकाय०" इत्यादि से वस्त्र की प्राप्ति होती है ॥१२॥ तीन कूदीमयी मकरे के जालमें बनी हुई को घी से चपोड़कर आहुति देवे और इषीका (शरपत की) को मूँजमें लपेट कर मधु से लीप कर तीन जौ के चिकसा से सब ओर प्रक्षिप्तकर तीन समिधोंकी आहुतियां देवे ॥१३॥१४॥ "उत पुत्र" मंत्र से ज्येष्ठ पुत्र से पिता अवशान करावे अर्थात् पुत्रों में घर बटवा देवे ॥१५॥ ज्येष्ठ पुत्र घर बना कर इसी में अवशान कर्म करे ॥१६॥ ज्येष्ठ पुत्र हाथ पैर धोकर "अर्धमर्धेन०" से "ददामि" ऐसा समझ कर देवे ॥१७॥ शान्त-

प्रत्यग्निं परिचतति ॥१६॥ तस्या अमावास्यायां तिस्रः प्रादेशमात्रीरादधाति ॥२०॥ त्वे क्रतुमिति रसप्राशनी ॥२१॥ रसकर्माणि कुरुते ॥२२॥ स्तुष्व वर्ष्मन्निति प्राजापत्यामावास्यायामस्तमिते वल्मीकशिरसि दर्भावस्तीर्णेऽध्यधिदीपं धारयंस्त्रिर्जुहोति ॥२३॥ तण्डुलसंपातानानीय रसैरुपसिच्याश्नाति ॥२४॥ एवं पौर्णमास्यामाज्योतान् ॥२५॥४॥२१॥

ऋधङ्मन्त्रस्तदिदासेति मैश्रधान्यं भृष्टपिष्टं लोहितालंकृतं रसमिश्रमश्नाति ॥१॥ अभृष्टं प्लक्षोदुम्बरस्योत्तरतोऽग्नेस्त्रिषु चमसेषु पूर्वाह्णस्य तेजसाग्रमन्नस्य प्राशिषमिति पूर्वाह्णे ॥२॥ मध्यन्दिनस्य तेजसा मध्य-

---

वृक्ष की शाखा से गौ आदि के भागों को लेकर देवे ॥१८॥ विभक्त हुए पुत्र गण अपने २ घरों में प्रति अग्नि में शान्तवृक्ष की शाखा को बान्धे ॥१९॥ उस शाखा की तीन समिधाओं को (प्रादेश परिमिता) अग्नि में डाले ॥२०॥ "त्वे क्रतु०" इत्यादि से रसास्तनपा प्राशन्तः रसा अनया प्राश्यन्ते । रस कर्मों को इसी से करे ॥२२॥ "स्तुष्व वर्ष्मन्०" इत्यादि की देवता प्रजापति है । इस ऋचा से अमावास्या को सूर्य्य के अस्त होने पर दीमक की मट्टी के ढेर पर कुशों को बिछाकर उस पर खपर धरकर उसमें अग्नि स्थापन करे और दीप जला देवे, और तीन बार आहुतियां देवे ॥२३॥ चावल के सम्पातों को लाकर रसों से उसका उपसेचन कर खावे ॥२४॥ और पौर्णमासी को आज्य से उपसेचन कर खावे ॥२५॥४॥२१॥ यह इक्कीसवी कण्डिका समाप्त हुई ॥२१॥

'ऋधङ्मन्त्रस्तदिदास०" इत्यादि मंत्र से मैश्रधान्य को भूनकर उसके सत्तू को लोहित (रक्तचन्दन या लाल शोभांज वृक्ष) से अलंकृत रस को मिलाकर खावे ॥१॥ विना भूने हुए मिश्रधान्य के सत्तू को अग्नि के उत्तर भाग में प्लक्ष, गूलर के तीन चमसों को पूर्वाह्ण समय "पूर्वाह्णस्य तेजसाग्रमन्नस्य प्राशिषम्" इत्यादि से आहुति देवे ॥२॥

मन्नस्य प्राशिषमिति मध्यन्दिने ॥३॥ अपराह्णस्य तेजसा सर्वमन्नस्य प्राशिषमित्यपराह्णे ॥४॥ ऋतुमत्या स्त्रिया अङ्गुलिभ्यां लोहितम् ॥५॥ यत् क्षेत्रं कामयते तस्मिन् कीलालं दधिमधुमिश्रम् ॥६॥ संवत्सरं स्त्रियमनुपेत्य शुक्त्यां रेन आनीय तण्डुलमिश्रं सप्तग्रामम् ॥७॥ द्वादशीममावास्येति क्षीरभक्षो भवत्यमावास्यायां दधिमधु भक्षस्तस्य मूत्र उदकदधिमधुपल्पूलनान्यासिच्य ॥८॥ क्रव्यादं नाडी प्रविवेशाग्नि प्रजाभाङ्गिरतो मायथैतौ । आवां देवी जुषाणे घृताची इममन्नाद्याय प्रविशतं स्वाहेति ॥९॥ निशायामाग्रयणतण्डुलानुदक्यान्मधुमिश्रान्निदधात्या यवानां पङ्क्तेः ॥१०॥ एवं यवानुभयान्समोप्य ॥११॥ त्रिवृति गोमयपरिचये श्रृतमश्नाति ॥१२॥

"मध्यन्दिनस्य तेजसा मध्यमन्नस्य प्राशिषम्" इत्यादि से मध्यान्ह में आहुति देवे ॥ ३ ॥ "अपराह्णस्य तेजसा सर्वमन्नस्य प्राशिषम्" इत्यादि से अपराह्ण समय आहुति देवे ॥४॥ ऋतुमती स्त्री को गर्भकाल युक्त होने से उसके योनि से रुधिर निकलता है उस रुधिर को तर्जनी एवं मध्यमा अङ्गुलियों से अपने कुल की पुष्टि के लिये पीवे ॥५॥ जिस खेत की कामना हो उसमें जाकर जल, दही, मधु मिलाकर खावे ॥६॥ एक वर्ष तक स्त्री के पास न जाकर सीप में अपने वीर्य्य को लेकर उसमें चावल मिलाकर खावे तो सात ग्राम का लाभ होगा ॥७॥ द्वादशी से लेकर अमावास्या पूर्व केवल क्षीर खावे, और अमावास्या को दही, मधु, खावे, और इन तीन दिनों में क्षीर खावे, तो उस पुरुष के जल में जल, दही, मधु, पल्पूलन को आसेचन करके खावे ॥ ८ ॥ "क्रव्यादं नाडी०" इत्यादि मंत्र से स्वाहा करे ॥ रात्रि में अगहनी धान के चावलों में (चावलों को धो करके) मधु मिलाकर आहुति देवे ॥ शरद् ऋतु में जिस किसी रात्रि में व्रीहि तण्डुल और श्यामा मधु मिलाकर जब तक व्रीहि को जव की पंक्तिमें दोनों को न डाले ॥ इस प्रकार दोनों यवों को डाल कर ॥११॥ तीन बार गोबर एकत्र ढेर पर पका कर खावे ॥ १२ ॥

समृद्धमिति काङ्कायनः ॥१३॥ ममाग्नेवर्च इति सात्रि-कानग्नोन्दर्भपूतीकभाङ्गाभिः परिस्तीर्य गार्हपत्यश्रृतं सर्वेषु सम्पातवन्तं गार्हपत्यदेशेऽश्नाति ॥१४॥ एवं पूर्वे-स्मिन्नपरयोरुपसंहृत्य ॥१५॥ एवं द्रोणकलशे रसानु-क्तम् ॥१६॥५॥२२॥

यजूंषि यज्ञ इति नवशालायां सर्पिर्मधुमिश्रमश्नाति ॥१॥ दोषो गायेति द्वितीयाम् ॥२॥ युक्ताभ्यां तृतीयाम् ॥३॥ आनुमतीं चतुर्थीम् ॥४॥ शालामङ्गुलिभ्यां सम्प्रोक्ष्य

तो इससे समृद्धि होती है ऐसा काङ्कायन आचार्य्य कहते हैं ॥१३॥ "ममा-ग्ने वर्च०" इत्यादि से सात्रिक (याज्ञिक) अग्नियों को दर्भपूतिक भाङ्ग-द्वारा परिस्तरण करके अर्थात् शत्रुदेश में जा कर गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय अग्नियों में कर्म करे। इसके अनन्तर गार्हपत्य अग्नि में अभ्यातानान्त आहुति करके "ममाग्ने वर्च" इत्यादि से सारूपवत्स गौ के दूध को गर्म कर पहिले उतार कर तब उत्तर तन्त्र करके पूतीक दर्भ से स्तरण करे। तब अभ्यातानान्त करके सारूपवत्स दूध को अग्नि पर से उतार के फिर आहवनीयाग्नि के पास स्तरण करे। तब उसी सारूपवत्स दूध को उतार कर इसी सूक्त से एकवार अभिमंत्रण करके खावे। तब गार्हपत्य प्रभृति उत्तर तंत्र को करे। गार्हपत्य देश में भोजन करे। उत्तर तंत्र, व्रतग्रहणादि करे। दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि, आहवनीयाग्नियों में यथाक्रमसे व्रतग्रहणादि करे॥ गार्हपत्याग्नि का स्तरण कुशों से, दक्षि-णाग्नि का पूतीक काष्ठों से और भाङ्ग से आहवनीयाग्नि का स्तरण करे॥ यह समुद्र कर्म समाप्त हुआ ॥१५॥१६॥५॥२२॥

यह बाईसवी कण्डिका पूरी हुई ॥२२॥

अब नूतन घर, गोशाला, अग्निशाला, या गाँव या पुर या अन्यत्र अभिमत स्थानों में कर्मों को करे॥ चाहे घर पत्थर, काठ, फुस, या इंटों के बने हों सर्वत्र नये मकानों में गृह प्रवेश कर्म करे। घी, मधु मिला करे। अर्थात् "यजूंषि यज्ञ" इत्यादि से आज्य द्वारा अंग होम और प्रधान होम सर्पिष में मधु मिला कर करे ॥१॥ "दोषो गाय"० से दूसरी, दोनों मंत्रों को मिला कर तीसरी, और "अनुमति सर्वम्"—इस

गृहपत्न्यासाद उपविश्योदपात्रं निनयति ॥५॥ इहैव स्तेति वाचं विसृजते ॥६॥ ऊर्ध्वा अस्येति वाष्मणमौदुम्बरं मन्थप्रतिरूपमभिजुहोति ॥७॥ असङ्ख्याता अधिश्रृत्य ससागमशष्कुलीः ॥८॥ त्वष्टा म इति प्रातर्विभुञ्ज्यमाणोऽश्नाति ॥९॥ ज्यायुं बध्नाति ॥१०॥ दण्डं सम्पातवन्तं विमृज्य धारयति॥११॥ वायुरेना इति युक्तयोश्चित्राकर्मनिशायां सम्भारान् सम्पातवतः करोति॥१२॥ अपरेद्युर्वायुरेना इति शाखयोदकधारया गाः परिक्रामति ॥१३॥ प्रथमजस्य शकलमवधायौदुम्बरेणासिना लोहितेनेति मन्त्रोक्तम् ॥१४॥ यथा चक्रुरितीक्षुकाशकाण्ड्या

एक ऋचा से चौथी आहुति करे ॥२॥३॥४॥ शाला (घर) को तर्जनी एवं मध्यमा अङ्गुलि से संप्रोक्षण करके गृहपत्नी के महानस घर में बैठ कर जलपात्र लावे ॥५॥ "इहैव स्त०" मंत्र पढ़कर वाक् संयम कर मौन रहे ॥६॥ बिजुली गिरने से जो गूलर पेड़ मृत हो गया हो उसके इध्म से "उर्ध्वास्य०" मंत्र से अर्थात् गूलर के काठ के मंथाकार आठ इध्म बना अग्नि में डाले और आज्य से होम करे धूम लेवे और लेप को खवावे ॥७॥ अगणित पूरियां पकावे और उनमें से सात लेकर अग्नि में आहुति करे ॥ और "त्वष्टाम०" से प्रातःकाल दायदों को बाँटता हुआ आप भोजन करे ॥८॥९॥ और ज्यायु को अपने अङ्ग में बान्धे ॥१०॥ और दण्ड भूमि पर डाल कर उसका मार्जन कर धारण करे ॥११॥ "वायुरेना०"इत्यादि को "त्वष्टा म०" इसको इन दोनों सूक्तों के योग से चित्रा नक्षत्र रात्रि में चित्रा कर्म करे ॥ वृक्ष शाखा, जल, करम्बक, गूलर काठ का टुकड़ा और तामे की छुरिका आदि को इकट्ठाकर रक्खे ॥१२॥ और दूसरे दिन "वायुरेना०" इत्यादि से वृक्षशाखा द्वारा जल की धारा गौ के उपर बहा कर उसे परिक्रमा करावे ॥१३॥ और वर्तमान वर्ष में जो वत्स पहिले पैदा हो उसके कानों के नीचे गूलरकाठ के टुकड़ों धर कर तामे के छुरि से दोनों कानों को क्रम से छेदे । छेदते समय जो उससे रुधिर गिरे उसको आज्यधानी में रखता जावे ॥ "यथा चक्रुः०" इत्यादि से

लोहितं निर्मृज्य रसमिश्रमश्नाति ॥१५॥ सर्वमौदुम्बरम् ॥१६॥यस्येदमा रज इत्यायोजनानामप्ययः॥१७॥६॥२३॥

उच्छ्रयस्वेति बीजोपहरणम् ॥१॥ आज्यमिश्रान्धवानुर्वरायां कृष्टे फालेनोदुह्यान्वृचं काशीन्निनयति निवति ॥२॥ अभि त्यमिति महावकाशेऽरण्य उन्नते विमिते प्राग्द्वारप्रत्यग्द्वारेष्वप्सु सम्पातानानयति ॥३॥ कृष्णाजिने सोमांशून् विचिनोति ॥४॥ सोममिश्रेण सम्पातवन्तमश्नाति ॥५॥ आदीप्ते सम्पन्नम् ॥६॥ तां सवितरिति गृष्टिदाम बध्नाति ॥७॥ सं मा सिञ्चन्त्विति सर्वोदके मैश्रधान्यम् ॥८॥ दिव्यं सुपर्णमित्यृषभदण्डिनो

इक्षु काश के कण्डी से रुधिर का मार्जन कर उसमें रस मिला कर पान करावे ॥१४॥१५॥ इन कर्मों को गूलर के काठ से करे ॥१६॥ "यस्येदमा रज०" इत्यादि से यज्ञ सम्बन्धि सामग्रियों के आयोजन में करे ॥१७॥ ६॥२३॥ यह तेईसवी कण्डिका समाप्त हुई ॥

"उच्छ्रयस्व०" इत्यादि से बीज को अभिमन्त्रण करके बीज को बोने के लिये खेत में ले जावे ॥१॥ और उसमें से तीन मुट्ठी लेकर खेत में धर कर उसे मट्टी से ढक देवे। और तब तय्यार खेत में प्रति ऋचा से बीज बोवे ॥२॥ उच्च स्थान में जाकर अभ्यातानान्त करके "अभित्यं०" इत्यादि ४ ऋचा वाले सूक्त से जलपात्र धर करके उस जलपात्र में सोम रस मिला कर सारूपवत्स गौ के दूध में ओदन पकाकर अभिमंत्रण करके भोजन करे। तब उत्तर तंत्र करे। यह कर्म मण्डप के पूर्व तथा पश्चिम द्वार पर करे। मण्डप के पश्चिम अग्नि से जलावे ॥३॥४॥५॥६॥ काले मृग के चर्म पर सोमांशु को बखेर देवे और सोम रस मिले को खावे ॥५॥ यदि वह सोमरस मिला—सम्पात वाला—काल पाकर स्वयं जल उठे तो जानो कि मनोरथ सफल हुआ ॥६॥ "तां सवित०" इत्यादि से गो दामन बान्धे ॥७॥ "संमासिञ्चन्तु०" से सर्वोदक में मैश्र धान्य को स्थालीपाक पका कर खावे ॥८॥ "दिव्यं सुपर्ण" इत्यादि से

वपयेन्द्रं यजते ॥९॥ अनुबद्धशिरःपादेन गोशालां चर्मणावछाद्यावदानकृतं ब्राह्मणान् भोजयति ॥१०॥ प्रोष्य समिध आदायोर्जं बिभ्रदिति गृहसङ्काशे जपति ॥११॥ सव्येन समिधो दक्षिणेन शालावलीकं संस्थभ्य जपति ॥१२॥ अतिव्रज्य समिध आधाय सुमङ्गलि प्रजावति सुसीमेऽहं वां गृहपतिर्जीव्यासमिति स्थूणे गृह्यास्युपतिष्ठते ॥१३॥ यद्वदामीति मन्त्रोक्तम् ॥१४॥ गृहपत्न्यासाद उपविश्योदपात्रं निनयति ॥१५॥ इहैव स्तेति प्रवत्स्यन्नवेक्षते ॥१६॥ सूयवसादिति सूयवसे पशून्निष्ठापयति ॥१७॥ दूर्वाग्रैरञ्जलावप आनीय दर्शं दार्शीभि-

---

गौओं में जो सबसे बली हो उसकी वपा से 'वृषभेन्द्र की'पूजा करे वशा विधान की रीति से ॥९॥ शिर पैर को बान्धकर गोशाला में धर कर चमड़े से ढक देवे ॥ और टुकड़े २ करके ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥१०॥ भूमि को प्रोक्षण कर समिध लाकर "ऊर्जं बिभ्रत्०"इत्यादि मंत्र का जप करे। अर्थात् जहाँ २ देशान्तर में जाकर जंगल से समिधाओं को लाकर जहाँ २ घर में मिले वहाँ २ उक्त मंत्र का जप करे और समिदाधान करे और मकान के छप्पर को छूकर"ऊर्जं बिभ्रत्०"इत्यादि मन्त्र का जप करे ॥११॥ बाँये हाथ से समिधा को एवं दहिने से मकान के छप्पर को स्पर्श कर मंत्र का जप करे ॥१२॥ बहुत दूर जाकर समिदाधान कर "सुमङ्गलि०" इत्यादि से घर के स्थूणा को पकड़ कर उपस्थान करे ॥ "यद्वदामि०" से घरवालों से प्रियवचन बोले ॥१४॥ और घर के स्वामिनी के रंधन गृह में बैठ कर जलपात्र को लावे ॥१५॥ उपवास किया हुआ "इहैव स्त०" से घर और मनुष्यों को देखे ॥१६॥ "सूयवसात्" से सूयवस पशुओं को स्थिर करे ॥१४॥ यजमान के गृहप्रवेश कर्म को कहते हैं ॥ यजमान मौन होकर समिदाधान करके घर को देख कर "ऊर्जं बिभ्रत्"० छः ऋचावाले सूक्त का जप करे। वाम हाथ से समिधाओं को लेकर दहिने से शाला के छप्पर को स्पर्श कर"ऊर्जंबिभ्रत्०" सूक्त का जप करे। तब अग्नि में समिध डाले। और "सुमङ्गलि०"

रुपतिष्ठते ॥१८॥ इन्द्रस्य कुक्षिः साहस्र इत्यृषभं सम्पातवन्तमतिसृजति ॥१९॥ रेतोधायै त्वातिसृजामि वयोधायै त्वातिसृजामि यूथत्वायै त्वातिसृजामि गणत्वायै त्वातिसृजामि सहस्रपोषायै त्वातिसृजाम्यपरिमितपोषायै त्वातिसृजामि॥२०॥ एतं वो युवानमिति पुराणं प्रवृत्य नवमुत्सृजते सम्प्रोक्षति ॥२१॥ उत्तरेण पुष्टिकाम ऋषभेणेन्द्रं यजते ॥२२॥ सम्पत्कामः श्वेतेन पौर्णमास्याम् ॥२३॥ सत्यं बृहदित्याग्रहायण्याम् ॥२४॥ पश्चादग्नेर्दर्भेषु खदायां सर्वहुतम् ॥२५॥ द्वितीयं सम्पातवन्तमश्नाति ॥२६॥ तृतीयस्यादितः सप्तभिर्भूमे मातरिति त्रिर्जुहोति ॥२७॥ पश्चादग्नेर्दर्भेषु कशिप्वास्तीर्य विमृग्वरीमित्युपविशति ॥२८॥ यास्ते शिवा इति संविशति ॥२९॥ यच्छ-

---

इत्यादि से स्थूणा को पकड़ कर उपस्थान करे। "यद्वदामि०" ऋचा से वाक् संयम को छोड़ देवे। गृहपत्नी के रंधन घर में बैठकर जलपात्र को तूष्णीं लावे॥ दूर्वा हाथ में लिये अंजुलि बनाकर "दूर्वापरं०"इत्यादि छः ऋचावाले सूक्त का जप करे ॥१८॥ अब वृषोत्सर्ग की विधि को कहते हैं॥ वृषभ को लाकर विवाह की भाँति अग्नि प्रणयन करके वत्सतरियों के साथ "इन्द्रस्य कुक्षिः साहस्र०" इत्यादि से वृषभ को छोड़े॥१९॥ "रेतोधायै त्वा० युवानं" इस अन्त के मंत्रों को पढ़ कर पुराने वृषभ का त्याग कर नये वृषभ को संप्रोक्षण कर छोड़े ॥२०॥२१॥ पुष्टि की इच्छा वाला नवीन ऋषभ द्वारा इन्द्र की पूजा करे॥२२॥ सम्पत् चाहनेवाला श्वेत वृषभ द्वारा पौर्णमासी को इन्द्र की पूजा करे ॥२३॥ अग्रहायणी पौर्णमासी की रात में अभ्यातानान्त होम करके चार चरु स्थालीपाक से पकावे। और "सत्यं बृहत्" इस अनुवाक से अग्नि के पश्चाद् भाग में कुशों पर (भूमि पर) गढे में एक चरु की एक बार सर्वहुत आहुति देवे ॥२४॥२५॥ दूसरी चरु सम्पात वाले को खावे और तीसरे को स्थालीपाक से पका कर "सत्यं बृहत्" इत्यादि सात ऋचा से और "भूमे मातः०" इत्यादि अष्टमी ऋचा से तीन बार आहुति देवे ॥२६॥२७॥ अग्नि के पश्चिम भाग में वस्त्र

यान इति पर्यावर्तते ॥३०॥ नवभिः शन्तिवेति दशम्यो-दायुषेत्युपोत्तिष्ठति ॥३१॥ उद्वयमित्युत्क्रामति ॥३२॥ उदीराणा इति त्रीणि पदानि प्राङ्गोदङ्गा बाह्येनोपनिष्क्रम्य यावत्त इति वोक्षते ॥३३॥ उन्नताच्च ॥३४॥ पुरस्तादग्नेः सीरं युक्तमुदपात्रेण सम्पातवतावसिञ्चति ॥३५॥ आयोजनानामप्ययः ॥३६॥ यस्यां सदोहविर्धाने इति जुहोति वरो म आगमिष्यतीति ॥३७॥ यस्यामन्नमुपतिष्ठते ॥३८॥ निधिं बिभ्रतीति मणिं हिरण्यकामः ॥३९॥ एवं वित्त्वा ॥४०॥ यस्यां कृष्णमिति वार्षकृतस्याचामति शिरस्यानयते ॥४१॥ यं त्वा पृषती रथ इति द्यौः

को बिछा कर "विमृग्वरी०" इत्यादि से उसपर बैठे ॥२८॥ "यास्ते शिवा०" इत्यादि से वस्त्र पर भलीभाँति बैठे ॥२९॥ "यच्छयान०" इत्यादि से अपने स्थान को लौट जावे ॥३०॥ "सत्यं बृहत्" इत्यादि नौ और "शन्तिवा०" इत्यादि दशमी इन ग्यारह ऋचाओं से उपस्थान करे ॥३१॥ "उद्वयं" इत्यादि से शयन से उठ कर जावे ॥३२॥ "उदीराणा०" से तीन पग पूर्व वा उत्तर बाहर निकल कर "यावत्त०" से देखे ॥३३॥ ऊँचे स्थान पर चढ़कर वहाँ से देखे ॥३४॥ अग्नि के पूर्व भाग में हल को धर कर जलपात्र से "सत्यं बृहत्०" इत्यादि सम्पात वाले मंत्र से जल का सेचन करे ॥३५॥ कृषि कर्म की आयोजना करे ॥३६॥ "यस्यां सदोहविर्धाने०" इत्यादि तीन ऋचाओं से आज्य की आहुतियां देवे। तब उत्तर तंत्र की क्रिया करे 'मुझे उत्कृष्ट फल की प्राप्ति हो" इत्यादि सर्वफलकाम पुरुष की सब कामनायें सिद्ध होंगी ॥३७॥ "यस्यामन्नं०" इत्यादि से भूमि का उपस्थान करे ॥३८॥ निधिं बिभ्रति०" इत्यादि दो ऋचा से पृथिवी का उपस्थान करे ॥३९॥ ऐसा जानने वाला विधान मणि, हिरण्य पाकर के भी उक्त दो मंत्रों से उपस्थान करे ॥४०॥ वर्षाकाल में "यस्यां कृष्णं०" इत्यादि से नूतन जल को अभिमंत्रण करके आचमन करे। इससे पुष्टि होती है और उस जल को शिरपर लावे ॥४१॥ "यं त्वा पृषती रथ०" इत्यादि। द्यौ पृषती नाम गौ है और आदित्य रोहित

पृषत्यादित्यो रोहितः ॥४२॥ पृषतीं गां ददाति ॥४३॥ पृषत्या क्षीरौदनं सर्वहुतम् ॥४४॥ पुष्टिकर्मणामुपधानोपस्थानम् ॥ ४५ ॥ सलिलैः सर्वकामः सलिलैः सर्वकामः ॥४६॥७॥२४॥ इत्यथर्ववेदे कौशिकसूत्रे तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥३॥

अथ भैषज्यानि ॥१॥ लिङ्ग्युपतापो भैषज्यम् ॥२॥ वचनादन्यत् ॥३॥ पूर्वस्योदपात्रेण सम्पातवताङ्क्ते ॥४॥ वलीर्विमार्ष्टि ॥ ५ ॥ विद्मा शरस्यादो यदिति मुञ्जशिरो रज्वा बध्नाति ॥ ६ ॥ आकृतिलोष्टवल्मीकौ परिलिख्य पाययति ॥ ७ ॥ सर्पिषा लिम्पति ॥ ८ ॥ अपिध-

---

है ॥४२॥ ब्राह्मण को गौ देवे ॥४३॥ गौ के दूध में ओदन पकाकर क्षीरौदन से सर्वहुत करे ॥४४॥ पुष्टि कर्मों के आरम्भ एवं उपस्थान के मंत्र कहे गये जानो ॥४५॥ सलिल गण के मंत्रों से सर्वकामनायें सिद्ध होती हैं । सलिल गण के मंत्रों से सर्वकाम सिद्ध होते हैं ॥४६॥७॥२४॥ यह चौबीसवी कण्डिका पूरी हुई ॥२४॥ और अथर्ववेद के कौशिकसूत्र के तीसरे अध्याय का भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥३॥

अब भैषज्य नाम रोगादि की दवा का वर्णन करेंगे ॥ रोग के समूल नष्ट करने वाले उपायों का नाम भैषज्य है ॥ रोग दो प्रकार का है । एक खान-पान के अपथ्य से, दूसरा पूर्वजन्म कृत पाप से इनमें से खान-पान के अपथ्य से हुए रोगों का प्रतीकार चरक, वाहड, सुश्रुत आदि वैद्यक ग्रन्थों में उपदिष्ट उपायों से होता है और अशुभ वा पाप कृत कर्म्मों के कारण हुए रोगों का उपशमन अथर्ववेद विहित शान्तिक कर्मों से होता है ॥१॥२॥३॥ "ये त्रिषप्तीयेन०" इत्यादि सूक्त से जलपात्र के जल से रोगी को प्रोक्षण करे और मुख और अङ्ग वली का मार्जन करे ॥४॥५॥ "विद्मा शरस्यादो यत्" इत्यादि से ज्वरातिसार का रोगी मुञ्ज पुष्प मणि को मुंज की रस्सी से बान्ध कर पहने ॥६॥ आकृति लोष्ट, दीमक की मट्टी को चूर्ण कर रोगी को पिलावे और घी में डालकर उसका लेप करे ॥७॥ अतिसार और बहुमूल की बीमारी में अतिसार वाले को दिशामार्ग में धमन करे एवं

मति ॥ ९ ॥ विद्मा शरस्येति प्रमेहणं बध्नाति ॥ १० ॥ आखुकिरिपूतीकमथितजरत्प्रमन्दसाव्रस्कान् पाययति ॥ ११ ॥ उत्तमाभ्यामास्थापयति ॥ १२ ॥ यानमारोहयति ॥१३॥ इषुं विसृजति ॥१४॥ वस्तिं विष्यति ॥१५॥ वर्त्तिं बिभेति॥ १६ ॥ एकविंशतिं यवान् दोहन्यामङ्गिरानीय द्रुघ्नीं जघने संस्तभ्य फलतोऽवसिञ्चति ॥ १७ ॥ आलबिसोलं फाएटं पाययति ॥ १८ ॥ उदावर्तिने च ॥१९॥ अम्बयो यन्ति वायोः पूत इति च शान्ताः ॥२०॥

मूत्र एवं मल के अवरोधमें "विद्मा शरस्य०" से हरीतकी या कपूर को सम्पातन कर अभिमंत्रितकरके बान्धे ॥ मूत्र और पुरीष के रुकाव में हर्रे आदि रेचक दवा नाभि के नीचे उपस्थेन्द्रिय के ऊपर छः अङ्गुल पर बान्धे अर्थात् अपान या शिश्न या ब्रह्ममुख को अतिसारी फुकवावे ॥८॥९॥१०॥ "विषितं तेऽस्ति बिलं०" इत्यादि दो ऋचाओं को मूस्त की फेकी मट्टी के ऊपर बैठ कर जप करे। तृण पर बैठकर अभिमंत्रण करे। वस्ति बिलमुख का अभिमंत्रण करे। (पूराने काठ के चीरने से जो बुरादा गिरता है उसको तक्ष कहते हैं।) काठ को तक्ष के शकलों पर, दधि मथित पर बैठ कर अभिमंत्रण करे। पुराने प्रमन्द पर बैठकर अभिमंत्रण करे। और काठ के तक्ष के शकलों पर रोगी को बैठा कर अभिमंत्रण करे। मूत्रादि के रुकाबट में "मूत्रं मुच्यताम्" पढ़कर अभिमंत्रण करे ॥११॥१२॥ रोगी को घोड़े आदि के रथों पर सवार करावे ॥१३॥ रोगी बाण छोड़े ॥१४॥ शरशिश्न को अभिमंत्रण करके शिश्न को चमड़े से बाहर करे ॥१५॥ लोह शलाका को "प्रते भिनद्मि मेहनं०" इत्यादि से अभिमंत्रित कर शिश्न में उसे पैठावे और मूत्र के प्रवाह को खोल देवे ॥१६॥ "विद्मा शरस्य०" द्वितीय सूक्त से जघन में शिश्न देश में उपर को करके गोदोहनी में जल भर कर उसमें २१ जौ डालकर उस जल से धनुष पर फल धर कर उसको जल सेक करे, सूक्त जपकर जिस प्रकार जल शिश्न में जावे वैसा करे ॥१७॥ गोधूम पञ्चमूल, कस्तूरिका इनका क्वाथ करके अभिमंत्रित कर रोगी को पिलावे ॥१८॥ उदावर्त्त के रोगी को प्रमेहण आदि पूर्वोक्त सबही कर्म्म होंगे ॥१९॥ सर्वरोग भैषज्य को कहेंगे। प्रथम

उत्तरस्य ससोमाः ॥२१॥ चातनानामपनोदनेन व्याख्या-तम् ॥२२॥ त्रपुसमुसलखदिरतार्ष्टाघानामादधाति ॥२३॥ अयुग्मान् खादिराञ्छङ्कूनक्ष्यौ निविध्येति पश्चादग्नेः समं भूमि निहन्ति ॥ २४ ॥ एवमायसलोहान् ॥ २५ ॥ तप्त-शर्कराभिः शयनं राशिपल्यानि परिकिरति ॥ २६ ॥ अमावास्यायां सकृद्गृहीतान्यवाननपहृतानप्रतीहार-पिष्टानाभिचारिकं परिस्तीर्य तार्ष्टाघेध्म आवपति ॥२७॥ य आगच्छेत्तं ब्रूयाच्छणशुल्बेन जिह्वां निर्मृजानः शा-लायाः प्रस्कन्देति ॥ २८ ॥ तथा कुर्वन्ननाद्ये ह्वाने ॥२९॥ वीरिणतूलमिश्रमिङ्गिडं प्रपुटे जुहोति ॥३०॥ इध्माबर्हिः

अभ्यातानान्त करके "अम्बयो यन्ति वायोः पूत०" इस सूक्त से आज्य की आहुतियाँ देवे और पलाश उदुम्बरादि काठों की समिधों का आधान करे ॥२०॥ अब सोम भक्षण में भैषज्य को कहते हैं ॥ सोम-पवन, सोमरसायन, सोमयान, सोम के अभिषव में और सोमविषय में जो रोग उत्पन्न होता है ॥२१॥ चातनों के अपनोदन के साथ पूर्व में कहा गया जानो ॥२२॥ कर्कटीवृक्ष, मुसल, खैर, सर्षप के डांट का इध्म, इनकी आहुति करने से पिशाच भाग जाता है ॥२३॥ खैर की १२ अंगुल की ७ या नौ शङ्कु को अग्नि के पश्चिम भाग में समभूमि में "अक्ष्यौ निविध्य" इत्यादि से गाड़े । इसी प्रकार लोहे के कीलों को अग्नि के पश्चिम भाग में समभूमि में उक्त मंत्र से गाड़े ॥२४ ॥२५॥ तप्त शर्कराओं को और धान्य के पोआड को पिशाच ग्रस्त रोगी के शयन स्थान के चारो ओर विखेर देवे ॥२६॥ और अमावस्या को अभ्यातानान्त होम करके शरमय कुश का स्तरण करके सर्षप के इध्मों का आधान करे और एकही बार में सत्तू को लेकर आहुतिं देवे । इस मन्त्र में यवराशि के मध्य से एक मुट्ठी लेकर उलूखल में कूट २ कर पीस लेवे तब रोगी को नीचे लेटाकर शणसूत्र से उसके जीभ का मार्जन करे । इस पर अग्निदेव आवेंगे उनसे पूछे कि ग्रहमुक्त हुआ ? वीरिण के रुई मिली इङ्गिड को पलाश के पत्ते में धरकर हवन करे ॥३०॥ और इसके पूर्व दिन इध्म और कुश शाला में रक्खे,

शालायामासजति ॥३१॥ अपरेद्युर्विकृते पिशाचतो रुजति ॥३२॥ उक्तो होमः ॥३३॥ वैश्रवणायाञ्जलिं कृत्वा जपन्नाचमयत्यभ्युक्षति ॥३४॥ निश्युल्मुके सङ्कर्षति ॥३५॥ स्वस्त्याद्यं कुरुते ॥३६॥ अयं देवानामित्येकविंशत्या दर्भपिञ्जूलीभिर्वलीकैः सार्धमधिशिरोऽवसिञ्चति ॥३७॥१॥२५॥

जरायुज इति मेदो मधु सर्पिस्तैलं पाययति ॥ १ ॥ मौञ्जप्रश्नेन शिरस्यपिहितः सव्येन तितउनि पूल्यानि

॥३१॥ दूसरे दिन धरी हुई विकृत होजाने पर पिशाच गृहीत व्यक्ति को पीड़ा होगी ॥३२॥ इससे जानना कि पिशाच अबही नहीं गया है। तो पूर्वोक्त वीरणतूलादि उसे उसी भाँति करे जब तक पिशाच न छोड़े ॥३३॥ कुबेरदेव के लिये हाथ जोड़कर मंत्र जपता हुआ आचमन करके रोगी को जलसे अभ्युक्षण करे ॥३४॥ रात्रि में उल्मुक को अभिमंत्रण करे परस्पर दो उल्मुकों को घसे ॥३५॥ और रात्रि में स्वस्त्ययन गण के मंत्रों "अमूपारे पातं न०" इत्यादि सूक्तका पाठ करे ॥३६॥ और "देवानाम्" इत्यादि मंत्र से २१ (तीन कुशों को एकत्र लपेट कर बान्धने से पिञ्जुली होती है।) दर्भ पिञ्जुलियों से वलीकों के द्वारा रोगी के शिर से पैर तक सर्वाङ्ग को अव सेचन करे। जलोदरक रोगी की दवा—घड़े में दर्भ पिञ्जुली डालकर २१ घर के छप्पर के ओलती के तृणों को डालकर उस घड़े को अभिमंत्रित कर के तब रोगी को सिंचन कर मार्जन करे॥ ॥३७॥१॥२५॥ यह पचीसवीं कण्डिका समाप्त हुई ॥ २५ ॥

अब वात, पित्त, कफ के दवाओं का उपदेश करेंगे ॥ "जरायुज" इत्यादि सूक्त (तक्म नाशन गण) मेद, मधु, घी, तैल को अभिमंत्रित करके वात विकार रोगी को मांस और मेद को पिलावे। और मधुको अभिमंत्रित करके कफ के रोगी को पिलावे। घृत को अभिमंत्रित करके वात पित्त के रोगी को पिलावे। और वात, कफ के रोगी को तेल पिलावे ॥१॥ अब अतिकास, शिर की पीड़ा इन रोगों की दवा का वर्णन करते हैं॥ रोगी के शिर में मूँज की पगड़ी पहिना देवे एवं वाम हाथ से चलनी, लाजा को धारण करता हुआ दहिने हाथ से वपन को लाजा सहित "जरायुज०" इस सूक्त से लाजा को व्याधि देश तक (जिस स्थान

धारयमाणो दक्षिणेनावकिरन्व्रजति ॥२॥ सव्येन तितउ-प्रश्नौ दक्षिणेन ज्यां द्रुघ्नीम् ॥३॥ प्रैषकृदग्रतः॥४॥ यत्रैनं व्याधिर्गृह्णाति तत्र तितउप्रश्नौ निदधाति ॥ ५ ॥ ज्यां च ॥६॥ आव्रजनम् ॥७॥ घृतं नस्तः ॥८॥ पञ्चपर्वणा ललाटं संस्तभ्य जपत्यमूर्या इति ॥ ९ ॥ पञ्चपर्वणा पांसुसिकताभिः परिकिरति ॥१०॥ अर्मकपालिकां बध्नाति ॥११॥ पाययति ॥१२॥ चतुर्भिर्दूर्वाग्रैर्दधिपललं पाययति ॥१३॥ अनुसूर्यमिति मन्त्रोक्तस्य लोममिश्रमाचमयति ॥ १४ ॥ पृष्ठे चानीय ॥ १५ ॥ शङ्कुधानं चर्मण्यासीनाय दुग्धे

में रोग पैदा हुआ हो) छींटे ॥ इसी प्रकार बायें हाथ से चलनी और मुंजकी पगड़ी को धारण करता हुआ (कर्ता) दहिने हाथ धनुष को ॥३॥ प्रैषकृत हो आगे २ चले ॥४॥ चलता हुआ जहाँ रोग अच्छा हो जावे वहाँ पर चलनी, मुंज की पगड़ी और धनुष को धर देवे । जहाँ जाना बन्द हो जावे अर्थात् रोगी को आगे कर के जिस स्थान में रोग उत्पन्न हुआ हो वहाँ जाकर "जरायुज०" सूक्त पढ़कर मुंज की पगड़ी वपन कर देवे ॥ एवं धनुष को तूष्णीं छोड़ देवे । वात ज्वर, कटिभङ्ग, शिरो रोग, वात गुल्म, वात विकार, सब ही वात की बीमारी में यह दवा काम करेगी । शिर की बीमारी में घी को अभिमंत्रित कर रोगी के नाक में नस्य देवे ॥८॥ "जरा युज०" इत्यादि सूक्त से पाँच गिरह वाले डंडे को अभिमंत्रित करके रोगी के ललाट में लगा कर खड़ा कर "अमूर्या" इत्यादि का जप करे । शिरो रोग, कटिभङ्ग या वात गुल्म में रोगों की दवा समाप्त हुई ॥९॥ शरीरमें किसी स्थान से या शरीर के बाहर रुधिर स्राव हो उसकी दवा-पाँच गाठ वाले बांस के दण्डे को रुधिर वहन स्थान में लगाकर "अमूर्या" सूक्त का जप करे और गली की धूलि को लेकर उसे अभिमंत्रित कर रुधिर व्रण में डाले और केदार की सूखी मट्टी को उक्त मंत्र से अभिमंत्रित कर रुधिर स्थान में बांधे ॥ ११ ॥ और इसी को पिलावे ॥ १२ ॥ एवं चार दूर्वा के अग्रभाग से दधि पललको पूर्वोक्त मंत्र से अभिमंत्रित कर रोगी को पिलावे ॥ १३ ॥ लाल वर्ण की गौ के रोम जल में मिला कर उससे आचमन करे ॥१४॥ (हृद् रोग की

सम्पातवन्तं बध्नाति ॥१६॥ पाययति ॥१७॥ हरिद्रौदन-भुक्तमुच्छिष्टानुच्छिष्टेनाप्रपदात्प्रलिप्य मन्त्रोक्तानध-स्तल्पे हरितसूत्रेण सव्यजङ्घासु बद्ध्वावस्नापयति ॥ १८ ॥ प्रपादयति ॥ १९ ॥ वदत उपस्थापयति ॥ २० ॥ क्रोडलोमानि जतुना संदिह्य जातरूपेणापिधाप्य ॥२१॥ नक्तं जाता सुपर्णो जात इति मन्त्रोक्तं शकृदा लोहितं प्रघृष्यालिम्पति ॥२२॥ पलितान्याच्छिद्य ॥२३॥ मारुता-

---

दवा है) गौ के पीठ पर जल धर कर उससे आचमन करे ॥१५॥ चमड़े को विस्तार करने के लिये शंकु स्थापन करे (चमड़े में शङ्कु गाड़ देवे) उस पर बैठे रोगी को दूध को चलाता हुआ शङ्कु को रोगी के शरीर में बाँध देवे और दूध उस रोगी को पिला देवे ॥ १६ ॥ १७ ॥ हल्दी में मिला पकाये हुए भात को रोगी को खाने को देकर उसका बचा हुआ उच्छिष्ट और अनुच्छिष्ट को इकट्ठा करके उसका उबटन बना कर रोगी के शिर से लेकर पैर तक उबटन लगा कर उस को खाट पर लेटा देवे। शुका, काष्ठमुसुक, और गोपीतिलका इन पक्षियों को वाम जंघा में हरे रंग के सूत से बाँध कर खाट के नीचे बान्ध देवे ॥ यह मिर्गी की दवा है। और जल से अभिमन्त्रित करके रोगी को स्नान करावे ॥१८॥ मन्थ को अभिमंत्रण करके उसे खाने को देवे ॥ सर्वत्र घर के द्वार पर आगे रोगी को' करके और उसे आगे प्रवेश करा कर और स्वयं प्रवेश कर के तब भात को अभिमंत्रण कर रोगी के लिये खाने को दिया करे। जहाँ २ "प्रयच्छति" शब्द से कहा गया है वहाँ २ इसी प्रकार करे। "अनु सूर्य०" सूक्त से सूखे चन्दन को अभिमंत्रण करके गोपीतिलका को जिस किसी में कहती हुई को देखे वहाँ उस रोगी को अभिमंत्रण करे ॥ २० ॥ वृषभ के लोमों से सोने को लपेट कर धरे और उसे अभि-मंत्रण कर के रोगी के वास्ते बान्ध देवे ॥ अपस्मार, विस्मय, हृद् रोग, कामला, रोहिणक रोगों का भैषज्य समाप्त हुआ ॥ २१ ॥ अब श्वेत कुष्ठ रोग के भैषज्य को कहते हैं। श्वेत कुष्ठ को गोबर से घस कर जब तक उस में से रुधिर बाहर न हो उसको घसे, रुधिर निकलने पर भृङ्गराज (भङ्गरिया), हल्दी, इन्द्र वारुणी, नीलिका और पुष्पा इन पाँचो को

न्यपिहितः ॥२४॥ यदग्निरिति परशुं जपंस्तापयति क्राथयत्यवसिञ्चति ॥२५॥ उप प्रागादित्युद्वीजमानस्य शुक्लप्रसूनस्य वीरिणस्य चतसृणामिषीकाणामुभयतः प्रत्युष्टं बध्नाति ॥२६॥ त्रिविदग्धं काण्डमणिम् ॥२७॥ उल्मुके स्वस्त्याद्यम् ॥२८॥ मातृनाम्नोः सर्वसुरभिचूर्णान्यन्वक्तानि हुत्वा शेषेण प्रलिम्पति ॥२९॥ चतुष्पथे च शिरसि दर्भेण्ड्वेऽङ्गारकपालेऽन्वक्तानि ॥३०॥ तितउनि प्रतीपं गाहमानो वपतीतरोऽवसिञ्चति पश्चात् ॥३१॥

पीस कर कुष्ठ को लेप करे ॥ २२ ॥ पलित को काट २ कर उसे घस कर तब उस पर लेप करे ॥ २३ ॥ और "समुत्पतन्तु प्रनभस्व०" इत्यादि का जप करे ॥ २४ ॥ अब ज्वर के भैषज्य को कहते हैं । नित्य ज्वर, वेला ज्वर, सतत ज्वर, एकांतरित ज्वर, चातुर्थिक ज्वर, और ऋतुज्वर में "यदग्निः" इस तक्मनाशन सूक्त से परशु को गर्म कर क्वाथ बनावे और उस गर्म जल से रोगी को अवसिंचन करे ॥२५॥ जो घबड़ाता हुआ निष्कारण डरता हो, और श्वेत कुष्ठ का रोगी-शरपत के चार इषीकाके अग्र भाग को मणि के आकार बना कर उनको तीन स्थानों में जलाकर उस मणि को रोगी को बान्ध देवे और उस काण्ड मणि को रात्रि में "उप प्रागात्" सूक्तसे दो उल्मुकों को अभिमंत्रण करके घर्षण करे फिर प्रातःकाल "स्वस्तिदा" सूक्त से दक्षिण पग को आगे कर चले। यह स्वस्त्ययन कर्म्म है ॥ बालक, युवा, स्त्री, पुरुषों को अकस्मात् उद्वेग हो जाने पर या प्रलाप करे तो यह कर्म करे ॥२६॥२७॥२८ ॥ गन्धर्व, राक्षस, अप्सरा, भूत और ग्रहादि के उपद्रवों का भैषज्य कहते हैं ॥ "मातृगण" सूक्त से सर्वौषधि के चूर्ण अन्वक्त कर आहुति करके शेष से रोगी को लेप करे ॥ २९ ॥ और चौराहे पर रोगी के शिर पर दर्भ-इन्दुक को धर कर उस पर खप्पर में अग्नि भर कर अग्नि को जला कर तब प्रज्वलित अग्नि में घी चपोड़ी हुई सर्वौषधि की आहुति करे ॥३०॥ रोगी की वल्लणिका को सर्वौषधि सहित हाथ में धर कर नदी सम्मुख हो चलनी में सर्वौषधि चूर्ण को विलोडन करता हुआ वपन करे और उसके पीछे दूसरा कोई रोगी को सूक्त जपता हुआ

आमपात्र ओप्यासिच्य मौञ्जे त्रिपादे वयोनिवेशने प्रबध्नाति ॥ ३२ ॥ अघद्विष्टा शं नो देवी वरणः पिप्पली विद्रधस्य या बभ्रव इति ॥३३॥ उपोत्तमेन पलाशस्य चतुरङ्गुलेनालिम्पति ॥३४॥ प्रथमेन मन्त्रोक्तं बध्नाति ॥३५॥ द्वितीयेन मन्त्रोक्तस्य सम्पातवतानुलिम्पति ॥३६॥ तृतीयेन मन्त्रोक्तं बध्नाति ॥३७॥ चतुर्थेनाशयति ॥३८॥ पञ्चमेन वरुणगृहीतस्य मूर्ध्नि सम्पातानानयति ॥३९॥ उत्तमेन शाकलम् ॥४०॥ उदगातामित्याप्लावयति बहिः

जल से सेक करे ॥ ३१ ॥ कच्चे मट्टी के पात्र में उक्त शेष चूर्ण को डालकर और लीप कर मूँज के शिक्य में धर कर मातृ नामक दो सूक्तों में से किसी एक सूक्त का जप करता हुआ पक्षी के घोसले में बान्ध देवे ॥३२॥ अब लौकिक शाप, वैदिक शाप, स्त्रियों के और पुरुषों के आक्रोशन करने से जो अशुभ फल होने की सम्भावना होती है इनके भैषज्य को कहते हैं। सब ही संहिता विधि कर्म में प्रधान २ कर्म में नये घड़े को अग्नि के उत्तर भाग में स्थापन कर उसके जल से "हिरण्यवर्णा०" इस सूक्त से अभिमंत्रण करके कर्म कराने वाला अभिषेक करे सबही मेधाजननादि कर्मों में, तब मणि बन्धनादि कर्म करे। परन्तु भैषज्य कर्म में अभिषेक न करे ॥ इसके पश्चात् अभ्यातानान्त तक करके "अघद्विष्टा०" इस सूक्त से यव मणि को डाल कर अभिमंत्रण करे और सूक्त जप कर रोगी को बान्धे। अब रक्षो ग्रह के भैषज्य को कहते हैं। आज्य तन्त्र करके "शन्नो देवी०" इस सूक्त से पृश्निपर्णी औषधि को पीसकर उसको अभिमन्त्रण करे फिर सूक्त का जप कर शरीर को लेप करे तब अभ्यातानादि उत्तर क्रिया करे ॥ अब राज यक्ष्मा आदि रोग के भैषज्य को कहते हैं। आरंभिक पूर्व क्रिया करके " वरणो वारयाता०" इन तीन ऋचा से वरण वृक्ष मणि को बान्धे ॥ अब विकार के भैषज्य को कहते हैं॥ "पिप्पली क्षिप्तभेषजी०" इस सूक्त से पिप्पल द्रव्य को खावे ॥ जलोदर के भैषज्य को कहते हैं॥ "विद्रधस्य बलासस्य" इस सूक्त से रोगी के शिर पर सम्पातों को लावे॥ "या बभ्रव०" इस सूक्त से दशवृक्ष के शकलों को लाख और सोने से मढ़ करके

॥४१॥ अपेयमिति व्युच्छन्त्याम् ॥४२॥ बभ्रोरिति मन्त्रोक्तमाकृतिलोष्टवल्मीकौ परिलिख्य जीवकोषण्या-मुत्सीव्य बध्नाति ॥४३॥२॥२६॥

नमस्ते लाङ्गलेभ्य इति सीरयोगमधिशिरोऽवसि-ञ्चति ॥१॥ नमः सनिस्रसाक्षेभ्य इति शून्यशालायामप्सु सम्पातानानयति ॥२॥ उत्तरं जरत्खाते सशालातृणे॥३॥ तस्मिन्नाचमय्यस्याप्लावयति ॥ ४ ॥ दशवृक्षेति शाकलः ॥ ५ ॥ दश सुहृदो जपन्तोऽभिमृशन्ति ॥ ६ ॥ क्षेत्रिया-त्त्वेति चतुष्पथे काम्पीलशकलैः पर्वसु बद्ध्वा पिञ्जूली-

---

मणि बनाकर पहने या बान्धे ॥३३-४०॥ अब क्षेत्रिय (कुल परम्परा से होने वाले रोग) रोगों के भैषज्य को कहते हैं ॥ "उदगाताम्" तक्म-नाशन गण के मंत्र से घर के बाहर प्रातः काल उषः काल में क्षेत्रिय (कोढ़, क्षय रोग, संग्रहणी आदि) रोगी को स्नान करावे और "बभ्रोर-र्जुन काण्डस्य०" इन तीन ऋचा से अर्जुन काठ को, जौके भूसा, तिल-पिञ्जिका, आकृति लोष्ट, वल्मीक इन को भली-भाँति चूर्ण करके जीते पशु के चर्माङ्क स्थलिका में डालकर सूई से उसे सी करके रोगी को बान्ध देवे ॥ ४१।४२।४३ ॥ यह छब्बीसवीं कण्डिका समाप्त हुई ॥२६॥

क्षेत्रिय रोगी को हलयुक्तबैलों द्वारा शिरपर "नमस्ते लाङ्गलेभ्य०" से जलपात्र से अवसेचन करे ॥ १ ॥ शून्य घर में पुराने गर्त्त में घरके छप्पर की ओलनी के खरों को डाल कर उत्तर सम्पातों को "नमः स-निस्रसा०" मंत्र से लावे ॥२॥ रोगी को उस पुराने गर्त्त में खड़े कर देवे एवं सम्पातोदक से उसे आचमन करावे और स्नान करा देवे ॥३॥४॥ क्षेत्रिय रोग के भैषज्य की समाप्ति हुई ॥ अब ब्रह्मग्रह के भैषज्य को कहते हैं ॥ तक्म नाशन गण " दशवृक्ष० " इस सूक्त से दश शान्त वृक्षों के शकलों को लेकर लाख एवं सोने से वेष्टित मणि बना कर दश मित्र मिल-कर इस सूक्त का जप करें और पिशाच गृहीत को अभिमर्शन करे ॥६॥ फिर क्षेत्रिय रोगी के भैषज्य को कहते हैं । क्षेत्रिय रोगी को चौराहे पर लेजाकर काम्पील शकलों से गांठों में बान्धकर "क्षेत्रियात्त्वा०" इस

भिराप्लावयति ॥७॥ अवसिञ्चति ॥८॥ पार्थिवस्येत्युद्यति पृष्ठसंहितावुपवेशयति ॥९॥ प्राङ्मुखं व्याधितं प्रत्यङ्मुखमव्याधितं शाखासूपवेश्य वैतसे चमस उपमन्थनीभ्यां तृष्णागृहीतस्य शिरसि मन्थमुपमथ्यातृषिताय प्रयच्छति ॥ १० ॥ तस्मिंस्तृष्णां संनयति ॥ ११ ॥ उद्धृतमुदकं पाययति ॥ १२ ॥ सवासिनाविति मंत्रोक्तम् ॥ १३ ॥ इन्द्रस्य या महीति खल्वङ्गानलाण्डून् हननान् घृतमिश्राञ्जुहोति ॥१४॥ बालान्कल्माषे काण्डे सव्यं परिवेष्ट्य संभिनत्ति ॥ १५ ॥ प्रतपति ॥ १६ ॥ आदधाति ॥१७॥ सव्येन दक्षिणामुखः पांसूनुपमथ्य परिकिरति ॥१८॥ संमृद्नाति ॥१९॥ आदधाति ॥२०॥ उद्य-

---

सूक्त से कुश पिञ्जली से रोगी को नहवावे ॥ ७ ॥ या अवसिञ्चन करे ॥ ८ ॥ भगवान् सूर्य का उदय रहते क्षेत्रिय तथा उदक तृष्णार्त रोगी को एक पीछे दूसरे को इस भाँति बैठावे ॥ ९ ॥ पूर्व मुख रोगी को एवं पश्चिम मुख निरोगी को बेत की शाखाओं पर बिठलाकर चमसे में सत्तू धर कर उस में जल छोड़ देवे और दोनों उप मन्थनियों द्वारा तृष्णा गृहीत के शिर पर मन्थ को मथन करके तृष्णा रहित रोगी को तृष्णा को संक्रमण करावे ॥ १० ॥ ११ ॥ कूप से निकले जलको उसे पिलावे ॥ १२ ॥ "सवासिनौ०" इस सूक्त से मन्थ घट को अभिमंत्रण करके पिलावे । रोगी और रोग रहित दोनों एकही प्रकार के वस्त्र पहने हुए हों ॥ १३ ॥ अरुषी, उदर, गण्डुलक के भैषज्य को कहते हैं । "इन्द्रस्य या मही०" इस सूक्त से काले चणों को घी में मिलाकर आहुति देवे, गोवाल से चित्रित शर संध्य को लपेट कर पत्थर से चूर्ण कर अग्नि में तपावे, तब सूक्त के अन्त में अग्नि में आधान करे । वाम हाथ में धूलि लेवे और दहिने हाथ से मार्जन करके दक्षिण मुँह हो सूक्त को जप करके रोगी के ऊपर छीटे । यह अरुषी गण्डुलक के भैषज्य है ॥१४॥१५॥१६॥१७॥१८॥ पलाश, गूलरकी समिधों का आधान करे ॥१९॥ सूर्य भगवान् का उदय रहते "उद्यन्नादि०" सूक्त से गौ के मालिक से कहे कि 'गौ का

न्नादित्य इत्युद्यति गोनामेत्याहासाविति ॥२१॥ सूक्तान्ते ते हता इति ॥२२॥ दर्भैरभ्यस्यति ॥२३॥ मध्यन्दिने च ॥ २४ ॥ प्रतीचीमपराह्णे ॥२५॥ बालस्तुकामाच्छिद्य खल्वादीनि ॥२६॥ अक्षीभ्यां त इति बोबहम् ॥२७॥ उदपात्रेण सम्पातवतावसिञ्चति॥२८॥ हरिणस्येति बन्धन-पायनाचमनशङ्कुधानज्वालेनावनक्षत्रेऽवसिञ्चति ॥२९॥ अमितमात्रायाः सकृद्गृहीतान्यवानावपति ॥३०॥ भक्तं प्रयच्छति ॥३१॥ मुञ्चामि त्वेति ग्राम्ये पूतिशफरीभिरो-दनम् ॥३२॥ अरण्ये तिलशणगोमयशान्ताज्वालेनाव-

---

नाम कहा—उत्तर में वह कहे "असौ" (जो नाम हो)। सूक्त के अन्त में अन्य पुरुष बोले "ते हताः" ऐसा ॥२०॥२१॥२२॥ कुशों से बार २ इसी प्रकार करे। और मध्यान्ह काल में भी करे ॥ २३ ॥ २४ ॥ घाव पर बाल, जटा ढाक देवे। और खल्वादी और अलगण्डू को घी मिला-कर "उद्यन्नादित्य०" सूक्त से आहुति देवे "अक्षीभ्यां त०" सूक्त से मार्जन कर गाँठों को खोल देवे। अत्र सर्वव्याधि भैषज्य को कहते हैं ॥ आज्य तंत्र करके रोगी को गाँठों में बान्ध कर "अक्षीभ्यां त०" सूक्त से जलपात्र को धोकर पुनः सूक्त को जप करके रोगी को अवसेचन करे। आँख, कान, नाक, जीभ, गर्दन, राजयक्ष्मादि रोगों का भैषज्य समाप्त हुआ ॥ २५ । २६ । २७ । २८ ॥ "हिरण्यस्य०" तक्मनाशन सूक्त से हरिण के सींगमणि को बान्धे। उसी शृङ्ग में जल धर कर आचमन करे। उसी से पान करे, और हरिण के लोममणि को शङ्कुधान को मिलाकर जलावे और जल से उसे बुताकर उसी ठण्ढे जल से उषः काल में क्षेत्रिय रोगी को अवसिंचन करे ॥ २९ ॥ और अपरिमित परिमाण यव राशि में से एकही बार हाथ से यव को पकड़ कर प्रत्येक ऋचा से आहुति देवे ॥३०॥ रोगी को भात खाने को देवे ॥३१॥ "मुञ्चामि त्वा०" तक्मनाशन सूक्त से ग्राम्य रोग (मैथुन संयोग से हुए रोग) में पूति-गन्धा मछली को भात के साथ रोगी को खाने को देवे ॥ ३२ ॥ जंगली तिल, जंगली गोबर, जंगली शण, ये शान्त ओषधियाँ हैं। इनको अभि-मंत्रण करके इससे रोगी को अवसिंचन करे। यह यक्ष्मा रोग की दवा है।

नक्षत्रेऽवसिञ्चति ॥३३॥ मृगारैर्मुञ्चेस्त्याप्लावयति ॥३४॥ ३॥२७॥

ब्राह्मणो जज्ञ इति तक्षकायाञ्जलिं कृत्वा जपन्नाचमयत्यभ्युक्षति ॥ १ ॥ कृमुकश॰॰लं संक्षुद्य दूर्शजरदजिनावकरज्वालेन ॥ २॥ सम्पातवत्युदपात्र ऊर्ध्वफलाभ्यां दिग्धाभ्यां मन्थमुपमथ्य रयिधारणपिण्डानन्वृचं प्रकीर्य छर्दयते ॥ ३ ॥ हरिद्रां सर्पिषि पाययति ॥ ४ ॥

जंगली शण से जङ्गली गोबर को जलाकर जल से अभिमंत्रण करके रोगी को उषः काल में अवसेचन एवं अभिमंत्रण करे ॥ अब सर्वरोग भैषज्य को कहते हैं। "आ गाव॰" इन दश सूक्तों और "मुञ्च शीर्षक्त्या॰" ऋचा से जल भरे घड़े को लाकर अभिमंत्रण करके रोगी को अवसिंचन करे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ यह सत्ताईसवी कण्डिका पूरी हुई ॥३॥२७॥

स्कन्द विष के भय में भैषज्य को कहते हैं। तक्षक देवता को नमस्कार कर के "ब्राह्मणो जज्ञे वारिदं॰" इत्यादि दो सूक्तों से जलको अभिमंत्रण करके रोगी को आचमन करा कर विष के रोगी को संप्रोक्षण करे ॥ १ ॥ कृमुक के शकल को जल के साथ अभिमंत्रण करके आचमन एवं अभ्युक्षण करावे। पुराना वस्त्र, उकुटिका, तृणों में से किसी एक को जला कर विषजल को अभिमंत्रण करके रोगी को अवसिंचन करे ॥ पुराने हरिण के चर्म को जलाकर जल में डाल कर अभिमंत्रण कर उस को आमंत्रण करे। बुहारण के अवकर तृणों से जल को गर्म करके अभिमंत्रण कर रोगी को अवसिंचन करे ॥ जलपात्र को लाकर रोगी को स्नान करावे। विष से लेप कर दो ऊर्ध्व कपालों द्वारा विष से पुंखित दो धनुषों से मथन कर अभिमंत्रण करके रोगी को पिलावे । मैनफलों को प्रत्येक ऋचा से अभिमंत्रण करके जिसभाँति हो वैसे रोगी को वमन करावे ॥ २ ॥ अब शस्त्र के अभिघात से रुधिर के बहने में भैषज्य को कहते हैं ॥ उक्त मंथ से मट्टी को सान कर पिण्डों को बनाकर प्रत्येक ऋचा से रोगी को खिलावे जिसमें वह वमन करे ॥ ३ ॥ हरिद्रा को चूर्ण करके घी में डाल कर रोगी को पिलावे ॥ ४ ॥ "रौहिण्यसि॰" सूक्त से लाख के पानी को क्वाथ बना कर अभिमंत्रण करके रोगी के

रोहिणीत्यवनक्षत्रेऽवसिञ्चति ॥ ५ ॥ पृषातकं पायय-त्यभ्यनक्ति ॥६॥ आ पश्यतीति सदंपुष्पामणिं बध्नाति ॥ ७ ॥ भवाशर्वाविति सप्त काम्पीलपुटानपां पूर्णान् सम्पातवतः कृत्वा दक्षिणेनावसिच्य पश्चादपविध्यति ॥ ८ ॥ त्वया पूर्वमिति कोशेन शमीचूर्णानि भक्ते ॥ ९ ॥ अलङ्कारे ॥१०॥ शालां परितनोति ॥११॥ उतामृतासु-रित्यमतिगृहीतस्य भक्तं प्रयच्छति ॥ १२ ॥ कुष्ठलिङ्गा-भिर्नवनीतमिश्रेणाप्रतीहारं प्रलिम्पति ॥ १३ ॥ लाक्षा-लिङ्गाभिर्दुग्धे फाण्टान् पाययति ॥ १४ ॥ ब्रह्म जज्ञा-

---

रुग्ण प्रदेश को अवसिंचन करे । यह क्रिया उषः काल में करे ॥ ५ ॥ घी मिले दूध को रोगी को पिलावे एवं इसी को शरीर में लगावे ॥ ६ ॥ "आ पश्यति०" सूक्तसे सदंपुष्पा मणि को रोगी के अङ्गों में बाँधे ॥७॥ "भवाशर्वौ" सूक्त से सात कम्पील जल पूर्ण पुटों को लाकर बायें हाथ से रोगी को एक एक पुट को रोगी को अवसिंचन कर२ के रोगी के पीछे फेकता जावे ॥ ८ ॥ "त्वया पूर्वं०" से शमी के पत्तों के चूर्ण को शमी फल में डाल कर अभिमंत्रण करके रोगी को खिलावे, शमी फल को डाल कर अभिमंत्रण करके अलङ्कार में देवे । और उसी प्रकार करके चूर्ण को रोगी के घर में बखेर देवे ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ "उतामृतासु०" से बुद्धि भ्रष्ट पुरुष को इस ओषधि को खिलावे ॥ "ये गिरेष्वजायन्त०" सूक्त, "अश्वत्थो देव सदन०" सूक्त, ये दो सूक्त, एवं "गर्भोऽसि०" इत्यादि तीन ऋचाओं से अर्थात् उक्त दो सूक्त और इन तीन ऋचाओं से कुष्ठ (कूट) पिसा हुआ को मिला कर इसे अभिमंत्रण करके रोगी को पिलावे और उस के शरीर में लगा तार प्रलेप करे ॥ १२ ॥ १३ ॥ शस्त्र के अभिघात के भैषज्य को कहते हैं ॥ "रात्रि माता०" इस सूक्त से दूध और लाख का क्वाथ तय्यार कर अभिमंत्रण करके रोगी को खिलावे। शस्त्र, काठ, पत्थर, अग्नि से सारा जल जाने पर इन जख़मों की दवा समाप्त हुई ॥ १४ ॥ अब स्त्री के सूति का रोग की दवा को कहते हैं। "ब्रह्म जज्ञानं०" सूक्त से भात को अभिमंत्रण करके सूतिकादि अरिष्ट रोगिणी

नमिति सूतिकारिष्टकौ प्रपादयति ॥ १५ ॥ मन्थाचमनो-पस्थानमादित्यस्य ॥ १६ ॥ दिवे स्वाहेमं यवमिति चतुर उदपात्रे सम्पातानानयति ॥१७॥ द्वौ पृथिव्याम् ॥१८॥ तौ प्रत्याहृत्याप्लावयति ॥ १९ ॥ सयवे चोत्तरेण यवं बध्नाति ॥२०॥४॥२८॥

ददिर्हीति तक्षकायेत्युक्तम् ॥ १ ॥ द्वितीयया ग्रहणी ॥२॥ सव्यं परिक्रामति ॥३॥ शिखासिचि स्तम्बानुद्ग्रथ्नाति ॥४॥ तृतीयया प्रसर्जनी ॥५॥ चतुर्थ्या दक्षिणम-पेहीति दंशम तृणैः प्रकर्ष्याहिमभिनिरस्यति ॥ ६ ॥ यतो

स्त्री को खाने को देवे ॥ १५ ॥ मंथ की बीमारी में आचमन और सूर्य-देव का उपस्थान करे ॥१६॥ तक्मनाशन गण के मंत्र "दिवे स्वाहा०" की चार आहुतियों के सम्पात को जलपात्र में लेकर दो को भूमि पर, "दिवे स्वाहा" इत्यादि तीन ऋचा से एक होम और "पृथिव्यै स्वाहा" से चौथी होम करे और अन्तिम दो ऋचा से प्रत्येक ऋचा से आहुति देवे। जो भूमि पर सम्पात हुए उनको लेकर कलश में रोगी को नहवावे ॥ १७ ॥ और "इमं यव०" से यव को अभिमंत्रण करके यवमणि को रोगी को बान्धे ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ यह अट्ठाईसवी कण्डिका पूरी हुई ॥४॥२८॥

"ब्रह्मणो यज्ञ" इस सूक्त के मंत्र "ददिर्हि०" से तक्षक देव को नम-स्कार करके ' यत्त अपोदक०" से ग्रहणी (कटक बन्ध) के बांये होकर प्रदक्षिण मट्टी आदि से रेखा करे। विषस्तम्भन के लिये शरीर में जहाँ तक विष पहुँच चुका हो उस स्थान को सफेद वस्त्र से बान्धे और विष दुष्ट पुरुष की शिखा को बान्धे और तीसरी ऋचा "वृषामेरव०" इत्यादि से शण के स्तम्ब की गाँठ देवे। जिससे विष आगे न बढ़ेगा और न पीड़ा ही होगी। ऋचा के जप करने से कटे स्थान से विष अन्यत्र चला जायेगा ॥ २ । ३ । ४ । ५ ॥ "चक्षुषा ते चक्षुः" । इस ऋचा से आचा-र्य्य प्रदक्षिण परिक्रमण करे और "अपेह्यरिरक्षि०" को जप करे। और तृणों को जला कर जिधर सर्प गया हो उसको उधर छोड़ देवे ॥ ६ ॥ और इसी ऋचा का जप कर दंश स्थान पर जले तृणों को फेंके ॥ ७ ॥

दृष्टः ॥७॥ पञ्चम्या वलीकपललज्वालेन ॥८॥ षष्ठ्यार्त्नी-ज्यापाशेन ॥९॥ द्वाभ्यां मधूद्वापान् पाययति ॥१०॥ नव-म्या श्वाविस्पुरीषम् ॥११॥ त्रिःशुक्लया मांसं प्राशयति ॥१२॥ दशम्यालाबुनाचमयति ॥१३॥ एकादश्या नाभिं बध्नाति ॥१४॥ मधुलावृषलिङ्गाभिः खलतुलपर्णीं संक्षुद्य मधुमन्थे पाययति ॥१५॥ उत्तराभिर्भुङ्क्ते ॥१६॥ द्वारं सृजति ॥ १७ ॥ अग्निस्तक्मानमिति लाजान् पाययति ॥ १८ ॥ दावे लोहितपात्रेण मूर्ध्नि सम्पातानानयति ॥ १९ ॥ ओते म इति करीरमूलं काण्डेनैकदेशम् ॥२०॥ ग्रामात्पांसून् ॥२१॥ पश्चादग्नेर्मातुरुपस्थे मुसल-

---

"कैरातपृश्न०" ऋचा को पढ़कर छप्पर की ओलती के तृणों को जला-कर जल गर्म करके विष दृष्ट पुरुष को जल पिलावे और प्रोक्षण करे ॥८॥ और "असितस्य ते मास्य" ऋचा से आर्त्नीज्या पाश गिरा कर अभि-मंत्रण कर बान्धे ॥९॥ "आलिगी च विलिगी च उरुगूलाया०" इन दो ऋचाओं से मधुक वृक्ष की मट्टी को अभिमंत्रण करके रोगी को जल पिलावे ॥ १० ॥ स्याही के काँटे से मांस को प्राशन करावे ॥१२॥ "ता-वुवं०" ऋचा से तुम्बरी में जल धर कर उसे आचमन करावे ॥ १३ ॥ "तस्तुवं०" ऋचा से नाभि को बान्धे ॥ १४ ॥ "एका च म०" से मधुला वाली "यद्येक वृषोऽसि०" इन दो सूक्तों से काच मादनी को मधु से आलोडित करके सत्तु में भिगाकर जल सहित अभिमंत्रण करके रोगी को पिलावे। दुष्ट वक्ता के मुख को बन्द करने की दवा है ॥ १५ ॥ और दंश स्थान के मुख को अस्त्र से काट कर बना देवे एवं "विषदूषनिः" उत्तर ऋचा से रोगी को अन्न खिलावे ॥ १६ ॥ १७ ॥ यह साँप काटे की दवा है। "अग्निस्तक्मानं०" इस सूक्त से कालेधान के लावा का मण्ड बनाकर ज्वर के रोगी को पिलावे ॥ १८ ॥ अरण्य के अग्नि में ताम्बे के स्रुवा से ज्वर रोगी के शिर पर सम्पातों को गिरावे तब उत्तर क्रिया करे। एक क्रिया में दावाग्नि प्रणयन करे ॥ १९ ॥ कृमिरोग की दवा को कहते हैं ॥ करीर मूल को टुकड़ा करके गोवालों से लपेट कर "ओते म०" सूक्त का जप करके पत्थर ले उस को चूर्ण करके सूक्त पढ़

बुध्नेन नवनीतान्वक्तेन त्रिः प्रतीहारं तालुनि तापयति ॥ २२ ॥ शिग्रुभिर्नवनीतमिश्रैः प्रदेग्धि ॥ २३ ॥ एकविंशतिमुशीराणि भिनद्मीति मन्त्रोक्तम् ॥ २४ ॥ उशीराणि प्रयच्छति ॥२५॥ एकविंशत्या सहाप्लावयति ॥२६॥ आ यं विशन्तीति वयोनिवेशनश्रृतं क्षीरौदनमश्नाति ॥२७॥ परिद्यामिवेति मधु शीभं पाययति ॥२८॥ जपंश्च ॥ २९ ॥ अस्थिस्रंसमिति शकलेनाप्स्विवटे सम्पातवतावसिञ्चति ॥३०॥५॥२९॥

आवयो इति सार्षपं तैलसम्पातं बध्नाति ॥ १ ॥ काण्डं प्रलिप्य ॥२॥ पृक्तं शाकं प्रयच्छति ॥३॥ चत्वारि

कर अग्नि में तपा कर गाँव की धूलि को सूक्त पढ़कर बखेर देवे ॥२०॥२१॥ पुनः अग्नि के पश्चिम भाग में माता के गोद में कुमार को बैठाकर करीर मूल के साथ नवनीत मिलाकर तीन बार ले २ कर कुमार के तालु में तपावे ॥ २२ ॥ शोहजन वृक्ष के जड़ की रस को या जड़ को नवनीत मिलाकर। "ओते म०" से अभिमंत्रण करके फेंके ॥ २३ ॥ खस के २१ जड़ को अभिमंत्रण करके पत्थर से चूर्ण करके सूक्त को जप कर अग्नि में जलावे। तब कृमियों को देवे ॥ २५ ॥ और २१ खस की पिञ्जुली सहित को अभिमंत्रण कर रोगी को नहवावे ॥ २६ ॥ राक्षस गृहीत की दवा को कहते हैं। "आ यं विशन्ति०" सूक्त से पक्षी के घोसले को जला कर क्षीरौदन पका कर खावे ॥२७॥ "परिद्यामिव० सूक्त से मधु और शीर रोगी को पिलावे और सूक्त का जप करे ॥२८॥ ॥२९॥ "अस्थिस्रंस०" सूक्त से शान्त वृक्ष के शकल को लाकर जल में डाल कर अग्नि जलाकर जल को गर्म कर सर्प दृष्ट पुरुष को सिंचन करे यह साँप की दवा है ॥३०॥ यह उन्तीसवी कण्डिका पूरी हुई ॥२९॥५॥

अब नेत्र की बीमारी की दवा को कहते हैं। "आवयो०" सूक्त से सर्षप काण्डमणि को लाकर अभिमंत्रण करके सर्षप के तेल से सम्पात वंत करके आज्य द्वारा आधान होम करके अङ्गों को सर्षप तैल से मलकर मणि को बान्धे ॥ १ ॥ २ ॥ और सर्षप के शाकको उसके तेल से अभ्यक्त और अभिमंत्रण करके रोगी को खाने को देवे॥ ३ ॥ चार शाक

शाकफलानि प्रयच्छति ॥४॥ क्षीरलेहमाङ्क्ते ॥५॥ अश्नाति ॥ ६ ॥ अग्नेरिव इत्युक्तं दावे ॥ ७ ॥ इमा यास्तिस्र इति वृक्षभूमौ जाताज्वालेनावसिञ्चति ॥ ८ ॥ शीर्षं फाण्टाक्षैः ॥ ९ ॥ निकटाभ्याम् ॥ १० ॥ कृष्णं नियानमित्योषध्याभिश्च्योतयते ॥ ११ ॥ मारुतानामप्ययः ॥ १२ ॥ हिमवत इति स्यन्दमानादन्वीपमाहार्य वलीकैः ॥ १३ ॥ पञ्च च या इति पञ्चपञ्चाशतं परशुपर्णान्काष्ठैरादीपयति ॥१४॥ कपाले प्रश्नृतं काष्ठेनालिम्पति ॥१५॥ किं-

फलों को रोगी को देवे और उसकी आँखों में क्षीरपाटिकालग्न मूल क्षीर को प्राशन करा के क्षीर के लेह को आँखों में आँजे ॥ ५ ॥ ६ ॥ पित्त ज्वर की दवा को कहते हैं। "अग्नेरिव०" सूक्त से दावाग्नि में अग्नि प्रणयन करके उस में ताम्बे के स्रुवा से रोगी के शिर पर सम्पात को गिरावे ॥ ७ ॥ केशों के गिरने एवं बढ़ने की दवा को कहते हैं ॥ वृक्ष भूमि पर उत्पन्न औषधियों को जलाकर उस्से जल गर्म करके अभिमंत्रण कर के प्रातः काल रोगी को अवसिंचन करे ॥ ८ ॥ "निकटावनिकटाभ्यां०" सूक्तों से मधु और बहेड़ का क्वाथ बनाकर रोगी को उषः काल में अवसिंचन करे ॥ ९ ॥ दारु हल्दी और हल्दी का क्वाथ बना कर अभिमंत्रण करके उषः काल में रोगी को अवसिंचन करे ॥ १० ॥ अब उदर तुण्ड बीमारी की दवा को कहते हैं ॥ "कृष्णं नियानं०" एवं "सस्रुषीः" इत्यादि दो सूक्तों से चिति आदि ओषधियों के सहित जल को अग्नि में गरम करके उषः काल में रोगी को अवसिंचन करे ॥ ११ ॥ "कृष्णं नियानं, सस्रुषीः" इन दो सूक्तों से एवं "मरुतो यजते०" से पाकयज्ञ विधान से और "यथा वरुणं मारुतं क्षीरौदनं मारुतश्नृतं इत्यादि मारुत सूक्तोक्त मंत्रों का उपयोग करे ॥ १२ ॥ अब हृदयदाह, जलोदर, कामला रोगों की दवा को कहते हैं ॥ नदी के अनुकूल प्रवाह के जल को रोक कर उस में छप्पर के तृणों को डाल कर रोगी को अवसिंचन करे ॥१३॥ अब गण्डमाला रोग की दवा को कहते हैं। "पञ्च च या" सूक्त से पलाश के ५५ पत्तों को लकड़ी से जलाकर कपाल में पर्ण काठ के रस को पकाकर पलाश के काठ से लेकर रोगी को लेपन करे और अवसे-

स्त्यश्वजाम्बीलोदकरक्षिकामशकादिभ्यां दंशयति ॥१६॥ निश्यव मा पाप्मन्निति तितउनि पूल्यान्यवसिच्यापविध्य ॥१७॥ अपरेद्युः सहस्राक्षायाप्सु बलींस्त्रीन्पुरोडाशसंवतांश्चतुष्पथेऽवक्षिप्यावकिरति ॥१८॥६॥३०॥

यस्ते मद इति शमीलूनपापलक्षणयोः शमीशम्याकेनाभ्युद्य वापयति ॥ १ ॥ अधिशिरः ॥ २ ॥ अन्तर्दाव इति सन्तमग्नेः कर्ष्वामुष्णपूर्णायां जपंस्त्रिः परिक्रम्य पुरोडाशं जुहोति ॥ ३ ॥ प्राग्नये प्रेत इत्युपदधीत ॥ ४ ॥ वैश्वानरीयाभ्यां पायनानि ॥५॥ अस्थाद् द्यौरित्यपवा-

---

चन करे ॥ १५ ॥ शंख, कुत्ते के मुँह का लार, जलौका, गृहगोधिका और शंख से आलेपन या कुत्ते के कफसे आलेपन करे। शंख से आलेपन करने की दशा में रोगी को जलौकासे कटवावे और कुत्ते के कफसे आलेपन करने की दशा में गृहगोधिका से (मशक आदि से) आलेपन करने की दशा में तक्मनाशन गण के सूक्त के मंत्रों को जप करे ॥१६॥ "निश्यव मा पाप्मन्०" तक्मनाशन मंत्र से चालनी में पूल्यों को डाल कर उस में जल देकर रोगी को अवसिंचन करे ॥ १७ ॥ और दूसरे दिन स्राक्षा के साथ जल में छप्पर की ओलती के तीन तृणों को और पुरोडाश एवं सम्पातों को लेकर चौराहे पर बखेर देवे ॥ १८ ॥ ६ ॥ यह तीसवी कण्डिका पूरी हुई ॥ ३० ॥

अब रक्षोग्रह भैषज्य को कहते हैं। शमीलून केश और पाप लक्षण वाले इन दोनों की शान्ति के लिये शमी और शम्याक के साथ जल मिलाकर दर्भ पिञ्जुली छप्पर की ओलती के तृणों के साथ पाप लक्षण व्यक्ति के शिर पर अवसिंचन करे। और एक गर्त्त खोदकर उसमें गर्म जल भर देवे और "अन्तर्दाव०" इत्यादि मंत्रका जप करता हुआ तीन बार अग्नि की परिक्रमा करके "प्रेतो यन्ति०" मन्त्र से पुरोडाश की आहुति देवे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ "प्राग्नये प्रेत०" मन्त्र से समिदाधान करे ॥ ४ ॥ "वैश्वानरो न ऊतय०" इन सूक्तों से जलपात्र को अभिमंत्रण करके रोगी को पिलावे। इसी प्रकार सत्तू के मन्थ को पिलावे, हल्दी में घी को मिलाकर पिलावे, जल में घी को मिलाकर अभिमंत्रण

तायाः स्वयंस्रस्तेन गोशृङ्गेण सम्पातवता जपन् ॥ ६ ॥ यां ते रुद्र इति शूलिने शूलम् ॥ ७ ॥ उत्सूर्य इति शमीबिम्बशीर्णपर्ण्योवधि ॥ ८ ॥ द्यौश्च म इत्यभ्यज्या- वमार्ष्टि ॥ ६ ॥ स्थूणायां निकर्षति ॥ १० ॥ इदमिद्वा इत्यक्षतं मूत्रफेनेनाभ्युद्य ॥ ११ ॥ प्रक्षिपति ॥ १२ ॥ प्रक्षालयति ॥ १३ ॥ दन्नरजसावेदग्धि ॥ १४ ॥ स्त- म्बरजसा ॥ १५ ॥ अपचित आ सुस्रस इति किंस्त्या-

---

कर पिलावे ॥ ५ ॥ बहुत बोलना, अधम में प्रवृत्त होना अपवाद कह- लाता है । इसका भैषज्य । अभ्यातानान्त तक क्रिया करके जिस गौ का बच्चा अपनी मा का दूध पीना छोड़ दिया हो ऐसी गौ का सींग अपने आप टूट जाने पर उस सींग को लेकर उसमें जल डालकर अभि- मंत्रण करके अभ्युक्षण करके "अस्थाद् द्यौः" मन्त्र से आचमन करावे ॥ ६ ॥ पेट, हृदय, या किसी अङ्ग या सब अङ्गों में शूल पैदा होने की दवा को कहते हैं ॥ "यान्ते रुद्र०" इस सूक्त से शूलमणि को लाकर अभिमंत्रण कर बान्धे । लोहमणि या पाषाणमणि एक ही पदार्थ है ॥७॥ अब रक्षोग्रह की दवा को कहते हैं । "उत्सूर्य०" से चिति आदि ओषधियों द्वारा जल भरे घड़े को अभिमंत्रण करके रोगी को अवसिंचन करे । शमी जल से अवसिंचन करे । शमी बिम्ब जल सहित से अव- सिंचन करे । शीर्षपर्णी जल से अवसिंचन करे ॥ ८ ॥ अब दुष्टगण्ड विशिष्ट की दवा को कहते हैं ॥ "द्यौश्च म०" मंत्र से तेल को अभिमंत्रण करके रोगी को सम्मार्जन करे ॥ ९ ॥ और घी से अरिष्ट को अभ्यक्त करके जखम को घीसकर स्थूणा से पीव निकाले ॥ १० ॥ अब अक्षत व्रण की दवा को कहते हैं । गोमूत्र या मनुष्यमूत्रके फेन को "इदमिद्वा०" से अभिमंत्रण करके जखम को मर्दन करे (जिस घाव में पीव बहने का मुँह न हो) और मूत्र को फेककर हाथ धो लेवे ॥ १२ ॥ १३ ॥ जखम को दाँत के मल से सब ओर से लेप करे (जिस दुष्ट गण्डमाल घाव का रुधिर न बहे) और तृण के लगे धूलि को अभिमंत्रण कर लेप करे ॥ १४ ॥ १५ ॥ गण्डमाला की दवा को कहते हैं । शंख को घीसकर "अपचित०" से अभिमंत्रण करके गण्डमाला पर लेप करे । या कुत्ते

दीनि ॥१६॥ लोहितलवणं संक्षुद्याभिनिष्ठीवति ॥१७॥ अन्तरिक्षेणेति पक्षहतं मन्त्रोक्तं चङ्क्रमया ॥१८॥ कीटेन धूपयति ॥१९॥ ग्लौरित्यक्षतेन ॥२०॥ वीहि स्वामित्य-ज्ञातारुः शान्त्युदकेन सम्प्रोक्ष्य मनसा सम्पातवता ॥ २१ ॥ या ओषधय इति मन्त्रोक्तस्यौषधीभिर्धूपयति ॥२२॥ मधूदश्विस्पाययति ॥२३॥ क्षीरोदश्वित् ॥२४॥ उभयं च ॥२५॥ देवा अदुरिति वल्मीकेन बन्धनपायना-चमनप्रदेहनमुष्णेन ॥ २६ ॥ यथा मनोऽव दिव इत्यरि-

---

के लार का लेप करे। जोंक को अभिमंत्रण करके गण्डमाला में लगा देवे। या गृहगोधिका को अभिमंत्रण के गण्डमाला में लगा देवे ॥१६॥ सैंधव नून को चूर्ण करके अभिमंत्रण कर गण्डमाला पर छीटे और उस पर थूक देवे एवं मुख के लार को उस पर डाल देवे ॥ १७ ॥ पक्षी के काटने से जखम होने पर उसकी दवा को कहते हैं। "अन्तरिक्षेण०" से कुत्ते के पैर के नीचे की मट्टी को अभिमंत्रण करके काटे जखम पर लेप करे ॥१८॥ कुत्ते के शरीर पर के कीट को अभिमंत्रण करके उसे अग्नि में डालकर धूप देवे ॥ १९ ॥ "ग्लौरितः प्रपतिष्यति०" इस आधी ऋचा से गोमूत्र को अभिमंत्रण करके गण्डमाला को मर्दन करे प्रक्षालन करे और दाँत के मल से प्रलेप करे और तृणरज का लेप करे ॥ २० ॥ अब गदहे आदि के उरुगण्ड की दवा को कहते हैं। "वीहि स्वां०" मंत्र से शान्तिजल को अभिमंत्रण करके जखम को प्रोक्षण करे। आज्य की आहुति देवे। तब मन से संकल्प करे और सम्पातों को देवे ॥२१॥ पाप-गृहीत जलोदर की दवा को कहते हैं। "या ओषधय०" से दूधवाली दवा-ओं का धूप देवे। और आधा पानी महा हुआ तक्र रोगी को पिलावे। दूध, और उदश्वित् रोगी को पिलावे ॥२२॥२३॥२४॥ दोनों ही को पिलावे ॥ २५ ॥ विष, उपविष, स्थावरविष, जङ्गमविष, मधुमक्षिकाविष, इनकी दवा को कहते हैं। "देवा अदुः" सूक्त द्वारा दीमक की मट्टी को बान्धे, पिलावे, आचमन करावे, एवं उसको गरम करके रोगी को लेप करे ॥२६॥ कास और कफ गिरने की दवा को कहते हैं। "यथा मनोऽव दिव०"से अरिष्ट गृहीत व्यक्ति को भोजन को अभिमंत्रण करके देवे। सत्तु

ष्टेन ॥२७॥ देवी देव्यां यां जमदग्निरिति मन्त्रोक्ताफलं जीव्यलाकाभ्याममावास्यायां कृष्णवसनः कृष्णभक्षः पुरा काकसम्पातादवनक्षत्रेऽवसिञ्चति ॥२८॥७॥३१॥

यस्ते स्तन इति जम्भगृहीताय स्तनं प्रयच्छति ॥१॥ प्रियङ्गुतण्डुलानभ्यवदुग्धान्पाययति ॥२॥ अग्ना-विष्णू सोमारुद्रा सिनीवालि वि ते मुञ्चामि शुम्भनी इति मौञ्जैः पर्वसु बद्ध्वा पिञ्जलीभिराप्लावयति॥३॥ अवसि-ञ्चति॥४॥ तिरश्चिराजेरिति मन्त्रोक्तम्॥५॥ आकृतिलोष्ट-वल्मीकौ परिलिख्य ॥६॥ पायनानि ॥७॥ अपचिता-

---

के मंथ को अभिमंत्रण करके देवे। एवं सूर्य का उपस्थान करे और अभि-मंत्रित जल से आचमन करावे॥ २७॥ "देवी देव्यां०" मंत्रोक्त फल काचीमाची फलमणिको भृङ्गराजमणि को बान्धे। जीवन्ती फलको बांधे। भृङ्गराज को बान्धे। केशों को दृढ़ करने, केशों के उत्पन्न होने, छोटे केशों के बढ़ने की दवा कही गयी है। माष (उड़ीद) तिलादि काले अन्न को खिलाकर काची माची फल को भृङ्गराज के द्वारा जल के साथ अभिमंत्रण करके रात्रि में ब्राह्ममुहूर्त्त में अवसिंचन करे॥२८॥ ७॥ ३१॥ यह इकतीसवीं कण्डिका पूरी हुई॥

जिस शिशु को जम्भु आदि पकड़ लिया हो उसकी माता के स्तनों को "यस्ते स्तन०" मंत्र से अभिमंत्रण करके बच्चे के मुखमें लगा देवे॥ १॥ इस क्रिया को उसका पति करे॥ दुःखनाशके भैषज्य को कहते हैं मालकौनी के चावलों को, बच्चे की मां या बाप बालक को पिलावे, तब उसे दूध पिलावे॥ २॥ "अग्नाविष्णू०" इत्यादि से मूँज को गांठों में बांध कर उसकी पिंजुलियों से बच्चे को नहवावे या सिंचन कर॥ ३॥ बिच्छु काटने की दवा। "तिरश्चिराज०" इन आठ ऋचाओं से जेठी-मधु को पीस कर अभिमंत्रण करके बिच्छु काटे व्यक्ति को पिलावे॥ ४॥ ५॥ खेत की मट्टी को जीव कोषणी के चमड़े में लपेट करके मणि बना करके भूमि पर धरकर अभिमंत्रण करके रोगी को बान्धँ देवे॥ ६॥ विषदूषण में जो उपायन ओषधियां कही गईं हैं, वे "तिरश्चि-राज०" सूक्त पठित जानो। बिच्छू, मशक, पिपीलिका, शार्कोटक,

मिति वैणवेन दार्भ्यूषेण कृष्णोर्णाज्येन कालबुन्दैः स्तुकाग्रैरिति मन्त्रोक्तम् ॥ ८ ॥ चतुर्थ्याभिनिधायाभिविध्यति ॥९॥ ज्यास्तुकाज्वालेन ॥१०॥ यः कीकसा इति पिशीलवीणातन्त्रीं बध्नाति ॥ ११ ॥ तन्त्र्या क्षितिकाम् ॥ १२ ॥ वीरिणवध्री स्वयंम्लानं त्रिः समस्य ॥१३॥ अप्सु त इति वहन्त्योर्मध्ये विमिते पिञ्जुलीभिराप्लावयति ॥ १४ ॥ अवसिञ्चति ॥१५॥ उष्णाः सम्पातवतीरसम्पाताः ॥१६॥ नमो रूरायेति शकुनीनिवेषीकाञ्जिमण्डूकं नीललोहिताभ्यां सूत्राभ्यां सकक्षां बद्ध्वा ॥१७॥ शीर्षक्तिमिस्यभिमृ-

---

जोंक की दवायें कही गई जानो ॥ ७ ॥ फिर गण्डमाला की दवा को कहते हैं। "अपचितां०" इन दो एवं "आसुस्रसः" इस एक, इन तीन ऋचाओं से बांस के धनुष को काले रंग के भेड़के दुम की ज्या बनाकर चित्रित शरसे गण्डमाला को प्रत्येक ऋचा से विद्ध करे। तीन ऋचायें हैं एवं तीन ही शर हैं। चौथी ऋचा-"या ग्रैव्या अपचित०" से गण्डमाला पर धरकर विद्ध करे और अवसिंचन करे ॥ ८ ॥ ९ ॥ काले रंग के भेड़े के स्तुकाग्रको जलाकर उसपर जलको गरम करके उससे उषःकाल में रोगी को अवसिंचन करे ॥ १० ॥ अब राजयक्ष्मा रोग के भैषज्य को कहते हैं। "यः कीकसा०" इन तीन ऋचाओं से वीणातंत्री खण्ड को डालकर अभिमंत्रण करके बान्धे ॥ ११ ॥ वीणा के गस्वर को विष्णो वाद्य वीणाकंठ शिखण्ड को वोणा तंत्री बांधकर भूमि पर डालकर अभिमंत्रण करके बान्धे ॥ १२ ॥ स्वयं पतित वीरिण के खण्डों को एकत्र बांध कर डालकर अभिमंत्रण कर बान्धे ॥ १३ ॥ जलोदर रोग जो वरुण से पकड़ा गया हो उसकी दवा। "अप्सु त०" से दो बहती नदियों के संगम पर घर बनाकर रोगी को संगम के जल से नहवाया करे ॥ १४ ॥ या उस जल से अवसिंचन करे ॥ १५ ॥ जिसको रोगी पर डाले वह गरम जल होना चाहिये। और जो असम्पात जल हो शीतल होना चाहिये जिससे आसिंचन करे ॥ १६ ॥ "नमो रूराय०" (तक्म नाशन गण) इन दो सूक्तों से रोगी को खाट पर कर देवे और उसके नीचे हरे सूत से रोगी के बांये जंघा में बान्धे। बाण की भाँति रेखा को इषीका कहते

शति ॥१८॥ उत्तमाभ्यामादित्यमुपतिष्ठते ॥१९॥ इन्द्रस्य प्रथम इति तक्षकायेत्युक्तम् ॥२०॥ पैद्वं प्रकृष्य दक्षिणेनाङ्गुष्ठेन दक्षिणस्यां नस्तः ॥२१॥ अहिभये सिच्यवगूहयति ॥२२॥ अङ्गादङ्गादित्या प्रपदात् ॥२३॥ दंश्मोत्तमया निताप्याहिमभिनिरस्यति ॥२४॥ यतो दष्टः ॥२५॥ ओषधिवनस्पतीनामनूक्तान्यप्रतिषिद्धानि भैषज्यानाम् ॥२६॥ अंहोलिङ्गाभिः ॥२७॥ पूर्वस्य पुत्रकामावतोकयो-

---

हैं। उसको नीले तथा लाल सूत से दोनों कक्षों में बान्धकर शकुनी की भांति करे ॥ १७ ॥ "शीर्षक्ति०" सूक्त से रोगी को अभिमर्शन करे ॥ १८ ॥ और इस सूक्त के प्रथम दो ऋचाओं से सूर्य का उपस्थान करे ॥ १९ ॥ एवं "इन्द्रस्य प्रथम ब्रह्मणो यज्ञ०" सूक्त से रक्षक देवको हाथ जोड़कर प्रणाम करे ॥२०॥ एवं उक्त सूक्त से पैद्वनामक कीट (तालिणी) को पीसकर अभिमंत्रित करके सर्पदष्ट रोगी के नाक के दहिने छिद्र में नस्य देवे ॥ २१ ॥ और जिस घरमें सर्प का भय हो, वहां पैद्व को सफेद वस्त्र में लपेट करके स्थापित करके उसके सारे अङ्गों को मार्जन करे। और "आरे अभूत्०" इत्यादि तीन ऋचाओं से उल्मुक को अग्नि में तपाकर अभिमंत्रण करके विष के जखम को देखकर उस ओर उल्मुकको छोड़ देवे। सर्प भय एवं सर्प दष्टकी दवा समाप्त हुई ॥२२॥ २३॥२४॥ २५॥ कौशिक सूत्रों में जिन सब रोगों की ओषधियाँ कही गयीं और नहीं कही गयीं उनकी पूर्त्ति में सब रोगों के भैषज्य को कहते हैं। सब रोगों के उपचार में मंत्र ओषधियां (वनस्पतियाँ) और जो २ नहीं कही गयीं या जिनका प्रतिषेध नहीं किया गया—ऐसे भैषज्यों का ज्ञान "अंहोलिङ्गिक" गण के द्वारा करना चाहिये। जैसे, "आशानामाशापालेभ्यः"०—यह एक। अंहोलिङ्गगण ॥ और जो २ प्रतीकें कही जाती हैं उनके द्वारा अभिमंत्रण करने से सब रोगों के भैषज्य होते हैं—उनका वर्णन किया जाता है। "अक्षिभ्यां ते, मुञ्चामि त्वा, उत देवाः, आवतस्य, शीर्षक्ति ॥ अंहोलिङ्ग गण ॥ इन पांच प्रतीकों द्वारा या इनमें से किसी एक प्रतीक से अभिमंत्रण करना चाहिये ॥ अंहोलिङ्गगण। (यह सब रोगों की दवायें हैं) या उन सब सूक्तों द्वारा

रुद्‌कान्ते शान्ता अधिशिरोऽवसिञ्चति ॥२८॥ आव्रजितायै पुरोडाशप्रमन्दालङ्कारान् सम्पातवतः प्रयच्छति ॥२९।८।३२॥

वषट् ते पूषन्निति चतुर उदपात्रे सम्पातानानीय चतुरो मुञ्जान्मूर्ध्नि विबृहति प्राचः ॥१॥ प्रतीचीरिषीकाः ॥२॥ छिद्यमानासु संशयः ॥३॥ उष्णेनाप्लावयति दक्षिणात्केशस्तुकात् ॥४॥ शालान् ग्रन्थीन् विचृतति ॥५॥ उभ-

---

करे या अंहोलिङ्गगण द्वारा करे ॥ उन रोगों की परिगणना की जाती है ॥२७॥ अब तात्पर्य यह है कि जिन ओषधियों और वनस्पतियों का प्रतिषेध वैद्यक शास्त्र में किया गया है—व्याधि निदान सम्बन्धि भैषज्य के मंत्रों का उपदेश वैद्यक शास्त्रों में नहीं किया गया है क्योंकि मंत्रों, तन्त्रों, यन्त्रों आदि द्वारा रोगों तथा रोगों के अदृष्ट वा अप्रत्यक्ष कारण अदृष्ट शक्ति द्वारा ही जाना जाता है। अतएव अथर्ववेद की शाखाओं तथा ब्राह्मण, गण, सूत्र आदि प्रोक्त विधि अनुसार यहां कहा जाता है। जैसे स्त्री कर्मसंहिता का वर्णन किया जाता है—"य आशानामाशापाला अग्नेर्मन्व०" ये सूक्त और "या ओषधयः सोमराज्ञीर्वैश्वानरो न आगमच्छुम्भनी द्यावापृथिवी यदर्वाचीनमग्निं ब्रूमो वनस्पतीन्" मुञ्चन्तु मा भवाशर्वौ यादेवीर्यन्मातली रथक्रीतम्"—इन चार को छोड़ कर अंहोलिङ्गगण है ॥३२॥ "अग्नेर्मन्व०" ये सात सूक्त हैं ॥ "पूर्वं त्रिषप्तीयं०" पुत्र कामना मृतवत्सा के लिये। शान्ता ओषधियों से रोगी के शिर पर अवसिंचन करे। प्रवास से घर पर वापस आने वाले के लिये पुरोडाश, प्रमन्द, अलंकारों को सम्पातवन्त करके देवे ॥२७॥२८ ॥२९॥८॥ यह बत्तीसवीं कण्डिका समाप्त हुई ॥३२॥

अब प्रसूति करण (प्रसव काल में सुख पूर्वक सन्तान पैदा हो) को कहते हैं। "वषट् ते पूषन्०" इस सूक्त से चार जलपात्र में चार कुशों को गर्भिणी के शिर पर पूर्वाग्र और पश्चिमाग्र कर उच्छ्रित करे ॥१॥२॥ शिर पर के डाले कुशों के टूट जाने पर गर्भस्थ बच्चे का मरण होने का सन्देह होता है ॥३॥ गर्भिणी के शिरके दक्षिण केश-समूदाय को गर्म जल से नहवावे ॥४॥ सूक्त पढ़ने के अन्त में सूतिका घर के बन्धनों को काट डाले ॥५॥ और गाड़ी के जूये के दोनों कील को गर्भिणी के

घतः पाशं योक्त्रमाबध्नाति ॥६॥ यदि सोमस्यासि राज्ञः सोमात्त्वा राज्ञोऽधिक्रीणामि यदि वरुणस्यासि राज्ञो वरुणात्त्वा राज्ञोऽधिक्रीणामीत्येकविंशत्या यवैः स्रजं परिकिरति॥७॥अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत सध्रीचीः सव्रता भूत्वास्या अवत वीर्यमिति संनयति ॥ ८ ॥ मा ते रिषन्खनिता यस्मै च त्वा खनामसि। द्विपाच्चतुष्पादस्माकं मा रिषद्देव्योषधे ॥ स्रजो नामासि प्रजापतिष्ट्वामखनदात्मने शल्यस्रंसनम् ॥ तां त्वा वयं खनामस्यमुष्मै त्वा शल्यस्रंसनमित्यस्तमिते छत्रेण चान्तर्धाय फालेन खनति ॥९॥ अत्र तव राध्यतामित्यग्रमवदधाति ॥१०॥ इह ममेति मूलमुपयच्छति ॥११॥ एकसरेऽनुपलीढे कुमारः ॥१२॥ दर्भेण परिवेष्ट्य केशेषूपचृतति ॥१३॥ एवं ह विबृहशाकवृषे ॥१४॥ अवपन्ने जरायुण्युपोद्धरन्ति ॥ १५ ॥ स्रजेनौषधिखननं व्याख्यातम्

कमर में बांधे ॥६॥ और "यदि सोमस्यासि०" इत्यादि मंत्रों से २१ यव परिमित "स्रज" (नाम की जड़ी जङ्गलों में होती है) को गर्भिणी के सब ओर छींटे ॥७॥ और "अन्या वो०" इत्यादि मंत्र से सब ओषधियों को एकत्र कर गर्भिणी के कमर में बांधे ॥८॥ "मा ते रिषन् खनिता०" इत्यादि मंत्रों से सूर्यास्त समय स्रज मूल को छाता को ओढ़ कर फाल से दो ऋचाओं से खनन करे ॥९॥ "अत्र तव राध्यतां०" से नीचे धरे ॥१०॥ "इह मम०" से मूल को पकड़े ॥११॥ यदि जड़ उखाड़ते समय बिना टूटे सम्पूर्ण जड़ उखड़ जावे तो जानना कि पुत्र उत्पन्न होगा ॥१२॥ उस जड़ी को कुश से लपेट कर गर्भिणी के केशों पर बिछा देवे। इसीप्रकार विबृह एवं शाकवृष के खनन करनेमें विधि जानो ॥१४॥ यदि दुःख हो तो जरायु को निकलवावें (विज्ञ वैद्य या स्त्री चिकित्सिका, जो शल्य विद्या जानता या जानती हो) ॥१५॥ स्रज मूल के खनन विधि से अन्य ओषधियों के मूल उखाड़ने का विधि कहा गया जानो ॥१६॥

॥१६॥ चतस्र उमाफलानि पाणावद्भिः श्रोतयते ॥१७॥ संवर्तमानेषु कुमारः ॥ १८ ॥ ब्राह्मणायनोऽङ्गान्यभिमृशति ॥१९॥ पुंनामधेये कुमारः ॥२०॥६॥३३॥

इदं जनास इत्यस्यै शिंशपाशाखासूदकान्ते शान्ता अधिशिरोऽवसिञ्चति ॥१॥ आव्रजितायै ॥२॥ निस्सालामित्यवतोकायै कृष्णवसनायै त्रिषु विमितेषु प्राग्द्वारप्रत्यग्द्वारेष्वप्सु सम्पातानानयति ॥३॥ पलाशे सीसेषूत्तरान् ॥ ४ ॥ सीसान्यधिष्ठाप्याप्लावयति ॥ ५ ॥ निधाय

उमा या अलसी उमाफल (अतसी वृक्ष, या अतसी वृक्ष) के चार फलों को जल के साथ गर्भिणी के हाथ में देवे। यदि सब फल भली-भाँति पाये जावें तो पुत्र पैदा होगा जानो ॥१९॥ और जीवत्पितृक, जिसका बूढ़ा भाई जीवित हो, या जिसके घर में कोई बूढ़ा व्यक्ति जीवित हो, उसको "ब्राह्मणायन" कहते हैं। ऐसा पुरुष सूक्तोक्त मंत्रों से गर्भिणी के अङ्गों को स्पर्श करे। वह यदि पुंनामक अङ्गों पैर, हाथ, हनू, बाहु, कान में से किसी अङ्ग को स्पर्श करे तो जानना कि कुमार पैदा हुआ जानो ॥१८॥२०॥९॥ यह तेहतीसवीं कण्डिका समाप्त हुई ॥३३॥

अब वन्ध्या प्रजनन करण को कहते हैं। "इदं जनास०" इससे शिंशपा की शाखाओं को लाकर जल के पास उन पर वन्ध्या को बिठला कर उसके शिर पर ओषधियों को धर कर अवसिंचन करे ॥१॥ इसके पश्चात् पुरोडाश, प्रमन्द, कटुपा, अलङ्कार लाकर देवे ॥२॥ अब मृतापत्या स्त्री की शान्तिकर्म को कहते हैं। अर्थात् गर्भ गिरने, जन्मते मर जाने से या स्त्री मर जावे या पुरुष मर जावे, छोटी उमर में मर जावे या युवा होने पर मर जावे। पूर्व मुख दरवाजे वाले तीन मण्डप बनवावें जिनमें से एक में अभ्यातानान्त कर्म करके पूर्व पश्चिम द्वार में इषीका को बांध कर "निः सालां०" मंत्र से ३ गूलर की लकड़ी को मृतवत्सा के लिये आधान करे पूर्व और पश्चिम मुख वाले घर में पलाश पत्र पर सीसों को धरकर स्त्री को बिठला कर उत्तर सम्पातों को लावे और उन्ही जल से स्त्री को नहवा कर जो पहिरा हुआ काला वस्त्र हो उसको त्याग कर दूसरे वस्त्र को पहनवा कर पूर्व द्वार से निकल जावे और जैसा

कृष्णं व्रजति ॥६॥ आदीप्य ब्रह्मा॥७॥ एवं पूर्वयोः पृथक् संभार्यै ॥८॥ शाखासूक्तम् ॥९॥ पश्चादग्नेरभितः काण्डे इषीके निधायाध्यधि धायिने औदुम्बरीराधापयति ॥१०॥ उत्तमाव्रजितायै ॥११॥ पतिवेदनानि ॥१२॥ आ नो अग्न इत्यागमकृशरमाशयति ॥१३॥ मृगाखराद्वेद्यां मन्त्रोक्तानि सम्पातवन्ति द्वारे प्रच्छति ॥१४॥ उदकंसे व्रीहियवौ जाम्यै निशि हुत्वा दक्षिणेन प्रक्रामति ॥१५॥ पश्चादग्नेः प्रक्षाल्य संधाव्य सम्पातवतीं भगस्य नावमिति मन्त्रोक्तम्॥१६॥ सप्तदाम्न्यां सम्पातवत्यां वत्सान् प्रस्यन्तान्प्रचृतन्तो वहन्ति॥१७॥ अहतेन सम्पातवता ऋषभमभ्यस्यति ॥ १८ ॥ उदर्दयति यां दिशम् ॥१९॥

पश्चिम में कर्म किया है उसी प्रकार पूर्व के दोनों घरों में कर्म होना चाहिये। इस सूक्त के शिंशपादि की शाखाओं में उदक तक कर्म होता है। समिदाधानाग्नि के पश्चिम भाग में काष्ठ द्वारा इषीका डालकर उसपर उदुम्बर की लकड़ी धरे—तोरण के आकार का आधान करे। पुरोडाश, प्रमन्द, अलंकार को धर कर देवे ॥४॥५॥६॥७॥८॥९॥१०॥११ अब पति लाभ फल कर्मों को कहते हैं ॥१२॥ "आनो अग्न०" से तिल चावल का भात बना कर स्त्री को खिलावे ॥१३॥ मृगाओं से नित्य सेवित देश को "मृगाखर" कहते हैं। वहां से मिट्टी लाकर वेदि बनावे। इसमें सम्पात करके आखर, सोना, गुग्गुल, गजोदक जामिक मातृका इसका कर्म है। यथोक्त सम्पादन कर बन्धन, धूपन प्रलेपन करे। उस घर के दक्षिण भाग में बहिन एवं भ्राता कुमारी को अपक्रामण करावे ॥१४॥१५ अग्नि के पश्चिम भाग में नाव को प्रक्षालन कर सम्पातवती करके कुमारी को नाव पर चढ़ावे "भगस्य नावम्०" मंत्र जप कर नाव से कुमारी को उतारे ॥१६॥ और सप्तदान तंत्री से वत्सों को बांध करके धर कर अभिमंत्रण कर कुमारी से छुड़वावे। यदि कुमारी से प्रदक्षिण पूर्वक छोड़वाई जावे तो पति लाभ होगा। और नये वस्त्र पहनकर वृषभ को छोड़े ॥१७॥१८॥ वृषभ जिस ओर को जावे उसी

जाम्यै प्र यदेत इत्यागमकृशरम् ॥२०॥ इमा ब्रह्मेति स्वस्त्रे ॥२१॥ अयमा यातीति पुरा काकसम्पातादर्यम्णे जुहोति ॥२२॥ अन्तःस्रक्तिषु बलीन् हरन्ति ॥२३॥ आपतन्ति यतः ॥२४॥१०॥३४॥

पुंसवनानि ॥१॥ रजउद्वासायाः पुंनक्षत्रे ॥२॥ येन वेहदिति बाणं मूर्ध्नि विबृहति बध्नाति ॥३॥ फालचमसे सरूपवत्साया दुग्धे व्रीहियवाववधाय मूर्च्छयित्वाध्यण्डे बृहतीपलाशविदर्यौ वा प्रतिनीय पैद्वमिव ॥४॥ पर्वताद्दिव इत्यागमकृशरमाशयति ॥५॥ युगतर्म्मना सम्पातवन्तं द्वितीयम् ॥६॥ खे लूनांश्च पलाशत्सरुन्निवृत्ते

ओर को जाने देवे ॥१९॥ "जाम्यै प्र यदेत०" से भाई बहिन दोनों को और "इमा ब्रह्म०" से बहिन को आगम कृशर खिलावे ॥२०॥२१॥ प्रातः काल "अर्यम्णे०" से सूर्य्य को आहुति देवे। ॥२२॥ इसके अनन्तर 'अर्यम्णे०" आधी ऋचा से घर के भीतर कोणों में बलि देवे। जिस दिशा से प्रातःकाल काकों का आगमन हो, उसी दिशा से पति लाभ जानो ॥२४॥१०॥३४॥ यह चौतीसवीं कण्डिका समाप्त हुई ॥३४॥

अब पुंसवन संस्कार को कहते हैं। यह संस्कार गर्भ से पञ्चम मास में होता है ॥१॥ रजोधर्म से शुद्ध हुई स्त्री को स्नान कर लेने पर पुंनामक नक्षत्र में "येन वेहत्०" मंत्र से शरमणि को लाकर अभिमंत्रण करके स्त्री के गले में बांधे ॥२॥३॥ फाल के बने चमसे में सरूपवत्सा गौ के दूध में व्रीहि और यव को डालकर मूर्छन करके या अध्यण्डमें बृहती, पलाश और विदारी को डालकर पैद्व (बूटी) की भाँति स्त्री के पति नाक के दहिने छिद्र में दहिने हाथ के अंगूठे से नस्य देवे ॥४॥ रजोधर्म के पश्चात् चौथे दिन "पर्वताद्दिव०" सूक्त से आज्य की आहुति करे। भात में तिल मिश्र आगम कृशर को गर्भिणी को खिलावे और इसी सूक्त से दूसरे कृष्ण आगम कृशर को गाड़ी के युग छिद्र में डाल कर गर्भिणी को खिलावे। "पुष्पवतीः"० मंत्र से ॥५॥६॥ पलाश काष्ठ की बनी तलवार की मूठ (त्सरु)। टूटी हुई पलाश त्सरु निवृत्त पर

निघृष्याधाय शिश्ने ग्रामं प्रविशति ॥७॥ शमीमश्वत्थ इति मन्त्रोक्तेऽग्निं मथित्वा पुंस्याः सर्पिषि पैद्वमिव ॥८॥ मधुमन्थे पाययति ॥९॥ कृष्णोर्णाभिः परिवेष्ट्य बध्नाति ॥१०॥ यन्तासीति मन्त्रोक्तं बध्नाति ॥११॥ ऋधङ्मन्त्र इत्येका यथेयं पृथिव्यच्युतेति गर्भदृंहणानि ॥१२॥ जम्भगृहीताय प्रथमावर्जं ज्यां त्रिरुद्ग्रथ्य बध्नाति ॥१३॥ लोष्टानन्वृचं प्राशयति ॥१४॥ श्यामसिकताभिः शयनं परिकिरति ॥१५॥ यामिच्छेद्वीरं जनयेदिति धातर्व्याभिरुदरमभिमन्त्रयते ॥१६॥ प्रजापतिरिति प्रजाकामाया उपस्थे जुहोति ॥१७॥ लोहिताजापिशितान्याशयति ॥ १८ ॥ व्रपान्तानि ॥१९॥ यौ ते मातेति मन्त्रोक्तौ बध्नाति ॥२०॥

घिस कर शिश्न पर डाल कर मैथुन करे ॥७॥ शमी वृक्ष के भीतर के अश्वत्थ वृक्ष के काष्ठ से मथकर निकले हुए अग्नि में घृत (जिस गौ का बच्चा पुरुष हो उसके घृत से) डाल कर स्त्री को उसकी नाक के दहिने छिद्र में दहिने अंगूठे से नस्य देवे । पैद्व की भाँति ॥८॥ मधुमन्थ में अग्नि डाल कर अभिमंत्रण कर स्त्री को पिलवावे ॥९॥ शमीगर्भाश्वत्थोत्पन्न अग्नि को काले भेड़ के ऊनसे लपेट कर बांधे आज्य की क्रिया करे ॥१०॥ "यन्तासि०" मंत्र से हाथ से लेकर कर्णादि को सम्पातनकर अभिमंत्रण करे। आज्य तन्त्र करके गर्भिणी को बांधे ॥११॥ यह गर्भाधान हुआ । "ऋधङ् मंत्र०" और "यथेयं पृथिवी०" इत्यादि सूक्तों से गर्भवर्धन कर्म करे ॥१२॥ जम्भ गृहीत स्त्री को ताँत को तीन गुणा करके बांधे ॥१३॥ और मट्टी के ढेलों को प्रत्येक ऋचा से अभिमंत्रित कर गर्भिणी को प्राशन करावे ॥१४॥ श्यामा और सिकता को गर्भिणी के शयन स्थान के सब ओर फेके ॥१५॥ और "धाता दधातु०" इत्यादि चार ऋचा से गर्भिणी के उदर को अभिमंत्रण करे ॥१६॥ यह वीर कर्म हुआ । "प्रजापतिः०" सूक्त से प्रजा की कामना वाला गर्भिणी के उपस्थ के पास आहुति करे ॥१७॥ लाल बकरी के मांस को गर्भिणी को खिलावे ॥ १८ ॥ उदकुलिज को सम्पात वाला करके गर्भिणी को छोड़ कर मध्य भाग में लावे और भात,

यथेदं भूम्या अधि यथा वृक्षं वाञ्च मे यथायं वाह इति संस्पृष्टयोर्वृक्षलिबुजयोः शकलावन्तरेषुस्थकराञ्जनकुष्ठ-मदुघरेष्ममथिततृणमाज्येन संनीय संस्पृशति ॥ २१ ॥ उत्तुदस्त्वेत्यङ्गुल्योपनुदति ॥२२॥ एकविंशतिं प्राचीन-कण्टकानलङ्कृताननूक्तानादधाति ॥२३॥ कूदीप्रान्तानि ससूत्राणि ॥२४॥ नवनीतान्वक्तं कुष्ठं त्रिरह्नः प्रतपति त्रिरात्रे ॥२५॥ दीर्घोत्पलेऽवगृह्य संविशति ॥२६॥ उष्णो-दकं त्रिपादे पत्तः प्रबद्धाङ्गुष्ठाभ्यामर्दयञ्छते ॥२७॥ प्रति-कृतिमावलेखनीं दार्भ्यूषेण भाङ्ग्ज्येन कण्टकशल्ययोलू-

सुरा, प्रपा को लाकर अभिमंत्रण कर प्रजा की कामना वाली को देवे ॥१९॥ वन्ध्या का प्रजागर्भकर्म समाप्त हुआ ॥ १९ ॥ अब सीमन्तोन्नयन कर्म को कहते हैं ॥ गर्भ से अष्टम मास में यह कर्म करना चाहिये "अव्यच-सश्च०" इत्यादि से अभ्यातानान्तकर्म करके "यौ ते माता०" इत्यादि गर्भ-सूक्त से आज्यकी आहुति करके श्वेत और पीले सर्षप की रक्ष-पुट्टलिका बना कर सम्पात और अभिमंत्रण करके शुभ दिन के अन्तमें गर्भिणी के गले में पहना देवे; जो उसकी नाभि तक लटकती रहे ॥२०॥ दो सटे हुए वृक्षों के छाल, तगर, शरखण्ड, अञ्जन, कुष्ठ, जेठीमधु, वातसंभ्रम तृण इन पदार्थों को आज्य से आलोडन कर "यथेदं भूम्या अधि०" इत्यादि सूक्त से गर्भिणी के सारे शरीर में लगावे ॥२१॥ "उत्तुदस्त्व०" से अङ्गुली से भार्य्या के उदर और पीठ को पीड़ित करे (काम में रुचि होने के लिये) ॥२२॥ पुराने मदनी के २१ कांटे पूर्वाग्र कर अलंकृत करके एकही बार में लेकर आधान करे ॥२३॥ और २१ ही बैर के प्रान्त भाग को लाख के लाल रंग में सूत्र को रंग कर उसे गर्भिणी को बान्धे ॥२४॥ उत्पल कुष्ठ को मक्खन से चपोड़ कर दिन में तीन बार पूर्वाण्ह, मध्यान्ह और अपराण्ह समय तपा २ कर आधान करे और इसी प्रकार तीन बार रात में करे ॥२५॥ खाट को नीचे मुँह पाँव पकड़ कर सोवे । तीन रात तक सोवे । यह कर्म स्वामि का है । "ममैव कृणुतं वशे०" को पढ़ कर स्त्री के साथ सोवे ॥२६॥ तीन पैर वाले शिका पर गर्म जल धर कर शयनीय (खाटादि) के पैहाने में बान्धकर पैर के दोनों अङ्गुठों

कपत्रयासितालकाण्डया हृदये विध्यति ॥२८॥११॥३५॥

सहस्रशृङ्ग इति स्वापनम् ॥१॥ उदपात्रेण सम्पातवता शालां सम्प्रोक्ष्यापरस्मिन्द्वारपक्षे न्युब्जति ॥२॥ एवं नग्नः ॥३॥ उलूखलमुत्तरां स्रक्तिं दक्षिणशयनपादं तन्तूनभिमन्त्रयते ॥४॥ अस्थाद् द्यौरिति निवेष्टनम् ॥५॥ आवेष्टनेन वंशाग्रमवबध्य मध्यमायां बध्नाति ॥६॥ शयनपादमुत्पले च ॥७॥ आकृष्टे च ॥८॥ आकर्षेण तिलाञ्जुहोति ॥ ९ ॥ इदं यत्प्रेण्य इति शिरःकर्णमभिमन्त्रयते ॥१०॥ केशान्धारयति ॥ ११ ॥ भगेन मा न्यस्तिकेदं

से दबाता हुआ सोवे ॥२७॥ कुश के काँटे से, भांगव्य से, साहीके काँटे से, उलूक पत्रा से, कालीकण्डा से भार्य्या की प्रतिरूपाकृति के हृदय स्थान में विद्ध (गराना) करे। यह स्त्री (अपनी) वशीकरण समाप्त हुआ ॥२८॥११॥३५॥ यह पैतीसवीं कण्डिका समाप्त हुई ॥३५॥

अब स्वापन कर्म को कहते हैं। (स्त्रीपुरुष के सम्भोग में विघ्ननाशक कर्म) ॥ स्त्री को सोलाने के कर्म को कहते हैं। जलपात्र से सम्पात वाले जल से स्त्री के शाला को संप्रोक्षण करके "सहस्रशृङ्ग०" से शेष जल को घर के दूसरे द्वार पर औंधे पात्र करधर देवे ॥ इसी प्रकार दूसरे द्वार के कपाट को खोल कर पूर्ववत् करे ॥२॥३॥ उलूखल को, शयनीय घर के उत्तर कोण को और स्त्री के खाट के दहिने पौआ को "सहस्रशृङ्ग०" मंत्र से अभिमंत्रण करे और खाट के रज्जु को अभिमंत्रण करे ॥४॥ भाग जाने वाली के बन्धन कर्म को कहते हैं॥ रज्जुवेष्टन को "अस्थाद् द्यौरस्थात्०" इस दूसरे सूक्त से अभिमंत्रण करके बाँस के अग्रभाग में बान्ध कर मध्यम स्थूणा में बान्ध देवे ॥६॥ शयनीय पादको अभिमंत्रण करके उत्पल में उसे बान्ध देवे ॥७॥ इसी प्रकार आकृष्ट (आग के अंगारों को निकालने के लोहे को) बान्ध देवे ॥८॥ और कुटका से तिलों की आहुति देवे ॥ ९ ॥ "इदं यत्प्रेण्य०" से शिर (पति या पत्नी के शिर) और कानों को अभिमंत्रण करे। यह जाया एवं पति के क्रोध की शान्ति करने का विधान है ॥१०॥ जिस स्त्री को निरुद्ध करने की इच्छा हो उसको धरे (पकड़े) ॥११॥ "भगेन मा०" इत्यादि

खनामीति सौवर्चलमोषधिवच्छुक्लप्रसूनं शिरस्युपचृत्य ग्रामं प्रविशति ॥१२॥ रथजितामिति माषस्मरान्निवपति ॥१३॥ शरभृष्टीरादीप्ताः प्रतिदिशमभ्यस्यत्यर्वाच्या आव- लेखन्याः ॥१४॥ भगमस्या वर्च इति मालानिष्प्रमन्ददन्त- धावनकेशमीशानहताया अनुस्तरण्या वा कोशमुलू- खलदरणे त्रिशिले निखनति ॥१५॥ मालामुपमथ्या- न्वाह ॥१६॥ त्रीणि केशमण्डलानि कृष्णसूत्रेण विग्रथ्य त्रिशिलेऽश्मोत्तराणि व्यस्यासम् ॥ १७ ॥ अथास्यै भग- मुत्खनति यं ते भगं निचख्नुस्त्रिशिले यं चतुःशिले। इदं तमुत्खनामि प्रजया च धनेन चेति ॥१८॥ इमां खना- मीति बाणापर्णीं लोहिताजायाद्रप्सेन संनीय शयनमनु

से सौवर्चल औषधि के जड़ को खन कर (शंख पुष्पी मूल की भाँति) इसके फूल को अभिमंत्रण करके जिसके सौभाग्य की कामना करे उसके पुष्प को अभिमंत्रण करके उसके शिर में बान्धे ॥१२॥ "रथजितां०" इत्यादि तीन सूक्तों से तीन माषस्वरा (अपने बोये या अन्य के बोये हुए जो पहिले बोए गये) को अभिमंत्रण करके जिस स्त्री को वश में करना चाहे उसके खाट की जगह या घर में या शयन देश में डाले ॥१३॥ शरभृष्टी को जलाकरके अभिमंत्रण कर प्रति दिशा में और प्रति- कृति बना कर दार्भ्यूष और भाङ्गज्य से फेके, हृदय में विद्ध करे ॥१४॥ पति द्वेषिणी, पुरुष द्वेष करण हो तो उसकी शान्ति होती है ॥ अब स्त्री या पुरुष का दौर्भाग्य करण कर्म को कहते हैं ॥ अन्त्येष्टि संस्कार के समय जो गौ मारी जाती है उसको अनुस्तरणी कहते हैं। ईशान हता गौ को ज्वर हता गौ कहते हैं। इसके पश्चात् उलूखल के दरणमें त्रिशाले को डाल कर उलूखल में देवे ॥ १५ ॥ स्त्री के पुष्पमाला को पीस कर उसी स्त्री को काले सूत से लपेट कर अभिमंत्रण करके उलट फेर कर पत्थर को शालाके ऊपर देवे ॥ यह दौर्भाग्य करण समाप्त हुआ ॥१६॥ ॥७॥ अब सौभाग्य करण को कहते हैं ॥ "यं ते भगं निचख्नु०" से शिला को उखाड़े और शरपुंख को बकरी के पतले दही में इकट्ठा करके "भगमस्या०" सक्त से उसके शयन के सब ओर फेके ॥११॥

परिकिरति ॥१९॥ अभि तेऽधामित्यधस्तात् पलाश-मुपचृतति॥२०॥ उप तेऽधामित्युपर्युपास्यति ॥२१॥ कामं विनेष्यमाणोऽपाघेनासंख्याताः शर्कराः परिकिरन्व्रजति ॥२२॥ संमृद्नञ्जपति ॥२३॥ असंमृद्नन् ॥२४॥ ईर्ष्याया ध्राजिं जनाद्विश्वजनीनात्त्वाष्ट्रेणाहमिति प्रतिजापः प्रदानाभिमर्शनानि ॥ २५ ॥ प्रथमेन वक्षणासु मन्त्रो-क्तम्॥२६॥ अग्नेरिवेति परशुफाण्टम्॥२७॥ अवज्यामि-वेति दृष्ट्वाश्मानमादत्ते ॥ २८ ॥ द्वितीययाभिनिदधाति ॥२९॥ तृतीययाभिनिष्ठीवति ॥ ३० ॥ छायायां सज्यं करोति ॥३१॥ अयं दर्भ इत्योषधिवत् ॥३२॥ अग्ने जातानिति न वीरं जनयेत्प्रान्यानिति न विजायेतेत्य-

---

अब सपत्नी को जीतने के कर्म को कहते हैं। शरपुंख के पत्तों को शयनीय के नीचे "उपतेऽधां०" से बान्ध देवे ॥२०॥ काम विनाशन को कहते हैं॥ काम (भोग की इच्छा) को विनाश करने की इच्छा वाला पुरुष पर पुरुष को "अप नः शोशुचत्" से असंख्य शर्करा को अभिमंत्रण करके शर्कराओं को छिटता हुआ जावे॥ शर्करा को मर्दता या न मर्दता हुआ जावे ॥२३॥२४॥ स्त्री विषय में ईर्ष्या विनाशक कर्मों को कहते हैं। ईर्ष्यालु को देख कर "ईर्ष्याया ध्राजिं०" इत्यादि का जप करे, जिसकी ईर्ष्या को वश करना हो उसको अभिमर्शन कर "जनात्" आदि दो मंत्रों का जप कर जो कुछ हो उसका अभिमंत्रण करके उसे देवे॥२५॥ "ईर्ष्या-या ध्राजिं०" इत्यादि से हृदयाग्नि को बुझावे ॥२६॥ "अग्नेरिव०" से पलाश के फाँट को उसे पिलावे ॥२७॥ "अवज्यामिव०" से पत्थर को लेवे और दूसरी ऋचा से उस पत्थर को भूमि पर धरे ॥२८॥२९॥ और तीसरी ऋचा से उसपर थूके ॥३०॥ मन्यु वाले पुरुष की छाया में धनुष को टंकोर कर अभिमंत्रण करे॥ ३१ ॥ अब सब विषयों में मन्युविना-शक कर्मको कहते हैं॥ कुशके जड़को औषधिके समान खन कर सम्पातन कर अभिमंत्रण कर मन्युक को बान्धे ॥३२॥ अब अवीरजनन कर्म को कहते हैं॥ "अग्ने जातान्" इन तीन ऋ० से खच्चर के मूत्र के

इवतरीमूत्रमश्ममण्डलाभ्यां संघृष्य भक्तेऽलंकारे ॥३३॥ सीमन्तमन्वीक्षते ॥३४॥ अपि वृश्चेति जायायै जारमन्वाह ॥३५॥ क्लीबपदे बाधकं धनुर्वृश्चति ॥३६॥ आशयेऽश्मानं प्रहरति ॥३७॥ तृष्टिक इति बाणापर्णीम् ॥३८॥ आ ते दद इति मन्त्रोक्तानि संस्पृशति ॥३९॥ अपि चान्वाहापि चान्वाह ॥ ४० ॥ १२ ॥ ३६ ॥ इत्यथर्ववेदे कौशिकसूत्रे चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥४॥

अम्बयो यन्तीति क्षीरौदनोत्कुचस्तम्बपाटाविज्ञानानि

साथ पत्थर को घिसकर अभिमंत्रण कर भात के साथ उसे खाने को देवे ॥ या अलंकार में देवे ॥३३॥ अब वन्ध्याकरण को कहते हैं । स्त्री के सीमन्त को देखे ॥ ३४ ॥ अपि वृश्च० ॥ तीन ऋ० से जाया के लिये जार को कहे ॥ ३५ ॥ "क्लीबपदे बाधकं धनुर्वृश्चति" पढकर जार के सांकेतिक स्थान में पत्थर फेके ॥३६॥३७॥ तृष्टिक०" पढ़कर शरपुंख भी वहीं फेके ॥३८॥ "आ ते दद०" मंत्रसे जार के हृदय, मुखको स्पर्श करे ॥ ३६ ॥ और उसे कहे । और उसे कहे ॥ ४० ॥ १२ ॥३६॥ यह छत्तीसवी कण्डिका पुरी हुई ॥ अथर्व वेद के कौशिक सूत्र के चौथे अध्याय का भाषानुवाद भी समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

अब विज्ञान कर्मों के विधि को कहते हैं ॥ लाभ, हानि, जीत, हार, सुख, दुःख, उत्कर्ष, अपकर्ष, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, भय, अभय, रोग, आरोग्य डर है या नहीं, धन, अधन, धर्म, अधर्म, मरण, अमरण, धान्य होगा ? या नहीं । खेत होगा ? या नहीं, घर में वास होगा ? या नहीं, धान्य, पुत्र, पशु, हिरण्य, और वस्त्र । विद्या, शास्त्र आदि का लाभ होगा ? या नहीं, जीना, मरना, जाना, आना, बल, अबल । सत्, असत् के योग से रोगी का जीवन, मरण, प्रसव में पुत्र योग से पुत्र का होना, धर्म, अधर्म के योग से मित्र, अमित्र के संयोग से होना । ग्राम है या नहीं, पुरुष का विवाह है या नहीं, वर्ष भर में, मास में सुभगा या दुर्भगा होगी या नहीं, घर, ग्राम, आदि होंगे या नहीं ? आधान होगा या नहीं, इत्यादि विचार मन या वचन से भली-भाँति चिन्तन कर उस कर्म को करना चाहिये ॥ "अम्बयो यन्ति०" सूक्त से रिंधते हुए

॥१॥ साङ्ग्रामिकं वेदिविज्ञानम् ॥२॥ वेनस्तदिति पञ्चपर्वेषुकुम्भकमण्डलुस्तम्बकाम्पीलशाखायुगेध्माक्षेषु पाण्योरेकविंशत्यां शर्करास्वीक्षते ॥३॥ कुम्भमहतेन परिवे-

---

क्षीरौदन का अभिमंत्रण करके आसिंचन करे ॥ मन वचन से चिन्तन करे। भात पके या नहीं ? यदि यथा चिन्तित होवे—जैसे विचार से भात का पकना निश्चित है तो–तो जिस कार्य्य की सिद्धि जाननी है वह अवश्य होगा जानना ॥ इध्म का उपसमाधान कर अभिमंत्रण करके इच्छित कार्य्य की जिज्ञासा (मनमें) कर रज्जु को धर देवे—रज्जु यदि तीन गुण हो जावे तो सफलता होगी। इसी प्रकार दर्भ स्तम्ब को उक्त मंत्र से अभिमंत्रण कर मन से जिज्ञासा करे; तो यदि कुशों की संख्या सम या विषम होवे तो भाँति २ की प्रयोजन की सिद्धि होगी जाने। फिर पहिले दिन पाठा को अभिमंत्रण करके जिज्ञासा करे, यदि पत्रों पत्रों का संकोचन हो जावे तो प्रयोजन की सफलता समझनी ॥ १ ॥ संग्राम के पूर्व दिन वेदि बनाकर "अम्बयो यन्ति०" सूक्त से अभिमंत्रण करके मन में कार्य की सिद्धि की चिन्ता करे। यदि दूसरे दिन वेदि सम हो या विषम हो तो कार्य की सिद्धि जानो ॥ २ ॥ पांच गिरह वाला बांस के डंडे को मंत्र से अभिमंत्रण करके खड़ा कर दे। यदि अभिष्ट दिशा की ओर दण्ड गिर जावे तो सिद्धि जानो ॥ धनुष को टंकोर कर अभिमंत्रण कर जिज्ञासा करे तो—धनुष के बाण फेकने से सिद्धि जानना ॥ जल भरे घट में दूध डालकर अभिमंत्रण कर चिन्तन करे, बढ़ जाने से सिद्धि ॥ कमण्डलु में जल भर कर उसमें दूध डाल कर अभिमंत्रण करे–बढ़ जाने से सिद्धि जानो ॥ दर्भ स्तम्ब अभिमंत्रण कर जिज्ञासा करे सम विषम होने से सिद्धि ॥ काम्पील शाखा को शिर पर धारण कर अभिमंत्रण कर पूछे (मनमें) यदि इष्ट दिशा में गिर जावे तो सिद्धि ॥ गाड़ी के युग को अभिमंत्रण कर पूछे इष्ट दिशापतन से सिद्धि। धान्य को अभिमंत्रण कर चिन्ता करे–अग्नि में डाले—यदि प्रदक्षिण क्रम से जले तो सिद्धि ॥ दोनों हाथ की दो अङ्गुलियों को अभिमंत्रण कर चिन्ता करे, बिन जाने हुए पुरुष के हाथ में २१ शर्करा को अभिमंत्रण कर चिन्ता करे—यदि बढ़ जावे तो सिद्धि, यदि सम या विषम हो तो ठीक २ सिद्धि जानो ॥ २–३ ॥ अब नष्ट द्रव्य

ष्ट्याधाय शयने विकृते सम्पातानतिनयति ॥४॥ अनतीकाशमवच्छाद्यारजोविन्ते कुमार्य्यौ येन हरेतां ततो नष्टम् ॥५॥ एवं सीरे साक्षे ॥६॥ लोष्टानां कुमारीमाह यमिच्छसि तमादत्स्वेति ॥७॥ आकृतिलोष्टवल्मीकौ कल्याणम् ॥ ८ ॥ चतुष्पथाद्बहुचारिणी ॥ ९ ॥ श्मशानान्नचिरं जीवति ॥१०॥ उदकाञ्जलिं निनयेत्याह ॥११॥ प्राचीनमपक्षिपन्त्यां कल्याणम् ॥१२॥१॥३७॥

जरायुज इति दुर्दिनमायन्प्रत्युत्तिष्ठति ॥१॥ अन्वृचमुदवज्रैः॥२॥ असयुल्मुककिष्कुरूनादाय ॥३॥ नग्नो लला-

---

की परीक्षा करने में यह कर्म करे—"वेनस्तत्०॥ सूक्त से घड़े को अखण्ड नये वस्त्र से लपेट कर शयनी के पास धर देवे और चिन्ता करे। यदि घड़े को अत्यन्त वेष्टन होजावे तो कार्य सिद्धि ॥ ४ ॥ "वेनस्तत्०" सूक्त से अखण्ड नये वस्त्र द्वारा हलको लपेट कर धरे एवं अभिमंत्रण कर अनतीकाश को अवछादन कर दो कुमारी जिसके द्वारा हरण करे—उसीसे नष्ट हुआ जाने ॥ ५ ॥ अक्ष को कुम्भ की तरह करके धरे, दो कुमारी जिसके द्वारा हरण करे—उससे नष्ट जानो ॥ ६ ॥ चार मट्टी के ढेले को ग्रहण करके "वेनस्तत्०" सूक्त से अभिमंत्रण करके कुमारी को कहे कि तुम इनमें से जिसे चाहो लेलो ॥ यदि दोनों ग्रहण कर लेवे तो अभीष्ट सिद्धि जानो ॥ ७ ॥ आकृतिलोष्ट, दीमक, चतुष्पथ, मरघट इन चार ढेलों में से यदि कुमारी पहिले दो ढेलों को ग्रहण करे तो जानना कल्याण है। चौराही के ढेला लेने से व्यभिचारिणी होगी, मरघट के ढेले लेने से अल्पायु होगी ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ यह कुमारी विज्ञान हुआ ॥ कुमारी से कहे कि पूर्व दिशा में अंजलि में जल लेकर के फेको तो अभिप्रेत फल होगा ॥ ११ ॥ १२ ॥ १ ॥ ३७ ॥ यह सैतीसवीं कंडिका समाप्त हुई ॥ ३७ ॥

अब नैमित्तिक कर्म्मों को कहते हैं। अब दुर्दिन के विनाश करने के कर्मों को कहेंगे। दुर्दिन के सम्मुख—"जरायुज०" सूक्त का जप कर उपस्थान करे ॥१॥ और प्रत्येक ऋचा से जल देवे ॥२॥ तलवार लेकर

ष्टमुन्मृजानः ॥४॥ उत्सार्य बाह्यतोऽङ्गारकपाले शिग्रुशर्करा जुहोति ॥५॥ केराकावादधाति ॥६॥ वर्षपरीतः प्रतिलोमकर्षितस्त्रिः परिक्रम्य खदायामर्कं क्षिप्रं संवपति ॥७॥ नमस्ते अस्तु यस्ते पृथु स्तनयित्नुरित्यशनियुक्तमपादाय ॥८॥ प्रथमस्य सोमदर्भकेशानीकुष्ठलाक्षामञ्जिष्ठीबदरिहरिद्रं भूर्जशकलेन परिवेष्ट्य मन्थशिरस्युर्वरामध्ये निखनति ॥ ९ ॥ दधि नवेनाश्नात्या संहरणात् ॥ १० ॥ आशापालीयं तृतीयावर्जं दृंहणानि ॥ ११ ॥ भौमस्य

सम्मुख हो सूक्त का जप करता हुआ पूर्ववत् उपस्थान करे। उल्मुक को ग्रहण कर सूर्य भगवान् के सम्मुख होकर पूर्ववत् उपस्थान करे। और लकुट ग्रहण करके पूर्ववत् उपस्थान करे ॥३॥ नंगा होकर ललाट को मर्दन करता हुआ पूर्ववत् उपस्थान करे ॥४॥ घर के छप्पर के ओलती उजार कर घर के बाहर कपाल में आग के अङ्गारों को धर कर शिग्रुपत्रों की आहुति देवे या शर्करा की आहुति करे ॥५॥ पटेरक समिध और अकवीन को समिधाओं का आधान करे ॥६॥ वृष्टि के कारण अति पीड़ित होकर खदा खन कर इसकी तीन बार परिक्रमा करके खदा में अर्कवृक्ष को शीघ्रही संवपन करे। (अर्क वृक्ष को निलुंचन कर सारे सूक्त का जप करे सूक्त के अन्त में डाले। तब धूलि से खदा को भर देवे) वृष्टि निवारण समाप्त। और ॥७॥ "नमस्ते अस्तु०" सूक्त से अशनि (वर्षा होते समय बिजुली, पत्थर, उल्का का पात होता है। इसे वृक्ष पर या भूमि पर पत्थर आदि पड़ा हो, या बिजुली से नष्ट काष्ठ में से) युक्त मट्टी आदि को लेकर सोम, दर्भ, केश, कुष्ठ, लाक्षा, मंजीठ, बैर, हरिद्रा इनको भोजपत्र में लपेट कर उसके नीचे छिद्र करके अभिमंत्रण कर सस्य (खेत में) गाड़ देवे। यह कर्म्म चैत्र में करे। इससे अशनि से रक्षा होती है ॥८॥९॥ दही, मक्खन और नया धान्य न खावे जब तक खेत से अन्न तय्यार होकर घर न आवे ॥१०॥ अतिवृष्टि, अनावृष्टि, कीड़े (शलभा), चूहा, शुक, स्वचक्र या परचक्र इन सात को "ईति" (ईतयः) कहते हैं। "आशानामाशापालेभ्यः०" इस सूक्त के तीसरे मंत्र को छोड़ कर दृंहण (दृढीकरण) कर्म कहे गये ॥११॥ और

दृतिकर्माणि॥१२॥पुरोडाशानश्मोत्तरानन्तः स्रक्तिषु निदधाति ॥१३॥ उभयान् सम्पातवतः ॥१४॥ सभाभागधानेषु च ॥ १५ ॥ असंतापे ज्योतिरायतनस्यैकतोऽन्यं शयानो भौमं जपति ॥ १६॥ इयं वीरुदिति मदुघं खादन्नपराजितात्परिषदमाव्रजति ॥१७॥ नेच्छत्रुरिति पाटामूलं प्रतिप्राशितम् ॥१८॥ अन्वाह ॥१९॥ बध्नाति ॥२०॥ मालां सप्तपलाशीं धारयति ॥२१॥ ये भक्षयन्त इति परिषद्येकभक्तमन्वीक्षमाणो भुङ्क्ते ॥२२॥ ब्रह्म जज्ञानमित्यध्या-

---

ज्योतिरायतन का भौम सम्बन्ध होने से दृति कर्म कहे जाते हैं ॥१२॥ चार पुरोडाशों को घर के भीतर कोणों में एक २ कर पत्थर पर धरे और पुरोडाश एवं पत्थर को सम्पात वाला करके निखनन पूर्व की भाँति जानो। सभा और महाधन गृह के कोणों में सू० ११ से १६ सू० तक दृंहण और दृति कर्म कहे गये ॥१३॥१४॥१५॥ एकाग्नि के आयतन का असंताप युक्त देश में अन्य पुरुष पत्थर पर नीचा मुख हुआ भौम सूक्त का जप करे। और दूसरी ओर सोता हुआ भौम सूक्त का ही दूसरा जप करे ॥१६॥ और "इयं वीरुत्०" से जेठी मधु खाता हुआ जन समूह बगल में पर्य्यावर्त्त कर पश्चिम से आवे ॥१७॥ सभा जीतने का कर्म्म समाप्त हुआ। "नेच्छत्रुः०" को पश्चिम से जपता हुआ पाटामूल को प्राशित करता हुआ सभा में आवे ॥१८॥ पाटामूल को मुँह में डाल कर मंत्र जपे ॥१९॥ पाटामूल को बांधे ॥२०॥ पाटा के फूलों की माला को अभिमंत्रण करके धारण कर शिर पर धारण करे। पाटालासी सात पत्ते की माला बना कर पहिने ॥२१॥ अब वृष्टि निवारण भक्ष-भोजन कर्म्म को कहते हैं। "ये भक्षयन्तः०" सूक्त से भात (शाकादि) को अभिमंत्रण करके भात को देखता हुआ खावे ॥२२॥ यह कर्म्म समाप्त हुआ। "ब्रह्म जज्ञानम्०" सूक्त से प्रथम काण्डादि सहित सूक्त को या वेद को या अनुवाक या कल्प या ब्राह्मण इनको अध्ययन करने की इच्छा करे तब २ सूक्त का जप करके अध्ययन करे। कलह शमन समाप्त हुआ। विवाद में जय के लिये सूक्त का जप करे। "ब्रह्म जज्ञानम्०" सूक्त का जप करके मीमांसा० व्याकरणादि शास्त्र वाद को करे। तब

यानुपाकरिष्यन्नभिव्याहारयति ॥२३॥ प्राशमाख्यास्यन् ॥२४॥ ब्रह्मोद्यं वदिष्यन् ॥ २५ ॥ ममाग्ने वर्च इति विभुङ्क्ष्यमाणः प्रमन्तरज्जुं बध्नाति ॥२६॥ सभा च मेति भक्षयति ॥२७॥ स्थूणे गृह्णास्युपतिष्ठते ॥२८॥ यद्वदामीति मन्त्रोक्तम् ॥२९॥ अहमस्मीत्यपराजितात्परिषदमाव्रजति ॥३०॥२॥३८॥

दूष्या दूषिरसीति स्राक्त्यं बध्नाति ॥१॥ पुरस्तादग्नेः पिशङ्गं गां कारयति ॥२॥ पश्चादग्नेर्लोहिताजम् ॥३॥ यूषपिशितार्थम् ॥४॥ मन्त्रोक्ताः॥५॥वाशाकाम्पीलसितीवारसदम्पुष्पा अवधाय ॥६॥ दूष्या दूषिरसि ये पुरस्तादीशानां त्वा समं ज्योतिरुतो अस्यबन्धुकृत्सुपर्णस्त्वा यां ते

सूक्त जप कर किया करे तो वादी से जीत होगी ॥२३॥२४॥२५॥ "ममाग्ने वर्च०" से चाक्रिक की रज्जु को अभिमंत्रण करके हाथ में धारण करे विवाद कर्म में कर्ता के साथ झगड़ा न होगा ॥२६॥ सभा में जाते समय "सभा च में०" इससे क्षीरौदन को अभिमंत्रण कर खाकर जावे ॥२७॥ सभा में प्रवेश करते समय उसकी स्थूणा को पकड़ कर उपस्थान करे ॥ २८ ॥ "यद्वदामि०" ऋचा को जप कर सभा में बोले, देखे, फिर बोले जो आँख देखी बात हो उसको उसी भाँति बोले तो उसके बोलने में विघात न होगा ॥२९॥२॥३८॥ यह अड़तीसवीं कण्डिका समाप्त हुई ॥३८॥

"दूष्या दूषिरसि०" से तिलक मणि को अभिमंत्रण करके सम्पात कर शुभ दिन के अन्त में आत्मरक्षा के लिये इसे बांधे ॥१॥ अग्नि के पूर्व में पिङ्गल वर्ण गौ अन्य द्वारा आलम्भन करावे। और अग्नि के पश्चिम भाग में लाल बकरी को मरवावे। दोनों के मांस के लिये ॥२॥३॥४॥ इसके अनन्तर शान्त्युदक करे । महाशान्ति के आधान को (मातली छोड़कर) करके "दूष्या दूषिरसि०" करके प्रतिहरणी गण से करे । इसके पश्चात् वास्तोष्पत्य, मातृ नाम, चातन शान्ति गण ये पांच गण हैं । शान्त्युदक से आवाप करे । तब मातली को करके शान्त्युदक

चक्ररयं प्रतिसरो यां कल्पयन्तीति महाशान्तिमावपते॥७॥ निश्यवमुच्योष्णीष्यग्रतः प्रोक्षन्व्रजति ॥८॥ यतायै यतायै शान्तायै शान्तायै शान्तिवायै भद्रायै भद्रावति स्योनायै शग्मायै शिवायै सुमङ्गलि प्रजावति सुसीमेऽहं वामाभूरिति ॥ ९ ॥ अभावादपविध्यति ॥१०॥ कृत्ययामित्रचक्षुषा समीक्षन् कृतव्यधनीत्यवलिप्तं कृत्यया विध्यति ॥११॥ उत्कावलेखनीम् ॥१२॥ दूष्या दूषिरसीति दर्व्या त्रिः सारूपवत्सेनापोदकेन मथितेन गुल्फान् परिषिञ्चति ॥१३ ॥ शकलेनावसिच्य यूषपिशितान्याशयति ॥१४॥ यष्टिभिश्चर्म पिनह्य प्रैषकृत्परिक्रम्य बन्धान्मुञ्चति

पात्र में चिति आदि का आधान करे मंत्रोक्त क्रिया में—दर्भ, अपमार्ग, सहदेवी, आटरूषक, काम्पील, शीतीवार, सदंपुष्प इन मन्त्रोक्त औषधियों को शान्त्युदक में डाल कर, उस शान्त्युदक से प्रोक्षण करता हुआ जावे। इसलिये यह कर्म रात में करे। जूता पहन कर, शिर पर पगड़ी धरकर, आगे होकर कर्त्ता शान्त्युदक से कृत्यास्थान को प्रोक्षण करे। बालागमपात्रों में एवं कृत्यादि में सब ही में यह कर्म होता है। अमित्रचक्षु यदि कृत्या दुष्टा हो तब वक्ष्यमाण कर्म करे, न हो तौ भी करे। इस प्रकार बालागम पात्रों में कृत्यादि सबों में यह कर्म होता है। "अमित्रचक्षुषा०" इस मंत्र से कृत्या को निरीक्षण करे। "कृतव्यधनि" ऋचा से कृत्यास्थान को देखे। एवं कृतव्यधनि ऋचा से कर्त्ता काण्ड से (आङ्गिरस कल्प विधान धनुष से) विद्ध करे। या दार्भ्युष काण्ड से विद्ध करे ॥५॥६॥७॥८॥९॥१०॥११॥१२॥ "दूष्या दूषिरसि०" सारूपवत्सा गौ के दूध में दर्वी से तीन बार मथकर कृत्या के गुल्फों को तीन वार सींचे ॥१३॥ शकल द्वारा शान्त्युदक से तीन वार अवसेचन करके यूष और मांस को "दूष्या दूषिरसि०" से कृत्या को खिलावे ॥१४॥ यष्टिओं से चर्म को पोहकर प्रैषकृत् परिक्रमा करा कर दोनों अंगुलियों के सन्दंशन से बन्धन को खोल देवे ॥१५॥ और उस चर्म में कृत्या को औंधे मुख लेटा कर प्रैषकृत् शकल से अवसेचन करके यूष और मांस

संदंशेन ॥१५॥ अन्यस्पार्श्वी संवेशयति ॥१६॥ शकलेनोक्तम् ॥१७॥ अभ्यक्तेति नवनीतेन मन्त्रोक्तम् ॥१८॥ दर्वरज्ज्वा संनह्योत्तिष्ठैवेत्युत्थापयति॥१९॥ सव्येन दीपं दक्षिणेनोदकालाब्वादाय वाग्यताः ॥२०॥ प्रैषकृदग्रतः ॥२१॥ अनावृतम् ॥२२॥ अगोष्पदम् ॥२३॥ अनुदकखातम् ॥२४॥ दक्षिणाप्रवणे वा स्वयंदीर्णे वा स्वकृते वेरिणेऽन्याशायां वा निदधाति ॥२५॥ अलाबुना दीपमवसिच्य यथा सूर्य इत्यावृत्याव्रजति ॥२६॥ तिष्ठंस्तिष्ठन्तीं महाशान्तिमुच्चैरभिनिगदति ॥२७॥ मर्माणि सम्प्रोक्षन्ते ॥२८॥ कृष्णसीरेण कर्षति ॥२९॥ अधि सीरेभ्यो दश दक्षिणा ॥३०॥ अभिचारदेशा मंत्रेषु विज्ञायन्ते तानि मर्माणि ॥३१॥३॥३९॥

यददः सम्प्रयतीरिति येनेच्छेन्नदी प्रतिपद्येतेति प्रसि-

को खिलावे ॥१६॥१७॥ नवनीत से दोनों आँखों (कृत्या की) को आँज देवे ॥१८॥ अधोमुखी हुई कृत्या को कुश की रस्सी से बाँध देवे और प्रैषकृत् से उसे "उत्तिष्ठ०" इस आधी ऋचा से उठवावे ॥१९॥ बायें हाथ में दीप एवं दहिने हाथ से जलपूर्ण तुम्बरी लेकर उसे उठावे ॥२०॥ प्रैषकृत् से आगे २ चले॥२१॥ वृत्ति विसर्जित हो उस स्थान में जावे, जहां गौ के पैर का चिन्ह न हो ॥२२॥२३॥ बिना जल के खात हो ॥२४॥ जिस स्थान का जल दक्षिण में आकर गिरे, जिसको किसी ने खोदवाया न हो, या ऊषर भूमि में या अन्य शाला में डाल देवे ॥२६॥ कर्त्ता स्वयं खड़ा हो कृत्या को भी खड़ी कर महाशान्ति उच्च स्वर से बोले ॥२७॥ उसके मर्म स्थानों का संप्रोक्षण करे॥२८॥ कृत्या स्थान को काले बैलों द्वारा हल से जोतवा देवे ॥२९॥ ब्राह्मण कर्त्ता को दश गौयें दक्षिणा देवे ॥३०॥ अभिचार देशों का पता मंत्रों से लगता है—वे ही मर्म हैं ॥३१॥३॥३९॥ यह उनतालीसवीं कण्डिका समाप्त हुई ॥३९॥

अब नदी के प्रवाह विधि को कहते हैं। जो चाहे कि नदी के प्रवाह

अन्वव्रजति ॥१॥ काशदिविधुवकवेतसान्निमिनोति ॥२॥ इदं व आप इति हिरण्यमधिदधाति ॥३॥ अयं वत्स इतीषीकाञ्जिमण्डूकं नीललोहिताभ्यां सकक्षंबद्ध्वा ॥४॥ इहेत्थमित्यवकया प्रच्छादयति ॥५॥ यत्रेदमिति निनयति ॥६॥ मारुतं क्षीरौदनं मारुतश्रृतं मारुतैः परिस्तीर्य मारुतेन स्रुवेण मारुतेनाज्येन वरुणाय त्रिर्जुहोति ॥७॥ उक्तमुपमन्थनम् ॥८॥ दधिमन्थं बलिं हृत्वा सम्प्रोक्षणीभ्यां

को अपने अनुकूल करे—अर्थात् जिस ओर होकर चाहें उस ओर प्रवाह को बहा देवे—वह "यदद: संप्रयतीति०" सूक्त से अभिमंत्रण कर पूरे जल से-इष्ट देश होकर जल को सिंचन करता जावे ॥१॥ काश को अभिमंत्रण कर खात में रोपे। दिन में बालपर्णी को अभिमंत्रण करके नदी प्रवाह में रोपण करावे। पाटरक को अभिमंत्रण करके नदी मार्ग में गाड़ देवे। वेतस शाखा को अभिमंत्रण करके नदी प्रवाह में गाड़ देवे ॥२॥ "इदं व आप०" सूक्त से नदी प्रवाह में सोने को स्थापित करे ॥३॥ "अयं वत्स०" से इषीकाञ्जि (इषिका की सी रेखा जिसके) को नीले और लाल सूत से उसके बगल में मण्डूक को बाँध कर "इहेत्थं" सूक्त से शिपाल (सेमार) से मण्डूक को ढाँक देवे ॥४॥५॥ और "यत्रेदं" से मण्डूक पर जल को निनयन करे ॥६॥ यह इच्छा हो कि नदी का प्रवाह पूर्व को न हो तो नव प्रकार के प्रवाह में यह कर्म करे। वरुण देवता के पाकयज्ञ विधान से आज्यभागान्त तक करके "यदद: संप्रयच्छती:० सूक्त से तीन प्रकार अलग २ करके आहुति देवे। तब उत्तर तंत्र करे। काला धान्य, काली गौ के घृत, वेतसकाष्ठ की इन्धन से क्षीरौदन पका करके वेतस पत्रों से स्तरण करे, वधूक पटेरक का स्तरण करे, या इस तन्त्र में सब ही कर्म मारुत करे। उदक प्रवाह में, उदक प्रवाह भय में, नदी भय में, ग्राम में, नगर में, जहाँ उदक या नदी भय हो वहाँ सब ही जगह वारुण होम करना चाहिये। वैतसस्रुव से मारुत आज्य से वरुण देवता के लिये तीन आहुतियाँ देवे ॥७॥ वैतस का उपमंथन। दही को मह कर उसीकी बलि उपहार देवे—प्रोक्षणी से सिंचन करता हुआ जावे ॥८॥ बलिहरण करे। इसके अनन्तर "अति

प्रसिञ्चन्व्रजति ॥९॥ पाणिना वेत्रेण वा प्रत्याहत्योपरि निपद्यते ॥१०॥ अयं ते योनिरित्यरण्योरग्निं समारोपयति ॥११॥ आत्मनि वा ॥१२॥ उपावरोह जातवेदः पुनर्देवो देवेभ्यो हव्यं वह प्रजानन् ॥ आनन्दिनो मोदमानाः सुवीरा इन्धीमहि त्वा शरदां शतानीत्युपावरोहयति ॥ १३ ॥ यां त्वा गन्धर्वो अखनद्वृषणस्ते खनितारो वृषा त्वमस्योषधे । वृषासि वृष्ण्यावति वृषणे त्वा खनामसीत्युच्छुष्मापरिव्याधावायसेन खनति ॥ १४ ॥ दुग्धे फाण्टावधिज्योपस्थ आधाय पिबति ॥ १५ ॥ मयूखे मुसले वासीनो यथासित इत्येकार्कसूत्रमार्कं बध्नाति ॥ १६ ॥ यावदङ्गीनमित्यसितस्कन्धमसितवालेन ॥ १७ ॥ आवृषायस्वेत्युभयमप्येति ॥१८॥४॥४०॥

धन्वान०" इन दो मंत्रों से मन्त्रोदक नहीं होता है। नदी प्रवाह में जल सिंचन करता हुआ जावे। नदी दूर गमन कर्म समाप्त हुआ ॥९॥ हाथ या वेत जल को मार कर उसके ऊपर जावे। "अयं ते योनिः०" आरण्य अग्नि को स्थापन करे या अपने शरीर ही में स्थापन करे ॥१०॥११॥ "उपावरोह जातवेदः०" इत्यादि से कार्य काल समीप आने पर उपावरोहण करे ॥१३॥ "यां त्वा गन्धर्वो०" इत्यादि से पुरुष के वीर्य्य को करने के लिये विधि को कहते हैं। कपिकच्छु के जड़ को औषधि की भाँति खन कर सुरवालक ओषधि की भाँति खनकर दूध में पका कर या गर्म करके उपविष्ट धेनु के बगल में धरकर दूध को अभिमंत्रण कर पिवे ॥१४॥१५॥ मयूख या मुसल पर बैठ कर "यां त्वा०" ऋचा से सुरवालक को दूध में क्वाथ बना कर पीकर कीलक पर बैठे। कपिकच्छु को मुसल पर बैठ कर पीवे। अब शिश्न को मोटा करने की प्रक्रिया को कहते हैं। "यथासित०" सूक्त से एक शाखावाले अर्क (आक) मणि को धर कर अभिमंत्रण करके अर्क सूत्रं से बान्धे। "यावदङ्गीनं०" इस ऋचा से काले मृग के चर्म मणि बनाकर काले बाल से बान्धे। "आवृषायस्व०" सूक्त से हरिण के स्कन्धचर्म का

समुत्पतन्तु प्र नभस्वेति वर्षकामो द्वादशरात्रमनुशुष्येत् ॥१॥ सर्वव्रत उपश्राम्यति ॥२॥ मरुतो यजते यथा वरुणं जुहोति ॥ ३ ॥ ओषधीः सम्पातवतीः प्रवेश्याभिन्युब्जति ॥४॥ विप्रावयेत ॥५॥ श्वशिरएडकशिरःकेशजरदुपानहो वंशाग्रे प्रबध्य योधयति ॥ ६ ॥ उदपात्रेण सम्पातवता सम्प्रोक्ष्यामपात्रं त्रिपादेऽश्मान-

---

मणि बनाकर काले बाल से बान्धे । इससे वीर्य्य करण, उत्थापन (शिश्न का) स्थूल करण और रेत का नाश भी होता है ॥१६॥१७॥१८॥—४॥४०॥ यह चालीसवीं कण्डिका समाप्त हुई ॥४०॥

अब वृष्टि कर्म विधि को कहेंगे । वर्षा की कामनावाला पुरुष "समुत्पतन्तु प्रनभस्व०" इत्यादि सूक्त से १२ रात्रि अनुशोषण करे अर्थात् ३ दिन प्रातःकाल, ३ दिन सायंकाल इस प्रकार १२ रात्रि तक करे । तेरहवें दिन पाकयज्ञिक तन्त्रानुसार व्रतोत्थापनान्त तक करके "देवस्य त्वा सवितुः०" इत्यादि "मरुद्भ्यो जुष्टं निर्वपामि मरुद्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि०" इस यजु मंत्र से तब तक समान करे, जब तक आज्यभाग की दो आहुतियाँ करे। तब क्षीरौदन की आहुति देवे। "समुत्पतन्तु०" इत्यादि सूक्त की ५ ऋचाओं से एक आहुति करे, फिर ५ ऋचा से दूसरी, छः ऋचा से तीसरी आहुति देवे । इसके अनन्तर पार्वणादि उत्तर तन्त्र कर पाकयज्ञिक क्रिया कर आज्यभागान्त तक करके "प्रनभस्व०" से क्षीरौदन की एक आहुति करे। "न घ्नंस्तताप०" इस ऋचा से दूसरी आहुति "युक्ताभ्यां०" से तीसरी आहुती करे। और पार्वण आदि उत्तर तंत्र को बर्हिर्होम में "मरुतो गच्छतु हविः स्वाहा" से करे ॥ सब ही वृष्टि कर्मों में काली गौ का घृत, उसीका दूध, काला धान्य, वेत का स्रुवा, वेत की समिद्, वेतका इंधन करे ॥१॥२॥ काश, दिविधुवक, वेतस, इनको इकट्ठा करके जल में पात्र को औंधे मुख कर लावे ॥ जल में उसे प्लावन करे ॥३॥४॥५॥ कुत्ते के शिर को अभिमंत्रण कर जल में विप्लावन करे। भेड़ के शिर को अभिमंत्रण करके जल में डाले। मनुष्य के केश, रज्जु, पुराने जूते बाँस के अग्रभाग में बान्धकर योधयति का जप करता हुआ ॥६॥ जल-

मवधायाप्सु निदधाति ॥७॥ अयं ते योनिरा नो भर धीतो वेस्यर्थमुत्थास्यन्नुपदधीत ॥८॥ जपति ॥९॥ पूर्वास्व-षाढासु गर्त्तं खनति ॥१०॥ उत्तरासु सञ्चिनोति ॥११॥ आदेवनं संस्तीर्य ॥१२॥ उद्भिन्दतीं सञ्जयन्तीं यथा वृक्षमशनिरिदमुग्रायेति वासितानक्षान्निवपति ॥ १३ ॥ अम्बयो यन्ति शम्भुमयोभू हिरण्यवर्णा यदद: पुनन्तु मा सस्रुषीर्हिमवतः प्रस्रवन्ति वायोः पूतः पवित्रेण शं

पात्र से ढालुआ करके संप्रोक्षण करके मट्टी के कच्चे पात्र में पत्थर को डाल कर सब को जल में फेक देवे ॥७॥ जमीन में गड़े हुए धन को उत्थापन करने में विघ्न की शान्ति कहेंगे। अर्थ उपार्जन के उद्योग करना चाहने वाले, द्रव्य, हाथी, घोड़ा, रत्न, सोना, धन-धान्यादि की कामना वाले, यदि वणिज आदि उद्योग करें, जो घर बनाना आरम्भ करते हैं परन्तु वह घर आदि तैयार नहीं हो पाता ; इन पूर्वोक्त सब ही कामना वाले इस कर्मको अर्थात् "अयं ते योनिरा नो भर धीती वा०" इत्यादि से हवि की आहुति करें। यथाविधि सूत्रोक्त मंत्रों का जप करें। और उपस्थान करें ॥८॥९॥ अब द्यूतजय कर्म कहते हैं। पूर्वाषाढा नक्षत्र में गर्त्त खनन करे और उत्तराषाढ़ नक्षत्र में उसे भर देवे ॥१०॥ ११॥ द्यूतशाला (जुआ खेलने का घर) को छा बनाकर "उद्भिन्दतीं यथा वृक्षमशनिरिदमुग्राय०" से त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावास्या तीन तिथियों में दही, मधु से अक्षों (पासों) को या कौडियों को (खेलने की) वासित करके इन वासित पासों या कौडियों से जूआ खेले ॥१३॥ और "अम्बयो यन्ति०" इत्यादि सूक्तद्वारा अभि-वर्षण और अवसेचन करे ॥ १४ ॥ अब अर्थोपार्जन के उद्यम करने में विघ्न के शान्तिकर्म को कहते हैं। स्पष्टीकरण–उपयुक्त औषधियों को सम्पादन कर औंधे धर कर जल में विप्लावन करे ॥ कुत्ते का शिर, भेड़का शिर, मनुष्य के केश, पुराना जूता, जलपात्र, ये अभिवर्षण कर्म होते हैं, एक २ सूक्त के ॥ कोई २ आचार्य मारुत के स्थान में मन्त्रोक्त देवता याग करे, जैसे वरुण को ; ऐसा कहते हैं। औषधिहोम समान ही है, जैसे वर्षा कर्म्मोंका। जल घट को लाकर

च नो मयश्च नोऽनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमं मह्यमापो वैश्वानरो रश्मिभिरित्यभिवर्षणावसेचनानाम् ॥१४॥ उत्तमेन वाचस्पतिलिङ्गाभिरुद्यन्तमुपतिष्ठते ॥१५॥ स्नातोऽहतवसनो निक्त्वाहतमाच्छादयति ॥१६॥ ददाति॥१७॥ यथा मांसमिति वननम् ॥१८॥ वत्सं सन्धाव्य गोमूत्रेणावसिच्य त्रिः परिणीयोपचृतति ॥ १९ ॥ शिरःकर्णमभिमन्त्रयते ॥२०॥वातरंहा इति स्नातेऽश्वे सम्पातानभ्यतिनयति॥२१॥ पलाशे चूर्णैषूत्तरान् ॥२२॥ आचमयति ॥२३॥ आप्लावयति ॥२४॥ चूर्णैरेवकिरति ॥२५॥ त्रिरेकया चेति ॥२६॥५॥४१॥

भद्रादधीति प्रवत्स्यन्नुपदधीत ॥१॥ जपति ॥२॥

अभिमंत्रण करके तब आप्लुवन करे और अवसेचन करे ॥ विघ्नशमन काम अभिवर्षण और अवसेचन कर्म्म समाप्त हुए ॥ १४ ॥ "वैश्वानरो रश्मिभिः" इस सूक्त के "उदेहि वाजिनं" बीस ऋचाओं से स्नान कर उगते हुए सूर्य का उपस्थान करे (अर्थ उत्थापन कामनावाला) ॥ १५ ॥ स्नान कर अखण्ड नये वस्त्र पहन कर नये वस्त्र को लाकर ढाक देवे और वस्त्र को देवे ॥ विद्रावणादि विषय में शान्ति करने वाला पुरुष उक्त कर्म करे ॥ विघ्नशमन कर्म समाप्त हुए ॥१६॥ १७॥ "यथामांसम्०" सूक्त से गो वत्स के मिलाप का कर्म करे ॥१८॥ बछरे को गौ के पास बान्धे और गोमूत्र से उसे अवसेचन करे । तीन वार भ्रमण कराके जल पीने को छोड़ देवे ॥ १९ ॥ एवं गौ के शिर और कानों को अभिमंत्रण करे ॥२०॥ अब अश्वशान्ति विधि को कहेंगे । घोड़े को नहाने पर "वातरंहा" मंत्र से उसपर जल गिरावे ॥२१॥ पलाश के पत्तों का चूर्ण करके जलमें मिलाकर घोड़े पर उसे ढाक देवे ॥२२॥ और घोड़े के मुख के भीतर जल देकर आचमन करावे ॥२३॥ उक्त चूर्णों को घोड़े पर छिड़के, तीन ऋ० एक और दश ऋ० से ॥२४॥ २५॥२६॥५॥४१॥ अश्वशान्ति से घोड़े तेजस्वि, निरुपद्रव, शीघ्रगामी और आरोग्य होते हैं ॥ यह एकतालिसवी कण्डिका समाप्त हुई ॥४१॥

प्रवास में धनोपार्जनार्थ जाने में चोरभय, जलभय, मार्गमें भय,

यानं सम्प्रोक्ष्य विमोचयति ॥३॥ द्रव्यं सम्पातवदुत्थापयति ॥४॥ निमृज्योपयच्छति ॥५॥ उभा जिग्यथुरित्यार्द्रपादाभ्यां सांमनस्यम् ॥६॥ यानेन प्रत्यञ्चौ ग्रामान्प्रतिपाद्य प्रयच्छति ॥७॥ आयातः समिध आदायोर्जं बिभ्रदित्यसङ्कल्पयन्नेत्य सकृदादधाति ॥८॥ ऋचं सामेत्यनुप्रवचनीयस्य जुहोति ॥९॥ युक्ताभ्यां तृतीयाम् ॥१०॥ आनुमतीं चतुर्थीम् ॥११॥ समावर्तनीयसमापनीययो-

---

इत्यादि न हों इस लिये तत्सम्बन्धि कर्मको कहेंगे ॥ "भद्रादधि०" से प्रवास में जाने वाला जो अर्थ की चेष्टा करना चाहता है—आहुतियाँ देवे या मंत्रों का जप करे ॥ २ ॥ जिस सवारी पर जावे उसका सम्प्रोक्षण करके सवारी से उतरे और घोड़े आदि को उससे छुड़ा देवे ॥३॥ वाणिज, द्रव्य, वस्त्र, घोड़ा आदि सब ही वस्तु जब बेचने को ले जावे तो यह कर्म्म करे ॥४॥ कीने हुए द्रव्य को भली भाँती बुझ कर लेवे ॥५॥ "उभा जिग्यथुः" इत्यादि से आगत पुरुष की प्रसन्नता, मित्र बनाने के लिये समयोचित सत्कार, हाथ, पैर धोने को जल, खाने की वस्तु, आसनादि से सत्कार करे। प्रत्येक पदार्थ के देने में उक्त मंत्र का जप कर लेवे ॥६॥ हाथी आदि सवारी को मंगाकर अभिमंत्रण करके उस सवारी पर सब ही आगतशिष्ट पुरुषों को बैठावे और आप चढ़लेवे और ग्राम से पश्चिम दिशा की ओर जावे और फिर वहाँ से वापस आवें। इसके पश्चात् भात को अभिमंत्रण करके उनके साथ ही भोजन करे या मन्थ पीवें ॥ सांमनस्य समाप्त हुआ। युद्ध में एक साथ लड़ने के लिये प्रवृत्त होने में सहागत के कर्म हुए और अन्य का साधारण हुआ ॥ पहिले पैरों को पखाड़ कर तब कर्म करे ॥ ७ ॥ यदि घर में परस्पर विरोध हो तो सांमनस्य कर्म करे। उसकी विधि—कर्त्ता वन में जाकर समिधाओं को लेकर तूष्णीं घर पर आकर "ऊर्जं बिभ्रत्०" इस आधी ऋचा से (संकल्प न करके) किसी घर या साधारण देश में एक वार आधान करे ॥८॥ वेदज्ञ का कर्म "ऋचं साम०" इत्यादि दो ऋ० से प्रत्येक ऋचा से आज्य की आहुति देवे ॥९॥ दोनों ऋ० से तीसरी आहुति करे। अनुमतये स्वाहा से चौथी आहुति करे ॥१०॥११॥ साधारण

भैषज्या ॥१२॥ अपो दिव्या इति पर्यवेतव्रत उदकान्ते शान्त्युदकमभिमन्त्रयते ॥१३॥ अस्तमिते समित्पाणिरेत्य तृतीयावर्जं समिध आदधाति ॥१४॥ इदावत्सरायेति व्रतविसर्जनमाज्यं जुहुयात् ॥१५॥ समिधोऽभ्यादध्यात् ॥१६॥ इदावत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय प्रतिवेदयाम एनत् । यद्व्रतेषु दुरितं निजग्मिमो दुर्हार्द् तेन शमलेनाश्मः ॥ यन्मे व्रतं व्रतपते लुलोभाहोरात्रे समधातां म एनत् ॥ उद्यन्पुरस्ताद्भिषगस्तु चन्द्रमाः सूर्यो रश्मिभिरभिगृणात्वेनत् ॥ यद्व्रतमतिपेदे चित्त्या मनसा हृदा । आदित्या रुद्रास्तन्मयि वसवश्च समिन्धताम् ॥ व्रतानि व्रतपतय उपाकरोम्यग्नये । स मे द्युम्नं बृहद्यशो दीर्घमायुः कृणोतु म इति व्रतसमापनीरादधाति ॥१७॥ त्रिरात्रमरसाशी स्नातव्रतं चरति ॥१८॥ निर्लक्ष्म्यमिति पापलक्षणाया मुखमुक्षत्यन्वृचं दक्षिणात्केशस्तुकात् ॥१९॥ पलाशेन फलीकरणान्हुत्वा शेषं प्रस्यानयति ॥२०॥ फलीकरणतुष-

---

समावर्तन करने वाला ब्रह्मचारी एवं वेदार्थविज्ञ ब्रह्मचारी दोनों के लिये उपरोक्त क्रिया कर्त्तव्य है ॥ १२ ॥ "आपो हि ष्ठा०" इन ऋ० से शान्ति के जल को अभिमंत्रण करके "अपो दिव्या०" का अनुयोग करे ॥१३॥ सूर्यास्त होने पर हाथ में समिद् लेकर "अपो दिव्या०" इन दो ऋ० से "एधोऽसि०" से एक यों तीन समिधाओं की आहुति करे ॥ १४ ॥ "इदावत्सराय०" इत्यादि, कल्पजा से ४ आहुतियाँ देवे और समिधाओं का आधान करे ॥ १५ ॥ १६ ॥ "इदावत्सराय" इत्यादि से व्रतसमापनी, समिधाओं का आधान करे ॥ १७ ॥ तीन रात तक बिना लवण के भोजन करे ॥ १८ ॥ जो स्त्री पापलक्षणवाली होती है उसको देखने से अशुभ होता है। इसलिये उसको देखने पर "निर्लक्ष्म्यं०" सूक्त से प्रत्येक मंत्र से उसके शिर के दक्षिण भाग के

बुसावतक्ष्णानि सव्यायां पादपार्ष्ण्यां निदधाति ॥२१॥ अपनोदनापाघाभ्यामन्वीक्षं प्रतिजपति ॥२२॥ दीर्घायुस्त्वायेति मन्त्रोक्तं बध्नाति ॥२३॥६॥४२॥

कर्शफस्येति पिशङ्गसूत्रमरलुदण्डं यदायुधम् ॥ १ ॥ फलीकरणैर्धूपयति ॥ २ ॥ अतिधन्वानीत्यवसाननिवेश-

---

केशस्तुक से लेकर उत्तर भाग तक के पलाश के पत्र से चावल के गुण्डे से आहुति देकर शेष को वापस लावे ॥ १९ ॥ २० ॥ चावलका गुण्डा, तुष, बुस, काठ का अवतक्षण सव्य पैर के पार्ष्णी में धरे और अपनोदन "आरे असौ०" और "अप नः शोशुचदघं०" इन दो सूक्तों का जप करता हुआ पाप लक्षणा को देखे तो उसके पाप लक्षण नष्ट हो जायंगे ॥२२॥ "दीर्घायुत्वाय" मंत्र से जंगिड मणि को बान्धे तो रोग रहित होकर चिरजीवी होगा ॥२३॥६॥४२॥

यह बयालीसवीं कण्डिका समाप्त हुई ॥ ४२ ॥

अब पुनर्विघ्नशमन कर्म को कहते हैं। पिङ्गलवर्ण सूत्र में बांधकर, अरलुमणि को लाकर अभिमंत्रण करके बान्धे। विस्कन्ध विघ्नशमन मणिको बांधने से स्पर्धमान पुरुष की स्पर्द्धा को नाश करता है। वेणु दण्डादि को लाकर सूक्तोक्त मंत्रों से मार्जन करके धारण करे। चित्र दण्ड, ध्वज दण्ड, लकुट आदि दण्ड आदि सब दण्डों को सम्पादन कर सूक्त से मार्जित कर धारण करने से सर्प, शृङ्गि, दण्डादि विघ्न नहीं होता है॥ आयुध (हथियार कोई) लाकर अभिमंत्रण करके सूक्त से मार्जन करके धारण करे। सब ही शस्त्रों को सम्पादन कर अभिमंत्रण करके मायादिक का माया जाल युद्ध में निवारण होता है, संग्राम में इन्द्रजाल का निवारण होता है। युद्ध में विघ्न नहीं होता है। शत्रु हव का निवारण करता है॥ शत्रु लोग जाते हैं। स्पर्द्धमान शत्रु को जीतता है। हव की विनाश करता है ॥ १ ॥ विघ्न गृहीत पुरुष को चावल के गुण्डे से धूप करे तो शत्रु के आरम्भ कार्य सिद्ध नहीं होते॥२॥ अवसान (निधान देश) और निवेशन (घर)। अवसान में अनुचरण होता है और निवेशन में निनयन होता है ॥ निनयन नाम शान्तिजल से संप्रोक्षण करना। "अति धन्वानि०" इन दो ऋचाओं से अवसान, निवेशन, अनुचरण और निनयन

नानुचरणानि निनयनेज्या ॥३॥ वास्तोष्पतीयैः कुलिजकृष्टे दक्षिणतोऽग्नेः सम्भारमाहरति ॥४॥ वास्तोष्पत्यादीनि महाशान्तिमावपते ॥५॥ मध्यमे गर्ते दर्भेषु व्रीहियवमावपति ॥६॥ शान्त्युदकशष्पशर्करमन्येषु ॥७॥ इहैव ध्रुवामिति मीयमानामुच्छ्रीयमाणामनुमन्त्रयते ॥ ८ ॥ अभ्यञ्ज्यर्तेनेति मन्त्रोक्तम् ॥ ९ ॥ पूर्णं नारीत्युदकुम्भमग्निमादाय प्रपद्यन्ते ॥१०॥ ध्रुवाभ्यां दृंहयति ॥११॥ शम्भुमयोभुभ्यां विष्यन्दयति ॥१२॥ वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान् स्वावेशो अनमीवो न एधि ॥ यत्त्वेमहे प्रति नस्तज्जुषस्व चतुष्पदो द्विपद आवेशयेह ॥ अनमीवो वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् ॥ सखा सुशेव एधि न इति, वास्तोष्पतये क्षीरौदनस्य जुहोति ॥१३॥ सर्वान्नानि ब्राह्मणान् भोजयति ॥१४॥ मङ्गल्यानि ॥१५॥

से यज्ञ करे ॥ ३ ॥ अब शाला कर्म को कहते हैं ॥ जल पात्र को अभिमंत्रण करके जिस भूमि में घर बनाना हो वहाँ जल लावे । उसी भूमि पर चरु पकावे या श्येन याग करे और वास्तोष्पतीय गणों से कुलिज कृष्ट भूमि पर अग्नि के दक्षिण भाग में गृह सम्बन्धि सामानों को इकट्ठा कर धरे ॥ ४ ॥ "इहैव ध्रुवां०" इत्यादि पांच गणों के तृप्रप्रभृति प्रतीकों से आवपन करे ॥ ५ ॥ वास्तुभूमि के बीच के गर्त्त में कुशोपर धान्य, यव डाले ॥ ६ ॥ और अन्य गर्तों में शान्तिजल, विरूढ शर्करा डाले ॥ ७ ॥ "इहैव ध्रुवां०" से नापे जाने वाले बीच के स्थूणा और शाला को अनुमंत्रण करे ॥ ८ ॥ "अभ्यञ्ज्यर्तेन०" से बाँस को आरोपण करे (स्थूणा के बास को) ॥ ९ ॥ "पूर्णं नारी०" से जलपूर्ण घट को पकड़ कर दूसरी ऋचा से अग्नि को लेकर दूसरे लोग घर में प्रवेश करें ॥१०॥ "इहैव ध्रुवाभ्यां०" इन दो ऋचाओं से दृढ़ करे ॥११॥ "शम्भुमयोभुभ्यां०" से जल से वास्तुभूमि को गीला करे, जल कुम्भ को घर में ढाक देवे ॥१२॥ "वास्तोष्पते प्रति०" इत्यादि से वास्तोष्पति देवता के लिये क्षीरौदन की आहुति देवे ॥१३॥ और सब

ये अग्नय इति क्रव्यादनुपहत इति पालाशं बध्नाति ॥१६॥ जुहोति ॥१७॥ आदधाति ॥१८॥ उदञ्चनेनोदपात्र्यां यवानद्भिरानीयोल्लोपम् ॥१९॥ ये अग्नय इति पालाश्या दर्व्या मन्थमुपमथ्य काम्पीलीभ्यामुपमन्थनीभ्याम् ॥२०॥ शमनञ्च ॥२१॥७॥४३॥

य आत्मदा इति वशाशमनम् ॥ १ ॥ पुरस्तादग्नेः प्रतीचीं धारयन्ति ॥२॥ पश्चादग्नेः प्राङ्मुख उपविश्यान्वारब्धायै शान्त्युदकं करोति ॥ ३ ॥ तत्रैतत्सूक्तमनुयोजयति ॥ ४ ॥ तेनैनामाचामयति च सम्प्रोक्षति च ॥ ५ ॥

अन्न ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥ १४ ॥ और बूढ़ी स्त्रियां गीत मङ्गल्यादि करें, ब्राह्मण गण पुण्याह वाचन करे ॥ जहां घर, मण्डप या कुटी आदि हो चाहे पत्थर, ईंट, मट्टी, टट्टी, काष्ठ अदि के क्यों न हों सब ही दशा में इसी विधि से वास्तु याग करना चाहिये ॥१५॥ "ये अग्नय०" "क्रव्यादनुपहत०" इत्यादि ७ ऋचासे पालाश मणि को बान्धे । और आज्य की आहुति देवे ॥१७॥ और यहीं आधान करे ॥१८॥ उत्तर से जलपात्र में यवों को डाल कर लाकर आलो पात्री से यव की आहुति देवे ॥ १९ ॥ "ये अग्नय०" से पलाशी दर्वी से मन्थको काम्पीली की दो मन्थनियों से मथकर ॥ वशा (जो गौ गर्भ धारण नहीं करती) शमन विधान को कहते हैं ॥ "ये अग्नय०" इन १० ऋचाओं से वशा को अभिमंत्रण करके तब ब्राह्मण को देवे ॥ जिस घर में वशा रहती है वह गृह दैवहत होता है ॥२१॥७॥४३॥ यह तेतालीसवीं कण्डिका समाप्त हुई ॥

"य आत्मदा०" से वशाशमन कर्म करे जिससे तज्जन्य दोष दूर होवे ॥ १ ॥ अग्नि के पूर्व भाग में वशा को पश्चिम मुँह कर खड़ी रक्खे ॥ और अग्नि के पश्चिमभाग में पूर्वमुख बैठकर अन्वारब्धा वशाके लिये शान्ति उदक को करे ॥ ३ ॥ उस शान्ति उदक में "य आत्मदा०" सूक्त का अनुयोग करे ॥ ४ ॥ उस शान्ति उदक से (मातली-अन्त से) आचमन करावे एवं प्रोक्षण करे ॥ ५ ॥

तिष्ठंस्तिष्ठन्तीं महाशान्तिमुच्चैरभिनिगदति ॥६॥ य ईशो पशुपतिः पशूनामिति हुत्वा वशामनक्ति शिरसि ककुदे जघनदेशे ॥ ७ ॥ अन्यतरां स्वधितिधारामनक्ति ॥८॥ अक्तया वपामुत्खनति ॥ ९ ॥ दक्षिणे पार्श्वे दर्भाभ्यामधिक्षिपत्यमुष्मै त्वा जुष्टमिति यथादेवतम् ॥ १० ॥ निस्सालामित्युल्मुकेन त्रिः प्रसव्यं परिहरत्यनभिपरिहरन्नात्मानम् ॥११॥ दर्भाभ्यामन्वारभते ॥१२॥ पश्चादुत्तरतोऽग्नेः प्रत्यक्शीर्षीमुदक्पादीं निविध्यति ॥१३॥ समस्यै तन्वा भवेत्यन्यतरं दर्भमवास्यति ॥१४॥ अथ प्राणानास्थापयति प्रजानन्त इति ॥ १५ ॥ दक्षिणतस्तिष्ठन् रक्षोहणं जपति ॥१६॥ संज्ञप्तायां जुहोति—यद्वशा मायुमक्रतोरो वा पड्भिराहत ॥ अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान् मुञ्चत्वंहस इति ॥१७॥ उदपात्रेण पत्न्यभिव्रज्य

वशा को करने वाला खड़ा होकर वास्तोष्पत्यादि चतुर्गणी महाशान्ति को उच्चैः, तीसरे सवन में, वशा के सम्मुख होकर जप करे ॥ ६ ॥ "य ईशो पशुपतिः पशूनां०" से आहुति करके वशा को शिर में लगावे ककुद में और जघन देश में ॥७॥ दोनों धारा के छुरिका की अन्य धारा को फेके ॥८॥ अधिक्षिप्तधारा से वशा के वपा को निकाले ॥९॥ वशा के दक्षिण पार्श्व में डाभों से "प्रजापतये त्वा जुष्टमधिक्षिपामि" से यथा दैवत—अधिक्षिप्त करे ॥१०॥ "निस्सालां०"—से उल्मुक द्वारा तीन बार बायें होकर—वशा को लेवे ॥११॥ डाभों से शामित्र देश को ली जाती हुई पश्चात् अवस्थिता वशा को डाभों से स्पर्श करे ॥१२॥ अग्नि के पश्चिम उत्तर-पश्चिम की ओर शिर कियी हुई और उत्तर को पैर कियी हुई गिरवावे ॥१३॥ "समस्यै तन्वा भव०" जिन डाभों से वशा अन्वारब्धा हुई । उन दोनों से अलग एक अन्य विधि करे । वशा के नीचे डाले ॥१४॥ मारी जाने वाली वशा के दक्षिण भाग में खड़ा रह कर रक्षोहण अनुवाक का जप करे ॥१५॥॥१६॥ मारे जाने पर "यद्वशा०" इत्यादि से आहुति देवे ॥१७॥ जलपात्र लेकर पत्नी जाकर

मुखादीनि गात्राणि प्रक्षालयते ॥१८॥ मुखं शुन्धस्व देवयज्याया इति ॥१९॥ प्राणानिति नासिके ॥२०॥ चक्षुरिति चक्षुषी ॥२१॥ श्रोत्रमिति कर्णौ ॥२२॥ यत्ते क्रूरं यदास्थितमिति समन्तं रज्जुधानम् ॥२३॥ चरित्राणीति पादान्समाहृत्य ॥२४॥ नाभिमिति नाभिम् ॥२५॥ मेढ्रमिति मेढ्रम् ॥२६॥ पायुमिति पायुम् ॥२७॥ यत्ते क्रूरं यदास्थितं तच्छुन्धस्वेत्यवशिष्टाः पार्श्वदेशेऽवसिच्य यथार्थं व्रजति ॥ २८ ॥ वपाश्रपण्यावाज्यं स्रुवं स्वधितिं दर्भमादायाभिव्रज्योत्तानां परिवर्त्मानुलोमं नाभिदेशे दर्भमास्तृणाति ॥२९॥ ओषधे त्रायस्वैनं स्वधिते मैनं हिंसीरिति शस्त्रं प्रयच्छति ॥३०॥ इदमहमामुष्यायणस्यामुष्याः पुत्रस्य प्राणापानावपक्रुन्तामीत्यपकृत्य ॥ ३१ ॥ अधरप्रव्रस्केन लोहितस्यापहृत्य ॥ ३२ ॥ इदमहमामुष्या-

---

मुख आदि अङ्गों को प्रक्षालन करे ॥१८॥ "मुखं शुन्धस्व०" इत्यादि, "प्राणान्" से नासिका के दोनों छिद्रों को प्रक्षालन करे ॥१९॥२०॥ "चक्षुः०" से दोनों आँखें ॥२१॥ "श्रोत्रं०" से दोनों कानों को ॥२२॥ "यत्ते क्रूरं यदास्थितं०" से गर्दन के सब बन्धन स्थानों को प्रक्षालन करे ॥२३॥ "चरित्राणि०" से दोनों पैरों को समिट कर प्रक्षालन करे ॥२४॥ "नाभिम्०" से नाभि को ॥२५॥ "मेढ्रम्०" से मेढ् को ॥२६॥ "पायुं०" से पायु (मल स्थान) ॥२७॥ "यत्ते क्रूरं यदास्थितं तच्छुन्धस्व०" से अवशिष्ट अङ्गों को, पार्श्व देश में अवसेचन कर जहाँ इच्छा हो जावे ॥२८॥ वपाश्रपणी दो, आज्य, स्रुव, उस्तुरा कुश इन को ले जाकर उत्तान वशा के लोमानुगत लक्षित नाभि देश में कुशों से आस्तरण करे ॥२९॥ "ओषधे त्रायस्व०" इत्यादि पढ़ कर और मारने वाले के हाथ में शस्त्र देवे ॥३०॥ "इदमहमामुष्यायणस्य०" इत्यादि से नाभि देश को काटे ॥३१॥ एवं नीचे के अग्रव्रस्क से लोहित को दूर कर ॥३२॥ "इदमहमामुष्या०" इत्यादि से दर्भ के अधर खण्ड से लोहित को छूकर दूसरे मंत्र से—लोहित लिप्त दर्भ खण्ड को (श्लेष्म

यणस्यामुष्याः पुत्रस्य प्राणापानौ निखनामीत्यास्ये निखनति ॥ ३३॥ वपया द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथामिति वपाश्रपण्यौ वपया प्रच्छाद्य ॥ ३४ ॥ स्वधितिना प्रकृत्योत्कृत्य ॥३५॥ आव्रस्कमभिघार्य ॥३६॥ वायवे स्तोकानामिति दर्भाग्रं प्रास्यति ॥३७॥ प्रत्युष्टं रक्ष इति चरुमङ्गारे निदधाति ॥३८॥ देवस्त्वा सविता श्रपयत्विति श्रपयति ॥३९॥ सुश्रृतां करोति ॥४०॥८॥४४॥

यद्यष्टापदी स्याद्गर्भमञ्जलौ सहिरण्यं सयवं वा य आत्मदा इति खदायां त्र्यरत्नावग्नौ सकृज्जुहोति ॥ १ ॥ विशस्य समवत्तान्यवद्येत् ॥ २ ॥ हृदयं जिह्वा श्येनश्च दोषी पार्श्वे च तानि षट्। यकृद्वृक्कौ गुदश्रोणी तान्येकादश दैवतानि ॥३॥ दक्षिणः कपिललाटः सव्या श्रोणिर्गुदश्च यः॥ एतानि त्रीणि त्र्यङ्गानि स्विष्टकृभ्दाग एव ॥४॥

श्रपण में धरे हुए को) आस्य स्थान को निखनन करे ॥३३॥ "वपया द्यावा०" इत्यादि मंत्र से वपाश्रपणियों को वपा से ढाक देवे ॥३४॥ उस्तुरे से जहाँ से वपा को निकाला था उसी देश को आव्रस्क को अभिघारण करके ' वायवे०" इत्यादि से प्राशन करे। नाभि देश में पहिले धरा हुआ दर्भाग्नि को अनियत देश में फेके। ॥३५॥३६॥३७॥ "प्रत्युष्टं रक्ष०" से चरु को आग पर धरे ॥३८॥ "देवस्त्वा सविता०" इत्यादि से श्रपण करे और भली भाँति पकावे ॥३९॥४०॥८॥४४॥ यह चौवालिसवीं कण्डिका पूरी हुई।

"यद्यष्टापदी स्याद्०" इत्यादि से गर्त्त में तीन अन्तरियों को एकवार अग्नि में आहुति देवे ॥१॥ काट काट कर समवत्तों को टुकड़े करे। हृदय, जिह्वा, श्येन, दोषी, दोनों पार्श्व, ये छः यकृत्, वृक-दो, गुदश्रोणी अर्थात् दोश्रोणी, ये ग्यारह पशु के अंग लिये जाते हैं। इनमें से स्विष्टकृत् के लिये तीन अवदान ग्रहण किये जाते हैं। जैसे—दहिना बाहु, वाम जंघा, और अन्त्र विभाग। इन टुकड़ों में से चिह्नित टुकड़े

तदवद्य प्रज्ञातानि श्रपयेत् ॥५॥ होष्यन् द्विर्द्विर्देवतानामवद्येत् ॥६॥ सकृत्सकृत्सौविष्टकृतानाम् ॥ ७ ॥ वपायाः समिद्ध ऊर्ध्वो अस्येति जुहोति ॥ ८ ॥ युक्ताभ्यां तृतीयाम् ॥९॥ आनुमतीं चतुर्थीम् ॥ १० ॥ जातवेदो वपया गच्छ देवांस्त्वं हि होता प्रथमो बभूथ । घृतस्याग्ने तन्वा सम्भव सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः स्वाहा॥११॥ ऊर्ध्वं नभसं मारुतं गच्छतमिति वपाश्रपण्यावनुप्रहरति ॥१२॥ प्राचीमेकश्शृङ्गां प्रतीचीं द्विशृङ्गाम् ॥१३॥ पित्र्येषु वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैतान् वेत्थ निहितान् पराके । मेदसः कुल्या उप तान् स्रवन्तु सत्या एषामाशिषः सन्तु कामाः स्वाहा स्वधेति वपायास्त्रिर्जुहोति ॥१४॥ समवत्तानाम् ॥१५॥ स्थालीपाकस्य सम्राडस्यधिश्रयणं नाम सखीनामभ्यहं विश्वा आशाः साक्षीय॥ कामोऽसि कामाय त्वा सर्ववीराय सर्वपुरुषाय सर्वगणाय सर्वकामाय

को ले २ कर श्रपण करे ॥५॥ इसके अनन्तर जिस देवता के निमित्त पशु हो—उसी देवता के नाम चरु पकाना चाहिये । होम करते समय हृदयादि के दो २ टुकड़े करा २ कर आहुति देवे ॥६॥ और एक २ बार स्विष्टकृत्-खण्डों की आहुतियाँ देवे ॥७॥ "वपायाः समिद्ध ऊर्ध्वो अस्य०" से एक मंत्र से—पहिली और दूसरे मंत्र से दूसरी आहुति करे ॥८॥ तीसरी आहुति मिले हुए मंत्रों से, चौथी "अनुमतिः सर्व०" से आहुति करे ॥९॥१०॥ "जातवेदो वपया०" इत्यादि से एक बार आज्य की आहुति करे ॥११॥ "ऊर्ध्वं नभसं मारुतं गच्छतं" से वपा श्रपणी में डाले ॥१२॥ पूर्वाग्र करके एक वपा श्रपणी से और पश्चिमाग्र करके दोनों वपाश्रपणी को साथ करके आहुति देवे ॥१३॥ परन्तु पितृ कार्य में—"वह वपां०" इत्यादि से वपा की तीन बार आहुतियाँ करे ॥१४॥ तब समवत्तों से आहुतियाँ करे ॥१५॥ "स्थाली पाकस्य०" इत्यादि से आहुति करे । फिर "अन्वद्य नो०" इत्यादि से आहुति देवे । "सम्राट्०" मंत्र से आज्य की आहुति देवे । और "सर्ववीराय०" से चार आहुतियाँ देवे ।

जुहोमि ॥ अन्वद्य नोऽनुमतिः पूषा सरस्वती मही । यत्करोमि तदृध्यतामनुमतये स्वाहेति जुहोति ॥१६॥ क इदं कस्मा अदात् कामस्तदग्रे यदन्नं पुनर्मैत्विन्द्रियमिति प्रतिगृह्णाति ॥१७॥ उत्तमा सर्वकर्मा ॥१८॥ वशाया पाकयज्ञा व्याख्याताः ॥१९॥९॥४५॥

उतामृतासुः शिवास्त इत्यभ्याख्याताय प्रयच्छति ॥१॥ द्रुघणशिरो रज्ज्वा बध्नाति ॥२॥ प्रतिरूपं पलाशायोलोहहिरण्यानाम् ॥३॥ येन सोमेति याजयिष्यन् सारूपवत्समश्नाति ॥४॥ निधने यजते ॥ ५ ॥ यं याचामि यदाशसेति याचिष्यन् ॥६॥ मन्त्रोक्तानि पतितेभ्यो देवाः

वशा शान्ति कर्म समाप्त हुआ। जिस घर में वशा होती है—उस घर के धनादि का नाश होता है इसलिये शान्ति करनी चाहिये ॥१६॥ "क इदं कस्मा०" इत्यादि से प्रतिग्रह को ग्रहण करे ॥१७॥ सब ही कर्म्मों में—इस सूक्त से प्रतिग्रह आदि ग्रहण करे ॥१८॥ इस वशा के द्वारा पशु-पाकयज्ञों का व्याख्यान हुआ जानना ॥१९॥९॥४५॥ यह पैतालिसवीं कण्डिका समाप्त हुई ॥

"उतामृतासुः०" इत्यादि से अभ्याख्यात (जिसको झूठा कह कर कि इसने प्रतिषिद्ध कर्म किये हैं) पुरुष के लिये मंथनी देवे ॥१॥ और द्रुघण शिर (पलाश सदृश) काला लोहा, तामा, सोना इनसे द्रुघण शिर की भाँति (प्रतिकृति) मणि बना कर कृष्ण लोह मणि, ताम्र मणि, हिरण्य मणि, द्रुघण प्रतिरूप बना कर अभिमंत्रण कर अ० पुरुष को बान्धे। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि इस ग्रंथ में जहाँ २ एककार्य के लिये एक साथ अनेक कर्म करने का विधान है वहां २ उनमें से किसी एक को करे या सब को करे ॥२॥३॥ "येन सोम०" से याग करना हो तो सारूपवत्सा गौ के दूध को ऋत्विग्गण तथा यजमान खावें। जिससे याग में विघ्न न हो ॥४॥ याग की समाप्ति में सोम देवत्य चरु बना कर आहुति करे ॥५॥ जिससे कुछ मांगे वह अवश्य देवे अस्वीकार न करे। ऐसी कामना के लिये सारूपवत्सा

कपोत ऋचा कपोतममून्हेतिरिति महाशान्तिमावपते ॥७॥ परीमेऽग्निमिस्यग्निं गामादाय निशि कारयमाणस्त्रिः शालां परिणयति ॥८॥ परोऽपेहि यो न जीव इति स्वप्नं दृष्ट्वा मुखं विमार्ष्टि ॥९॥ अतिघोरं दृष्ट्वा मैश्रधान्यं पुरोडाशमन्याशायां वा निदधाति ॥१०॥ पर्यावर्त इति पर्यावर्तते ॥११॥ यस्स्वप्न इस्यशिस्वा वीक्षते ॥१२॥ विद्मा ते स्वप्नेति सर्वेषामप्ययः ॥१३॥ न हि ते अग्ने तन्व इति ब्रह्मचार्याचार्यस्यादहन उपसमाधाय त्रिः परिक्रम्य पुरोडाशं जुहोति ॥१४॥ त्रिरात्रमपर्यावर्तमानः शयीत ॥१५॥ नोपशयीतेति कौशिकः ॥१६॥ स्नानीयाभिः स्नायात् ॥१७॥ अपर्यवेतव्रतः प्रत्युपेयात् ॥१८॥

के दूध में पायस बनाकर अभिमंत्रण कर खावे ॥६॥ कपोत, उल्लूक यदि घर पर बैठे उसकी महाशान्ति कही है। कृत्या प्रहरण की भाँति इसकी महाशान्ति करे ॥ शान्ति उदक में आवपन कर तब मातली की मूर्त्ति बना कर के रात्रि में उस शान्ति उदक से उस स्थान को "यतायै०" मंत्रों से प्रोक्षण करे जहाँ तक कपोत, उल्लूक बैठा हो ॥७॥ और "परीमेऽग्निं०" गौ को लाकर रात्रि में तीन बार उसे शाला की परिक्रमा करावे या कपोत स्थान के चारो ओर घूमवावे ॥८॥ यदि बुरा स्वप्न देखे तो "परोऽपेहि यो न जीव"० से अपने मुख का मार्जन करे ॥९॥ यदि अत्यन्त घोर स्वप्न देखे तो मैश्रधान्य को पुरोडाशको अन्यशाला में रक्खे ॥१०॥ जिस करवट होकर सोने में स्वप्न देखा था उससे करवट बदल कर "पर्यावर्त०" मंत्र का जप कर सोवे ॥११॥ आचार्य्य के मरने पर ब्रह्मचारी "अग्निर्भूम्यां०" इत्यादि से पाँच सामिधेनी की आहुति देकर तब दहन को तीन फेरा लगाकर "न हि ते अग्ने तन्व०" सूक्त के अन्त में पुरोडाश की आहुति उस दहन में देवे ॥ और तीन रात तक गुरु की मृत्यु जहाँ हुई है उस स्थान के पार्श्व में ब्रह्मचर्यसे शयन करे ॥१५॥ कौशिकाचार्य्य कहते हैं—"न सोवे" ॥१६॥ "अपो दिव्या०" से चार ऋचाओं से स्नान करके तीन रात्रि घर पर आकर सोवे यह कौशिकाचार्य्य का

अवकीर्णिने दर्भशुल्बमासज्य यत्ते देवीस्त्यावपति ॥१९॥ एवं सम्पातवतोदपात्रेणावसिच्य ॥२०॥ मन्त्रोक्तं शान्त्युदकेन सम्प्रोक्ष्य ॥२१॥ सं समिदिति स्वयंप्रज्वलितेऽग्नौ ॥२२॥ अग्नी रक्षांसि सेधतीति सेधन्तम् ॥२३॥ यदस्मृतीति संदेशमपर्याप्य ॥२४॥ प्रत्नो हीति पापनक्षत्रे जाताया मूलेन ॥२५॥ मा ज्येष्ठं तृते देवा इति परिविक्तिपरिविविदानावुदकान्ते मौञ्जैः पर्वसु बद्ध्वा पिञ्जूलीभिराप्लावयति ॥२६॥ अवसिञ्चति ॥२७॥ फेनेषूत्तरान्पाशानाधाय नदीनां फेनानिति प्रप्लावयति ॥२८॥ सर्वैश्च प्रविश्यापां सूक्तैः ॥२९॥ देवहेडनेन मन्त्रोक्तम् ॥३०॥ आचार्याय ॥३१॥ उपदधीत ॥३२॥ खदाशयस्यावपते ॥३३॥

मत है ॥१७॥ असमाप्त ब्रह्मचर्य्य वाला ब्रह्मचारी फिरसे उपनयन करे ॥१८॥ अवकीर्णी (मैथुन करने से भ्रष्ट ब्रह्मचारी) के गले में डाभ की रस्सी को डाल "यत्ते देवी०" से तिल की आहुती देवे ॥१९॥ इसी प्रकार सम्पात वाले जलपात्र से गले की रस्सी को सिंचन कर के रस्सी को गले से खोल देवे ॥२०॥ मन्त्रोक्त शान्तिजल से सम्प्रोक्षण करे ॥२१॥ "सं समित्०" से स्वयं प्रज्वलित अग्नि में हो तो उसी में एक बार हवन करे ॥२२॥ "अग्नी रक्षांसि सेधति०" से उसी अग्नि का हाथ से उपस्थान करे ॥२३॥ यदि किसी सन्देश (समाचार कहने को लावे और उसे भूल से न कहे) को भूल जावे तो "यदस्मृति०" से आहुति देवे ॥२४॥ ज्येष्ठादि पाप नक्षत्रों में से मूल नक्षत्र में सन्तान पैदा हो तो जात कुमार के लिये "प्रत्नो हि०" से आहुति देवे ॥२५॥ यदि बड़े भाई के रहते छोटे भाई विवाह कर लेवे तो जल के पास मूँज के पाशों से शरीर की सन्धियों में बान्ध कर सम्पात वाले जल से कुश की पिंजुली से नहावे ॥२६॥ और उसी से अवसिंचन करे ॥२७॥ नदी के फेनों पर उन मूँज के पाशों को स्थापन करके "नदीनां फेनान्०" से उसको बहावे ॥२८॥ जल सूक्तों से घड़े को धर कर अभिमंत्रण करके आप्लावन करे ॥ २९ ॥ "यद्देवा देवहेडनं०" अनुवाक से मेदस्वता स्रुच से

वैवस्वतं यजते ॥ ३४ ॥ चतुःशरावं ददाति ॥ ३५ ॥ उत्तमर्णे मृते तदपत्याय प्रयच्छति ॥ ३६ ॥ सगोत्राय ॥ ३७ ॥ श्मशाने निवपति ॥ ३८ ॥ चतुष्पथे च ॥ ३९ ॥ कक्षानादीपयति ॥४०॥ दिवो नु मामिति वीध्रबिन्दून्प्रक्षालयति ॥४१॥ मन्त्रोक्तैः स्पृशति ॥४२॥ यस्योत्तमदन्तौ पूर्वौ जायेते यौ व्याघ्राविस्यावपति ॥४३॥ मन्त्रोक्तान् दंशयति ॥४४॥ शान्त्युदकश्रृतमादिष्टानामाशयति ॥४५॥ पितरौ च ॥४६॥ इदं यत्कृष्ण इति शकुनिनाधिक्षिप्तं प्रक्षालयति ॥४७॥ उपमृष्टं पर्यग्नि करोति ॥४८॥

आहुति करे॥३०॥आचार्य्य के लिये भी वैसा ही करे ॥३१॥ "देव हेडन०" से हवनीय में से किसी से आहुति करे ॥३२॥ खड्डा में धरे धान्य से सूर्य के लिये चरु पकावे ॥३३॥३४॥ उसी खदाशय धान्य में से चार शराव (पुरवा) धान्य ब्राह्मण को देवे ॥३५॥ यदि महाजन (कर्ज देने वाला) मर जावे तो ऋणी "अपमित्यप्रतीत्तं०" इत्यादि तीन सूक्तों से द्रव्य को अभिमंत्रण करके उसके पुत्र को रुपये देवे ॥३६॥ यदि उसके पुत्रादि न हों तो उसके गोत्रवाले को देवे ॥ यदि सगोत्री भी न हो तो मरघट में डाल देवे ॥ श्मशान के अभाव में चौराहे पर डाल देवे ॥३६॥ कक्षों को जलाकर प्रकाश करे ॥४०॥ "दिवो नु मां०" दो मंत्रों से (मेघ जल से नहाने की शान्ति है) शरीर को प्रक्षालन करे ॥४१॥ "दिवो नु मां०" सूक्त से एक तैल को सर्वौषधि गन्ध, सोना-इनको अभिमंत्रण कर शरीर को उबटन से मले ॥ या आम्रादि वृक्षों से स्वयं गिरे हुए फलों से शरीर को स्पर्श करावे ॥४२॥ जिस बच्चे को ऊपर के दो अगले दाँत पहिले निकले तो "यौ व्याघ्रौ०" से ब्रीहि आदि अग्नि में डाले ॥४३॥ ब्रीहि, यव, तिल, माष को इकट्ठा करके दोनों निकले दाँतों से कटवावे ॥४४॥ ब्रीहि आदि में से किसी एक को शान्ति जल से पका कर खावे ॥४५॥ बच्चे के माँ बाप भी खावे ॥४६॥ काले काक से छू जाने पर "इदं यत्कृष्ण०" शान्ति जल से प्रक्षालन करे ॥४७॥ और उल्मुक अभिमंत्रण करके काक मुख से अपमृष्ट पुरुष

प्रतीचीनफल इत्यपामार्गेध्मेऽपामार्गीरादधाति ॥४९॥ यद्वाचीनमित्याचामति ॥५०॥ यत्ते भूम इति विखनति ॥५१॥ यत्त ऊनमिति संवपति ॥५२॥ प्रेहि प्रहरेति· कापिञ्जलानि स्वस्त्ययनानि भवन्ति ॥५३॥ प्रेहि प्रहर वा दावान् गृहेभ्यः स्वस्तये । कपिञ्जल प्रदक्षिणं शतपत्राभि नो वद ॥ भद्रं वद दक्षिणतो भद्रमुत्तरतो वद ॥ भद्रं पुरस्तान्नो वद भद्रं पश्चात् कपिञ्जल ॥ शुनं वद दक्षिणतः शुनमुत्तरतो वद । शुनं पुरस्तान्नो वद शुनं पश्चात् कपिञ्जल ॥ भद्रं वद पुत्रैर्भद्रं वद गृहेषु च । भद्रमस्माकं वद भद्रं नो अभयं वद ॥ आवदंस्त्वं शकुने भद्रमावद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः ॥ यदुत्पतन्वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः । यौवनानि महयसि जिग्युषामिव दुन्दुभिः ॥ कपिञ्जल प्रदक्षिणं शतपत्राभि नो वदेति ॥ कापिञ्जलानि स्वस्त्ययनानि भवन्ति ॥५४॥ यो अभ्यु बभ्रुणायसि स्वपन्त·

को अग्नि की परिक्रमा करावे (उपरि घुमाकर दूर में उसे फेंक देवे) ॥४८॥ संक्रामक सब ही रोगों के संसर्ग दोष की शान्ति को कहते हैं । अपामार्ग की इध्मों को अग्नि में डाले ॥४९॥ 'यद्वाचीनं०' से आचमन करे ।.५०॥ "यत्ते भूम" से ओषधि आदि को खने (जहां कहीं जिस ओषधि आदि को खनने का काम पड़े वहाँ इसी मंत्र से खनन करे) ॥५१॥ और "यत्ते ऊनं०" से खने हुए गर्त को भर देवे ॥ ५२॥ "प्रेहि प्रहर०" इत्यादि से कापिञ्जल स्वस्त्ययन होते हैं ॥५३॥ कपिञ्जल पक्षी की बोली सुनकर ग्राम में या वन में किसी पक्षी कि बोली को सुनकर या स्वयं क्रुद्ध भाषण करके या दूसरे की बात सुनकर । उलूक, कपोतकी बोली पूर्व या उत्तर दिशा से सुनने पर लोक में निन्दित मानी जाती है, जो कुछ संसार में विरुद्ध सुने या देखे सब ही के लिये यह स्वस्त्ययन होता है ॥ ५४ ॥ मैदान में यदि सोवे, बन या शून्य घरमें या पर्वत

मस्ति पुरुषं शयानमगस्त्वलम् ॥ अयस्मयेन ब्रह्मणाऽश्ममयेन वर्मणा पर्यस्मान्वरुणो दधदित्यभ्यवकाशे संविशत्यभ्यवकाशे संविशति ॥५५॥ ॥१०॥४६॥

इत्यथर्ववेदे कौशिकसूत्रे पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥५॥

उभयतः परिच्छिन्नं शरमयं बर्हिराभिचारिकेषु॥१॥ दक्षिणतः सम्भारमाहरत्याङ्गिरसम्॥२॥इङ्गिडमाज्यम्॥३॥ सव्यानि ॥४॥ दक्षिणापवर्गाणि ॥५॥ दक्षिणा प्रवण ईरिणे दक्षिणामुखः प्रयुङ्क्ते ॥६॥ साग्नीनि ॥७॥ अग्ने यत्ते तप इति पुरस्ताद्धोमाः ॥८॥ तथा तदग्ने कृणु जातवेद इत्याज्यभागौ ॥९॥ निरमुं नुद इति संस्थित-

---

पर तब "यो अभ्य बभ्रूणा" इस ऋचा का जप कर सोवे ॥५५॥१०॥४६॥ यह छयालीसवीं कण्डिका समाप्त हुई ॥४६॥

इति अथर्ववेद के कौशिकसूत्र का पञ्चम अध्याय का भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥५॥

अब अथर्ववेद विहित अभिचार कर्म को कहते हैं। यद्यपि मीमांसा ग्रन्थ में इसका निषेध है परन्तु मनुस्मृति में विहित करके लिखा गया है। दोनों ओर मूल और अग्र भाग कटे शरों से आभिचारिक वेदिका अस्तरण करना चाहिये ॥१॥ आङ्गिरस कल्प के अनुसार प्रयोजनीय सामग्रियों को दक्षिण भाग में लाकर धरे ॥२॥ दक्षिण दिशा में मण्डप बनवावे उसमें यथोक्त विधि से पताका तोरणों से सुसज्जित दरवाजे बनवावें। इङ्गिड को आज्य करे। वाम से आरम्भ कर दक्षिण में आभिचारिक कर्मों की समाप्ति करे ॥३॥४॥५॥ वेदि दक्षिण को ढालुआ हो, दक्षिण मुख करके कर्त्ता कर्म करने में प्रवृत्त होवे ॥६॥ जितने कर्म हों सब अग्नि के साथ हों ॥७॥ "अग्ने यत्ते०" इत्यादि पाँच सूक्त, पाँच अपत्य और पाँचजन्य होते हैं। इनसे पुरस्तात् होमों को करे ॥८॥९॥ और "तदग्ने कृणु जातवेद०" इत्यादि सूक्त से आज्यभाग की दो ऋचायें ॥९॥ "निरमुं नुद" इत्यादि सूक्त से संस्थित होमों को करे ॥१०॥ अब अभि-

होमाः ॥१०॥ कृत्तिकारोकारोधावाप्येषु ॥११॥ भरद्वाजप्रव्रस्केनाङ्गिरसं दण्डं वृश्चति ॥१२॥ मृत्योरहमिति बाधकोमादधाति ॥१३॥ य इमामयं वज्र इति द्विगुणामेकवीरान्संनह्य पाशान्निमुष्टितृतीयं दण्डं सम्पातवत् ॥१४॥ पूर्वाभिर्बध्नीते ॥१५॥ वज्रोऽसि सपत्नहा त्वयाद्य वृत्रं साक्षीय । त्वामद्य वनस्पते वृक्षाणामुदयुष्महि ॥ स न इन्द्र पुरोहितो विश्वतः पाहि रक्षसः । अभि गावो अनूषताभि द्युम्नं बृहस्पते। प्राण प्राणं त्रयस्वासो असवे मृड ॥ निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ॥ इति दण्डमादत्ते ॥१६॥ भक्तस्याहुते न मेखलाया ग्रन्थि-

---

चार प्रयोग करने के लिये काल का नियम कहते हैं । कृत्तिका—नक्षत्र में अरोध कृष्णपक्ष अरोधकः, अमावास्या के साथ—योग होना चाहिये । इन समयों में अभिचार कार्य होना चाहिये कृत्तिका औरोध में । अवाप्य ग्रहण विधान की समाप्ति तक समझने के लिये । अभ्यातानान्त होम के पश्चात् "दूष्या दूषिरसि०" इस सूक्त से तिलक मणि को लाकर अभिमंत्रण कर इस मणि को कर्म कराने वाले, कर्त्ता और सदस्य प्रत्येक व्यक्ति बाँध लेवें-आत्मरक्षा के लिये ॥११॥ अब दीक्षा कही जाती है । शुक्लपक्ष की त्रयोदशी तिथि में अपराह्न समय अभ्यातानान्त तक कर्म करके "द्यावापृथिवी उर्वन्तरिक्षं ०" सूक्त और "कनकरजत०" सूक्त—इन दो सूक्तों से कर्त्ता बास के दण्ड को काटे ॥१२॥ "मृत्योरहं०" से बाधक (व्याधिघातिक) समिधाओं का आधान करे ॥१३॥ "य इमां देवो मेखलां०" पञ्च सूक्त इस सूक्त से मेखला धर कर । "अयं वज्र०" इस सूक्त से दण्ड को रख कर "य इमां०" ऋचा से मेखला कमर में बांधे "वज्रोऽसि०" सूक्त से दण्ड को ग्रहण करे ॥ "नमो नमस्कृद्भ्य०" से सप्तर्षियों का उपस्थान करे—शाला के बाहर । तब शाला के भीतर जाकर व्रतादानीय समिधों को आधान करे । (शान्तवृक्षों की) और व्रतश्रावण वहीं करे, अभ्यातानादि उत्तर तंत्र करे ॥ एवं दीक्षित तीन रात तक भोजन न करे ॥ तीन रात बीत जाने

मालिम्पति ॥१७॥ अयं वज्र इति बाह्यतो दण्डमूर्ध्व-मवागग्रं तिसृभिरन्वृचं निहन्ति ॥१८॥ अन्तरुपस्पृ-शेत् ॥१९॥ यदश्नामीति मन्त्रोक्तम् ॥२०॥ यत्पात्रमाहन्ति फड्ढतोऽसाविति ॥२१॥ इदमहमामुष्यायणस्यामुष्याः पुत्रस्य प्राणापानावप्यायच्छामीत्यायच्छति ॥२२॥ ये अमावास्यामिति संनह्य सीसचूर्णानि भक्तेऽलङ्कारे ॥२३॥ पराभूतवेणोर्यष्ट्या बाहुमात्र्यालङ्कृतयाहन्ति ॥२४॥ द्यावापृथिवी उर्विति परशुपलाशेन दक्षिणा धावतः पदं वृश्चति ॥२५॥ अन्वक्तिस्तिर्यक्तिः ॥२६॥ अक्ष्णया संस्थाप्य ॥२७॥ आव्रस्कान्यांशून्पलाशमुपनह्य भ्रष्टेऽभ्य-

---

पर कृष्णपक्ष के पड़िवा को कर्म होगा ॥१४॥१५॥१६॥ पूर्वोक्त दण्ड को लेकर मेखला के गाँठ को "आहुतास्यभिहुता०" इस ऋचा को पढ़ कर प्रति दिन लीपे ॥१७॥ "अयं वज्र०" से शाला के बाहर दण्ड को पकड़ कर अग्रभाग को तीन ऋचा में से प्रत्येक ऋचा को पढ़ २ कर मारे ॥१८॥ और शालाके भातर जल का स्पर्श करे ॥१९॥ "यद-श्नामि यद् गिरामि०" इन दो ऋचा से भोजन करे; और "यत्पिबामि०" ऋचा से जल पीवे ॥२०॥ और "फड्ढतोऽसौ०" से भोजन (यहाँ असौ की जगह शत्रु का नाम बोले) पात्र को मारे ॥२१॥ फिर दण्ड को पकड़ कर "इदमहमामुष्यायणस्यामुष्याः पुत्रस्य०" इत्यादि पढ़ कर "आमुष्यायणस्य" की जगह शत्रु का नाम लेकर मेखला के गाँठ को दृढ़ करे ॥२२॥ "येऽमावास्यां०" से सीस (सिसा) को चूर्ण करके शत्रु के भोजन या वस्त्रालंकारादि में डाल देवें ॥२३॥ गिरे हुए बाँस की हाथ भर की अलंकृत छड़ी से शत्रु को मारे ॥२४॥ "द्यावापृथिवी उरु०" इत्यादि से परशु वृक्ष के पत्ते से दक्षिणादि दौड़ते शत्रु के पैर की जगह को हलका काटे ॥२५॥ छेदन का नियम यह है कि-अनुपद की रेखाओं से टेढ़े त्रिकोण में एक २ को तीन २ बार सूक्त को पढ़े ॥२६॥ कोण द्वारा संस्थापन करके उस पैर चिह्न से धूलि लेकर वध के पत्ते में बाँध कर के भ्राष्ट्र में डाल देवे ॥२८॥ शब्द होने पर शत्रु मर

स्यति ॥२८॥ स्फोटस्तु स्तृतः ॥२९॥ पश्चादग्नेः कर्ष्वां कूद्युपस्तीर्णायां द्वादशरात्रमपर्यावर्तमानः शयीत ॥३०॥ तत उत्थाय त्रिरह्न उदवज्रान् प्रहरति ॥३१॥ नद्या अनामसम्पन्नाया अश्मानं प्रास्यति ॥३२॥ उष्णेऽक्षतसक्तूननुपमथिताननुच्छ्वसन्पिबति ॥३३॥ कथं त्रींस्त्रीन्काशीं-स्त्रिरात्रम् ॥३४॥ द्वौ द्वौ त्रिरात्रम् ॥३५॥ एकैकं षड्रात्रम् ॥३६॥ द्वादश्याः प्रातः क्षीरौदनं भोजयित्वोच्छिष्टानुच्छिष्टं बहुमत्स्ये प्रकिरति ॥३७॥ सन्धावस्तु स्तृतः ॥ ॥३८॥ लोहितशिरसं कृकलासममून् हन्मीति हत्वा सद्यः कार्यो भाङ्क्ते शयने ॥३९॥ लोहितालङ्कृतं कृष्णवसनमनूक्तं

गया जानो ॥२९॥ अग्नि के पश्चिम भाग में कर्षू में बैर के डाल को बिछा कर १२ रात तक बिन लौट पौट किया—एक करवट ही शयन करे ॥३०॥ इसके अनन्तर जाग कर तीन दिन जल को हाथ में लेकर दक्षिण मुँह फेके ॥३१॥ जिस नदी का कोई विशेष नाम नहीं है, उसका पत्थर लेकर "द्यावापृथिवी०" इस सूक्त से दक्षिण मुख कर फेके ॥३२॥ गर्म जल में अक्षत (बिन कूटे जौ का) सत्तू को बिना आलोडन किये, बिना साँस लिये तीन रात इस भाँति पीवे कि पहिली रात में तीन बार पीवे, श्वास बन्द करके, दो दो बार तीन रात में, और एक एक बार छः रात तक—स्मरण रहे कि जल पीने में एक ही साँस में पीवे और एक २ दिन में एक २ उच्छिष्ट जल पीवे। और प्रति दिन "द्यावापृथिवी०" सूक्त से जल का अभिमंत्रण कर लिया करे ॥३३॥ ॥३४॥३५॥३६॥ द्वादशी के प्रातःकाल ब्राह्मणों को क्षीरौदन भोजन कराके अनुच्छिष्ट क्षीरौदन को बहुत मच्छ वाले जलाशय में डाल देवे। यदि मछलियाँ पंक्ति बांध कर दौड़ती दीख पड़े तो जानना कि शत्रु मारा गया ॥३७॥३८॥ "द्यावापृथिवी०" सूक्त से लाल शिर वाले कृकलास को "अमून्हन्मि०" कह कर मार कर "सद्यः कार्यम्"–ऐसा बोले। और भाङ्क्ति शयन पर कृकलास को अभिमंत्रण कर लोहित से अलंकृत कृकलास को काला वस्त्र पहना कर अग्नि में जलावे। और

दहति ॥४०॥ एकपदाभिरन्योऽनुतिष्ठति ॥४१॥ अङ्कशः सर्वहुतमन्यम् ॥ ४२ ॥ पश्चादग्नेः शरभृष्टीर्निधायोदग्व्रजस्या स्वेदजननात् ॥४३॥ निवृत्य स्वेदालङ्कृता जुहोति । ॥४४॥ कोश उरः शिरोऽवधाय पदात्पांसून ॥४५॥ पश्चादग्नेर्लवणमृडीचीस्तिस्रोऽशोतीर्विकर्णीः शर्कराणाम्॥४६॥ विषं शिरसि ॥४७॥ बाधकेनावागग्रेण प्रणयन्नन्वाह ॥४८॥ पाशे स इति कोशे ग्रन्थोनुद्ग्रथ्नाति ॥ ४९ ॥ आमुमित्यादत्ते ॥५०॥ मर्मणि खादिरेण स्रुवेण गर्त्तं खनति ॥ ५१ ॥ बाहुमात्रमतीव इति शरैरवज्ज्वालयति ॥५२॥ अवधाय सञ्चित्य लोष्टं स्रुवेण समोप्य ॥५३॥ अमुमुन्नैषमित्युक्तावलेखनीम् ॥५४॥ छायां वा ॥ ५५ ॥ उपनिनयते ॥५६॥ अन्वाह ॥५७॥१॥४७॥

"अग्ने यत्ते तपः०" इत्यादि पाँच सूक्तों से उपस्थान करे। और अन्य कर्त्ता ८ टुकड़ा करके प्रत्येक ऋचा से आहुति देवे। और लोग एक पैर से खड़े रहें। अग्नि के पश्चात् भाग में शरभृष्टी को डाल कर। उत्तर तंत्र क्रिया करने को जाने में जो पसीना आया हो तो पसीना सूख जाने पर उस पसीने से अभ्यक्त शरभृष्टी से आठ २ आहुतियाँ प्रत्येक ऋचा से देवे ॥४४॥४५॥ अभ्यातानान्त करके हृदय और शिर पर धूलि डाल कर, अग्नि के पश्चिम भाग में लवणरूजका को और २४० शर्करा कोश में धर कर विष को शिर पर धरे ॥४५॥४६॥४७॥ व्याधिघातक दण्ड से प्रेरण करता हुआ प्रति कोश को पीछे से कहे ॥४८॥ "पाशे स बद्ध०" से कोश में गांठें बाँधे। "आमुं०" से लेवे ॥४९॥५०॥ मर्म में खादिर स्रुव से गर्त को बाहुमात्र खनन करे। और "अतीव य०" से शरों से जलावे ॥५१॥५२॥ धूलि को गर्त में स्रुव से डाल कर ॥५३॥ "अमुमुन्नैषं०" इस मंत्र से उक्तावलेखनी को, या शत्रु की छाया को दार्भ्युष से विद्ध करे और शत्रु के पास के जल से मार्जन करे (भरद्वाज प्रव्रस्क से) ॥५४॥५५॥१॥४७॥ यह सैतालिसवीं कण्डिका समाप्त हुई ॥

भ्रातृव्यक्षयणमित्यरण्ये सपत्नक्षयणीरादधाति ॥१॥ ग्राममेत्याावपति ॥२॥ पुमान् पुंस इति मन्त्रोक्तमभिहुतालङ्कृतं बध्नाति ॥३॥ यावन्तः सपत्नास्तावतः पाशानिङ्गिडालङ्कृतान्सम्पातवतोऽनूक्तान्ससूत्रांश्चम्वा मर्मणि निखनति ॥४॥ नावि प्रैणान्नुदस्व कामेति मन्त्रोक्तं शाखया प्रणुदति ॥५॥ तेऽधराञ्च इति प्लावयति ॥६॥ बृहन्नेषामित्यायन्तं शप्यमानमन्वाह ॥७॥ वैकङ्कतेनेति मन्त्रोक्तम् ॥८॥ ददिर्हीति साग्नीनि ॥९॥ दंशकपट्टु प्रदक्षिणाति ॥१०॥ तेऽवदन्निति नेतृणां पदं वृश्चति ॥११॥ अन्वाह ॥१२॥ ब्रह्मगवीभ्यामन्वाह ॥१३॥ चेष्टाम् ॥१४॥ विचृतति ॥१५॥

अरण्य में जाकर "भ्रातृव्यक्षयणं०" से शत्रुक्षयणीय अश्वत्थ, कृकलास, एरण्ड, श्लेष्मान्तक, खदिर, शर की समिधाओं का आधान करे ॥१॥ तब ग्राम में आकर व्रीहि, यव, तिल इनको अग्नि में हवन करे ॥२॥ खैर के वृक्ष से उत्पन्न अश्वत्थ के मणि को "पुमान्पुंस०" से आहुति देकर अलंकृत कर बाँधे ॥३॥ जितने शत्रु हों उतने ही पाशों को इङ्गिडों से अलंकृत करके सम्पात वाला करके प्रकृत सूक्त से अनूक्त के साथ सूत से सम्बन्ध करके मर्मों को निखनन करे ॥४॥ "नावि प्रैणान्नुदस्व काम" से दोनों को अश्वत्थ शाखा से प्रणुदन करे ॥५॥ "तेऽधराञ्च०" से नाव को जल से भर देवे ॥६॥ शत्रु या आक्रुष्यमाण पुरुप अग्नि के सम्मुख आता हो तो "बृहन्नेषां०" मंत्र पढ़े ॥७॥ वैकङ्कत स्रुव से मंत्रोक्त को आहुति देवे ॥८॥ कृकलास कर्म, शरभृष्टि कर्म, शत्रुक्षयणीय कर्म, ६ गाँव में आकर करले ६ कर्म तीन पाश कर्म, विकङ्कत कर्म २१ तंत्र होते हैं ॥९॥ सूक्त के अन्तिम मंत्र से सर्प छत्र को चूर्ण करे ॥१०॥ "तेऽवदन्न०" से ब्राह्मण गो-नेतृ के पद को काटे या नेताओं को कहे ॥११॥१२॥ "नैतां ते देवा" इति एका ब्रह्मगवी, दूसरी "श्रमेण तपसा०" इन दो ब्रह्मगवी ऋचाओं को नेताओं को कहे। सदा गोहरण और मारण क्रिया में ब्रह्मचारी जप करे ॥१३॥ मारण, विशसन, अधिश्रयण, भक्षणादि द्रेष्य

ऊबध्ये ॥१६॥ श्मशाने ॥१७॥ त्रिरमून् हनस्वेत्याह ॥१८॥ द्वितीययाश्मानमूबध्ये गूहयति ॥१९॥ द्वादशरात्रं सर्वं-व्रत उपश्राम्यति ॥२०॥ द्विरुदिते स्तृतः ॥२१॥ अवाग-ग्रेण निवर्तयति ॥२२॥ उप प्रागादिति शुने पिण्डं पाण्डुं प्रयच्छति ॥२३॥ ताछं बध्नाति ॥२४॥ जुहोति ॥२५॥ आदधाति ॥२६॥ इदं तद्युजे यत्किं चासौ मनसेत्याहि-ताग्निं प्रतिनिर्वपति ॥२७॥ मध्यमपलाशेन फलीकरणा-ञ्जुहोति ॥२८॥ निरमुमित्यङ्गुष्ठेन त्रिरनुप्रस्तृणाति ॥२९॥ शरं कद्विन्दुकोष्ठैरनुनिर्वपति ॥३०॥ लोहिताश्वत्थपला-शेन विषावध्वस्तं जुहोति ॥३१॥ त्वं वीरुधामिति मूत्र-

---

गौ में चेष्टा, वध्य के निमित्त हवि करना ॥१४॥१५॥ ऊबध्य को श्मशान में धर कर उस पर बैठ कर "श्रमेण तपसा०" अनुवाक का जप करे। १२ रात तक प्रति दिन जप करे। उसके बाद दो बार सूर्य के उदय होने पर अर्थात् चौदहवां दिन—शत्रु मारा गया जानो ॥२१॥ तब बाँस के दण्ड के अग्रभाग से निवर्तन करे ॥२२॥ "उपप्रागात्०" से श्वेत मिट्टी को अभिमंत्रण कर कुत्ते को देवे ॥२३॥ पलाशमणि लाकर अभिमंत्रण कर उसे बाँधे ॥२४॥ इङ्गिड की आहुति देवे ॥२५॥ समिदाधान करे ॥२६॥ "इदं तद्युजे यत्किंचासौ मनसा०" से आहिताग्नि के प्रति अभिचार करे ॥२७॥ "इदं तद्युजे०" सूक्त के पांच ऋचा से पलाश के मध्यम पत्र से चावल के गुण्डे से आहुति देवे ॥२८॥ "निरमुं०" से अग्नि के पश्चिम भाग में अंगूठे से तीन तह आस्तरण करे ॥२९॥ शर से स्तरण करे, ओडेक, कोष्ट, इङ्गिड, इनमें से एक को हटा देवे और शेष की आहुति देवे ॥३०॥ लाल अश्वत्थ के पत्ते से विषावध्वस्त की आहुति करे ॥३१॥ बाहर लवनादि प्रतिष्ठापनान्त तक करके उस अग्नि को विकाश करे और शर से अग्नि का प्रणयन करे। "निरमुं०" सूक्त से स्तरण करके फिर मंत्र से स्तरण करे। एवं "निरमुं०" सूक्त द्वारा अभ्यातानान्त करके इङ्गिड की आहुति देवे। "त्वं वीरुधां०" से मल मूत्र को बछड़े के शेफ के चमड़े में क्रकच से धर कर बाधक से पीस

पुरीषं वत्सशेप्यायां ककुचैरपिधाप्य संपिष्य निखनति ॥३२॥ शेप्यानडे ॥ ३३ ॥ शेप्यायाम् ॥ ३४ ॥ यथा सूर्य इत्यन्वाह ॥३५॥ उत्तरया यांस्तान् पश्यति ॥३६॥ इन्द्रोतिभिरग्ने जातान्यो नस्तायद्दिप्सति यो नः शपादिति वैद्युद्धतीः ॥३७॥ सान्तपना इत्यूर्ध्वशुषीः ॥३८॥ घ्रंसश्रृतं पुरोडाशं घ्रंसविलीनेन सर्वहुतम् ॥३९॥ उदस्य श्यावावितीषीकाञ्जिमण्डूकं नोललोहिताभ्यां सूत्राभ्यां सकक्षं बद्ध्वोष्णोदके व्यादाय प्रत्याहुति मण्डूकमपनुदत्यभिन्युब्जति ॥४०॥ उपधावन्तमसदन् गाव इति काम्पीलं संनह्य क्षीरोऽस्सिक्ते पाययति लोहितानां चैकशम् ॥ अशिशिषोः क्षीरौदनम् ॥४२॥ आमपात्रमभ्यवनेनेक्ति ॥४३॥२॥४८॥

कर चूर्ण कर शत्रु के चर्म में निखनन करे ॥३२॥ मूत्र पुरीष चूर्णों को शेप के चमड़े में प्रविष्ट कर वाधक से संपिष्टन करे—खनन करे और "यथा सूर्यो नक्षत्राणां०" ऋचा को पढ़े शत्रु को देख कर ॥३३॥३४॥ ३५॥ और उत्तरा "धावन्तो सपत्नानां०" ऋचा से शत्रु को आते देखे ॥३६॥ और "इन्द्रोतिभिरग्ने०" मंत्र से वन में जाकर बिजुली गिरने से जो वृक्ष जल गया हो उसकी लकड़ी लाकर ग्राम में आकर उसकी आहुति करे ॥३७॥ जिस वृक्ष का ऊपर का भाग सूख गया हो उसकी लकड़ी का आधान करे ॥३८॥ पका हुआ उष्णपुरोडाश, धूप से पिघले हुए मक्खन से सर्वहुत होम करे ॥३९॥ जिस मण्डूक (मेढक) के शरीर पर मूंज की इषीका की रेखा सी चिन्ह हो उसको इषीकाञ्जि मण्डूक कहते हैं। इस मण्डूक को "उदस्य श्यावौ०" से नीला एवं लाल रंग के दो सूतों से दोनों हाथों से बांध कर उष्ण जल में छोड़ कर अग्नि में आहुति करके उसी ऋचा से मण्डूक को नुदन करे और उष्ण जल से उसे छिपा देवे ॥४०॥ एवं "उपधावन्तमसदन्गाव०" इस मंत्र से अभिचारोक्त शालि शकुनी का क्षीरौदन पका कर अभिमंत्रण करके शत्रु को खाने को देवे। और बिना बच्चे की गाय के दूध में पका

सपत्नहनमित्यृषभं सम्पातवन्तमतिसृजति ॥ १ ॥ आश्वस्थीरवपन्नाः ॥२॥ स्वयमिन्द्रस्यौज इति प्रक्षालयति ॥३॥ जिष्णवे योगायेत्यपो युनक्ति ॥४॥ वातस्य रंहितस्यामृतस्य योनिरिति प्रतिगृह्णाति ॥५॥ उत्तमाः प्रताप्याधराः प्रदायैनमेनानधराचः पराचोऽवाचस्तपसस्तमुन्नयत देवाः पितृभिः संविदानः प्रजापतिः प्रथमो देवतानामित्यतिसृजति ॥ ६ ॥ इदमहं यो मा प्राच्या दिशोऽघायुरभिदासादपवादीदिषूगुहः तस्येमौ प्राणापानावपक्रामामि ब्रह्मणा ॥७॥ दक्षिणायाः प्रतीच्या उदीच्या ध्रुवाया व्यध्वाया ऊर्ध्वायाः ॥८॥ इदमहं यो मा दिशामन्तर्देशेभ्य इत्यपक्रामामीति ॥९॥ एवमभिष्ट्वा ॥१०॥ नापो-

---

क्षीरौदन शत्रु के लिये खाने को देवे और कच्चे पात्र में हाथ धोवे ॥४१॥४२॥४३॥२॥४८॥ यह अड़तालिसवीं कण्डिका समाप्त हुई ॥

"सपत्नहनं०" सूक्त से सम्पातवन्त करके ऋषभ (वृषभ) को वृषोत्सर्ग की भाँति छोड़े । इसका विधि आगे कहा जाता है । स्वयं पतित (अपने आप गिरे हुए) अश्वत्थ की लकड़ियों की समिधा बनावे ॥१॥२॥ "स्वयमिन्द्रस्यौज०" से प्रक्षालन करे ॥३॥ "जिष्णवे योगाय०" से जल लावे ॥ "वातस्य रंहितस्यामृतस्य योनिः०" से जल ग्रहण करे ॥५॥ उदवज्रों के विधान को कहते हैं । "इन्द्रस्यौज०" से दूर्वा डाले घट को जल से प्रक्षालन करे । "जिष्णवे योगाय" इत्यादि से छः जल भरे घड़ों को जल के पास रक्खे । एवं "इदमहं यो मा प्राच्या दिशः०" से आठ ऋचा वाले कल्पज सूक्त से जल में घड़े को डाले । "इदमहं०" से घड़े से उदक में "इदमहं०" सूक्त से घड़े के मुख को जल में डुबावे और "इदमहं यो मा प्राच्या दिशः०" सूक्त से घड़े में जल भर कर लौट आकर "इदमहं०" सूक्त से उसे मण्डप में स्थापना करे--इस भाँति अभिचार कर्म में जल का लाना होता है । जिस नियम से वज्र प्रहरण किया जाता है उसे कहते हैं । "इन्द्रस्य०" इत्यादि से सब क्रियाओं को करके "इदमहं०" से स्थापनान्त तक करके "अग्नेर्भाग०" इत्यादि आठ

हनिवेष्टनानि सर्वाणि खलु शश्वद्भूतानि ॥ ११ ॥ ब्राह्मणाद्वज्रमुद्यच्छमानाच्छङ्कन्ते मां हनिष्यसि मां हनिष्यसीति तेभ्योऽभयं वदेच्छमग्नये शं पृथिव्यै शमन्तरिक्षाय शं वायवे शं दिवे शं सूर्याय शं चन्द्राय शं नक्षत्रेभ्यः शं गन्धर्वाप्सरोभ्यः शं सर्पेतरजनेभ्यः शिवं मह्यमिति ॥१२॥ यो व आपोऽपां यं वयमपामस्मै वज्रमित्यन्वृचमुदद्वज्रान् ॥१३॥ विष्णोः क्रमोऽसीति विष्णुक्रमान् ॥१४॥ ममाग्ने वर्च इति बृहस्पतिशिरसं पृषातकेनोपसिच्याभिमन्त्र्योपनिदधाति ॥१५॥ प्रतिजानन्नानुव्याहरेत् ॥१६॥ उत्तमेनोपद्रष्टारम् ॥१७॥ उदेहि वाजिन्नित्यर्धर्चेन नावं मज्जतीम् ॥१८॥ समिद्धो-

---

ऋचाओं से दो करना आधे को घड़े में करके आधे को भाजन में धर के भाजन को अग्नि पर तपावे और घड़े को अन्य पुरुष को देकर "अग्नेर्भाग०" आठ ऋ० से तपावे। बाहर दक्षिणाभिमुख होकर बैठ भाजन को आगे करके "वातस्य रंहितस्य०" मंत्र से जल को लेकर "समग्नय०" कल्पज सूक्त से सब भूतों के लिये अभय कहना। और "यो व आपोऽपां०" से वज्र को फेंके "अनाधराच पराच" इस कल्पज ऋचा से भाजन, उदक को भूमि पर लावे॥ "यं वयं०" इस सूक्त ही से "अपामस्मै वज्रं०" इस एक ऋ० से ऐसा ही करे। "इन्द्रस्यौज०" इत्यादि करे॥ "विष्णोः क्रमोऽसि" १२ ऋचाओं में से प्रत्येक ऋचा से विष्णु क्रमों को शत्रु के सम्मुख करे। सब विधान से बृहस्पति शिर ओदन को शत्रु के लिये देवे॥ "ममाग्ने वर्च"० इस सूक्त से उस को पृषातक से सिंचन करके "तस्यौदनस्य०" इस अर्ध सूक्त से अभिमंत्रण करके देवे। सूक्त से अभिसृत करने पर सूक्त से सम्पातवन्त करे॥ "उदेहि नावं" शत्रुओं को कहे। शङ्कुसहित पाशों को अभिमंत्रण करके वन में डाल देवे। शत्रु के पदचिन्ह को छेदन करे। पाशों को भ्राष्ट्र में डाले। कच्चे पात्र पर शत्रु के हाथ प्रक्षालन करे॥ वृषभको लाकर शत्रु के घरों की ओर उसे छोड़े॥ लाल शालि के क्षीरौ

ऽग्निर्य इमे द्यावापृथिवी अजैष्मेस्यधिपाशानादधाति ॥१९॥ पदे पदे पाशान् वृश्चति ॥२०॥ अधिपाशान् बाधकाञ्छङ्कूंस्तान् संक्षुद्य संनह्य भ्रष्ट्रेऽभ्यस्यति ॥२१॥ अशिशिषोः क्षीरौदनादीनि त्रीणि ॥२२॥ गर्तेध्मावन्तरेणावलेखनीं स्थाणौ निबध्य द्वादशरात्रं सम्पातानभ्यतिनिनयति ॥२३॥ षष्ठ्योदवज्रान्प्रहरति ॥२४॥ सप्तम्याचामति ॥२५॥ यश्च गामित्यन्वाह ॥२६॥ निर्दुर्मण्य इति संधाव्याभिमृशति ॥२७॥३॥४९॥

इत्यथर्ववेदे कौशिकसूत्रे षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥६॥

स्वस्तिदा ये ते पन्थान इत्यध्वानं दक्षिणेन प्रक्रा-

दन को लाकर अभिमंत्रण करके शत्रु के लिये देवे ॥ शत्रु की मूर्त्ति मट्टी की बनाकर वेदि के मध्य में ऊँचे स्थाणु में बाँध देवे और उसके शिर पर घी के सम्पातों को चुलावे ॥ "यस्मिन् षड्डुर्वीः पञ्च"० से उदवज्रों से उक्त विधान से शत्रु के शिर पर मारे ॥"योऽन्नादोऽन्नपतिः०" ऋचा से शत्रु को मन से आचमन करे तो स्वयं शत्रु का मरण हो जावेगा । "यश्च गां पदा स्फुरति ऋग्द्वयाधिकारः" तीन ऋ० से शत्रु को देखकर पढ़े ॥ अवभृथ में स्नान कर "निर्दुर्मण्य०" से सर्वौषधियों से अपने को अभिमर्शन करे ॥ अभिचार करके इस शान्ति को कर्त्ता करे ॥ अभिचार पद्धति समाप्त हुई ॥ इस प्रयोग से मरण, बन्धन या बेहोश गिर जाना, पागल होना, होता है ।६।७।८।९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६ ।१७।१८।१९।२०।२१।२२।२३।२४।२५।२६।२७।।३॥४९॥ यह उनचासवी कण्डिका समाप्त हुई ॥४९॥ और अथर्ववेद के कौशिक सूत्र के छठा अध्याय का भाषानुवाद भी समाप्त हुआ ॥६॥

अब स्वस्त्ययन कर्म को कहते हैं । व्याघ्र, चोर, दुराल, चरक, सिंह आदि बनैले हिंस्रक जन्तुओं का मार्ग में चलते समय भय हो तो "स्वस्तिदा ये ते०" इत्यादि मंत्रों को मार्ग में जाने के पहिले दहिना पग आगे कर चले और गौ को आगे कर स्वयं उसके पीछे-पीछे चले । मार्ग में कीलक गाड़ता उखाड़ता हुआ घर से जंगल को जावे ॥१॥ जल भरे

मति ॥१॥ व्युदस्यत्यसंख्याताः शर्कराः ॥२॥ तृणानि छित्वोपतिष्ठते ॥३॥ आरेऽमूः पारे पातं नो य एनं परिषीदन्ति यदायुधं दण्डेन व्याख्यातम् ॥४॥ दिष्ट्या मुखं विमाय संविशति ॥५॥ त्रीणि पदानि प्रमायोत्तिष्ठति ॥६॥ तिस्रो दिष्टीः ॥७॥ प्रेतं पादाविस्यवशस्य ॥८॥ पाययति ॥९॥ उपस्थास्त इति त्रीण्योप्यातिक्रामति ॥१०॥ स्वस्ति मात्र इति निश्युपतिष्ठते ॥११॥ इन्द्रमहमिति पण्यं सम्पातवदुत्थापयति ॥१२॥ निमृज्य दिग्युक्ताभ्यां दोषो गाय पातं न इति पश्चानडुद्भ्यो यमो

घड़े को अभिमंत्रण करके गोचर भूमि में गौ को ले जावे और धूलि को ढेर कर उसमें से आधे को दहिने हाथ से उठा कर फेके। और एक-एक दर्भ आदि तृणों को तोड़ तोड़ कर फेके और इन्द्र देवता के लिये पाकयज्ञ के विधान से बलि देवे और उपस्थान करे॥ मार्जन कर अभिमंत्रण करके राजा को देवे और "आरेऽमूः" इत्यादि मंत्र से खड्गादि हथियार को ग्रहण करे ॥४॥ तर्जनी अङ्गुली से मुख को माप कर रात्रि में शयन करे ॥५॥ और प्रातः काल उठकर सूक्त का जप कर तीन पग जप कर तब अपने काम में प्रवृत्त होवे ॥६॥ और तीन प्रादेश मात्र जमीन नाप करके चले। मार्ग में जाने के लिये सम्बल ले लेवे। एवं "प्रेतं पादौ०" इत्यादि ऋचा से अभिमंत्रण कर सम्बल में से थोड़ा ब्राह्मण को देवे ॥७॥८॥९॥ "उपस्थास्त०" इस ऋचा से ओदन, सत्तू, वटक आदि तीन द्रव्यों को अभिमंत्रण करके भूमि पर डाले। तीन २ प्रसृति, या ३ अञ्जली, या ३ मुट्ठी। तब मार्ग में जावे। तब मार्ग में कल्याण होगा ॥१०॥ "स्वस्तिमात्र०"इत्यादि से रात्रि में उपस्थान करे॥११॥ वाणिज्य कर्म में लाभ हो उसको कहते हैं। जिस वस्तु का क्रयविक्रय करना हो उस पण्य द्रव्य को "इन्द्रमहम्०" से अभिमंत्रण कर उठावे॥१२॥ "येऽस्यां प्राची दिग्०" इत्यादि दो सूक्तों से आज्यादि १३ द्रव्यों को इकट्ठा करे। अर्थात् पालाशादि २२ वृक्षों की समिधाओं का आधान करे। जहाँ२ समिदाधान करे वहाँ २ सबही जगह ये सब या विकल्प से

मृत्युर्विश्वजिच्छकधूमं भवाशर्वाविस्युपदधीत ॥१३॥ उत्तमेन सारूपवत्सस्य रुद्राय त्रिर्जुहोति ॥१४॥ उपोत्तमेन सुहृदो ब्राह्मणस्य शकृत्पिण्डान् पर्वस्वाधाय शकधूमं किमद्याहरिति पृच्छति ॥१५॥ भद्रं सुमङ्गलमिति प्रतिपद्यते ॥१६॥ युक्तयोर्मा नो देवा यस्ते सर्प इति शयनशालोर्वराः परिलिखति ॥१७॥ तृणानि युगतर्द्मना सम्पातवन्ति द्वारे प्रचृतति ॥१८॥ ऊबध्यं संभिनत्ति ॥१९॥ निखनति ॥२०॥ आदधाति ॥२१॥ अपामार्ग-

---

एक २ होता है ॥१३॥ "भवाशर्वौ मृडतम्" इस सूक्त से चरु की आहुति देवे। रुद्र, भूत, प्रेत, राक्षस, लोकपाल, गृहदेव, महादेव, गण आदि के उपहत और अभिघात में कल्याण होता है। सारूपवत्सा गौ के घृतसे रुद्रदेव के लिये ३ आहुतियाँ देवे ॥१४॥ शीघ्रता से पुण्य मङ्गल कर्म के करने में स्वस्त्ययन को कहते हैं। "भवाशर्वौ मृडतं०" इत्यादि मंत्र से सुहृत् ब्राह्मण के गौ के गोबर के पिण्डों को पर्व तिथि में आधान करके "शकधूमं किमद्याहरिति।" पूछे। ब्राह्मण "भद्रं सुमङ्गलं" आदि ऐसा कहे ॥१५॥ जब शीघ्रता से कार्य्य करने की इच्छा हो तब यह कर्म करके शान्ति कर्म्म करे ॥१६॥ सर्प, वृश्चिक, द्विदंशक, मशक, भ्रमर, भूमि कीट और कृमियों के भय निवृत्ति के लिये। "येऽस्यां स्थ०" सूक्त, "प्राची दिग्०" सूक्त, जिस दिशा के लिये मंत्र पढ़े उसका नाम लेवे। "मा नो देवा०" सूक्त,—इन सूक्तों से बाल को अभिमंत्रण करके घर के सब ओर छिटे और शर्करा को अभिमंत्रण करके शयन पर या घर पर, उर्वरा भूमि में, या घर या बन में बिखेर देवे ॥१७॥ "येऽस्यां स्थ०" सूक्त से तृण माला को युग छिद्र से गिरा कर अभिमंत्रण करके घर के द्वार पर बाँध देवे जिसको कल्याण की इच्छा हो। महानवमी या दीपोत्सव में यह कर्म करे। हाथी के आने जाने के मार्ग में बाँधे। तृणमाला को युगछिद्र से गिराकर मार्ग में, पत्तन द्वार पर, घर के द्वार पर, बाँधे। सर्प, वृश्चिक, मशक, भ्रमर, कृमि के भय में इसको बाँधे ॥१८॥ "येऽस्यां स्थ०" सूक्त से सूखे गोबर को अभिमंत्रण करके घर में ॥१९॥ गोबर को अभिमंत्रण करके पत्तनद्वार पर, घर के द्वार पर,

प्रसूनान्कुद्रीचीशफान् पराचीनमूलान् ॥२२॥१॥५०॥

उदित इति खादिरं शङ्कुं सम्पातवन्तमुद्गृह्णन्नि-खनन्गा अनुव्रजति ॥१॥ निनयनं समुह्य चारे सारूप-वत्सस्येन्द्राय त्रिर्जुहोति ॥२॥ दिश्यान् बलीन् हरति ॥३॥ प्रतिदिशमुपतिष्ठते ॥४॥ मध्ये पञ्चममनिर्दिष्टम् ॥५॥ शेषं निनयति ॥६॥ ब्रह्म जज्ञानं भवाशर्वाविस्या-सन्नमरण्ये पर्वतं यजते ॥७॥ अन्यस्मिन् भवशर्वपशुप-

---

खेत में गाड़ देवे ॥२०॥ गोबर को अग्नि में डाले ॥२१॥ चिड़चिड़ी के फूल को "येऽस्यां स्थ०" से अभिमंत्रण करके घर में बिछावे, और घर के द्वार पर गाड़ देवे। ग्राम में गाड़ देवे। गुडूजी को अभिमंत्रण कर के भाँति २ का काम करे। घर में बिछावे, अभिमंत्रण कर गाड़ देवे। गुडूची के डाढ़ या जड़ को अग्नि में आहुति करे और प्राचीन मूल नामक बूटी को भी इस प्रकार व्यवहार करे ॥२२॥१॥५०॥ यह पचा-सवीं कण्डिका समाप्त हुई ॥

व्याघ्र, चोर, वृक, चरक, सिंह, आदि बन के हिंस्रक जन्तुओं के भय निवृत्ति के लिये स्वस्त्ययन करे। कल्याण चाहने वाला जब घर से बाहर वन आदि होकर जावे तो गौ को आगे करके उसके पीछे कीलक गाड़ता, उसको उखाड़ता जावे ॥१॥ जल के घड़े को अभिमंत्रण करके गौ के आने जाने मार्ग में लावे और पांसुकूट की क्रिया करके उसके आधे भाग को दहिने हाथ से फेके। सारूपवत्सा गौ के घृत से इन्द्रदेव के लिये आहुतियाँ देवे ॥२॥ प्रत्येक दिशा में बलियों को देवे। और "येऽस्यां स्थ०" सूक्त के प्रत्येक ऋचाओं से प्रत्येक दिशाओं का उपस्थान करे ॥३॥४॥ मध्य भाग में पांचवीं बलि देवे ॥५॥ "ब्रह्म जज्ञानं०" और "भवाशर्वौ०" से पर्वत देवता के लिये जंगल में पाकयज्ञ विधान से आज्यभाग तक करके "ब्रह्म जज्ञानमनाप्ता०" इत्यादि सूक्त से आहुति देवे। "हिमवते त्वा जुष्टं निर्वपामि०" इत्यादि आहुति करे। और निकट के पर्वत का यज्ञ करे "भवाशर्वौ मृडतं०" इस अर्थ सूक्त से चरु की आहुति देवे। "भवाय जुष्टं निर्वपामि०" इत्यादि ॥६॥७॥ भवशर्व आदि देवों के लिये पृथक् निर्वाप न करके बड़े भाण्ड में पकावे। ये सात पर्वत देवता हैं। व्याघ्र, चोर, वृश्चिक, हाथी, बन की गौ

स्युग्ररुद्रमहादेवेशानानां पृथगाहुतीः ॥८॥ गोष्ठे च द्वितीयमश्नाति ॥९॥ दर्भानाधाय धूपयति ॥१०॥ भूत्यै वः पुष्ट्यैव इति प्रथमजयोर्मिथुनयोर्मुखमनक्ति ॥११॥ तिस्रो नलदशाखा वत्सान् पाययति ॥१२॥ शाखयोदकधारया गाः परिक्रामति ॥ १३ ॥ अश्मवर्म म इति षडश्मनः सम्पातवतः स्रक्तिषु पर्यधस्तान्निखनति ॥१४॥ अलसालेस्यालभेषजम् ॥१५॥ त्रीणि सिलाञ्जालाग्राण्युर्वरामध्ये निखनति ।१६॥ हतं तर्दमित्यपसा सोसं कर्षन्नुर्वरां परिक्रामति ॥१७॥ अश्मनोऽवकिरति ॥१८॥ तर्दमवशिरसं वदनात्केशेन समुह्योर्वरामध्ये निखनति ॥१९॥ उक्तं चारे ॥ २० ॥ बलीन् हरत्याशाया आशा-

---

इनके भय निवृत्ति के लिये स्वस्त्ययन हुआ ॥८॥ अब गोष्ठ कर्म को कहेंगे। गौ की शान्ती के लिये पाकयज्ञ तन्त्र को करके "इन्द्रदेवतायै०" इत्यादि सूक्त से और "भवशर्वौ मृडतं०" सूक्त से चरु की आहुति देवे और रुद्रदेव के हविका उच्छिष्ट को यजमान खावे ॥९॥ दर्भों का आधान करके धूप देवे ॥१०॥ "भूत्यै वः पुष्ट्यैवः०" । प्रथम उत्पन्न दो बच्चों के मुख को मार्जन करे। अर्थात् पहिली वार ब्यायी हुई गौ की शान्ति "ब्रह्म जज्ञानं०" इत्यादि से करे ॥११॥ नलद की तीन शाखा को वत्सों को पिलावे ॥१२॥ शाखा की जल धारा को अभिमन्त्रण कर गौओं के लिये बाहर जल धारा को लावे ॥१३॥ पत्तन के ग्राम गृह की शान्ति को कहते हैं। घर के कोणों में ४ एक मध्य में नीचे और एक घर के ऊपर यों छः पत्थरों को "अश्मवर्म०" से डाले ॥१४॥ "अलसाल०" से गोधूम को डाले ॥१५॥ और तीन सिलांजलके अग्रभागों को उर्वरा भूमि में डाले ॥१६॥ खेत को नाश करने वाले मूषक, पतङ्ग, शलभ, हरिया, रुरु, और शल्यादि की शान्तिकर्म को कहते हैं। जिस खेत में उक्त सस्यविनाशक जन्तुओं का आक्रमण होवा ही वहां "हतं तर्द०" इत्यादि से पत्थर को अभिमंत्रण करके बखेर देवे ॥१७॥१८॥ मूषक आदि के मुख को केशों से बान्ध करके समुहन करके खेत में गाड़ देवे ॥१९॥ आचार ग्रन्थ में

पतयेऽशिवभ्यां क्षेत्रपतये ॥२१॥ यदैतेभ्यः कुर्वीत वाग्यतस्तिष्ठेदास्तमयात् ॥२२॥२॥५१॥

ये पन्थान इति परीत्योपदधीत ॥१॥ प्रयच्छति ॥२॥ यस्यास्ते यत्ते देवी विषाणा पाशानित्युन्मोचनप्रतिरूपं सम्पातवन्तं करोति ॥३॥ वाचा बद्धाय भूमिपरिलेखम् ॥४॥ आयन इति शमनमन्तरा ह्रदं करोति ॥५॥ शाले च ॥६॥ अवकया शालां परितनोति ॥७॥ शप्यमानाय प्रयच्छति ॥८॥ निदग्धं प्रक्षालयति ॥९॥ महीमू ष्विति तरणान्यालम्भयति ॥१०॥ दूरान्नावं सम्पातवतीं नौमणिं

कहा है प्रत्येक दिशाओं में "आशापतयेऽशिवभ्यां क्षेत्रपतये०" इत्यादि से बलियों को देवे और उस दिन सूर्य भगवान् के अस्त समय तक मौन व्रत धारण करे ॥२०॥२१॥२२॥२॥५१॥ यह एकावनवी कण्डिका समाप्त हुई।

"ये पन्थान०" से परिक्रमा करके आज्य की आहुति करे ॥१॥ मन्थ को अभिमंत्रण करके पथिकों को देवे, भात को अभिमंत्रण करके भोजन करावे। पुरुष को किसी ने बाँध दिया हो उसके मोचनार्थ शान्ति करे। "यस्यास्ते०" इस ऋचा वाले सूक्त से, जिस पदार्थ से बान्धा गया है उसके समान सम्पातवन्त करके सूक्त सदृश दूसरे सम्पातवन्त करे "विषाणापाशान्०" इस चार ऋचा से निगड़ युगल द्वयको सम्पातवन्त करके "यत्ते देवी०" इस तीन ऋचा से निगड युगल द्वय को डालकर। एक मुक्त निगड़ चमड़े वाले को या लोहमय को या जिसे बन्धा हो उसी के समान करके अभ्यातानादि उत्तर तंत्र करे ॥३॥ अब वचन से बान्धे हुए के मोचन को कहते हैं। अग्निदाव की रक्षा को कहते हैं। जल को अभिमंत्रण करके "आयन०" मंत्र से जल को गर्त में डालकर जल से भर देवे ॥५॥ और शाला में भी दोनों कर्म को करे तो आग से उसकी रक्षा होगी ॥६॥ अग्नि के उत्पात में शाला को शेवाल से घेरा करे ॥७॥ "आयन०" सूक्त से शपथ करने वाले को दिव्य को अभिमंत्रण करके (माषको) दिव्य में शुद्धि होती है ॥८॥ अङ्ग जले को जल अभिमंत्रण करके प्रक्षालन करे तो अङ्ग आरोग्य हो जाता है ॥९॥ दूर जाने में नाव से रक्षा के लिये नाव आदि को अभि-

बध्नाति ॥११॥ प्रपथ इति नष्टैषिणां प्रक्षालिताभ्यक्त-पाणिपादानां दक्षिणान्पाणीन्निमृज्योत्थापयति ॥१२॥ एवं सम्पातवतः ॥१३॥ निमृज्यैकविंशतिं शर्कराश्चतुष्पथेऽवक्षिप्यावकिरति ॥१४॥ नमस्कृत्येति मन्त्रोक्तम् ॥१५॥ अंहोलिङ्गानामापो भोजनहवींष्यभिमर्शनोपस्थानमादित्यस्य ॥१६॥ स्वयं हविषां भोजनम् ॥१७॥ विश्वे देवा इत्यायुष्याणि ॥१८॥ स्थालीपाके घृतपिण्डान् प्रतिनीयाश्नाति ॥१९॥ अस्मिन्वसु यदाबध्नन्व प्राणानिति युग्मकृष्णलमादिष्टानां स्थालीपाक आधाय

मंत्रण करके तब उसपर चढ़े। और नौमणि को बान्ध लेवे ॥१०॥ अर्थात् नौका में बैठने वालों को नौमणि को ऋचा से अभिमंत्रण करके सम्पातवती नौमणि को बांध देवे ॥११॥ नष्ट द्रव्य के मिलने को कहते हैं। "प्रपथ०" से नष्ट वस्तु पाने वाले हाथ पैर धोकर साफ करके दहिने हाथ (पाणि) को मार्जन करके उठावे और इसी प्रकार संपातवती (गिरावें) करें ॥१३॥ इक्कीश शर्करा को मार्जन करके चौराहे पर फेक कर बखेर देवे ॥१४॥ और "द्यावापृथिवीभ्यां०" ऋचा को जप करके अर्थ सूक्त से उपस्थान करे ॥१५॥ सप्तप्रतीक का अंहोलिंगगण होता है। इसकी एक२ ऋचा से होम करे। १३ हवियों से आहुति करे ऐसा विकल्प पक्ष है। भोजन को अभिमंत्रण करके खिलावे। भक्ष को खावे। हवि, आज्य और समिधाकी आहुति करे। आप्लुवनावसेचनादि यथासंभव करे। पाप संसर्ग में, व्याधि संसर्ग में, वर्ण संसर्ग में, दूसरे २ पापों में स्वस्त्ययन करे। अंहो लिङ्ग के विकल्प से हृदय को छू कर जप करके आदित्य का उपस्थान करे। उसी सूक्त से अभिमर्शन करे, पुरुष या अन्य का। वृक्ष, घर, स्त्री, पुरुष आदि का स्वस्त्ययन करे। अभिमर्शन करके आदित्य का उपस्थान करे ॥१७॥ हवि को अभिमंत्रण करके खावे। "विश्वेदेवा०" से स्वयं अभिमंत्रण करके खावे ॥१८॥ स्थालीपाक से घी के तीन पिण्डों को करके, धरकर अभिमंत्रण करके घी और स्थालीपाक को खावे। इससे आयु बढ़ेगा ॥१९॥ हिरण्यमणि को

बध्नाति ॥२०॥ आशयति ॥२१॥३॥५२॥

आयुर्दा इति गोदानं कारयिष्यन्सम्भारान् सम्भरति ॥ १ ॥ अमत्रिमोजोमानीं दूर्वामकर्णमश्ममण्डलमानडुहशकृत्पिण्डं षड् दर्भप्रान्तानि कंसमहते वसने शुद्धमाज्यं शान्ता ओषधीर्नवमुदकुम्भम् ॥ २ ॥ बाह्यतः शान्तवृक्षस्येध्मं प्राञ्चमुपसमाधाय ॥ ३ ॥ परिसमुह्य पर्युक्ष्य परिस्तीर्य बर्हिरुदपात्रमुपसाद्य परिचरणेनाज्यं परिचर्य ॥ ४ ॥ नित्यान्पुरस्ताद्धोमान् हुत्वाज्यभागौ च ॥५॥ पश्चादग्नेः प्राङ्मुख उपविश्यान्वारब्धाय शान्त्युदकं करोति ॥६॥ तत्रैतत्सूक्तमनुयोजयति ॥ ७ ॥ त्रिरेवाग्निं सम्प्रोक्षति त्रिः पर्युक्षति ॥ ८ ॥ त्रिः कारयमाणमाचामयति च सम्प्रोक्षति च ॥९॥ शकृत्पिण्डस्य स्थालरूपं कृत्वा सुहृदे ब्राह्मणाय प्रयच्छति ॥ १० ॥ तत्सु-

---

"अस्मिन्वसु०" इत्यादि से स्थालीपाक में डालकर बांधे । और तब भोजन करे ॥२०॥२१॥३॥५२॥ यह बावनवी कण्डिका समाप्त हुई ॥

"आयुर्दा०" से, गोदान कर्म को करने की इच्छा वाला, इसकी सामग्रियों को इकट्ठा करे । यह कर्म वर्ष में करे या जैसा कुल का धर्म हो वैसा करे ॥१॥ अमत्रि, ओजमानी, दूर्वा, अकर्ण, अश्ममण्डल, बैल का गोबर, दर्भ के छः प्रान्त, कटोरा, अखण्ड नये वस्त्र, शुद्ध घृत, शान्ताओषधी, और जल कुम्भ को लावे ॥२॥ और बाहर शान्त वृक्ष के इध्मको पूर्वमुख धरे ॥३॥ परिसमूहन, पर्युक्षण, परिस्तरण, करके बर्हिकुश, जलपात्र को लाकर और आज्यविधि पूर्वक तैयार करके ॥४॥ नित्य पुरस्तात् होमों को करके आज्य भाग की दो आहुतियों को करके ॥५॥ अग्नि के पश्चात् भाग में पूर्वमुख बैठकर अन्वारब्ध हुआ शान्ति जल को करे ॥६॥ वहां "आयुर्दा०" सूक्त की योजना करे ॥७॥ तीन बार अग्नि संप्रोक्षण और तीन ही बार पर्युक्षण करे ॥८॥ और तीन बार करवाने बालक को आचमन एवं संप्रोक्षण करावे ॥९॥ गोबर के पिण्ड को स्थाल रूप करके सुहृत् ब्राह्मण को देवे ॥१०॥ वह ब्राह्मण सुहृत् अग्नि के

हृद्दक्षिणतोऽग्नेरुदङ्मुख आसीनो धारयति ॥ ११ ॥ अथास्मा अन्वारब्धाय करोति ॥ १२ ॥ आयुर्दा इत्यनेन सूक्तेनाज्यं जुह्वन्मूर्ध्नि सम्पातानानयति ॥ १३ ॥ दक्षिणे पाणावश्ममण्डल उदपात्र उत्तरसम्पातान् स्थालरूप आनयति ॥१४॥ अमक्रिमोजोमानीं चोदपात्रेऽवधाय ॥ १५ ॥ स्थालरूपे दूर्वां शान्त्युदकमुष्णोदकं चैकधाभिसमासिच्य ॥१६॥ आयमगन्सविता क्षुरेणेत्युदपात्रमनुमन्त्रयते ॥१७॥ अदितिः श्मश्रिवत्युन्दति ॥१८॥ यत्क्षुरेणेत्युदकपत्रं क्षुरमद्भिश्चोत्य त्रिः प्रमार्ष्टि ॥ ॥१९॥ येनावपदिति दक्षिणस्य केशपक्षस्य दर्भपिञ्जूल्या केशानभिनिधाय प्रच्छिद्य स्थालरूपे करोति ॥ २० ॥ एवमेव द्वितीयं करोति ॥ २१ ॥ एवं तृतीयम् ॥ २२ ॥ एवमेवोत्तरस्य केशपक्षस्य करोति ॥२३॥४॥५३॥

अथ नापितं समादिशत्यक्ष्ण्वन्वप केशश्मश्रुरोम

दक्षिण भाग में होकर उत्तर मुख बैठकर धारण करे ॥११॥ अब इस अन्वारब्ध बालक के लिये करे ॥१२॥ दक्षिणसे सुहृत् के उत्तर हाथ में होकर गिरा कर गोबर पिण्ड पर लावे ॥१४॥ उदपात्र में पोथिका और गुडूची को डालकर तब सम्पात को गोबर पिण्ड पर दूर्वा धरकर डाले और शान्त्युदक और गर्म जल एकत्र धारा करके आसिंचन कर "आयमगन्सविता०" से क्षुरा से उदपात्र को अनुमंत्रण करे। और "अदितिः श्मश्रू०" से दाढ़ी मूछ के बालों को काटे ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ ॥१७॥१८॥ "यत्क्षुरेण०" से जलपात्र को क्षुरा के जल से तीन बार मार्जन करे ॥१९॥ "येनावत्०" से शिर के दक्षिण के केशपक्ष पर दर्भपिञ्जुली द्वारा केशों पर धरकर काटकर ढेर करे ॥२०॥ इसी प्रकार उत्तरकेश पक्ष को भी करे ॥२१॥ इसी भांति तीसरे को करे। ॥२२॥ इसी प्रकार उत्तर केशपक्ष को भी करे ॥२३॥४॥५३॥ यह तिरपनवी कण्डिका समाप्त हुई।

अब नापित को आदेश करे कि बिना घाव किये केश, दाढ़ी, मोछ,

परिवप नखानि च कुर्विति ॥१॥ पुनः प्राणः पुनर्मैत्विन्द्रियमिति त्रिर्निमृज्य ॥ २ ॥ त्वयि महिमानं सादयामीत्यन्ततो योजयेत् ॥३॥ अथैनमुप्तकेशश्मश्रुं कृत्तनखमाप्लावयति ॥ ४ ॥ हिरण्यवर्णा इत्येतेन सूक्तेन गन्धप्रवादाभिरलङ्कृत्य ॥ ५ ॥ स्वक्तं म इत्यानक्ति ॥ ६ ॥ अथैनमहतेन वसनेन परिधापयति परिधत्तेति द्वाभ्याम् ॥ ७ ॥ एह्यश्मानमातिष्ठेति दक्षिणेन पादेनाश्ममण्डलमास्थाप्य प्रदक्षिणमग्निमनुपरिणीय ॥ ८ ॥ अथास्य वासो निर्मुष्णाति यस्य ते वास इत्येतया ॥९॥ अथैनमपरेणाहतेन वसनेनाच्छादयत्ययं वस्ते गर्भं पृथिव्या इति पञ्चभिः ॥ १० ॥ यथा द्यौर्मनसे चेतसे धिय इति महाव्रीहीणां स्थालीपाकं श्रपयित्वा शान्त्युदकेनोपसिच्याभिमन्त्र्य प्राशयति ॥ ११ ॥ प्राणापाना-

---

रोमों को बनाओ और नखों को काटो ॥१॥ "पुनः प्राणः" इत्यादि से तीन बार मार्जन करके ॥२॥ "त्वयि महिमानं सादयामि०" इत्यादि पुनः केशों को काटने के लिये नापित को क्षुरा साफ कर देवे ॥३॥ अब इस केशादि कटवाये बालक को स्नान करावे ॥४॥ "हिरण्यवर्णा०" इत्यादि सूक्त से कलशोदक को अभिमंत्रण करके "यस्ते गन्ध" तीन ऋचा से बालक को नहवावे और गन्ध पुष्प को अभिमंत्रण कर लेवे ॥५॥ "स्वक्तं म०" से दो आँखों में अञ्जन लगावे ॥६॥ और अखण्ड नये वस्त्र को "परिधत्त" इस दो ऋचाओं से पहनावे ॥७॥ "एह्यश्मानमातिष्ठ०" इत्यादि दक्षिण पग को पत्थर पर स्थापन करे और अग्नि की प्रदक्षिणा कर ऐसा करे ॥८॥ अब इस "यस्य ते वास०" ऋचा से ओढ़ने के वस्त्र को देवे ॥९॥ अब इस बालक को दूसरे वस्त्र से (जो नया हो) आच्छादन करे। "अयं वस्ते गर्भं पृथिव्या०" इन पांच ऋचाओं से ॥१०॥ "यथा द्यौर्मनसे चेतसे धिय०" से महाव्रीहियों के स्थालीपाक को पका कर शान्ति जल सेचन कर अभिमंत्रण करके प्राशन करावे ॥११॥ "प्राणापानौ ओजोऽसि०" से आज्य की आहुति करे। समिध का

वोजोऽसीस्युपदधीत ॥ १२ ॥ तुभ्यमेव जरिमन्निति कुमारं मातापितरौ त्रिः सम्प्रयच्छेते ॥१३॥ घृतपिण्डानाशयतः ॥ १४ ॥ चूडाकरणं च गोदानेन व्याख्यातम् ॥ १५ ॥ परिधापनाश्ममण्डलवर्जम् ॥ १६ ॥ शिवे ते स्तामिति परिदानान्तानि ॥१७॥ पार्थिवस्य मा प्रगामेति चतस्रः सर्वाण्यपियन्ति ॥ १८ ॥ अमम्रिमोजोमानीं च दूर्वां च केशांश्च शकृत्पिण्डं चैकधाभिसमाहृत्य ॥ १९ ॥ शान्तवृक्षस्योपर्यादधाति ॥ २० ॥ अधिकरणं ब्रह्मणः कंसवसनं गौर्दक्षिणा॥ २१ ॥ ब्राह्मणान्भक्तेनोपेप्सन्ति ॥ २२ ॥ ५ ॥ ५४ ॥

उपनयनम् ॥ १ ॥ आयमगन्निति मन्त्रोक्तम् ॥ २ ॥

आधान करे, पलाश आदि की समित् "पुरोडाश, दूध, ओदन, पायस और पशु की आहुति करे ॥१२॥ "तुभ्यमेव जरिमन्०" से कुमार को माता और पिता माता परस्पर संप्रयच्छन करें । जैसे—पहिले पिता माता को, तब माता पिता को, तीसरे पिता माता को छः बार सूक्त की आवृत्ति करे । फिर इसी सूक्त से तीन घृत पिण्डों को प्रत्येक २ को डाल कर अभिमंत्रण करके कुमार को चटावे, तब पूर्वोक्त पिंडदानों को देवे ॥ १३ ॥ १४ ॥ चूड़ाकरण गोदान के साथ कहा गया ॥ १५ ॥ परिधापन और अश्मारोहण को छोड़कर ॥१६॥ शिवे ते स्तां०" से परिदान के अन्त तक करो ॥१७॥ "पार्थिवस्य मा प्रगां०" से ४ को करे ॥१८॥ अमम्रि, ओजोमानी, दूर्वा, केशों को, गोबर पिण्ड को एक ही बार लाकर शान्त वृक्ष के ऊपर धरे ॥१९॥२०॥ दक्षिणा में ब्राह्मण को कटोरा, कपड़ा और गौ देवे ॥२१॥ और ब्राह्मण को उनकी इच्छानुसार भोजन करावे ॥२२॥५॥५४॥ यह चौपनवी कण्डिका समाप्त हुई ॥

अब उपनयन कर्म को कहेंगे । गर्भ के पाचवें या आठवें वर्ष में उपनयन संस्कार ब्राह्मण का होता है ॥१॥ "आयमगन्निति०" से दूर्वा, शान्ति जल, उष्ण जल को एक प्रकार करके अभिमंत्रण करे ॥ जलपात्र को अनुमंत्रण करे ॥२॥ छुरा को गर्म जल से मार्जन करके जल लेकर

यत्क्षुरेणेत्युक्तम् ॥ ३ ॥ येनावपदिति सकृदपिञ्जूलि ॥४॥ लौकिकं च समानामा परिधानात् ॥ ५ ॥ उपेतपूर्वस्य नियतं सर्वान्दास्यतोऽग्नीनाधास्यमानः पर्यवेतव्रतदीक्षिष्यमाणानाम् ॥६॥ सोष्णोदकं शान्त्युदकं प्रदक्षिणमनुपरिणीय पुरस्तादग्नेः प्रत्यङ्मुखमवस्थाप्य ॥ ७ ॥ आह ब्रूहि ॥ ८ ॥ ब्रह्मचर्य्यमागमुप मा नयस्वेति ॥९॥ को नामासि किंगोत्र इत्यसाविति यथा नामगोत्रे भवतस्तथा प्रब्रूहि ॥ १० ॥ आर्षेयं मा कृत्वा बन्धुमन्तमुपनय ॥ ११ ॥ आर्षेयं त्वा कृत्वा बन्धुमन्तमुपनयामीति ॥ १२ ॥ ओं भूर्भुवःस्वर्जनदोमित्यञ्जलावुदकमासिञ्चति ॥ १३ ॥ उत्तरोऽसानि ब्रह्मचारिभ्य इत्युत्तमं पाणिमन्वादधाति ॥१४॥ एष म आदित्यपुत्रस्तन्मे गोपायस्वेत्यादित्येन समीक्षते ॥ १५ ॥ अपक्रामन्

"आदित्या०" एवं "अदितिः" ऋचाओं से केशों को वपन करे ॥ "येनावपत्" से केशों को काटे, दर्भ पिञ्जुली को छोड़ करके ॥४॥ और लौकिक को परिधान तक तुल्य होता है ॥५॥ उपनीत पूर्व को नियत सर्वों को देते हुए अग्नियों का आधान करने वाला पर्यवेत दीक्षिष्यमाण का ठंढा गर्म मिले जल को, शान्ति जल को प्रदक्षिण अनुपरिणीय अग्नि के पूर्व भाग में पूर्व मुख बैठ करके कहें कि "कहा" ॥५॥६॥७॥८॥ "ब्रह्मचर्यमागमुप मा नयस्व०" ॥९॥ आचार्य कहें–"तुम्हारा क्या नाम है ? क्या गोत्र है ? तब ब्रह्मचारी कहे–मेरा नाम (जो हो राम आदिक) अमुक गोत्र, अमुक प्रवर, अमुकशर्म्माऽहं इत्यादि ॥१०॥ ब्रह्मचारी कहे–"आर्षेयं मा कृत्वा बन्धुमन्तमुपनय ॥११॥ आचार्य–"आर्षेयं त्वा कृत्वा बन्धुमन्तमुपनयामि" ॥१२॥ ओं भूर्भुवः स्वर्जनदों", से अञ्जली में जल आसिंचन करे ॥१३॥ "उत्तरोऽसानि ब्रह्मचारिभ्य०" से आचार्य ब्रह्मचारी के दहिने हाथ को पकड़ कर "एष म आदित्यपुत्रस्तन्मे गोपायस्व०" से आदित्य को देखे ॥१४॥१५॥ "अपक्रामन् पौरुषेयाद्

न्पौरुषेयाद्वृणान इत्येनं बाहुगृहीतं प्राञ्चमवस्थाप्य दक्षिणेन पाणिना नाभिदेशेऽभिसंस्तभ्य जपति ॥१६॥ अस्मिन् वसु वसवो धारयन्तु विश्वे देवा वसव आ यातु मित्रोऽमुत्र भूयादन्तकाय मृत्यव आरभस्व प्राणाय नमो विषासहिमित्यभिमन्त्रयते ॥१७॥ अथापि परिस्वरमाण आ यातु मित्र इत्यपि खल्वेतावतैवोपनीतो भवति ॥१८॥ प्रच्छाद्य त्रीन् प्राणायामान् कृत्वावच्छाद्य वत्सतरीमुदपात्रे समवेक्षयेत् ॥१९॥ समिन्द्र नः संवर्चसेति द्वाभ्यामुत्सृजन्ति गाम् ॥२०॥६॥५५॥

श्रद्धाया दुहितेति द्वाभ्यां भाद्रमौञ्जीं मेखलां बध्नाति ॥१॥ मित्रावरुणयोस्त्वा हस्ताभ्यां प्रसूतः प्रशिषा प्रयच्छामीति पालाशं दण्डं प्रयच्छति ॥२॥ मित्रावरुणयोस्त्वा हस्ताभ्यां प्रसूतःप्रशिषा प्रतिगृह्णामि । सुश्रवः सुश्रवसं मा कुर्ववक्रोऽविथुरोऽहं भूयासमिति प्रतिगृह्णाति ॥३॥ श्येनोऽसीति च ॥ ४ ॥ अथैनं व्रतादानीयाः समिध

वृणान०" से ब्रह्मचारी के बाहु को पकड़ कर पूर्व मुख धर कर अपने दहिने हाथ से ब्रह्मचारी के नाभि देश पर संस्तंभन कर जप करे "अस्मिन्वसु वसवो धारयन्तु०" इत्यादि से अभिमंत्रण करे ॥१६॥ १७॥ और भी आचार्य यदि त्वरमाण हो तो "आ यातु मित्रं०" यह भी- इससे भी बालक उपनीत होगा ॥१८॥ ब्रह्मचारी को वस्त्र से आच्छादन करके तीन प्राणायामों को करके वत्सतरी को जलपात्र में देखो ॥१९॥ "समिन्द्र नः संवर्च०" दो ऋचाओं से गौ को छोड़ देवे ॥२०॥६॥५५॥ यह पचपनवी कंडिका समाप्त हुई ॥

"श्रद्धया दुहिता०" इन दो ऋचाओं से भाद्रमौञ्जी मेखलाको ब्रह्मचारी के कमर में पहिनावे ॥ १ ॥ "मित्रावरुणयोस्त्वा०" से पलाश के दण्ड को देवे ॥ २ ॥ "मित्रावरुणयोस्त्वा०" से प्रतिग्रहण करे ॥३॥ "श्येनोऽसि०" से भी ॥४॥ अब इसको व्रतादानीय समिधों

आधापयति ॥५॥ अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तत्समापेयं तन्मे राध्यतां तन्मे समृध्यतां तन्मे मा व्यनशत्तेन राध्यासं तत्ते प्रब्रवीमि तदुपाकरोमि अग्नये व्रतपतये स्वाहा ॥६॥ वायो व्रतपते । सूर्य व्रतपते । चन्द्र व्रतपते । आपो व्रतपत्न्यो । देवा व्रतपतयो । वेदा व्रतपतयो । व्रतानां व्रतपतयो व्रतमचारिषं तदशकं तत्समाप्तं तन्मे राद्धं तन्मे समृद्धं तन्मे मा व्यनशत्तेन राद्धोऽस्मि तद्वः प्रब्रवीमि तदुपाकरोमि व्रतेभ्यो व्रतपतिभ्यः स्वाहेति ॥७॥ अथैनं बद्धमेखलमाहितसमित्कं सावित्रीं वाचयति ॥८॥ पच्छः प्रथमम् ॥९॥ ततोऽर्धर्चशः ॥१०॥ ततः संहिताम् ॥११॥ अथैनं संशास्त्यग्नेश्चासि ब्रह्मचारिन्मम चापोऽशान कर्म कुरुष्वंस्तिष्ठन्मा दिवा स्वाप्सीः समिध आधेहि ॥१२॥ अथैनं भूतेभ्यः परिददात्यग्नये त्वा परिददामि ब्रह्मणे त्वा परिददाम्युदङ्कथाय त्वा शूल्वाणाय परिददामि शत्रुञ्जयाय त्वा क्षात्रायणाय परिददामि मार्त्युंजयाय त्वा मार्त्यवाय परिददाम्यघोराय त्वा परिददामि तक्षकाय त्वा वैशालेयाय परिददामि हाहाहूहूभ्यां त्वा गन्धर्वाभ्यां परिददामि योगक्षेमाभ्यां त्वा परिददामि भयाय च त्वाऽभयाय च परिददामि विश्वेभ्य-

का आधान करावे ॥५॥ "अग्न व्रतपते०" इत्यादि से आहुतियाँ करे ॥६॥७॥ इस ब्रह्मचारी को जिसने मेखला पहनी, समिदाधान किया इसको सावित्री का उपदेश करे ॥८॥ पहिले पाद २ करके कहे ॥९॥ तब आधी २ ऋचा ॥ १० ॥ फिर सबको मिलाकर ॥११॥ अब इसका आचार्य्य भलि भाँति शासन करे—तुम अग्नि का ब्रह्मचारी हो, जल से सब कर्म करो, खड़े होकर । दिन में मत सोओ, समिधाओं का आधान करो ॥११॥१२॥ अब भूतों के लिये आचार्य देवे "अग्नये त्वा परिददामि०" इत्यादि ॥१३॥ "अस्ति चरत्वादिहैवेति मयि रमन्तां ब्रह्मचारिणः"

स्त्वा देवेभ्यः परिददामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामि विश्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददामि सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददामि सप्रजापतिकेभ्यः ॥१३॥ स्वस्ति चरतादिहेति मयि रमन्तां ब्रह्मचारिण इत्यनुगृह्णीयात् ॥ १४ ॥ नानुप्रणुदेत् ॥ १५ ॥ प्रणीतीरभ्यावर्तस्वेत्यभ्यात्ममावर्तयति ॥१६॥ यथापः प्रवता यन्ति यथा मासा अहर्जरम् । एवा मा ब्रह्मचारिणो धातरायन्तु सर्वदा ॥ स्वाहेत्याचार्यः समिधमादधाति ॥१७॥७॥५६॥

श्रद्धाया दुहितेति द्वाभ्यां भाद्रमौञ्जीं मेखलां ब्राह्मणाय बध्नाति ॥१॥ मौर्वीं क्षत्रियाय धनुर्ज्यां वा ॥२॥ क्षौमिकीं वैश्याय ॥ ३ ॥ मित्रावरुणयोस्त्वा हस्ताभ्यां प्रसूतः प्रशिषा प्रयच्छामीति पालाशं दण्डं ब्राह्मणाय प्रयच्छति ॥४॥ आश्वत्थं क्षत्रियाय ॥५॥ न्यग्रोधावरोहं वैश्याय ॥६॥ यद्यस्य दण्डो भज्येत य ऋते चिदभिश्रिष इत्येतयालभ्याभिमन्त्रयते ॥७॥ सर्वत्र शीर्णे भिन्ने नष्टेऽन्यं कृत्वा पुनर्मैत्विन्द्रियमित्यादधीत ॥ ८ ॥ अथ

कह कर अनुग्रह करे ॥१४॥ आचार्य ब्रह्मचारी को कहे "मेरे सम्मुख होवो" ब्रह्मचारी आचार्य के सम्मुख होवे ॥१५॥१६॥ "यथापः प्रवता०" इत्यादि से आचार्य समिधाओं को आहुति करे ॥१७॥७॥५६॥ यह छप्पनवीं कण्डिका समाप्त हुई ॥

"श्रद्धया दुहिता०" से भाद्रमौंजी मेखला को ब्राह्मण को पहनावे ॥१॥ मौर्वी मेखला या तांतकी क्षत्रिय को ॥२॥ रेशम की मेखला वैश्य को ॥३॥ "मित्रावरुणयोस्त्वा०" इत्यादि से पलाश का दण्ड ब्राह्मण को, अश्वत्थ का दण्ड क्षत्रिय को, न्यग्रोधावरोह वैश्य को देवे ॥४॥५॥६॥ यदि ब्रह्मचारी का दण्ड टूट जावे तो "य ऋते चिदभिश्रिषः०" इत्यादि ऋचा से छूकर अभिमंत्रण करे ॥७॥ सबही जगह टूटने, टुकड़े २ हो जाने, खो जाने की दशा में दूसरे दण्ड को बनाकर "पुनर्मैत्विन्द्रियं०" से आधान करे ॥८॥ ब्रह्मचारी के वस्त्रों के विषय में कहते हैं ॥९॥

वासांसि ॥९॥ ऐणेयहारिणानि ब्राह्मणस्य ॥ १० ॥ रौरव-पार्षतानि क्षत्रियस्य ॥ ११ ॥ आजाविकानि वैश्यस्य ॥१२॥ सर्वेषां क्षौमशाणकम्बलवस्त्रम् ॥१३॥ काषा-याणि ॥१४॥ वस्त्रं चाप्यकाषायम् ॥१५॥ भवति भिक्षां देहीति ब्राह्मणाश्चरेत् ॥ १६ ॥ भिक्षां भवती ददात्विति क्षत्रियः ॥१७॥ देहि भिक्षां भवतीति वैश्यः ॥१८॥ सप्त कुलानि ब्राह्मणश्चरेत्त्रीणी क्षत्रियो द्वे वैश्यः ॥१९॥ सर्वं ग्रामं चरेद्भैक्षं स्तेनपतितवर्जम् ॥ २० ॥ मय्यग्र इति पञ्च प्रश्नेन जुहोति ॥२१॥ सं मा सिञ्चन्त्विति त्रिः पर्यु-क्षति ॥२२॥ यदग्ने तपसा तपोऽग्ने तपस्तप्यामह इति द्वाभ्यां परिसमूहयति ॥ २३ ॥ इदमापः प्रवहतेति पाणी प्रक्षालयते ॥२४॥ सं मा सिञ्चन्त्विति त्रिः पर्युक्षति ॥२५॥ अग्ने समिधमाहार्षमित्यादधाति चतस्रः ॥२६॥ एधोऽ-सीत्यूष्मभक्षं भक्षयत्या निधनात् ॥ २७ ॥ स्वं नो मेध

ऐणेय हरिण का चर्म ब्राह्मण के लिये, रुरुमृग का चर्म क्षत्रिय के लिये, बकरे और भेड़ का चर्म वैश्य के लिये जानो ॥१०॥११॥१२॥ सबही वर्णों के लिये रेशमी, शण का, और कम्बल का वस्त्र बनावे ॥१३॥ काषाय रंग के वस्त्र हों ॥ वस्त्र भी काषाय रंग का न हो ॥१४॥१५॥ आप भिक्षा देवें—ऐसा कह कर ब्रा० ब्र० मांगे, "भिक्षां भवती ददातु—" ऐसा कहकर क्ष० मांगे और "देहि भिक्षां भवति"—ऐसा कह कर वैश्य मांगे ॥१६॥१७॥१८॥ सात घरों से ब्राह्मण, तीन घर से क्षत्रिय और दो घरों से वैश्य भिक्षा मांगे ॥ १९ ॥ सबही घरों से (ग्राम भर) भिक्षा मांगे, चोर एवं पतित को छोड़ कर ॥ २० ॥ "मय्यग्र०" से पञ्च प्रश्न से आहुति करे ॥२१॥ "सं मा सिञ्चन्तु०" से तीनवार पर्युक्षण करे ॥२२॥ "यदग्ने तपसा०" इत्यादि दो ऋचाओं से परिसमूहन करे ॥२३॥ "इदमापः प्रवह०" से दोनों हाथों को धोवे ॥२४॥ "सं मा सिञ्चन्तु०" से तीन वार पर्युक्षण करे ॥२५॥ "अग्ने समिधमाहार्ष०" से चार समि-धाओं को आधान करें ॥२६॥ "एधोऽसि०" से ऊष्मभक्षण (धूमभक्षण)

इत्युपतिष्ठते ॥२८॥ यदन्नमिति तिसृभिर्भैक्षस्य जुहोति ॥२९॥ अहरहः समिध आहृत्यैवं सायंप्रातरभ्यादध्यात् ॥३०॥ मेधाजनन आयुष्यैर्जुहुयात् ॥३१॥ यथाकामं द्वादशरात्रमरसाशी भवति ॥३२॥८॥५७॥

भद्राय कर्णः क्रोशतु भद्रायाक्षि वि वेपताम् ॥ परा दुःष्वप्न्यं सुव यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ अक्षिवेपं दुःष्वप्न्यमार्त्तिं पुरुषरेषिणोम् ॥ तदस्मदश्विना युवमप्रिये प्रतिमुञ्चतम् ॥ यत्पार्श्वादुरसो मे अङ्गादङ्गादववेपते ॥ अश्विना पुष्करस्रजा तस्मान्नः पातमंहस इति कर्णं क्रोशन्तमनुमन्त्रयते ॥१॥ अक्षि वा स्फुरत् ॥२॥ वि देवा जरसोत देवा आवतस्त उप प्रियमन्तकाय मृत्यव आ रभस्व प्राणाय नमो विषासहिमित्यभिमन्त्रयते ॥३॥

करे निधान से ॥२७॥ "त्वं नो मेध०" से उपस्थान करे॥ २८॥ "यदन्नं०" इन तीन ऋचाओं से भिक्षाकी आहुतियां करे॥ २९॥ प्रति दिन समिधाओं को ला २ कर सायं प्रातः काल आधान करे॥ ३०॥ मेधाजनन और आयुष्यगण सूक्तों से आहुतियां करे ॥३१॥ यथाकाम १२ रात रस न खावे ॥३२॥८॥५७॥ यह सत्तावनवी कंडिका समाप्त हुई ॥

"भद्राय कर्णः क्रोशतु०"इत्यादि से खुजलाते कान को अभिमंत्रण करे। आँख के फड़कने में, बुरे स्वप्न देखने पर, अनिष्ट देखने पर, और अद्भुत देखने पर अभिमंत्रण करे ॥१॥२॥ "वि देवा जरसोत०" इत्यादि से पुरुष शरीर को अभिमंत्रण करे आयुष्कामना वाले ॥३॥ ब्राह्मणोक्त और ऋषिहस्त– जिन में ब्राह्मणों को कहते हैं। सात ब्राह्मणों को अभीष्ट भोजन करा कर एक को पूर्व मुख, एक को दक्षिण मुख, चार को उत्तर मुख, "सर्वे उत देवाः" इस सूक्त से पुरुष शरीर को अभिमर्शन करे॥ अब ऋषिहस्त को कहते हैं। "अन्तकाय मृत्यवे०" सूक्त से नाभि के ऊपर और नीचे अभिमंत्रण करे। सूक्त को दो वार जप करे। "आ रभस्व०" से हृदय को अभिमंत्रण करे। "आवतस्ते

ब्राह्मणोक्तमृषिहस्तश्च ॥ ४ ॥ कर्मणे वां वेषाय वां सुकृताय वामिति पाणी प्रक्षाल्य ॥ ५ ॥ निर्दुरर्मण्य इति संधाव्य ॥६॥ शुद्धा न आप इति निष्ठीव्य जीवाभिराचम्य ॥ ७ ॥ एहि जीवमित्याञ्जनमणिं बध्नाति ॥ ८ ॥ वाताज्जात इति कृशनम् ॥९॥ नव प्राणानिति मन्त्रोक्तम् ॥१०॥ घृतादुल्लुसमा त्वा चृतस्वृतुमिष्ठ्वा मुञ्चामि त्वोत देवा आवतस्त उप प्रियमन्तकाय मृत्यव आरभस्व प्राणाय नमो विषासहिमित्यभिमन्त्रयते ॥११॥ निर्दुरर्मण्य इति सर्वसुरभिचूर्णैररण्येऽप्रतीहारं प्रलिम्पति ॥१२॥ अथ नामकरणम् ॥१३॥ आ रभस्वेमामित्यविच्छिन्नामुदकधारामालम्भयति ॥१४॥ पूतुदारु बध्नाति ॥१५॥ पाययति ॥१६॥ यत्ते वास इत्यहतेनोत्तरसिचा

ब्राह्मणाय नमः०" इन दो सूक्तों से दहिने कान को अनुमंत्रण करे ॥४॥ "कर्मणे वां वेषाय वां सुकृताय वां०" से दोनों हाथों को प्रक्षालन करे ॥ और "वि देवा०" सूक्त से अभिमंत्रण करे ॥ ५ ॥ "निर्दुरर्मण्य०" से जोड़ कर ॥६॥ "शुद्धा न आपः" से थूक करके "जीवा स्थ०" इन चार ऋचाओं से आचमन करके "एहि जीवं०" से आञ्जन मणि को बान्धे ॥७॥ आयुष्काम युद्ध में रक्षा के लिये इस का नाश नहीं होता है । न शपथ करने से और न जादू टोना से नाश होता है ॥८॥ "वाताज्जात०" से कृशन करे अर्थात् आयुष्काम रक्षार्थी उपनयनमें नित्य बान्धे ॥ ९ ॥ "नव प्राणान्०" सूक्त से सोना, चाँदी, लोहा, इन तीनों चूर्ण को इकट्ठा करके नव शलाक मणि को त्रिवृत बना कर धर कर अभिमंत्रण करके बान्धे ॥ १० ॥ "घृतादुल्लुसमा त्वा०" इत्यादि से आयुष्काम, आरोग्य काम, रक्षा काम, वाला शरीर को अभिमंत्रण करे ॥११॥ "निर्दुरर्मण्य०" से सर्व सुरभि चूर्णो से वन में अप्रतीहार लीपे यह विकल के लिये कर्म है ॥१२॥ अब नामकरण को कहते हैं ॥१३॥ "आ रभस्वेमां" इस अर्थ सूक्त से कुमार के दहिने हाथ पर जल की धारा को लावे ॥१४॥ और देवदारु मणि धर करके अभिमंत्रण कर

प्रच्छादयति ॥१७॥ शिवे ते स्तामिति कुमारं प्रथमं निर्ण-यति ॥१८॥ शिवौ ते स्तामिति व्रीहियवौ प्राशयति ॥१६॥ अह्ने च स्वेत्यहोरात्राभ्यां परिददाति ॥२०॥

घीस कर उसे बान्धे ॥१५॥ और उस जल को पिलावे तब पुण्याहवाचन के अन्त में नामकरण करे। २ या ४ अक्षरों का मन्य संयुक्त या देवता संयुक्त नाम धरे। पिता कुमार के दहिने कान में सोना धर कर उस का नाम कहे ॥१६॥ "यत्ते वास०" से यंत्र निर्मुक्त वस्त्र से उत्तर किनारे से आछादन करके चार परिदानों को "शिवे ते स्तां०" इन दो ऋचाओं से और "हृदे ते०" तथा "पार्थिवस्य" इन दो से "मा प्रगाम०" इन दो से और व्रीहि, जौ, शमी प्रान्त, और जल को "द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिददामि०" से देवे ॥१७॥ पुनः कुमार के मूर्धा पर "शिवौ ते स्तां०" इन दो ऋ० से, "पार्थिवस्य०" इन दो से, "मा प्रगाम०" दो से, "व्रीहि यवाभ्यां त्वा परिददामि" "अन्हे च त्वा०" इस एक से, "पार्थिवस्य०" दो से "मा प्रगाम०" दो से, "अहोरात्राभ्यां त्वा परि-ददामि शरद०" इस एक से, "पार्थिवस्य०" दोसे, व्रीहि, जौ, शमी के पत्ते और जलको प्राशन करावे । "ऋतुभ्यस्त्वा परिददामि०" से बालक के मूर्धा में देवे और अभ्यातानादि उत्तरतन्त्र को करे। यह नामकरण संस्कार समाप्त हुआ ॥१७॥ अब चौथे मास में निष्क्रमण संस्कार करो "शिवे ते स्तां०" दो ऋचाओं से कुमार को घर से "बाहर निकाले। "उद्वयं तमसस्परि०" एक से सूर्य को दिखलावे और को पूर्वोक्त चार परिदानों को देवे और अभ्यातानादि उत्तरतंत्र की आहुतियां देवे ॥ निष्क्रमण समाप्त हुआ ॥१८॥ अब छठे मास में कुमार का अन्न प्राशन करे ॥ "अव्यचसश्च" इत्यादि अभ्यातानान्त कर्म करके "भूमे मात क०" इस एक से कुमार को भूमि पर बैठावे। "शिवौ ते स्तां०" से व्रीहि और जौ को अभिमंत्रण करके उसे घस कर कुमार को प्लावे ॥ और सब अन्नों को पूरा करे, स्रुक्, स्रुवा, पुस्तक, द्रव्य इनको देवे और पूर्वोक्त चारो परिदानों को यथाविधि देवे ॥ "स्वस्ति न इन्द्र०" से कुमार को अन्न प्राशन कराकर अभ्याता-नादि उत्तरतंत्र को करे ॥ यह अन्नप्राशन कर्म समाप्त हुआ ॥१९॥ "अन्हे च त्वा०" से दिन रात्रों को देवे, "शरदे त्वा०" से ऋतुओं को

शरदे स्वेत्यृतुभ्यः ॥२१॥ उदस्य केतवो मूर्धाहं विषासहि-मित्युद्यन्तमुपतिष्ठते ॥२२॥ मध्यंदिनेऽस्तं यन्तं सकृत्पर्यायाभ्याम् ॥२३॥ अंहोलिङ्गानामापो भोजनहवींष्युक्तानि ॥२४॥ उत्तमासु यन्मातली रथक्रीतमिति सर्वासां द्वितीया ॥२५॥६॥५८॥

विश्वे देवा इति विश्वानायुष्कामो यजते ॥१॥ उपतिष्ठते ॥२॥ इदं जनास इति द्यावापृथिव्यौ पुष्टिकामः ॥३॥ सम्पत्कामः ॥४॥ इन्द्र जुषस्वेतीन्द्रं बलकामः ॥५॥ इन्द्रमहमितिपण्यकामः ॥६॥ उदेनमुत्तरं नय योऽस्मानिन्द्रः सुत्रामेति ग्रामकामः ॥७॥ ग्रामसाम्पदाना-

---

देवे ॥२०॥२१॥ "उदस्य केतवो०" इत्यादि अनुवाक से तीनों समय प्रतिदिन सूर्य्य का उपस्थान करे यदि आयु वृद्धि की कामना हो अर्थात् सूर्य्योदय समय, मध्यदिन में और अस्त होते समय भगवान् सूर्य का उपस्थान करे ॥२२॥२३॥ और अंहोलिङ्गक गण के मंत्रों से जलको अभिमंत्रण कर पिये, भोजन को अभिमंत्रण कर खावे और हवि को अभिमंत्रण कर सूर्य्य के नाम आहुति देवे आयुष्कामना वाला किया करे ॥२४॥ "अग्निं ब्रूम०" सूक्त के "यन्मातली रथक्रीतं०" सब ऋचाओं के दूसरी ऋचा व्यतिषङ्ग से व्यवहार करे ॥२५॥९॥५८॥ यह अठावनवी कंडिका समाप्त हुई ॥

अब काम्य कर्मों की विधि को कहेंगे। संभार के लक्षण में मण्डप विधान कहा गया है। या घर में करे ॥ आयुष्कामना वाला "विश्वे देवा०" इत्यादि से चरु की आहुति देवे और उपस्थान करे तो उसकी आयु १०० वर्ष की होगी ॥१॥२॥ "इदं जनास०" से पुष्टि कामना वाला और सम्पत्ति चाहने वाला "द्यावापृथिवी" से यज्ञ करे ॥३॥४॥ पुरुषादि बल कामना वाला राजा नित्य "इन्द्र जुषस्व०" इत्यादि से अग्नि में आहुति करे ॥ ५ ॥ "इन्द्रमहं०" से पण्य (किसी प्रकार व्यवसाय) की कामना वाला अग्नि में आहुति किया करे ॥ ६ ॥ "उदेनमुत्तरं०" इत्यादि से ग्राम की इच्छा वाला आहुतियां करे और उपस्थान करे ॥७॥ ग्राम सम्पत् के लिये पलाश की समिधों का

पदानामप्ययः ॥८॥ यशसं मेन्द्र इति यशस्कामः ॥९॥ मह्यमाप इति वर्चस्कामः ॥१०॥ आगच्छत इति जायाकामः ॥११॥ वृषेन्द्रस्येति वृषकामः ॥१२॥ आ त्वाहार्षं ध्रुवा द्यौरिति ध्रौव्यकामः ॥१३॥ त्यमू षु त्रातारमा मन्द्रैरिति स्वस्त्ययनकामः ॥१४॥ सामास्त्वाग्नेऽभ्यर्चते-स्यग्निं संपस्कामः॥१५॥ पृथिव्यामिति मन्त्रोक्तम् ॥१६॥ तदिदास धीती वेतीन्द्राग्नी ॥१७॥ यस्येदमा रजोऽथर्वाण-मदितिर्द्यौर्दितेः पुत्राणां बृहस्पते सवितरित्यभ्युदितं

आधान करे और घृत धरके आस्तरणों की आहुति करे ॥८॥ यश की कामना वाला "यशसं मेन्द्र०" से चरुकी आहुति करे। और "भृशमिन्द्रं०" से उपस्थान करे ॥ ९ ॥ कूप, तड़ाग, वापी, पुष्करिणी, जलसेतु बान्धने आदि कामना वाला "मह्यमापः" से इन्द्र के लिये आहुतियाँ देवे एवं उपस्थान करे ॥ १० ॥ "आगच्छत०" से इन्द्र की आहुति और उपस्थान करे सन्तान की इच्छावाला ॥११॥ बैल की कामनावाला इन्द्र की आहुति और उपस्थान "वृषेन्द्रस्य०" से करे ॥१२॥ सार्वभौमराजा होने की इच्छा से "आ त्वा हार्षं ध्रुवा द्यौः" से इन्द्र की आहुति और उपस्थान करे ॥१३॥ दो पैर एवं चार पैर वाले मनुष्य एवं पशु के कल्याण की इच्छा से "त्यमू षु त्रातारमा मन्द्रैः०"। से इन्द्र की आहुति एवं उपस्थान करे ॥१४॥ सम्पत् चाहनेवाला "सामास्त्वाग्नेऽभ्यर्चत०" से अग्नि की आहुति और उपस्थान करे ॥१५॥ पृथ्वी, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, द्यौ, आदित्य, दिशायें, चन्द्रमा ये आठ देवता, हैं। इनकी आहुतियों के लिये आठ अलग २ चरु पकाकर "पृथिव्यां०" से आहुतियां करे और उपस्थान करे। सब कामनावाला ॥१६॥ "तदिदास धीती वेतीन्द्राग्नी०" से इन्द्र एवं अग्नि की आहुति एवं उपस्थान करे सर्व कामना वाला ॥१७॥ इन्द्र, अथर्वा, अदिति, देवताओं को बृहस्पति को "यस्येदमा रजो०" इत्यादि से आहुतियां करे और उपस्थान करे सब कामनावाला ॥ और "बृहस्पते सवितः"। इस एक ऋचा से सूर्य्योदय होने पर सोते हुए ब्रह्मचारी को जगाकर उठा देवे। सूर्य्योदय

ब्रह्मचारिणं बोधयति ॥१८॥ धाता दधातु प्रजापतिर्ज-नयत्यन्वद्य नो यन्न इन्द्रो ययोरोजसा विष्णोर्नु कम-ग्राविष्णू सोमारुद्रा सिनीवालि बृहस्पतिर्नो यत्ते देवा अकृण्वन्पूर्णा पश्चात् प्रजापतेऽभ्यर्चत को अस्या न इति प्रजापतिम् ॥१९॥ अग्न इन्द्रश्चेति मन्त्रोक्तान् सर्व-कामः ॥२०॥ य ईशे ये भक्षयन्त इतीन्द्राग्नी लोककामः ॥२१॥ अन्नं ददाति प्रथमम् ॥२२॥ पशूपाकरणमुत्तमम् ॥२३॥ सर्वपुरस्ताद्धोमा युज्यन्ते ॥२४॥ दोषो गायेत्यथ-र्वाणं समावृत्याश्नाति ॥ २५ ॥ अभयं द्यावापृथिवी श्येनोऽसीति प्रतिदिशं ससर्षीनभयकामः ॥२६॥ उत्तरेण दीक्षितस्य वा ब्रह्मचारिणो वा दण्डप्रदानम् ॥ २७ ॥ द्यौश्च म इति द्यावापृथिव्यौ विरिष्यति ॥२८॥ यो अग्ना-

---

तक सोते रहने का प्रायश्चित है ॥१८॥ "धाता दधातु०" इत्यादि से मंत्र में कहे हुए देवताओं के नाम आहुति और उपस्थान करे ॥१९॥२०॥ "य ईशे ये भक्षयन्त०" से इन्द्र और अग्निकी आहुतियां एवं उपस्थान करे ॥ सर्वलोकाधिपत्य कामनावाले करें॥२१॥"अन्नं ददाति०" से अभीष्ट अन्न को अभिमंत्रण करके भिक्षुओंको देवे॥२२॥ यह पहिले करे ॥२२॥ और पुनः ये पशुका उपाकरण करे ॥२३॥ और सर्वपुरस्तात् होमों को करे ॥२४॥ अथर्वा ऋषि के नाम आहुति एवं उपस्थान करे सर्वलोकाधिपत्य की कामनावाला। गोदानादिक तन्त्रको परिधापनान्त तक करके तब "इदाव-त्सराय०" से आहुति करे। तब अभ्यतानों को करे। फिर "ऋचं साम०" से आहुति करे ॥ अभ्यातानान्त तक करके, "दोषो गाय०" इस सूक्त से भात धर कर अभिमंत्रण करके खावे ॥२५॥ व्रत को समाप्ति कर व्रत को त्याग देवे। "अभयं द्यावापृथिवी०" से जिस ग्राम या नगर को अभय करने की इच्छा हो उसके सब दिशाओं में आहुतियां करे ॥२६॥ ज्योतिष्टोमयज्ञ में दीक्षित पुरुष को ब्रह्मा दण्ड देवे ॥२८॥ यदि नाश होने की बारी आ जावे तो "द्यौश्च म०" से द्यावापृथिवी की आहुति तथा उपस्थान करे ॥२८॥ "यो अग्नौ०" इत्यादि से रुद्रदेवों को आहुतियाँ

विति रुद्रान् स्वस्त्ययनकामः स्वस्त्ययनकामः ॥२९॥
॥१०॥५९॥

इत्यथर्ववेदे कौशिकसूत्रे सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ७ ॥

अग्नीनाधास्यमानः सवान्वा दास्यन् संवत्सरं ब्रह्मौदनिकमग्निं दीपयति ॥१॥ अहोरात्रौ वा ॥२॥ याथाकामी वा ॥३॥ संवत्सरं तु प्रशस्तम् ॥४॥ सवाग्नि-सेनाग्नी तादर्थिकौ निर्मथ्यौ वा भवतः ॥५॥ औपासनौ चोभौ हि विज्ञायेते ॥६॥ तस्मिन्देवहेडनेनाज्यं जुहुयात् ॥७॥ समिधोऽभ्यादध्यात् ॥८॥ शकलान् वा ॥९॥ तस्मिन् यथाकामं सवान् ददात्येकं द्वौ सर्वान् वा ॥१०॥ अपि वै-कैकमास्माशिषो दातारं वाचयति ॥११॥ पराशिषो ऽनु-मन्त्रणमनिर्दिष्टाशिषश्च ॥१२॥ दातारौ कर्माणि कुरुतः ॥१३॥ तौ यथालिङ्गमनुमन्त्रयते ॥१४॥ उभयलिङ्गैरुभौ

देवे और उपस्थान करे स्वस्त्ययन की इच्छावाला ॥२९॥१०॥५९॥

यह अथर्ववेद के कौशिक सूत्र के सप्तम अध्यायका भाषानुवाद पूरा हुआ ॥७॥

अग्नियों को आधान करने की इच्छा वाले, या सवों को देने की इच्छा वाले संवत्सर तक ब्रह्मौदन अग्नि को जलावे ॥१॥ या दो दिन-रात तक ॥२॥ या जितने समय तक इच्छा हो ॥३॥ परन्तु संवत्सर तक का समय सबसे अच्छा है ॥४॥ सवाग्नि और सेनाग्नि, तादर्थिक या निर्मथन से होते हैं ॥५॥ दोनों ही औपासन जान पड़ते हैं ॥६॥ उसमें "देवहेडन०" इत्यादि पूरे अनुवाक से आहुतियाँ करे ॥७॥ समि-धाओं का आधान करे ॥८॥ या शाकलों का करे ॥९॥ उसके निमित्त जैसी इच्छा हो सब देवे एक या दो देवे ॥१०॥ अथवा एक २ को दाता को आशिष बचवावे ॥११॥ पर का अनुमंत्रण निर्दिष्ट नहीं है और आशिष का वाचन भी अनिर्दिष्ट है ॥१२॥ दाता दोनों कर्मों को करे ॥१३॥ उन दोनों को यथालिङ्ग अनुमंत्रण करे ॥१४॥ दोनों लिङ्गों से दोनों दाताओं को—पुंलिङ्ग से पुरुष दाता को एवं स्त्रीलिङ्ग से पत्नी

पुंलिङ्गैर्दातारं स्त्रीलिङ्गैः पत्नीम् ॥१५॥ उदहृत्सम्प्रैषवर्जम् ॥१६॥ अथ देवयजनम् ॥१७॥ यद्यस्समं समूलमविदग्धं प्रतिष्ठितं प्रागुदक्प्रवणमाकृतिलोष्टवल्मीकेनास्तीर्य दर्भैश्च लोमभिः पशूनाम् ॥१८॥ अग्ने जायस्वेति मन्थन्तावनुमन्त्रयते ॥१९॥ पत्नी मन्त्रं सन्नमयति ॥२०॥ यजमानं च ॥२१॥ कृणुत धूममिति धूमम् ॥२२॥ अग्नेऽजनिष्ठा इति जातम् ॥२३॥ समिद्धो अग्न इति समि-

---

दाता को अनुमंत्रण करे ॥१५॥ उदहृत् के संप्रेष को छोड़ कर ॥१६॥ अब देव यजन के विषय में कहेंगे ॥१७॥ जो भूमि सम हो, समूल हो, जहाँ कुछ जलाया नहीं गया हो, प्रतिष्ठित हो, पूर्व, उत्तर को ढालुआ हो, जोते खेत की मट्टी और दीमक मट्टी से बराबर कर पशुओं के बाल तथा रोमों को बिछावे ॥१८॥ अब सब यज्ञों के विधान को कहेंगे। सम्भारों को इकट्ठा कर लेने पर—उत्तरायण सूर्य्य के होने पर ऋषिगुण युक्त ऋत्विजों का वरण करे ॥ यह ऋत्विक् कल्प हुआ। मधुपर्क कहा जा चुका। एकादशी तिथि में वरण करके गोदानिक विधान से केश, श्मश्रु, नखों को बनवाकर और पत्नी केशों को छोड़ कर नखों को बनवा लेवे। स्नान कर अखण्ड नये वस्त्र पहन ओढ़कर तय्यार होवे और सुगन्ध पदार्थों से युक्त होकर दाता उपनयन के समान दण्ड, मेखला और यज्ञोपवीती होकर पत्नी के साथ तीन रात्रि दीक्षा ग्रहण करे। अग्नि के लिये, ब्राह्मण के लिये और गुरु वा आचार्य के लिये व्रतों को सुन कर तब व्रतादानीय आठ समिधाओं को आधान करे। तब कर्त्ता अभ्यातानादि उत्तरतंत्र करे। हविष्य भक्षणादि कर्ता, कराने वाला और पत्नी करे। अब चतुर्दशी को प्रातःकाल यज्ञोपवीती होकर शान्तिजल को करके देवयजन को संप्रोक्षण करके जोते खेत की मिट्टी और दीमक की मिट्टी से वेदि को बराबर कर दर्भों, गौ, अश्व, भेड़ क लोमो से वेदि का आस्तरण करके पलाश की दो अरणियों से अग्नि को यजमान मन्थन करे। "अग्ने जायस्व०" ऋचा से ॥१९॥ पहिली आधी ऋचा में पत्नी एवं यजमान का नाम ग्रहण करे। पत्नी मंत्र को संयमन करे और यजमान को भी ॥२०॥२१॥ "कृणुत धूमं०" से धूम को ॥२२॥ "अग्नेऽज-

ध्यमानम् ॥२४॥ परेहि नारीत्युदह्नतं संप्रेष्यत्यनुगुप्ता-मलंकृताम् ॥२५॥ एमा अगुरित्यायतीमनुमन्त्रयते ॥२६॥ उत्तिष्ठ नारीति पत्नीं संप्रेष्यति ॥२७॥ प्रतिकुम्भं गृभायेति प्रतिगृह्णाति ॥२८॥ ऊर्जो भाग इति निदधाति ॥२९॥ इयं महीति चर्मास्तृणाति प्राग्ग्रीवमुत्तरलोम ॥३०॥ पुमान् पुंस इति चर्मारोहयति ॥३१॥ पत्नी ह्वयमानम् ॥३२॥ तृतीयस्यामपत्यमन्वाह्वयति ॥३३॥ ऋषिप्रशिष्टेत्युदपात्रं चर्मणि निदधाति ॥ ३४ ॥ तदापस्पुत्रास इति सापत्यावनुनिपद्येते ॥३५॥१॥६०॥

प्राचीं प्राचीमिति मन्त्रोक्तम् ॥१॥ चतसृभिरुदपात्र-

निष्ठा०" तीन ऋचा अग्नि उत्पन्न होने पर "समिद्धोऽग्न०" से समिधा डालते समय पढ़े "उत्तमं नाकं०" से दाता को पाद करके बचवावे और ब्रह्मौदनिक अग्नि को मथन करके स्थण्डिल में डालकर "यद्देवा०" इत्यादि से पूर्ण होम करे । पूर्ण होम का विधान शान्ति कल्प में कहा गया है। "यद्देवा देवहेडनं०" इस अनुवाक से आज्य की आहुति देवे और समित् का आधान करे या शाकलों को डाले। इसी प्रकार ब्रह्मौदनिक अग्नि को साल भर जलावे या अहोरात्र भर या जैसी इच्छा हो वैसा करे। संवत्सर तो प्रशस्त है। अब अमावास्या को प्रातःकाल उठकर जल लावे। साधु वादिनी ब्राह्मणी को अलंकृता करके उसके हाथ में उदकघट पकड़वा कर भेजे ॥२५॥ "एमा अगुः" से उसके आते समय अनुमंत्रण करे ॥ २६ ॥ "उत्तिष्ठ नारी०" से पत्नी को संप्रेषण करे ॥२७॥ प्रतिकुम्भ के लेते समय "गृभाय०" ऐसा कहकर ग्रहण करे ॥२८॥ "ऊर्जो भाग०" से कुम्भ को भूमि पर धरे ॥२९॥ "इयं महि०" से चर्म को पूर्व को ग्रीवा एवं उत्तर लोम करके बिछावे ॥३०॥ "पुमान् पुंसः" से चर्म पर चढ़े ॥३१॥ पत्नी को बुलावे ॥३२॥ और तीसरी ऋचा से पुत्र को बुलावे ॥३३॥ "ऋषिप्रशिष्ट०" से उदपात्र को चर्म पर धरे ॥३४॥ "तदापस्पुत्रास०" से पत्नी पति के पीछे बैठे ॥ ३५ ॥ १ ॥ ६० ॥ यह साठवी कंडिका समाप्त हुई ॥

"प्राचीं प्राचीं०" से प्रत्येक दिशा का उपस्थान (जिस दिशा का

मनुपरियन्ति ॥२॥ प्रतिदिशं ध्रुवेयं विराडिस्युपतिष्ठन्ते ॥३॥ पितेव पुत्रानिस्यवरोह्य भूमिन्तेनोदकार्थान्कुर्वन्ति ॥४॥ पवित्रैः संप्रोक्षन्ते ॥५॥ दर्भाग्राभ्यां चर्महविः संप्रोक्षति ॥६॥ आदिष्टानां सानजानस्यै प्रयच्छति ॥७॥ तांस्त्रेधा भाग इति व्रीहिराशिषु निदधाति ॥८॥ तेषां यः पितॄणां तं श्राद्धं करोति ॥९॥ यो मनुष्याणां तं ब्राह्मणान् भोजयति ॥१०॥ यो देवानां तमग्ने सहस्वानिति दक्षिणं जान्वाच्यापराजिताभिमुखः प्रह्वो वा मुष्टिप्रसृताञ्जलिभिः कुम्भ्यां निर्वपति ॥११॥ कुम्भ्या वा चतुः ॥१२॥ तान्सप्त मेधानिति सापत्यावभिमृशतः ॥ १३ ॥ गृह्णामि हस्तमिति मन्त्रोक्तम् ॥१४॥ त्रयो वरा इति त्रीन्वरान् वृणीष्वेति ॥१५॥ अनेन कर्मणा ध्रुवानिति प्रथमं

उपस्थान उसका नाम लेवे) करे। चार ऋचाओं से उदपात्र को अनुमंत्रण करे ॥२॥ "प्रतिदिशं ध्रुवेयं विराट्०" से उपस्थान करे। "पितेव पुत्रान्०" से चढ़कर भूमि को उदक कलश को धरे इसी से सब कार्य होंगे ॥४॥ पवित्रे द्वारा संप्रोक्षण करे ॥५॥ दर्भाग्रों से चर्म हवि को संप्रोक्षण करे ॥६॥ तब बैल के चर्म पर व्रीहि को तीन भागों में करे। देव, मनुष्य, पितृ, पत्नी विना जाने ही देवे। कर्त्ता प्रैष द्वारा देवे। व्रीहि को विभागों पर धरे "त्रेधा भागो निहितः" त्रिभिः पादैः से अनुमंत्रण करे ॥७॥८॥ जो पितृ भाग है उससे अवभृथ के अन्त में वृद्धिश्राद्ध करे। जो मनुष्यों का भाग है उसको ब्राह्मणों को जमावे ॥१०॥ जो देवताओं का भाग है उसको "अग्ने सहस्वान्०" से दहिनी जंघा टेक कर पश्चिम मुख हो निहुड़कर मुट्ठी—दोनों हाथ की अंजली फैलाकर कुम्भ्या में निर्वाप करे ॥११॥ या कुम्भी में चार अञ्जुलि डाले ॥१२॥ "तान्सप्त मेधान्०" से पति के साथ पत्नी अभिमर्शन करे ॥१३॥ पति पत्नी के हाथ को "गृह्णामि हस्तं०" से पकड़े ॥१४॥ "त्रीन्वरान् वृणीष्व०" से दाता प्रैष को देकर पत्नी को देवे। "तौ वृणन्तौ त्रयो वरा०" इस आधी ऋचा से प्रतिपत्नी अनुमंत्रण करे। दाता सब कर्मों में समृद्धि द्वारा

वृणीते ॥१६॥ यावपरौ तावेव पत्नो ॥१७॥ एतौ ग्रावाणावयं ग्रावेत्युलूखलमुसलं शूर्पं प्रक्षालितं चर्मण्याधाय ॥१८॥ गृहाण ग्रावाणावित्युभयं गृह्णाति ॥१९॥ साकं सजातैरिति व्रीहीनुलूखल आवपति ॥२०॥ वनस्पतिरिति मुसलमुच्छ्रयति ॥२१॥ निर्भिन्ध्यंशून् ग्राहिं पाप्मानमित्यवहन्ति ॥२२॥ इयं ते धीतिर्वर्षवृद्धमिति शूर्पं गृह्णाति ॥२३॥ ऊर्ध्वं प्रजां विश्वव्यचा इत्युदूहन्तीम् ॥२४॥ परा पुनीहि तुषं पलावानिति निष्पुनतीम् ॥२५॥ पृथग्रूपाणीत्यवक्षिणतीम् ॥२६॥ त्रयो लोका इत्यवक्षीणानभिमृशतः ॥ २७ ॥ पुनरायन्तु शूर्पमित्युद्वपति ॥२८॥ उपश्वस इत्यपवेवेक्ति ॥२९॥ पृथिवीं त्वा पृथिव्यामिति कुम्भीमालिम्पति ॥३०॥ अग्ने चरुरित्यधिश्रयति ॥३१॥ अग्निः पचन्निति पर्यादधाति ॥३२॥ ऋषिप्रशिष्टेत्युदकमपकर्षति ॥३३॥ शुद्धाः पूताः पूताः

यह पहिला वर ॥१५॥१६॥ जो दो वर शेष रहे उनको पत्नी ॥१७॥ "एतौ ग्रावाणावयं ग्राव०" से उलूखल, मुसल, शूर्प को प्रक्षालित करके चर्म में धर कर ॥१८॥ "गृहाण ग्रावाणौ०" से दोनों को पत्नी लेवे ॥१९॥ "साकं सजातैः" से व्रीहियों को उलूखल में डाले ॥२०॥ "वनस्पतिः" से मुसल को उठावे ॥२१॥ "निर्भिन्ध्यंशून्ग्राहिं पाप्मानं०" से व्रीहियों को कूटे ॥२२॥ "इयं ते धीतिर्वर्ष०" से शूर्प को पकड़े ॥२३॥ "ऊर्ध्वं प्रजां विश्वव्यचा०" से सूप से साफ करे ॥२५॥ "पृथग्रूपाणि०" से अलग २ तुष और अन्न को करे ॥२६॥ "त्रयो लोका०" से साफ को अभिमर्शन करे ॥२७॥ "पुनरायन्तु शूर्पं०" से उद्वपन करे ॥२८॥ "उपश्वस०" से जल को अलग २ कर धरे । "पृथिवीं त्वा पृथिव्यां०" इत्यादि से कुम्भी को सब ओर से लीपे ॥२९॥३०॥ "अग्ने चरुः" से अधिश्रयण करे ॥३१॥ "अग्निः पचन्०" से सब ओर डाले ॥३२॥ "ऋषिप्रशिष्ट०" से जल को निकाल लेवे ॥३३॥ "शुद्धाः पूताः पूताः पवित्रैः" से जल में

पवित्रैरिति पवित्रे अन्तर्धाय ॥ ३४ ॥ उदकमासिञ्चति ॥३५॥ ब्रह्मणा शुद्धाः संख्याता स्तोका इत्यापस्तासु निक्त्वा तण्डुलानावपति ॥३६॥ उरुः प्रथस्वोद्योधन्तीति श्रपयति ॥३७॥ प्रयच्छ पर्शुमिति दर्भाहाराय दात्रं प्रयच्छति ॥३८॥ ओषधीर्दान्तु पर्वन्नित्युपरि पर्वणां लुनाति ॥३९॥ नवं बर्हिरिति बर्हिस्तृणाति ॥४०॥ उदेहि वेदिं धर्ता ध्रियस्वेत्युद्वासयति ॥ ४१ ॥ अभ्यावर्त्तस्वेति कुम्भीं प्रदक्षिणमावर्तयति ॥४२॥ वनस्पते स्तीर्णमिति बर्हिषि पात्रीं निदधाति ॥४३॥ अंसध्रीमित्युपदधाति ॥४४॥ उपस्तृणीहीत्याज्येनोपस्तृणाति ॥४५॥ उपास्तरीरित्युपस्तीर्णामनुमन्त्रयते ॥४६॥२॥६१॥

अदितेर्हस्तां सर्वान् समागा इति मन्त्रोक्तम् ॥१॥ तत उदकमादाय पात्र्यामानयति ॥२॥ दर्व्या कुम्भ्यां ॥३॥ दर्विकृते तत्रैव प्रत्यानयति ॥४॥ दर्व्योत्तममपादाय

पवित्र डालकर जल का सेक करे ॥३४॥३५॥ "ब्रह्मणा शुद्धाः संख्याता स्तोका०" से उनमें जल डाल कर चावलों को आवपन करे ॥३६॥ "उरुः प्रथस्वोद्योधन्ति०" से पकावे ॥३७॥ "प्रयच्छ पर्शु०" दर्भ लाने वाले के लिये हसुआ देवे ॥३८॥ और "ओषधीर्दान्तु पर्वन्०" से दर्भ को गाँठ से ऊपर ही काटे ॥ ३९ ॥ "नवं बर्हिः०" से कुशों को बिछावे ॥४०॥ "उदेहि वेदिं धर्ता ध्रियस्व०" से उद्वासन करे ॥४१॥ "अभ्यावर्तस्व०" से कुम्भी को प्रदक्षिण आवर्तन करे ॥४२॥ "वनस्पते स्तीर्ण०" से कुश पर पात्री को धरे ॥४३॥ "अंसध्रीं०" से रक्खे ॥४४॥ "उपस्तृणीहि०" से आज्य से उपस्तीर्ण करे ॥४५॥ "उपास्तरीः" बिछाये हुए को अनुमंत्रण करे ॥४६॥२॥६१॥ यह एकसठवी कंडिका समाप्त हुई ॥

"अदितेर्हस्तां सर्वान्समागा०" से पत्नी को दर्वी पकड़ावे ॥१॥ तब जल लाकर पात्री में लावे ॥२॥ दर्वी से कुम्भी में डाले ॥३॥ उस दर्वी के जल को वहीं लाकर धरे ॥४॥ दर्वी में का लाया जल को, यजमान

दाय तत्सुहृद्दक्षिणतोऽग्नेरुदङ्मुख आसीनो धारयति ॥५॥ अथोद्धरति ॥६॥ उद्धृते यदपादाय धारयति तदु-त्तरार्धं आदधाति ॥७॥ अनुत्तराधरताया ओदनस्य यदुत्तरं तदुत्तरमोदन एवौदनः ॥८॥ षष्ट्यां शरत्स्विति पश्चादग्नेरुपसादयति ॥९॥ निधिं निधिपा इति त्रीणि काण्डानि करोति ॥१०॥ यज्ज्ञायेति मन्त्रोक्तम् ॥११॥ सा पत्यावन्वारभते ॥१२॥ अन्वारब्धेष्वत ऊर्ध्वं करो-ति ॥१३॥ अग्नौ रक्ष इति पर्यग्नि करोति ॥१४॥ बभ्रे-रध्वर्यो इदं प्रापमित्युपर्योपानं करोति ॥ १५ ॥ बभ्रे-र्ब्रह्मन्निति ब्रूयादनध्वर्युम् ॥१६॥ घृतेन गात्रा सिञ्च सर्पिरिति सर्पिषा विष्यन्दयति ॥१७॥ वसोर्या धारा आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्य इति रसैरुपसिञ्चति ॥१८॥ प्रियं प्रियाणामित्युत्तरतोऽग्नेर्धेन्वादीन्यनुमन्त्रयते॥१९॥ताम-स्यासरत्प्रथमेति यथोक्तं दोहयित्वोपसिञ्चति ॥२०॥ अस्यासरत् प्रथमा धोक्ष्यमाण सर्वान् यज्ञान् बिभ्रती

का सुहृत् लेकर अग्नि के दक्षिण भाग में उत्तर मुख बैठकर धारण किया रहे ॥५॥ अब उद्धरण करे ॥६॥ अनुत्तराधारता के ओदन के जो उत्तर है वही उत्तर ओदन, ओदन है ॥७॥८॥ "षष्ट्यां शरत्सु०" से अग्नि के पश्चिम भाग में उसको लाकर धरे ॥९॥ "निधिं निधिपा०" से तीन काण्ड करे ॥१०॥ "यज्जाया०" से मन्त्रोक्त क्रिया करे ॥११॥ पत्नी पति द्वारा अन्वारब्ध होकर कर्म करे ॥ १२ ॥ १३ ॥ "अग्नौ रक्ष०" से पर्यग्नि करे ॥१४॥ "बभ्रेरध्वर्यो इदं प्रापं०" से ओदन के ऊपर गर्त्त करे ॥१५॥ "बभ्रेर्ब्रह्मन्०" से अनध्वर्यु को कहे "घृतेन गात्रा सिञ्च सर्पिषि०" से घृत द्वारा विष्यन्दन करे ॥१६॥१७॥ "वसोर्या धारा आदि-त्येभ्यो अङ्गिरोभ्यः" से रस द्वारा सिञ्चन करे ॥१८॥ "प्रियं प्रियाणां०" से अग्नि के उत्तर में धेनु आदिकों को अनुमंत्रण करे ॥१९॥ "अस्या-सरत्०" आधी ऋचा से अभिसरन्ती गौ को अनुमंत्रण करे। "उप-

वैश्वदेवी ॥ उप वत्सं सृजत वाश्यते गौर्व्यसृष्ट सुमना हिंकृणोति ॥ बधान वत्समभि धेहि भुञ्जती निज्य गोधुगुपसीद दुग्धि । इरामस्मा ओदनं पिन्वमाना कीलालं घृतं मदमन्नभागम् ॥ सा धावतु यमराजः सवत्सा सुदुघां पथा प्रथमेह दत्ता ॥ अतूर्णदत्ता प्रथमेदमागन् वत्सेन गां संसृज विश्वरूपामिति ॥२१॥ इदं मे ज्योतिः समग्नय इति हिरण्यमधिदधाति ॥२२॥ एषा त्वचामित्यमोतं वासोऽग्रतः सहिरण्यं निदधाति ॥२३॥३॥६२॥

यदक्षेष्विति समानवसनौ भवतः ॥ १ ॥ द्वितीयं तत्पापचैलं भवति तन्मनुष्याधमाय दद्यादित्येके ॥२॥ श्रृतं त्वा हव्यमिति चतुर आर्षेयान् भृग्वङ्गिरोविद उप-

---

वत्सं०" असृष्ट सुमना हिंकृणोति०" से हिंकार करती हुई गौ के छोटे वत्स को बांधे (उसके पैर में बांधे) । "वाश्यते गौः०" से वाश्यमाना गौ को नियुक्त करे । "गोधुगुपसीद०" से ब्राह्मण दूहने के लिये गौ को लावे । "दुग्धि०" इत्यादि पद के साथ आधी ऋचा से गौ को दूहे । "सा धावतु०" आधी ऋचा से छोड़ी हुई गौ को अनुमंत्रण करे । "अतूर्णदत्त०" से आधी ऋचा से पुनः बच्चे के साथ गौ को कर देवे ॥१८॥१९॥२०॥२१॥ इस प्रकार दूह कर, दूध के साथ ओदन को सींच कर "इदं मे ज्योतिः" से दाता को पाद बचवावे, और सोना उसमें डलवावे । दाता सूक्त पढ़कर सबको सम्पातवन्त करे या "श्राम्यत" प्रभृति से दाता, पत्नी, अपत्य इनको अन्वारम्भ करावे । और "एषा त्वचा०" इस ऋचा से बुने हुए वस्त्र को आगे धरे उसमें सोना भी धरे ॥२३॥३॥६२॥ यह बासठवी कंडिका समाप्त हुई ।

"यदक्षेषु०" इससे समान वस्त्र पहन ओढ़े दोनों रहे ॥१॥ कोई २ आचार्य कहते हैं कि दूसरा वस्त्र पाप चैल होता है अतएव इसको किसी अधम मनुष्य को देवे ॥२॥ अब अथर्ववेद में ब्राह्मणों को बुलाने का समय। "दाता सोम राजन्०" ऋचा से आर्षेयगुण युक्त चार भृग्वङ्गिरोविद् ब्राह्मणों को बुलाकर । "श्रृतं त्वा हव्यं" से यज्ञ कराने के लिये

सादयति ॥ शुद्धाः पूता इति मन्त्रोक्तम् ॥ ४ ॥ पक्वं क्षेत्राद्वर्षं वनुष्वेस्यपकर्षति ॥ ५ ॥ अग्नौ तुषानिति तुषानावपति ॥ ६ ॥ परः कम्बूकानिति सव्येन पादेन फलीकरणानपोहति ॥ ७ ॥ तन्वं स्वर्ग इत्यन्यानावपति ॥ ८ ॥ अग्ने प्रेहि समाचिनुष्वेत्याज्यं जुहुयात् ॥ ९ ॥ एष सवानां संस्कारः ॥ १० ॥ अथ लुप्तानि निवर्तन्ते ॥ ११ ॥ यथासवं मन्त्रं सन्नमयति ॥ १२ ॥ लिङ्गं परि-हितस्य लिङ्गस्यानन्तरं कर्मकर्मानुपूर्वेण लिङ्गं परीक्षेत ॥१३॥ लिङ्गेन वा ॥१४॥ कर्मोत्पत्त्यानुपूर्वं प्रशस्तम् ॥१५॥ अतथोत्पत्तेर्यथालिङ्गम् ॥ १६ ॥ समुच्चयस्तुल्यार्थानां विकल्पो वा ॥ १७ ॥ अथैतयोर्विभागः ॥ १८ ॥ सूक्तेन पूर्वं सम्पातवन्तं करोति ॥ १९ ॥ आम्यत इतिप्रभृ-तिभिर्वा सूक्तेनाभिमन्त्र्याभिनिगद्य दद्याद्दाता वाच्य-

---

पास रक्खे ॥३॥ "शुद्धाः पूताः०" से मंत्रोक्त क्रिया करे ॥४॥ "पक्वं-क्षेत्राद्वर्षं वनुषु०" से अपकर्षण करे ॥५॥ "अग्नौ तुषान्०" से अग्नि में तुषों को डाले ॥६॥ "परः कम्बूकान्०" से वाम पग से फली करण को दूर करे ॥७॥ "तन्वं स्वर्ग" से अन्य वस्तुयें जो उसमें हों निकाल फेके ॥८॥ "अग्ने प्रेहि०" से आज्य की आहुति करे ॥९॥ अब दाता ऋत्विजों को व्रत निवेदन करके साविक व्रत को तीन रात्रि यथा शास्त्र विहित इत्यादि ऋत्विग्गण सुनावें। यह सवों का संस्कार है ॥१०॥ अथ लुप्तों की निवृत्ति हुई ॥११॥ सवके अनुसार मंत्र को संयमन करे ॥१२॥ लिङ्ग परिहित का, लिङ्ग के अनन्तर कर्म और कर्मानुपूर्व से लिङ्ग की परीक्षा करे ॥१३॥ या लिङ्ग से ही परीक्षा करे ॥१४॥ कर्म की उत्पत्ति के अनुपूर्व परीक्षा करना अच्छा है ॥१५॥ कर्म की उत्पत्ति यदि असत्य हो तो लिङ्गानुसार परीक्षा करे ॥१६॥ या एक ही अर्थवालों के समुच्चय से विकल्प पक्ष माने ॥१७॥ अब इन दोनों पक्षों के विभाग को कहते हैं ॥१८॥ सूक्त से पहिले सम्पातवन्त करे ॥१९॥ या "आम्यत" इत्यादि से करे। सूक्त से अभिमंत्रण करके, निगद करके वाच्यमान

मानः ॥२०॥ अनुवाकेनोत्तरं सम्पातवन्तं करोति ॥२१॥ प्राच्यै त्वा दिश इतिप्रभृतिभिर्वानुवाकेनाभिमन्त्र्याभिनिगद्य दद्याद्दाता वाच्यमानः ॥ २२ ॥ यथासवमन्यान्पृथग्वेति प्रकृतिः ॥ २३ ॥ सर्वं यथोत्पत्त्याचार्याणां पञ्चौदनवर्जम् ॥ २४ ॥ प्रयुक्तानां पुनरप्रयोगम् ॥२५॥ एके सहिरण्यां धेनुं दक्षिणां ॥२६॥ गो दक्षिणां वा कौरुपथिः ॥ २७ ॥ सम्पातवतोऽभिमन्त्र्याभिनिगद्य दद्याद्दाता वाच्यमानः ॥ २८ ॥ एतं भागमेतं सधस्था उलूखल इति संस्थितहोमाः ॥ २९ ॥ आपवते ॥ ३० ॥ अनुमन्त्रणं च ॥३१॥४॥६३॥

आशानामिति चतुःशरावम् ॥ १ ॥ यद्राजान इत्यवेक्षति ॥ २ ॥ पदस्नातस्य पृथक्पादेष्वपूपान् निदधाति ॥३॥ नाभ्यां पञ्चमम् ॥ ४ ॥ उन्नह्यन्वसनेन सहिरण्यं सम्पातवन्तम् ॥ ५ ॥ आनयैतमित्यपराजिता-

---

दाता देवे ॥२०॥ अनुवाक से उत्तर सम्पातवन्त करे ॥२१॥ "प्राच्यै त्वा दिश०" इत्यादि से, या अनुवाक से अनुमंत्रण करके अभिनिगदन करके वाच्यमानदाता दाता देवे ॥२२॥ या यथासव अन्यों को अलग २ देवे यह 'प्रकृति' है ॥२३॥ कर्मोत्पत्ति पक्ष के सब ही आचार्यो के मत से पञ्चौदन को छोड़ कर है ॥२४॥ प्रयुक्तों का फिर अप्रयोग होगा ॥२५॥ किन्हीं आचार्य्यों के मत से सोना सहित धेनु दक्षिणा में देवे ऐसा है ॥२६॥ कौरुपथि आचार्य के मत से केवल गौ ही दक्षिणा देवे ॥२७॥ सम्पात वाले को अभिमंत्रण एवं अभिनिगदन करके वाच्यमान दाता देवे ॥२८॥ "एतं भागमेतं सधस्था उलूखल:" से संस्थित होमों को करे ॥२९॥ आवपन और अनुमंत्रण करे ॥३०॥३१॥४॥६३॥ यह तिरसठवी कंडिका समाप्त हुई ॥

"आशानां०" से चार पुरवा को लाकर धरे ॥१॥ "यद्राजान०" से अवेक्षण करे ॥२॥ पदस्नात के अलग २ पादों पर अपूपों को धरे ॥३॥ नाभि पर पञ्चम को ॥४॥ कपड़े से उन्नहन करता हुआ कपड़े से सोने के साथ सम्पातवन्त को ॥५॥ और "आनयैतं०" से पश्चिम

दजमानीयमानमनुमन्त्रयते ॥६॥ इन्द्राय भागमित्यग्निं परिणीयमानम् ॥ ७ ॥ ये नो द्विषन्तीति संज्ञप्यमानम् ॥ ८ ॥ प्रपद इति पदः प्रक्षालयन्तम् ॥ ९ ॥ अनु छ्य श्यामेनेति यथापरु विशसन्तम् ॥ १० ॥ ऋचा कुम्भीमित्यधिश्रयन्तम् ॥११॥ आसिञ्चेत्यासिञ्चन्तम् ॥१२॥ अवधेहीत्यवदधतम् ॥ १३ ॥ पर्याधत्तेति पर्यादधतम् ॥ ॥ १४ ॥ शृतो गच्छत्वित्युद्वासयन्तम् ॥ १५ ॥ उत्क्रामात इति पश्चादग्नेर्दर्भेषूद्धरन्तम् ॥१६॥ उद्धृतमजमनज्मीत्याज्येनानक्ति ॥१७॥ पञ्चौदनमिति मन्त्रोक्तम् ॥१८॥ ओदनान् पृथक्पादेषु निदधाति ॥ १९ ॥ मध्ये पञ्चमम् ॥ २० ॥ दक्षिणं पश्चार्द्धं यूषेनोपसिच्य ॥ २१ ॥ शृतमजमित्यनुषद्धशिरःपादं त्वेतस्य चर्म ॥ २२ ॥ अजो हीति सूक्तेन सम्पातवन्तं यथोक्तम् ॥ २३ ॥ उत्तरो-

---

दिशा से बकरे को लाते हुए को अनुमंत्रण करे ॥६॥ "इन्द्राय भागं०" से अग्नि को परिणीय करते हुए को अनुमंत्रण करे ॥७॥ "ये नो द्विषन्ति०" से संज्ञपन करने वाले को अनुमंत्रण करे ॥८॥ "प्रपदः" से पैरों को प्रक्षालन करते हुए को अभिमंत्रण करे ॥९॥ परु के अनुसार हनन करने वाले को अनुमंत्रण करे ॥१०॥ "ऋचा कुम्भीं०" से पकाने वाले को अनुमंत्रण करे ॥११॥ "आसिञ्च०" से अभिसिञ्चन करते हुए को अभिमंत्रण करे ॥१२॥ "अवधेहि०" से अवधान करनेवाले को अभिमंत्रण करे। "पर्य्याधत्त०" से पर्य्यादधत को अनुमं० "शृतो गच्छतु०" से उद्वासन करते हुए को अनु० "उत्क्रामत०" से अग्नि के पश्चिम भाग में दर्भों पर उद्धरण करते हुए को अनुमंत्रण करे ॥१३॥१४॥१५॥१६॥ "उद्धृतमजमनज्मि०" से आज्य को मिलावे ॥१७॥ "पञ्चौदनं०" से मन्त्रोक्त करे ॥१८॥ ओदनों को अलग पादों में धरे ॥१९॥ मध्य में पाचवें को धरे ॥२०॥ दक्षिण पश्चार्ध को यूष से उपसेचन करके। "शृतमजं०" से बांधे हुए शिर पैर वाले का यह चर्म है ॥२१॥॥२२॥ "अजो हि०" इस सूक्त से सम्पात वाले को धरे ॥२३॥ उत्तर दिशा में

ऽमोतं तस्याग्रतः सहिरण्यं निदधाति ॥२४॥ पञ्च रुक्मेति मन्त्रोक्तम् ॥ २५ ॥ धेन्वादीन्युत्तरतः सोपधानमास्तरणं वासो हिरण्यञ्च ॥ २६ ॥ आनयैतमिति सूक्तेन सम्पातवन्तम् ॥ २७ ॥ आञ्जनान्तं शतौदानायाः पञ्चौदनेन व्याख्यातम् ॥२८॥५॥६४॥

अघायतामित्यत्र मुखमपिनह्यमानमनुमन्त्रयते ॥१॥ सपत्नेषु वज्रं ग्रावा त्वैष इति निपतन्तम् ॥ २ ॥ वेदिष्ट इति मन्त्रोक्तमास्तृणाति ॥ ३ ॥ विंशत्योदनासु श्रयणीषु शतमवदानानि वध्रीसन्नद्धानि पृथगोदनेषूपर्यादधाति ॥ ४ ॥ मध्यमायाः प्रथमे रन्ध्रिण्यामिक्षां दशमेऽभितः सप्तसप्तापूपान् परिश्रयति ॥ ५ ॥ पञ्चदशे पुरोडाशौ ॥ ६ ॥ अग्रे हिरण्यम् ॥७॥ अपो देवीरित्यग्रत उदकुम्भान् ॥८॥ बालास्त इति सूक्तेन सम्पातवतीम् ॥ ९ ॥ प्रदक्षिणमग्निमनुपरिणीयोपवेशनप्रक्षा-

---

अमोत के आगे सोना सहित धरे ॥२४॥ "पञ्च रुक्म०" से मंत्रोक्त करे ॥२५॥ धेनु आदिकों को उत्तर दिशा में उपधान के सहित बिछावन, वस्त्र और सोना देवे ॥२६॥ "आनयैतं०" इस सूक्त से सम्पात वाले को लावे ॥ २७॥ आञ्जन तक के कर्मों का व्याख्यान शतौदन का पञ्चौदन के साथ किया गया जानो ॥२८॥५॥६४॥ यह चौसठवी कंडिका समाप्त हुई ॥

"अघायतां०" से मुख को बांधने वाले को अनुमंत्रण करे ॥१॥ "सपत्नेषु वज्रं ग्रावा त्वैष०" से गिरते हुए को अनुमंत्रण करे ॥२॥ "वेदिष्ट०" से मंत्रोक्त वस्तु को आस्तरण करे ॥३॥ बीस पकने वाले ओदनों में १०० अवदानों को वध्रीसंनद्धों को, अलग ओदनों पर धरे ॥४॥ मध्यमा के पहिले में रन्ध्रिणी आमिक्षा को दशम में सात २ अपूपों को परिश्रयण करे । ५॥ पन्द्रहवें में दो पुरोडाशों को धरे ॥६॥ आगे सोना को ॥७॥ "अपो देवीः" से अग्रभाग में उदकुम्भों को धरे ॥८॥ "बालास्त०" इस सूक्त से सम्पात वाली करे ॥९॥ अग्नि की प्रदक्षिणा करता हुआ अनुपरिणीय, उपवेशन, प्रक्षालन, आचमन कहे

लनाचमनमुक्तम् ॥१०॥ पाणावुदकमानीय ॥११॥ अथामुष्यौदनस्यावदानानां च मध्यात्पूर्वार्द्धाच्च द्विरवदायोपरिष्टादुदकेनाभिघार्य जुहोति सोमेन पूतो जठरे सीद ब्रह्मणामार्षेयेषु निदध ओदन स्वेति ॥१२॥ अथ प्राश्नाति ॥१३॥ अग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि बृहस्पतेर्मुखेन । इन्द्रस्य त्वा जठरे सादयामि वरुणस्योदरे । तद्यथा हुतमिष्टं प्राश्नीयाद्देवास्मा त्वा प्राश्नाम्यास्मास्यास्मन्नास्मानं मे मा हिंसीरिति प्राशितमनुमन्त्रयते ॥ १४ ॥ योऽग्निर्नृमणा नाम ब्राह्मणेषु प्रविष्टः । तस्मिन्म एष सुहुतोऽस्त्वोदनः स मा मा हिंसीत्परमे व्योमन् ॥ सो अस्मभ्यमस्तु परमे व्योमन्निति दातारं वाचयति ॥१५॥ वीक्षणान्तं शतौदनायाः प्रातर्जपेन व्याख्यातम् ॥१६॥६॥६५॥

वाञ्च आसन्निति मन्त्रोक्तान्यभिमन्त्रयते ॥ १ ॥ बृहता मनो द्यौश्च मे पुनर्मैत्विन्द्रियमिति प्रतिमन्त्रयते ॥ २ ॥ प्रतिमन्त्रिते व्यवदायाश्नन्ति ॥ ३ ॥ शतौदनायां द्वादशं शतं दक्षिणाः ॥ ४ ॥ अधिकं ददतः कामप्रं सम्पद्यते ॥ ५ ॥ ब्रह्मास्येस्योदने ह्रदान्प्रतिदिशं करोति ॥६॥

गये जानो ॥१०॥ हाथ में जल लाकर ॥११॥ अब अमुष्यौदन के अवदानों का और मध्य पूर्वार्ध से दो बार लेकर ऊपर से जल से अभिघारण कर आहुति देवे । "सोमेन पूतो०" इत्यादि से ॥१२॥ अब प्राशन करे "अग्नेष्ट्वास्येन०" इत्यादि से प्राशन करके अनुमंत्रण करे । "योऽग्निर्नृमणा०" इत्यादि से दाता को बचवावे ॥१३॥१४॥१५॥ शतौदनाका व्याख्यान वीक्षण तक किया गया जानो ॥१६॥६॥६५॥ यह पैसठवी कंडिका समाप्त हुई ॥

"वाञ्च आसन्०" से मंत्रों में कहे हुओं का अनुमंत्रण करे ॥१॥ "बृहता मनो०" इत्यादि से प्रतिमंत्रण करे॥२॥ प्रतिमंत्रित होने पर उसे लेकर खावे ॥३॥ शतौदना में १२०० दक्षिणा देनी चाहिये ॥४॥ अधिक देने से "कामप्रं" की प्राप्ति होती है ॥५॥ "ब्रह्मास्य०" से ओदन

उपर्योपानम् ॥७॥ तदभितश्चतस्रो दिश्याः कुल्याः ॥८॥ ता रसैः पूरयति ॥९॥ पृथिव्यां सुरयाद्भिराण्डीकादिवन्ति मन्त्रोक्तानि प्रतिदिशं निधाय ॥ यमोदनमित्यतिमृत्युम् ॥ ११ ॥ अनड्वानित्यनड्वाहम् ॥ १२ ॥ सूर्यस्य रश्मीनिति कर्कीं सानूबन्ध्यां ददाति ॥ १३ ॥ आयं गौः पृश्निरयं सहस्रमिति पृश्निं गाम् ॥१४॥ देवा इमं मधुना संयुतं यवमिति पौनःशिलं मधुमन्थं सहिरण्यं सम्पातवन्तम् ॥१५॥ पुनन्तु मा देवजनाः इति पवित्रं कृशरम् ॥ १६ ॥ कः पृश्निमित्युर्वराम् ॥१७॥ साहस्र इत्यृषभम् ॥ १८ ॥ प्रजापतिश्चेत्यनड्वाहम् ॥ १९ ॥ नमस्ते जायमानायै ददामीति वशामुदपात्रेण सम्पातवता सम्प्रोक्ष्याभिमन्त्र्याभिनिगद्य दद्याद्दाता वाच्यमानः ॥ २० ॥ भूमिष्ट्वेत्येनां प्रतिगृह्णाति ॥२१॥ उपमितामिति यच्छालया सह दास्यन् भवति तदन्तर्भवत्यपिहितम् ॥२२॥

में प्रति दिशा में पोखर बनावे ॥६॥ और उसके ऊपर गर्त्त करे ॥७॥ उसके सम्मुख चार दिशा कुल्या करे ॥८॥ उनको रसों से पूरा करे ॥९॥ पृथिवी पर सुरा, जल और आण्डीकादि वाले करे जैसा मंत्र में कहा गया है प्रदिशा में धरे ॥१०॥- "यमोदनं०" से अतिमृत्यु को ॥११॥ "अनड्वान्०" से अनड्वाह को ॥१२॥ 'सूर्य्यस्य रश्मीन्०" कर्की सानुबन्ध्या देवे ॥१३॥ "आयं गौः पृश्निरयं सहस्रं०" से पृश्नि गौ को ॥१४॥ "देवा इमं मधुना संयुतं यवं०" से पौनः शिल को, मधुमन्थ को, सोने के साथ सम्पातवन्त करे ॥१५॥ "पुनन्तु मा देवजना०" से कृशर को पवित्र करे ॥१६॥ "कः पृश्नि०" से उर्वरा को और "साहस्रः" से ऋषभ को, "प्रजापतिश्च०" से अननुडुह को ॥१७॥१८॥१९॥ "नमस्ते जायमानायै ददामि०" से वशा को उदपात्र से सम्पात वाला से संप्रोक्षण करके अभिमंत्रण करके अभिनिगद करके वाच्यमान दाता देवे ॥२०॥ "भूमिष्ट्वा०" से इसको प्रतिग्रहण करे ॥२१॥ "उपमितां०" से जिस

मन्त्रोक्तं तु प्रशस्तम् ॥२३॥ इटस्य ते विचृतामीति द्वार-मवसारयति ॥२४॥ प्रतीचीं त्वा प्रतीचीन इत्युदपात्र-मग्निमादाय प्रपद्यन्ते ॥२५॥ तदन्तरेव सूक्तेन सम्पात-वत्करोति ॥२६॥ उदपात्रेण सम्पातवता शालां सम्प्रो-क्ष्याभिमन्त्र्याभिनिगद्य दद्याद्दाता वाच्यमानः ॥ २७ ॥ अन्तरा द्यां च पृथिवीं चेत्येनां प्रतिगृह्णाति ॥२८॥ उप-मितामिति मन्त्रोक्तानि प्रचृतति ॥२९॥ मा नः पाशमित्य-भिमन्त्र्य धारयति ॥३०॥ नास्यास्थीनीति यथोक्तम् ॥३१॥ सर्वमेनं समादायेत्यद्भिः पूर्णे गर्ते प्रविध्य संवपति ॥ ३२ ॥ शतौदनां च ॥३३॥७॥६६॥

शाला के साथ देना होवे उसके भीतर धर ढाक देवे ॥२२॥ मंत्र में कहा हुआ तो अच्छा होता है ॥२३॥ "इटस्य ते विचृतामि०" से द्वार को पसारे ॥२४॥ "प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः" से उदपात्र को, अग्नि को लेकर जावे ॥२५॥ उसके भीतर ही सूक्त से सम्पात वाला करे ॥२६॥ उद-पात्र से सम्पात वाला से शाला को संप्रोक्षण, अभिमंत्रण और निगदन करके वाच्यमान दाता देवे ॥२७॥ "अन्तरा द्यां च पृथिवीं च०" से इसको लेवे ॥२८॥ "उपमितां०" से मंत्रों में कहे हुओं को बखेरे ॥२९॥ "मा नः पाशं०" से अभिमंत्रण करके धारण करे ॥३०॥ "ना-स्यास्थीनि०" मंत्रोक्त कर्मों को करे ॥३१॥ इसको सब लेकर "सर्वमेनं सम्पाद्य०" से पूर्ण गर्त्ते में डाल कर संवपन करे ॥ ३२ ॥ और शतौ-दना को भी ॥३३॥ अब यहाँ सव यज्ञों को भली भाँति समझने के लिये व्याख्या करते हैं—बाईस प्रकार के सव होते हैं। अब इनकी गिनती की जाती है "अग्ने जायमानस्व०" इस अर्थ सूक्त से ब्रह्मौदन देवे ॥ १ ॥ "पुमान् पुंसः०"इस अनुवाक से स्वर्गौदन को देवे ॥२॥ "आशानां०"से चार पुरवा सव को॥३॥ "यद्राजानं०"सूक्त से अविसव को ॥४॥ "अजो ह्यग्नेरजनिष्ट०" सूक्त से अजौदन सव को ॥५॥ "आनयैतां०" इस अर्थ सूक्त से पञ्चौदन सव को ॥६॥ "अघायतां०" इस अर्थ सूक्त से शतौदन सव को ॥७॥ "ब्रह्मास्य शीर्षं०" इस सूक्त से ब्रह्मास्यौदन सव को ॥८॥

सम्भृतेषु साविकेषु सम्भारेषु ब्राह्मणमृत्विजं वृणीत ॥ १ ॥ ऋषिमार्षेयं सुधातुदक्षिणमनैमित्तिकम् । एष ह वा ऋषिरार्षेयः सुधातुदक्षिणो यस्य त्र्यवराध्यां: पूर्वपुरुषा विद्याचरणवृत्तशीलसम्पन्नाः ॥ ३ ॥ उदगयन इत्येके ॥ ४ ॥ अथात ओदनसवानामुपाचारकल्पं व्याख्यास्यामः ॥ ५ ॥ सवान् दत्त्वाग्नीनादधीत ॥ ६ ॥ सार्ववैदिक इत्येके ॥ ७ ॥ सर्वे वेदा द्विकल्पाः ॥ ८ ॥

"यमोदनं०" इस सूक्त से अतिमृत्यु सव को ॥९॥ "अनड्वान्दधार०" इस सूक्त से अनडुह सव को ॥१०॥ "सूर्यस्य रश्मीन्०" इस सूक्त के तीन ऋचाओं द्वारा कर्क सव ॥११॥ "आयं गौः" इस सूक्त की तीन ऋचाओं से पृश्नि सव ॥१२॥ "अयं सहस्रं०" इन दो ऋचाओं से पृश्नि गौ सव ॥१३॥ "देवा इमं०" इस ऋचा से पौनःशिल सव ॥१४॥ "पुनन्तु मा०" इस सूक्त से पवित्र सव को ॥१५॥ "कः पृश्निं०" ऋचा से उर्वरा सव ॥१६॥ "साहस्र त्वेष०" इस सूक्त से ऋषभ सव ॥१७॥ "प्रजापतिश्च०" सूक्त से अनडुह सव ॥१८॥ "नमस्ते जायमानायै" इस अर्थ सूक्त से वशा सव ॥१९॥ "ददामि०" इस अनुवाक से वशासव ॥२०॥ "उपमितां०" इस अर्थ सूक्त से शालासव ॥२१॥ "तस्यौदनस्य०" इस अर्थ सूक्त से बृहस्पति सव ॥२२॥ अभिचार काम का ॥२३॥ बाईस सव यज्ञ संहिता में पढ़े जाते हैं । स्वर्गौदनतन्त्र से सब सव यज्ञों को करे या ब्रह्मौदन तंत्र से; क्योंकि स्वर्गब्रह्मौदन दोनों तन्त्र (प्रक्रियायें) हैं ॥७॥६६॥ यह छियासठवी कंडिका समाप्त हुई ॥

ओदन यज्ञ के लिये सामग्रियों के जुट जाने पर ब्राह्मण ऋत्विज को वरण करे ॥१॥ इन्हीं ऋषि को जिनमें आर्षेय गुण सम्पन्न हैं, वह हैं सुधातु दक्षिण, इन्हीं विना निमित्त वरण करना चाहिये ॥२॥ या यही ऋषि आर्षेय सुधातु दक्षिण हैं जिनके तीन से अधिक पूर्व पुरुष विद्या, आचरण, वृत्त, शील से सम्पन्न हुए हैं ॥३॥ इस यज्ञ के लिये उत्तरायण है—ऐसा अनेक आचार्यों की सम्मति है ॥४॥ अब ओदन सवों का उपचार कल्प कहेंगे ॥५॥ सवों को देकर अग्नि का आधान करे ॥६॥ सार्ववैदिक—यह है ऐसा बहुत से आचार्य कहते हैं ॥७॥ सब ही वेद

मासपराध्यौ दीक्षा द्वादशरात्रो वा ॥ ९ ॥ त्रिरात्र इत्येके ॥ १० ॥ हविष्यभक्षाः स्युर्ब्रह्मचारिणः ॥११॥ अधः शयीरन् ॥१२॥ कर्तृदातारावा समापनात्कामं न भुञ्जीरन् सन्तताश्चेत् स्युः ॥१३ अहनि समाप्तमित्येके ॥१४॥ यात्रार्थं दातारौ वा दाता केशश्मश्रुरोमनखानि वापयीत ॥१५॥ केशवर्जं पत्नी ॥१६॥ स्नातावहतवसनौ सुरभिणौ व्रतवन्तौ कर्मण्यावुपवसतः ॥१७॥ श्वो भूते यज्ञोपवीती शान्त्युदकं कृत्वा यज्ञवास्तु च सम्प्रोक्ष्य ब्रह्मौदनिकमग्निं मथित्वा ॥ १८ ॥ यद्देवा देवहेडनं यद्विद्वांसो यद्विद्वांसोऽपमित्यप्रतीत्तमित्येतैस्त्रिभिः सूक्तैरन्वारब्धे दातरि पूर्णहोमं जुहुयात् ॥१९॥ पूर्वाह्णे बाह्यतः शान्तवृक्षस्येध्मं प्राश्नमुपसमाधाय ॥२०॥ परिसमुह्य पर्युक्ष्य परिस्तीर्य बर्हिरुदपात्रमुपसाद्य परिचर-

---

द्विकल्प हैं ॥८॥ मास, पक्ष या १२ रात्र तक दीक्षा ग्रहण करे ॥९॥ किन्हीं के मत में तीन रात ॥१०॥ ब्रह्मचारी दीक्षाकाल में हविष्य भक्षण करे ॥११॥ भूमि पर सोवे ॥१२॥ कर्त्ता और दाता बिना समाप्ति के अपनी इच्छा से भोजन न करे; यदि लगातार कार्य्य हों ॥१३॥ दिन ही में समाप्त करें—किन्हीं की सम्मत्ति है ॥१४॥ यात्रा के प्रयोजन से दाता पति पत्नी केश, श्मश्रु, रोम और नखों को कटवावे ॥१५॥ केश को छोड़ कर पत्नी (केवल नख कटवावे) ॥१६॥ स्नान करके अखण्ड नये वस्त्रों को पहन कर सुगन्ध चन्दनादि अनुलेपन कर, व्रती होकर कर्म निमित्त उपवास रहें ॥१७॥ प्रातः होने पर यज्ञोपवीती हो शान्त्युदक करके और यज्ञवास्तु को संप्रोक्षण करके ब्रह्मौदनिक अग्नि को मथ कर ॥१८॥ "यद्देवा देवहेडनं, यद्विद्वाँसो यद्विद्वांसोऽपं०"और "अप्रतीत्तं०" इत्यादि तीनों सूक्तों से दाता के अन्वारब्ध करने पर पूर्ण होम करें ॥१९॥ पूर्वाह्ण समय बाहर से शान्तवृक्ष के इध्मों को पूर्व कर उपसमाधान करके ॥२०॥ परिसमूहन, पर्युक्षण और परिस्तरण करके कुश

णेनाज्यं परिचर्य ॥२१॥ निस्यान्पुरस्ताद्धोमान् हुत्वाज्यभागौ च ॥२२॥ पश्चादग्नेः पल्पूलितविहितमौक्षं वानडुहं वा रोहितं चर्म प्राग्ग्रीवमुत्तरलोम परिस्तीर्य ॥२३॥ पवित्रे कुरुते ॥२४॥ दर्भावप्रच्छन्नप्रान्तौ प्रक्षाल्यानुलोममनुमार्ष्टि ॥२५॥ दक्षिणं जान्वाच्यापराजिताभिमुखः प्रह्वो वा मुष्टिना प्रसृतिनाञ्जलिना यस्यां श्रपयिष्यन्स्यात्तया चतुर्थम् ॥२६॥ शरावेण चतुःशरावं देवस्य त्वा सवितुः प्रसव ऋषिभ्यस्त्वार्षेयेभ्यस्त्वैकर्षये त्वा जुष्टं निर्वपामि ॥२७॥८॥६७॥

वसवस्त्वा गायत्रेण च्छन्दसा निर्वपन्तु । ऊर्जमक्षितमक्षीयमाणमुपजीव्यासमिति दातारं वाचयति ॥१॥ रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन च्छन्दसा । आदित्यास्त्वा जागतेन च्छन्दसा । विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन च्छन्दसा निर्वपन्तु । ऊर्जमक्षितमक्षीयमाणमुपजीव्यासमिति दातारं वाचयति ॥२॥ निरुप्तं सूक्तेनाभिमृशति ॥३॥ स्वर्गब्रह्मौदनौ

और उदपात्र को लाकर परिचरण आज्य को ठीक करके ॥२१॥ नित्य पुरस्तात् होमों को करके और आज्य की दो आहुति करके ॥२२॥ अग्नि के पश्चिम पल्पूलित विहित औक्ष या अनड्वान का लाल चर्म प्राग्ग्रीव उत्तर लोम कर बिछावे । पवित्रे से मार्जन करे ॥२३॥२४॥ बिना टूटे दो दर्भों को प्रक्षालन करके अनुलोमों को मार्जन करे ॥२५॥ दहिने जंघे को टेक कर पश्चिमाभिमुख हो निहुड़ कर या मुट्ठी से अंजुलि पसार कर जिसमें पकाना होगा उसके चौथे को ॥२६॥ पुरवा से "चतुःशरावं देवस्य त्वा सवितुः" इत्यादि से निर्वपन करे ॥२७॥८॥६७॥ यह सड़सठवि कंडिका समाप्त हुई ॥

"वसवस्त्वा० इत्यादि आहुति करके दाता से "ऊर्जमक्षित०" इत्यादि बचवावे ॥१॥ "रुद्रास्त्वा०" इत्यादि से आहुति देकर दाता को "ऊर्जमक्षित०" इत्यादि को बचवावे ॥२॥ आहुति शेष को सूक्त से अभिमर्षन करे ॥३॥ स्वर्ग और ब्रह्मौदन तन्त्र से कर्म करे ॥४॥ (यदि एक

तन्त्रम् ॥४॥ सन्निपाते ब्रह्मौदनमितमुदकमासेचयेद्विभागम् ॥५॥ यावन्तस्तण्डुलाः स्युर्नावसिञ्चेन्न प्रतिषिञ्चेत् ॥६॥ यद्यवसिञ्चेन्मयि वर्चो अथो यश इति ब्रह्मा यजमानं वाचयति ॥७॥ अथ प्रतिषिञ्चेत् ॥८॥ आप्यायस्व सं ते पयांसीति द्वाभ्यां प्रतिषिञ्चेत् ॥९॥ आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ सं ते पयांसि समुयन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः । आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्वेति ॥१०॥ तत्र चेदुपाधिमात्रायां नखेन न लवणस्य कुर्यात्तेनैवास्य तद्वृथान्नं सम्पद्यते ॥११॥ अहतं वासो दक्षिणत उपशेते ॥१२॥ तत्सहिरण्यम् ॥१३॥ तत्र द्वे उदपात्रे निहिते भवतः ॥१४॥ दक्षिणमन्यदन्तरमन्यत् ॥१५॥ अन्तरं यतोऽधिचरिष्यन् भवति ॥१६॥ बाह्यं जाङ्गायनम् ॥१७॥ तत उदकमादाय पात्र्यामानयति ॥१८॥

साथ अनेक पदार्थ हों तो संनिपात कहते हैं ।) संनिपात की दशा में ब्रह्मौदन को विभाग (अलग २ करके) कर जल से सेचन करे ५॥ जितने तण्डुल हों उन सबको न अवसेचन करे न प्रतिषेचन करे ॥६॥ यदि अवसेचन करे तो "मयि वर्चो अथो यशः" । इसको ब्रह्मा यजमान को बचवावे ॥७॥ और प्रतिषिञ्चन करे तो "आप्यायस्व, सं ते पयांसि०" इन दो ऋचाओं से प्रतिषिञ्चन करे ॥८॥९॥ "आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य संगथे ॥ सं ते पयांसि समुयन्तु वाजाः संवृष्णान्यभिमातिषाहः । आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व" इति । यदि वहां उपाधि मात्रा में नख से लवण का न करे उसीसे इसका वह अन्न वृथा हो जाता है ॥११॥ अखण्ड नये वस्त्र पहन कर दक्षिण दिशा में सोवे ॥१२॥ उसके साथ स्वर्ण को देवे ॥१३॥ वहाँ दो पात्र निहित हैं ॥१४॥ दक्षिण में एक और अन्दर में अन्य है ॥१५॥ भीतर में जिस कारण काम करना होगा ॥१६॥ बाहर में जाङ्गायन है ॥१७॥ इसके अनन्तर जल लाकर पात्री में लावे

दर्व्या कुम्भ्याम् ॥१९॥ दर्विंकृते तत्रैव प्रत्यानयति ॥२०॥ दर्व्योत्तममपादाय तस्सुहृद्दक्षिणतोऽग्नेरुदङ्मुख आसीनो धारयति ॥२१॥ अथोद्धरति ॥२२॥ उद्धृते यदपादाय धारयति तदुत्तरार्धं आधाय रसैरुपसिच्य प्रतिग्रहीत्रे दातोपवहति ॥२३॥ तस्मिन्नन्वारब्धं दातारं वाचयति ॥२४॥ तन्त्रं सूक्तं पच्छः स्नानेन यौ ते पक्षौ यदतिष्ठः ॥२५॥ यौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्यां रक्षांस्यपहंस्योदन । ताभ्यां पथ्यास्म सुकृतस्य लोकं यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः ॥ यदतिष्ठो दिवस्पृष्ठे व्योमन्नध्योदन । अन्वायन्सत्यधर्माणो ब्राह्मणा राधसा सह ॥२६॥ क्रमध्वमग्निना नाकं पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहं स्वर्यन्तो नापेक्षन्त उरुः प्रथस्व महता महिम्नेदं मे ज्योतिः सत्याय चेति तिस्रः समग्नय इति सार्धमेतया ॥२७॥ अत ऊर्ध्वं वाचिते हुते संस्थितेऽमूं ते ददामीति नामग्राहमुपस्पृशेत् ॥२८॥ सदक्षिणं कामस्तदित्युक्तम् ॥२९॥ ये भक्षयन्त इति पुरस्ताद्धोमाः ॥३०॥ अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरुथ्यः ॥ तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ गयस्फानो

॥१८॥ दर्वी से कुम्भी में ॥१९॥ दर्वि में रखने से वहीं प्रत्यानयन करना पड़ता है ॥२०॥ दर्वी से अन्तिम जल को लाकर उसका सुहृत् अग्नि के दक्षिण में उत्तर मुख बैठकर धारण करे ॥२१॥ तन्त्र सूक्त को पढ़ २ करके "स्नानेन यौ ते पक्षौ यदतिष्ठः" इत्यादि। इसके साथ आधी ऋचा से ॥२५॥२६॥२७॥ इसके पश्चात् बचवाने पर एवं संस्थित होम हो जाने पर "अमूं ते ददामि०" से नामग्राह को स्पर्श करे ॥२८॥ दक्षिणा सहित "कामस्तत्०" से कहा गया है ॥२९॥ "ये भक्षयन्तः०" से पुरस्तात् होम करे ॥३०॥ "अग्ने त्वं नो०" इत्यादि से आज्यभाग की दो,

अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सुमनो भवेत्स्या-ज्यभागौ ॥३१॥ पाणावुदकमानीयेत्युक्तम् ॥३२॥ प्रति-मन्त्रणान्तम् ॥३३॥ प्रतिमन्त्रिते ऽयवदायाश्नन्ति ॥३४॥ इदावत्सरायेति व्रतविसर्जनमाज्यं जुहुयात् ॥३५॥ समिधोऽभ्यादध्यात् ॥३६॥ तत्र श्लोकौ । यजुषा मथिते अग्नौ यजुषोपसमाहिते ॥ सवान् दत्त्वा सवाग्नेस्तु कथमुत्सर्जनं भवेत् ॥ वाचयित्वा सवान् सर्वान् प्रति-गृह्य यथाविधि ॥ हुत्वा सन्नतिभिस्तत्रोत्सर्गं कौशिकोऽब्रवीत् ॥३७॥ प्राञ्चोऽपराजितां वा दिशमवभृथाय व्रजन्ति ॥३८॥ अपां सूक्तैराप्लुत्य प्रदक्षिणमावृत्याप उपस्पृश्यान-वेक्षमाणाः प्रत्युदाव्रजन्ति ॥३९॥ ब्राह्मणान् भक्तेनोपेप्स-न्ति ॥४०॥ यथोक्ता दक्षिणा यथोक्ता दक्षिणा ॥४१।९।६८॥

इत्यथर्ववेदे कौशिकसूत्रे अष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥८॥

पित्र्यमग्निं शमयिष्यञ्ज्येष्ठस्य चाविभक्तिन एका-

आहुतियाँ करे ॥३१॥ हाथ में जल लावे यह कहा गया ॥३२॥ प्रति मंत्रण के अन्त में ॥३३॥ प्रतिमंत्रण करके लाकर भोजन करे ॥३४॥ "इदावत्सराय०" से व्रत का विसर्जन और आज्य की आहुति देवे ॥३५॥ समिधों को डाले ॥३६॥ इसमें श्लोक हैं। यजुर्वेद के मंत्र से अग्नि में मथन हुआ और उसीके मंत्र से अग्नि में आहुति हुई। सवों को देकर कैसे सवाग्नि का उत्सर्जन हो। सब सवों को बचवा कर यथाविधि प्रतिग्रहण कर और संनति ऋचाओं से आहुति देकर वहाँ उत्सर्जन होगा—यह कौशिकाचार्य कहते हैं ॥३७॥ पूर्व या पश्चिम में अवभृथ के लिये जावें ॥३८॥ अपां सूक्तों से नहाकर प्रदक्षिण घूमकर जल छूकर पीछे को न देखते हुए वापस आवें ॥३९॥ ब्राह्मणों को यथेच्छ भोजन करावें ॥४०॥ और यथोक्त दक्षिणा देवें ॥४१॥९॥६८॥

अथर्ववेद के कौशिक सूत्र के अष्टम अध्याय का भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

जिस घर का पिता मर जावे और उसकी सम्पत्ति का बाट उसके

ग्निमाधास्यन् ॥१॥ अमावास्यायां पूर्वस्मिन्नुपशाले गां द्विहायनीं रोहिणीमेकरूपां बन्धयति ॥२॥ निशि शामूलपरिहितो ज्येष्ठोऽन्वालभते ॥३॥ पत्न्यहतवसना ज्येष्ठम् ॥४॥ पत्नीमन्वञ्च इतरे ॥५॥ अथैनानभिव्याहारयत्यध्रिगो शमीध्वम्॥ सुशमि शमीध्वम्। शमीध्वमध्रिगा ३उ इति त्रिः ॥६॥ अयमग्निः सत्पतिर्नडमारोहेत्यनुवाकं महाशान्तिं च शान्त्युदक आवपते ॥७॥ अग्ने अक्रव्यादिति भ्रष्ट्राद्दीपं धारयति ॥८॥ भूमेश्चोपदग्धं समुत्खाय ॥९॥ आकृतिलोष्टवल्मीकेनास्तीर्य ॥१०॥ शकृत्पिण्डेनाभिलिप्य ॥११॥ सिकताभिः प्रकीर्याभ्युक्ष्य ॥१२॥ लक्षणं कृत्वा ॥१३॥ पुनरभ्युक्ष्य ॥१४॥ पश्चाल्लक्षणस्याभिमन्थनं निधाय ॥१५॥ गोऽश्वाजावीनां पुंसां लोमभिरास्तीर्य व्रीहियवैश्च शकृत्पिण्डमभिविमृज्य प्राञ्चौ

पुत्रों में न हुआ हो तो उसमें ज्येष्ठ पुत्र पिता के स्थान में अधिकारी होगा। उस घर के औपासन अग्नि करने की इच्छा वाला अमावास्या तिथि को शाला के पूर्व स्थान में—उपशाला में दो वर्ष की गौ को जो, रोहिणी एक रंग की हो उसको बांधे ॥१॥२॥ रात्रि में शामूल पहन कर ज्येष्ठ पुत्र अन्वालम्भन करे ॥३॥ पत्नी अखण्ड नये वस्त्र को पहन कर ज्येष्ठ को और इतर पुरुष पत्नी को अन्वञ्च करे ॥४॥५॥ अब पत्नी को अभिव्याहार करे "अध्रिगो शमीध्वम् । सुशमीध्वम् । शमीध्वमध्रिगा ३उ०" तीन् बार कहे ॥६॥ "अयमग्निः सत्पतिर्नडमारोह०" इस अनुवाक से महाशान्ति को और शान्त्युदक में आवपन करे ॥७॥ "अग्ने अक्रव्यात्०" से भडभूँजे के घर से अग्नि लाकर धारण करे ॥८॥ और अदग्ध भूमि को खनन कर जोते खेत की मिट्टी और दीमक की मिट्टी से भरकर बराबर करे ॥९॥१०॥ एवं गोबर से लीपकर बालु से छींट कर अभ्युक्षण करके उस पर रेखा खैंचे ॥११॥१२॥१३॥ पुनः अभ्युक्षण करके रेखा के पश्चिम भाग में अग्नि मन्थन को धरे ॥१४॥१५॥ गौ, घोड़ा, या बकरे (पुरुष) के लोमों से आस्तरण कर व्रीहि और जौ से गोबर

दर्भौ निदधाति ॥१६॥ वृषणौ स्थ इत्यभिप्राण्यारण्यौ ॥१७॥ तयोरुपर्यधरारणिम् ॥१८॥ दक्षिणतो मूलान् ॥१९॥ पश्चात् प्रजननामुर्वश्यसीत्यायुरसीति ॥२०॥ मूलत उत्तरारणिमुपसन्धाय ॥२१॥ पृतनाजितमित्याहूय ॥२२॥ अभिदक्षिणं ज्येष्ठस्त्रिरभिमन्थत्यों भूर्गायत्रं छन्दोऽनुप्रजायस्व त्रैष्टुभं जागतमानुष्टुभमों भूर्भुवःस्वर्जनदोमिति ॥२३॥ अत ऊर्ध्वं यथाकामम् ॥२४॥१॥६९॥

मन्थामि त्वा जातवेदः सुजातं जातवेदसम् ॥ स नो जीवेष्वा भज दीर्घमायुश्च धेहि नः ॥ जातोऽजनिष्ठा यशसा सहाग्ने प्रजां पशूंस्तेजो रयिमस्मासु धेहि ॥ आनन्दिनो मोदमानाः सुवीरा अनामयाः सर्वमायुर्गमेम ॥ उद्दीप्यस्व जातवेदोऽव सेदिं तृष्णां क्षुधं जहि ॥ अपास्मत्तम उच्छस्वपहीतमुखो जह्यप दुर्हार्दिशो जहि॥ इहैवैधि धनसनिरिह त्वा समिधीमहि । इहैधि पुष्टिवर्धन इह त्वा समिधीमहीति ॥१॥ प्रथमया मन्थति ॥२॥ द्वितीयया जातमनुमन्त्रयते ॥ ३ ॥ तृतीययोद्दीपयति

अभिमार्जन करके पूर्वाग्र कुशाओं को धरे ॥१६॥ "वृषणौ स्थ०" दोनों अरणियों को लावे और उनमें अधरारणि को दक्षिण की ओर मूल करके धरे और पश्चात् "प्रजननामुर्वश्यसीत्यायुरसि०" से मूल उत्तर करके उसके ऊपर धर कर ॥२१॥ "पृतनाजितं०" कह कर पुकारे ॥२२॥ सम्मुख दक्षिण में होकर ज्येष्ठ "ओंभूर्गायत्रं छन्दोऽनुप्रजायस्व त्रैष्टुभं जागतमानुष्टुभं भूर्भुवःस्वर्जनदों०" इन तीन ऋचाओं से मन्थन करे ॥२३॥ इसके पश्चात् अपनी इच्छानुसार मन्थन कर अग्नि उत्पादन करे ॥२४॥१॥६९॥ यह उनहत्तरवि कण्डिका समाप्त हुई ।

"मन्थामि त्वा०" इत्यादि ॥१॥ प्रथमा ऋचा से मन्थन करे । द्वितीया से उत्पन्नाग्नि को अनुमंत्रण करे और तृतीया से अग्नि को

॥४॥ चतुर्थ्योपसमादधाति ॥५॥ यत्त्वा क्रुद्धा इति चों भूर्भुवः स्वर्जनदोमित्यङ्गिरसां त्वा देवानामादित्यानां व्रतेनादधे ॥ द्यौर्मह्नासि भूमिर्भूम्ना तस्यास्ते देव्यदिति-रुपस्थेऽन्नादायान्नपस्याया दधदिति ॥६॥ लक्षणे प्रतिष्ठा-प्योपोत्थाय ॥७॥ अथोपतिष्ठते ॥८॥ अग्ने गृहपते सुगृह-पतिरहं त्वयाग्ने गृहपतिना भूयासम् ॥ सुगृहपतिस्त्वं मयाग्ने गृहपतिना भूयाः । अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि दीदिहि शतं समा इति ॥९॥ व्याकरोमीति गार्हपत्य-क्रव्यादौ समीक्षते ॥१०॥ शान्तमाज्यं गार्हपत्यायोप-निदधाति ॥११॥ माषमन्थं क्रव्यादम् ॥१२॥ उप त्वा नमसेति पुरोऽनुवाक्या ॥१३॥ विश्वाहा त इति पूर्णा-हुतिं जुहोति ॥१४॥ यो नो अग्निरिति सह कर्त्रा हृद-यान्यभिमृशन्ते ॥१५॥२॥७०॥

अंशो राजा विभजतीमावग्नी विधारयन् ॥ क्रव्या-दं निर्णुदामसि हव्यवाडिह तिष्ठत्विति विभागं ज-पति ॥१॥ सुगार्हपत्य इति दक्षिणेन गार्हपत्ये समिध-मादधाति ॥२॥ यः क्रव्यात्तमशीशममिति सव्येन नड-

---

जलावे ॥२॥३॥४॥ और चौथी से अग्न्याधान करे ॥५॥ "यत्त्वा क्रुद्धा०" और "ॐ भूर्भुवः०" इत्यादि से रेखा पर प्रतिष्ठापन करके और उठ कर उपस्थान करे ॥६॥७॥८॥ "अग्ने गृहपते०" इत्यादि ॥९॥ और "व्याक-रोमि०" इन दोनों से गार्हपत्य और क्रव्याद अग्नि को देखे ॥१०॥ शान्त आज्य को गार्हपत्य के लिये धरे ॥११॥ माष (उड़द) का मन्थ क्रव्याद के लिये ॥१२॥ "उप त्वा नमस०" पुरोऽनुवाक्या ॥१३॥ "विश्वाहात०" से पूर्णाहुति देवे ॥१४॥ "यो नो अग्निः" से कर्त्ता के साथ हृदयों को यजमान एवं पत्नी अभिमर्शन करे ॥१५॥ २॥७०॥ यह सत्तरवि कण्डिका समाप्त हुई ।

"अंशो राजा०" इत्यादि से विभाग को जप करे ॥१॥ "सुगार्ह-पत्य०" से दक्षिण से गार्हपत्य अग्नि में समिद् का आधान करे ॥२॥

मर्यों क्रव्यादि ॥३॥ अपावृत्येति मन्त्रोक्तं बाह्यतो निधाय ॥४॥ नडमारोह समिन्धत इषीकां जरतीं प्रत्यञ्चमर्कमित्युपसमादधाति ॥ ५ ॥ यद्यग्निर्यो अग्निरविः कृष्णा मा नो रुरोः शुचिद्विदः शिवो नो अस्तु भरतो रराणः अतिव्याधी व्याधो अग्रभोष्ट क्रव्यादो अग्नीञ्छमयामि सर्वानिति शुक्त्या माषपिष्टानि जुहोति ॥६॥ सीसं दर्व्यामवधायोद्धृत्य मन्थं जुह्वञ्छमयेत् ॥७॥ नडमारोहेति चतस्रोऽग्ने अक्रव्यादिमं क्रव्यादो नो अश्वेष्वन्येभ्यस्त्वा हिरण्यपाणिमिति शमयति ॥८॥ दक्षिणतो जरत्कोष्ठे शीतं भस्माभिविहरति ॥९॥ शान्त्युदकेन सुशान्तं कृत्वावदग्धं समुत्खाय ॥१०॥ परं मृत्यो इत्युत्थापयति ॥११॥ क्रव्यादमिति तिसृभिर्ह्रीयमाणमनुमन्त्रयते ॥१२॥ दीपाद्याभिनिगदनात्प्रतिहरणेन व्याख्यातम् ॥१३॥ अविः कृष्णेति निदधाति ॥१४॥ उत्तमवर्जं ज्येष्ठस्याञ्जलौ सीसानि ॥१५॥ अस्मिन्वयं यद्रिप्रं सीसे

"यः क्रव्यात्तमशीशमं०" से नडमयी क्रव्यादि अग्नि में समिद् डाले ॥३॥ "अपावृत्य०" से मंत्रोक्त को बाहर से डाले ॥४॥ "नडमारोह०" इत्यादि से समिधों का आधान करे ॥५॥ "यद्यग्निर्यो०" इत्यादि से शुक्ति द्वारा माषपिष्टों की आहुति देवे ॥६॥ और सीस को दर्वी में डालकर मन्थ को मिलाकर आहुति करता हुआ शमन करे ॥७॥ "नडमारोह०" से चार और "अग्ने अक्रव्यादिमं०" इत्यादि से आहुति देता हुआ शमन करे ॥८॥ दक्षिण में जरत्कोष्ठ में शीत को भस्म से दूर करे ॥९॥ शान्त्युदक से सुशान्त करके अवदग्ध को गर्त्त से खने, और "परं मृत्यो०" से उठावे ॥११॥ "क्रव्यादं०" इन तीन ऋचाओं से ले जाते को अनुमंत्रण करे ॥१२॥ दीप आदि, का अभिनिगदन से प्रतिहरण द्वारा व्याख्यात हुआ जानो ॥१३॥ "अविः कृष्णा०" निदधान करे ॥१४॥ अन्तिम को छोड़कर जेठेकी अञ्जली में सीसों

मृड्ढ्वमित्यभ्यवनेजयति ॥१६॥ कृष्णोर्णया पाणिपादान्निमृज्य ॥१७॥ इमा जीवा उदीचीनैरिति मन्त्रोक्तम् ॥१८॥ त्रिः सप्तेति कूद्या पदानि योपयित्वा नदीभ्यः ॥१९॥ मृत्योः पदमिति द्वितीयया नावः ॥२०॥ परं मृत्यो इति प्राग्दक्षिणं कूदीं प्रविध्य ॥२१॥ सप्त नदीरूपाणि कारयित्वोदकेन पूरयित्वा ॥२२॥ आरोहत सवितुर्नावमेतां सुत्रामाणं महीमूष्विति सहिरण्यां सयवां नावमारोहयति ॥२३॥ अश्मन्वती रीयत उत्तिष्ठता प्र तरता सखाय इत्युदीचस्तारयति ॥२४॥३॥७१॥

उत्तरतो गर्तं उदक्प्रस्रवणेऽश्मानं निदधात्यन्तश्छिन्नम् ॥१॥ तिरो मृत्युमित्यश्मानमतिक्रामति ॥२॥ ता अधरादुदीचीरित्यनुमन्त्रयते ॥३॥ निस्सालामिति शालानिवेशनं सम्प्रोक्ष्य ॥४॥ ऊर्जं बिभ्रदिति प्रपादयति

को देवे ॥१५॥ "अस्मिन्वयं०" से अभ्यवनेजन करे ॥१६॥ काले सूत से हाथ पैर को निमार्जन करके ॥१७॥ "इमा जीवा उदीचीनैः" से पूर्व मुख आवें ॥१८॥ "त्रिःसप्त०" से कूदी से पगों को छिपा कर नदियों तक जावे ॥१९॥ "मृत्योः पदं०" द्वितीया कूदीसे पैरों को छिपाकर सात नदी नाव तक जावे ॥२०॥ पूर्व दक्षिण कोण में कूदी को फेक देवे। "परं मृत्योः पदं०" मंत्र पढ़कर ॥२१॥ सात नदियों समान रूप बनाकर उनको जल से भर देवे ॥२२॥ "आरोहत सवितुः" इत्यादि से नाव पर सोना में जौ मिलाकर नाव पर डालकर तब उस पर चढ़े ॥२३॥ "अश्मन्वती०" इत्यादि को जपता हुआ नाव में बैठे और उत्तर की ओर पार होवे ॥२४॥३॥७१॥ यह एकहत्तरवि कण्डिका समाप्त हुई।

उस गर्त्त के उत्तर ढालुआ भूमि में पत्थर को जल में धरे ॥१॥ "तिरो मृत्युं०" से पत्थर पर चढ़े ॥२॥ "ता अधरादुदीचीः" से अनुमंत्रण करे ॥३॥ "निःसालां०" से शाला के घरको संप्रोक्षण करके ॥४॥ "ऊर्जं बिभ्रत्०" से सब लोग शाला में प्रवेश करें। कोई २

॥५॥ वैश्वदेवोमिति वत्सतरीमालम्भयति ॥६॥ इममिन्द्रमिति वृषम् ॥७॥ अनड्वाहमहोरात्रे इति तल्पमालम्भयति ॥ ८ ॥ आरोहतायुरित्यारोहति ॥९॥ आसीना इत्यासीनामनुमन्त्रयते ॥१०॥ पिञ्जूलीराञ्जनं सर्पिषि पर्यस्येमा नारीरिति स्त्रीभ्यः प्रयच्छति ॥११॥ इमे जीवा अविधवाः सुजामय इति पुम्भ्य एकैकस्मै तिस्रस्तिस्रस्ता अध्यध्युदधानं परिचृत्य प्रयच्छति ॥१२॥ परं मृत्यो व्याकरोम्यारोहतान्तर्धिः प्रत्यश्नमर्कं ये अग्नयो नमो देववधेभ्योऽग्नेऽभ्यावर्तिन्नग्ने जातवेदः सह रय्या पुनरूर्जेति ॥१३॥ अग्नेऽभ्यावर्तिन्नभि न आ ववृत्स्व । आयुषा वर्चसा सन्या मेधया प्रजया धनेन ॥ अग्ने जातवेदः शतं ते सहस्रं त उपावृतः ॥ अधा पुष्टस्येशानः पुनर्नो रयिमा कृधि ॥ सह रय्या निवर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ पुनरूर्जा ववृत्स्व पुनरग्न इषायुषा ॥ पुनर्नः पाह्यंहसः ॥१४॥ शर्करान्स्वयमातृणाञ्छणरज्जुभ्यां विबध्य धारयति ॥१५॥ समया

घर के द्वार पर महाशान्ति को चौगुने ऊँचे स्वर से बोले ॥५॥ "वैश्वदेवी०" से वत्सतरी को छूवे ॥६॥ "इममिन्द्रं०" से वृषभ या अनडुह को स्पर्श करे ॥७॥ "अनड्वाहमहोरात्रे०" से तल्प को स्पर्श करे ॥८॥ "आरोहतायुः०" से आरोहण करे ॥९॥ "आसीना०" से बैठे हुओं को अनुमंत्रण करे ॥१०॥ पिञ्जुली में आञ्जन और घृत को एक २ करके "इमा नारी०" से स्त्रियों को देवे ॥११॥ "इमे जीवा अविधवाः सुजामय०" से पिञ्जुली को जलघट पर घुमाकर यजमानादि पुरुषों को देवे। एक २ पुरुष के लिये तीन २ देवे ॥१२॥ "परं मृत्यो०" इत्यादि से ॥१३॥ "अग्नेऽभ्यावर्तिन्नभि न०" इत्यादि मंत्रों से आज्य की आहुतियाँ देवे ॥१४॥ स्वयं छिद्रित शर्कराओं को बांध कर अग्नि पर धरे ॥१५॥ और

खेन जुहोति ॥१६॥ इमं जीवेभ्य इति द्वारे निदधाति ॥१७॥ जुहोत्येतयर्चा आयुर्दावा धनदावा बलदावा पशुदावा पुष्टिदावा प्रजापतये स्वाहेति ॥१८॥ षट्सम्पातं माता पुत्रानाशयते ॥१९॥ उच्छिष्टं जायाम् ॥२०॥ संवत्सरमग्निं नोद्वायान्न हरेन्नाहरेयुः ॥२१॥ द्वादशरात्र इत्येके ॥२२॥ दश दक्षिणा ॥२३॥ पश्चादग्नेर्वाग्यतः संविशति ॥२४॥ अपरेद्युरग्निं चेन्द्राग्नी च यजेत ॥२५॥ स्थालीपाकाभ्यामग्निं चाग्नीषोमौ च पौर्णमास्याम् ॥२६॥ सायंप्रातर्व्रीहीनावपेद्यवान्वाग्नये स्वाहा प्रजापतये स्वाहेति ॥२७॥ सायं सूर्याय स्वाहा प्रजापतये स्वाहेति ॥२८॥ प्रातर्द्वादशरात्रेऽग्निं पशुना यजेत ॥२९॥ स्थालीपाकेन वोभयोर्विरिष्यति ॥३०॥ संवत्सरतम्यां शान्त्युदकं कृत्वा ॥३१॥ घृताहुतिर्नो भवाग्ने अक्रव्याहुति-

---

स्वयं आहुति करे ॥१६॥ "इमं जीवेभ्यः" से द्वार पर धरे ॥१७॥ "जुहोति०" इस ऋचा से और "आयुर्दावा" इत्यादि से आहुति देवे ॥१८॥ छः सम्पातों को माता पुत्रों को खिलावे ॥१९॥ यजमान स्वयं खाकर उच्छिष्ट अपनी पत्नी को देवे ॥२०॥ यह आवसथ्याधान पूरा हुआ। साल भर तक अग्नि को पुतावे और न किसी को देवे और न आप लेवे ॥२१॥ कोई २ बारह रात्रि में कहते हैं ॥२२॥ दश दक्षिणा देवे ॥२३॥ यजमान अग्नि के पश्चिम भाग में बैठे ॥२४॥ और दूसरे दिन अग्नि और इन्द्राग्नी को यजन करे ॥२५॥ सायं प्रातः स्थालीपाक से अग्नि और अग्नीषोम को पौर्णमासी तिथि में आहुतियाँ करे ॥२६॥ "सायं प्रातः व्रीहियों या यवों से" "अग्नये स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा" से सायंकाल में और "सूर्याय स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा" से प्रातःकाल में आहुतियाँ देवे ॥२७॥२८॥ १२ रात्रि के प्रातःकाल में अग्नि को पशु से यजन करे। ॥३० ॥ स्थालीपाक से या दोनों से अलग २ करे ॥३०॥ वर्ष के अन्त में उस अग्नि में शान्त्युदक करके। 'घृताहुतिर्नो'' इत्यादि से घी की आहुति

घृताहुतिं त्वा वयमक्रव्याहुतिमुपनिषदेम जातवेद इति चतुर उदपात्रे सम्पातानानीय ॥३२॥ तानुल्लप्य ॥३३॥ पुरस्तादग्नेः प्रत्यङ्ङासीनो जुहोति । हुते रमस्व हुतभाग एधि मृडास्मभ्यं मोत हिंसीः पशून्न इति ॥३४॥ यद्युद्वायाद्भस्मनारणिं संस्पृश्य तूष्णीं मथित्वोद्दीप्य ॥३५॥ पूर्णहोमं हुत्वा ॥३६॥ संनतिभिराज्यं जुहुयाद् व्याहृतिभिर्वा ॥३७॥ संसृष्टे चैवं जुहुयात् ॥३८॥ अग्नावनुगते जायमाने ॥३९॥ आनडुहेन शकृत्पिण्डेनाग्न्यायतनानि परिलिप्य ॥४०॥ होम्यमुपसाद्य ॥४१॥ प्राणापानाभ्यां स्वाहा समानव्यानाभ्यां स्वाहोदानरूपाभ्यां स्वाहेत्यात्मन्येव जुहुयात् ॥४२॥ अथ प्रातरुत्थायाग्निं निर्मथ्य यथास्थानं प्रणीय यथापुरमग्निहोत्रं जुहुयात् ॥४३॥ सायमाशप्रातराशौ यज्ञावृत्विजौ ॥४४॥४॥७२॥

पुरोदयादस्तमयाच्च पावकं प्रबोधयेद्गृहिणी शुद्धहस्ता ।

देकर सम्पातों को चार उदपात्रों में लावे और अग्नि के पूर्व में पश्चिम मुख बैठकर आहुति करे ॥३१॥३२॥३३॥ "हुते रमस्व" इत्यादि से आहुति करे ॥३४॥ यदि अग्नि बुत जावे तो, उसके भस्म से अरणि को संस्पर्श कराकर तूष्णीं अरणि द्वारा अग्नि मथकर प्रज्वलित करके पूर्ण होम कर लेवे ॥३५॥३६॥ संनति मंत्रों से व्याहृति से आज्य की आहुति करे ॥३७॥ मिले हुए होने पर इस प्रकार आहुति देवे ॥३८॥ यदि अग्नि गत होने लगे तो, बैल के गोबर से अग्नि के वेदी को लीप कर होम की सामग्री लाकर ॥३९॥४०॥४१॥ "प्राणापानाभ्यां स्वाहा०" इत्यादि अपने आत्मगत अग्नि की आहुतियाँ देवे ॥४२॥ तब प्रातःकाल उठकर अरणियों से अग्नि मथ कर यथा स्थान अग्नि प्रणयन करके यथापुर अग्नि होत्र की आहुति करे ॥४३॥ सायंकाल और प्रातः कालं के भोजन यज्ञ कराने वाले दोनों ऋत्विजों को देवे ॥४४॥॥४॥७२॥ यह बहत्तरवि कण्डिका समाप्त हुई ।

समतीते सन्धिवर्णेऽथ हावयेत्सुसमिद्धे पावक आहुती-षहिः ॥१॥ अग्नये च प्रजापतये च रात्रावादित्यश्च दिवा प्रजापतिश्च । उदकं च समिधश्च होमे होमे पुरो वरम् ॥२॥ होम्यैः समिद्भिः पयसा स्थालीपाकेन सर्पिषा सायम्प्रात-र्होम एतेषामेकेनापि सिध्यति ॥३॥ अभ्युद्धृतो हुतोऽग्निः प्रमादादुपशाम्यति । मथिते व्याहृतोर्जुहुयात् पूर्णहोमौ यथर्त्विजौ ॥४॥ वनस्पतिभ्यो वानस्पत्येभ्य ओषधि-भ्यो वीरुद्भ्यः सर्वेभ्यो देवेभ्यो देवजनेभ्यः पुण्यज-नेभ्य इति प्राचीनं तदुदकं निनीयते ॥५॥ स्वधा प्रपिताम-हेभ्यः स्वधा पितामहेभ्यः स्वधा पितृभ्य इति दक्षिणतः॥६॥ ताक्ष्यायारिष्टनेमयेऽमृतं मह्यमिति पश्चात् ॥७॥ सोमाय सप्तर्षिभ्य इत्युत्तरतः ॥८॥ परिमृष्टे परिलिप्ते च पर्वणि व्रातपतं हावयेदन्नमग्नौ । भूयो दत्त्वा स्वयमल्पं च भुक्त्वा

जब सूर्योदय और सूर्यास्त के समय घर की स्त्री (मालकिनी) अपने हाथों को जल से धोकर, शौचादि से निवृत्त होके शुद्ध हाथों से अग्नि को जगावे ॥ और दोनों सन्धिकाल बीत जावे तो घरके बाहर अग्नि में आहुतियाँ देवे ॥१॥ रात्रि में "अग्नये च प्रजापतये च"। और दिन में आदित्य प्रजापति के नाम आहुतियाँ करे। जल और समिद् प्रत्येक होम में पूरे और उत्तम लावे ॥२॥ होम करने की वस्तु समित्, दूध, स्थालीपाक और घृत । सायं प्रातः इनकी आहुति करे या इनमें से किसी एक से करे ॥३॥ अभ्युद्धृत, यदि प्रमाद से बुत जावे तो, अरणियों द्वारा मथितोत्पन्न अग्नि में व्याहृति से और पूर्ण होम भी करे जैसा दोनों ऋत्विज कहें ॥४॥ "वनस्पतिभ्यो" इत्यादि से पूर्व की ओर आहुतियाँ करे और जल लावे ॥५॥ और "स्वधा प्रपितामहेभ्यः" इत्यादि से दक्षिण में, "ताक्ष्याय०" से पश्चिम दिशा में और "सोमाय सप्तर्षिभ्यः" से उत्तर दिशा में आहुतियाँ देवे ॥६॥७॥८॥ मार्जन और लीपने पर (भूमिको) व्रतपति को अन्न की आहुति अग्नि में करे ॥ थोड़ा या बहुत दूसरों को अन्न देकर आप भोजन अपराह्न में करे—यह याज्ञिक व्रत है ॥९॥

पराह्णे व्रतमुपैति याज्ञिकम् ॥ ९ ॥ अनशनं ब्रह्मचर्यं च भूमौ शुचिरग्निमुपशेते सुगन्धिः ॥१०॥ अग्नीषोमाभ्यां दर्शने इन्द्राग्निभ्यामदर्शने॥ आग्नेयं तु पूर्वं नित्यमन्वाहार्यं प्रजापतेः ॥११॥ अर्धाहुतिस्तु सौविष्टकृती सर्वेषां हविषां स्मृता ॥ आनुमती वा भवति स्थालीपाकेष्वथर्वणाम् ॥१२॥ उभौ च संधिजौ यौ वैश्वदेवौ यथऋत्विजौ। वर्जयित्वा सबर्हिषः साज्या यज्ञाः सक्षिणाः ॥१३॥ यथाशक्ति यथाबलं हुतादोऽन्ये अहुतादोऽन्ये ॥ वैश्वदेवं हविरुभये संचरन्ति ॥१४॥ ते सम्यञ्च इह मादयन्तामिषमूर्जं यजमाना यमिच्छत । विश्वे देवा इदं हविरादित्यासः सपर्यत ॥ अस्मिन्यज्ञे मा व्यथिष्यमृताय हविष्कृतम् ॥१५॥ वैश्वदेवस्य हविषः सायम्प्रातर्जुहोति । सायमाशप्रातराशौ यज्ञावेतौ स्मृतावुभौ ॥१६॥ अप्रतिभुक्तौ शुचिकार्यौ च नित्यं वैश्वदेवौ जानता यज्ञश्रेष्ठौ। नाश्रोत्रियो नानवनिक्तपाणिर्ना-

---

उपवास रहना और ब्रह्मचर्य से रहना पवित्र होकर, अग्नि के पास सोवे और सुगन्ध युक्त रहे ॥१०॥ दर्शन में अग्नीषोमों से, अदर्शन में इन्द्राग्नी से ॥ आग्नेय को पहिले नित्य और उसके पश्चात् प्रजापति की ॥११॥ सौविष्ट कृत की आधी आहुति यह नियम सब ही होमों का है ॥ या अथर्ववेदियों का होम आनुमती स्थालीपाक से होता है ॥१२॥ और जो दोनों सन्धि समय बलि, वैश्वदेव यथा ऋत्विज । सबर्हिष को छोड़ कर आज्य के साथ होता है और दक्षिणा के साथ सब यज्ञ होते हैं ॥१३॥ शक्ति एवं बल के अनुसार हुताद, अन्य अहुताद, अन्य वैश्वदेव हवि दोनों समय करते हैं ॥१४॥ "ते सम्यञ्च" इत्यादि को पढ़े ॥१५॥ वैश्वदेव की हवि को सायं प्रातःकाल आहुतियाँ करे और सायंकाल एवं प्रातःकाल का भोजन पवित्र बनावे ये दोनों यज्ञ हैं—यह धर्मशास्त्र में कहा है ॥१६॥ दोनों यज्ञों को श्रेष्ठ जानकर विना भोजन किये पवित्रता से नित्य भोजन बनावे ॥ न अवैदिक, न जल से साफ किये

मन्त्रविज्जुहुयान्नाविपश्चित् ॥१७॥ बीभत्सवः शुचिकामा हि देवा नाश्रद्दधानस्य हविर्जुषन्ते । ब्राह्मणेन ब्रह्मविदा तु हावयेन्न स्त्रीहुतं शूद्रहुतं च देवगम् ॥१८॥ यस्तु विद्यादाज्यभागौ यज्ञान्मन्त्रपरिक्रमान् । देवताज्ञानमावृत आशिषश्च कर्म स्त्रिया अप्रतिषिद्धमाहुः ॥१९॥५॥७३॥

तयोर्बलिहरणम् ॥१॥ अग्नय इन्द्राग्निभ्यां वास्तोष्पतये प्रजापतयेऽनुमतय इति हुत्वा ॥२॥ निष्क्रम्य बहिः प्रचीनं ब्रह्मणे वैश्रवणाय विश्वेभ्यो देवेभ्यः सर्वेभ्यो देवेभ्यो विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सर्वेभ्यो भूतेभ्य इति बहुशो बलिं हरेत् ॥३॥ द्विः प्रोक्षन्प्रदक्षिणमावृत्यान्तरुपातीत्य द्वारे ॥४॥ द्वार्ययोर्मृत्यवे धर्माधर्माभ्याम् ॥५॥ उदधाने धन्वन्तरये समुद्रायौषधिवनस्पतिभ्यो द्यावापृथिवीभ्या-

---

हाथ, न विना मंत्रजाने और न अपण्डित आहुतियाँ करे ॥ १७ ॥ देवगण विभत्सु, और शुचि की कामना वाले होते हैं इसलिये श्रद्धाहीन व्यक्ति की आहुति नहीं ग्रहण करते हैं । ब्राह्मण और ब्रह्म के जानने वाले से ही हवन करावे । स्त्री एवं शूद्र की दी आहुतियाँ देवताओं तक नहीं पहुँचतीं ॥१८॥ जो आज्यभागों को जानता है, यज्ञों को और मंत्रपरिक्रमों को एवं देवताज्ञान से आवृत्त हो और आशीर्वाद देना जानता हो ॥ इनके करने का अधिकार स्त्रियों को नहीं है ॥१९॥५॥७३॥ यह तिहत्तरवी कण्डिका समाप्त हुई ।

स्त्री पुरुष के बलि हरण को कहते हैं । गृही के घर जो कुछ अन्न दोनों समय खाने के लिये पकता है—उस अन्न से देवतादिकों के लिये उपहार दिया जाता है उसको बलि कहते हैं ॥ "अग्नय०" इत्यादि से आहुति देकर ॥२॥ घर से बाहर होकर, पूर्व दिशा में पूर्वमुख हो "ब्रह्मणे०" इत्यादि से बहुत बलि देवे ॥३॥ दो वार प्रदक्षिण घुम २ कर दोनों द्वार पर "धर्माधर्माभ्याम्" से बलियाँ देवे ॥४॥५॥ जलधरने के स्थान में "धन्वन्तरये०" इत्यादि से बलियाँ देवे ॥६॥ इसी प्रकार

मिति ॥६॥ स्थूणावंशयोर्दिग्भ्योऽन्तर्देशेभ्य इति ॥७॥ स्रक्तिषु वासुकये चित्रसेनाय चित्ररथाय तक्षोपतक्षाभ्या-मिति ॥८॥ समन्तमग्नेराशायै श्रद्धायै मेधायै श्रियै ह्रियै विद्याया इति ॥९॥ प्राचीनमग्नेः गृह्याभ्यो देवजामिभ्य इति ॥१०॥ भूयोऽभ्युद्धृत्य ब्राह्मणान् भोजयेत् ॥११॥ तदपि श्लोको वदति ॥ मा ब्राह्मणाग्रतः कृतमश्नी-याद्विषवदन्नमन्नकाम्या । देवानां देवो ब्राह्मणो भावो नामैष देवतेति ॥१२॥ आग्रयणे शान्त्युदकं कृत्वा यथर्तु तण्डुलानुपसाद्य ॥१३॥ अप्सु स्थालीपाकं श्रपयित्वा पयसि वा ॥१४॥ सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरग्नये स्वाहा। सजूरिन्द्राग्निभ्यां सजूर्द्यावापृथिवीभ्यां सजूर्विश्वे-भ्यो देवेभ्यः सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूः सोमाय स्वाहेत्येकहविर्वा स्यान्नाना हवींषि वा ॥१५॥ सौम्यं तन्व-च्छयामाकं शरदि ॥१६॥ अथ यजमानः प्राशित्रं गृह्णीते ॥१७॥ प्रजापतेष्ट्वा ग्रहं गृह्णामि । मह्यं भूत्यै मह्यं पुष्ट्यै

"स्थूणावंशयोर्दिग्भ्योऽन्तर्देशेभ्यः" । बलियाँ देवे ॥७॥ चार दिशाओं के कोणों में—"वासुकये०" इत्यादि से बलि देवे ॥८॥ और अग्नि के चारों ओर "श्रद्धायै" इत्यादि से बलि देवे ॥९॥ अग्नि के पूर्व भाग में "गृह्या-भ्यो देवजामिभ्यः" से बलि देवे ॥१०॥ अधिक अन्न निकाल कर ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥११॥ इसको भी श्लोक कहता है—ब्राह्मण के भोजन करने के पहिले गृही भोजन न करे क्योंकि वह अन्न विष के समान हो जाता है । देवताओं का देव ब्राह्मण हैं, यह भावमय देवता है ॥१२॥ अग्रहण मास में शान्त्युदक करके यथाऋतु तण्डुलों को लाकर जल या दूध में स्थालीपाक पकाकर "सजूर्ऋतुभिः" इत्यादि आहुतियाँ एक हवि की देवे या विभिन्न हवियों की हों ॥१५॥ शरदृऋतु में सौम्य श्यामाक की आहुति ॥१६॥ अब यजमान प्राशित्र ग्रहण करे ॥१७॥ "प्रजापतेष्ट्वा०" इत्यादि मन्त्र से ग्रहण करे ॥१८॥ अब प्राशन करे

मह्यं श्रियै मह्यं ह्रियै मह्यं यशसे मह्यमायुषे मह्यमन्नाय मह्यमन्नाद्याय मह्यं सहस्रपोषाय मह्यमपरिमितपोषाये-ति ॥१८॥ अथ प्राश्नाति । भद्रान्नः श्रेयः समनैष्ट देवा-स्त्वयावसेन समशीमहि त्वा । स नः पितो मधुमाँ आविवेश शिवस्तोकाय तन्वो न एहीति ॥१९॥ प्राशित-मनुमन्त्रयते । अमोऽसि प्राण तदृतं ब्रवीम्यमासि सर्वा-ङसि प्रविष्टः । स मे जरां रोगमपनुद्य शरीरादनामयैधि मा रिषाम इन्दो इति ॥२०॥ वत्सः प्रथमजो ग्रीष्मे वासः शरदि दक्षिणा ॥२१॥ शक्त्या वा दक्षिणां दद्यात् ॥२२॥ नातिशक्तिर्विधीयते नातिशक्तिर्विधीयत इति ॥२३॥ ॥६॥७४॥ इत्यथर्ववेदे कौशिकसूत्रे नवमोऽध्यायः समाप्तः ॥६॥

अथ विवाहः ॥१॥ ऊर्ध्वं कार्तिक्या आ वैशाख्याः ॥२॥ यथाकामी वा ॥३॥ चित्रापक्षं तु वर्जयेत् ॥४॥

"भद्रान्नः श्रेयः" इत्यादि से प्राशन करके अनुमंत्रण करे—"अमोऽसि प्राण०" इत्यादि ॥१६॥२०॥ ग्रीष्मऋतु में वत्स देवे और शरदृऋतु में दक्षिणा वस्त्र देवे ॥२१॥ या जैसी शक्ति हो वैसी दक्षिणा देवें ॥ २२ ॥ शक्ति के बाहर अधिक न देवे—॥२३॥६॥७४॥ यह चौहत्तरवि कण्डिका समाप्त हुई ॥

अथर्ववेद के कौशिक सूत्र के नवम अध्यायका भाषानुवाद पूरा हुआ ॥९॥

अब विवाह के विषय में उपदेश करेंगे । विवाह के लिये उपयुक्त सामग्रियां पहिले से एकत्र कर रक्खे । जैसे खिचड़ी, सम्पुट, पाकर-वृक्ष की शाखा, कलश, सर्वौषधि, दही, जेठीमधु, विष्टर, अर्घपात्र, मधुपर्कपात्र, घूसर, पाळो, इत्यादि ॥१॥ कार्त्तिक मास से वैशाख मास तक विवाह करने का समय हो ॥ या जब चाहे तब विवाह करे ॥२॥३॥

मघासु हन्यन्ते गावः फल्गुनीषु व्युह्यत इति विज्ञायते मङ्गलश्च ॥५॥ सत्येनोत्तभिता पूर्वापरमित्युपदधीत ॥६॥ पतिवेदनं च ॥७॥ युवं भगमिति संभलं सानुचरं प्रहिणोति ॥८॥ ब्रह्मणस्पत इति ब्रह्माणम् ॥९॥ तद्विवृहाच्छङ्कमानो निशि कुमारीकुलाद्वलीकान्यादीप्य ॥१०॥ देवा अग्र इति पञ्चभिः सकृत्पूल्यान्यावापयति ॥११॥ अनृक्षरा इति कुमारीपालं प्रहिणोति ॥१२॥ उदाहारस्य प्रतिहितेषुरग्रतो जघनतो ब्रह्मा ॥१३॥ यो अनिध्म

चित्रानक्षत्र में विवाह न करे ॥४॥ आर्ष विवाह में कन्या वाले को एक या दो गौ, या एक बैल या दो बैल देना किन्हीं आचार्यों का मत है । सो आर्ष विवाह में कन्या वालों को देने केलिये यदि गो मिथुन किसी से उसके घर से पति के घर लाने के लिये कैसे ही लाने पड़ें तो मघा नक्षत्र में लेवे और आर्ष विवाह भी मघा नक्षत्र में करे और सेनाव्यूह के लिये और आर्ष विवाह की बहू को उसके घर से लाने के लिये, ३ पूर्वा फाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र श्रेष्ठ हैं और मंगल भी है ॥५॥ "सत्येनोत्तभिता०" इत्यादि १६ मंत्र और "पूर्वापरं०" इत्यादि दो इन १८ मंत्रों से आज्य की आहुतियां देवे ॥६॥ "आनो अग्न"इत्यादि सूक्त से आगम कृशर दूसरे घर से तिल मिला हुआ लाकर धरे और उसे अभिमंत्रितकर कुमारी को उस भात को चखवावे ॥७॥ और "युवं भगं०" इत्यादि से शोभन अलंकृत पुरुषको संचर हस्त नौकर सहित को लावे ॥८॥ "ब्रह्मणस्पत०"इत्यादि से कुमारी के पास भेजकर वर के गुणों को कहवावे ॥९॥ यदि ब्रह्मा को रात्रि में शङ्का (भय) हो तो कुमारी के घर दीप जलाकर "देवा अग्र०" इत्यादि ५ मंत्रों से एकपूल्या की आहुति करे ॥१०॥११॥ "अनृक्षरा०" से कुमारी रक्षा के लिये भेजे। यदि वह १० वर्ष से अधिक उमर की हो तो "देवा अग्र०" इत्यादि ५ मंत्रों से कुमारी लाजा की एक आहुति देवे । कुमारी की रक्षा के लिये धनुर्धारी पुरुष को लावे । आगे २ धनुर्धर, पीछे २ आचार्य और बीच में जल लिया हुआ-उदक हार ॥१२॥१३॥ जल के पास जाकर "यो

इत्यप्सु लोगं प्रविध्यति ॥१४॥ इदमहमित्यपोह्य ॥१५॥ यो भद्र इत्यन्वीपमुदच्य ॥१६॥ आस्यै ब्राह्मणा इति प्रयच्छति ॥१७॥ आव्रजतामग्रतो ब्रह्मा जघनतोऽधिज्यधन्वा ॥१८॥ बाह्यतः प्लक्षोदुम्बरस्योत्तरतोऽग्नेः शाखायामासजति ॥१९॥ तेनोदकार्थान्कुर्वन्ति ॥२०॥ ततश्चान्वासेचनमन्येन ॥२१॥ अन्तरुपातीत्यार्यमणमिति जुहोति ॥२२॥ प्र त्वा मुञ्चामीति वेष्टं विचृतति ॥२३॥ उशतीरित्येतया त्रिराधापयति ॥२४॥ सप्तभिरुष्णाः सम्पातवतीः करोति ॥२५॥ यदासन्द्यामिति पूर्वयोरुत्तरस्यां स्रक्त्यां तिष्ठन्तीमाप्लावयति ॥२६॥ यच्च वर्चो यथा सिन्धुरित्युत्क्रान्तामन्येनावसिञ्चति ॥२७॥१॥७५॥

यद् दुष्कृतमिति वाससाङ्गानि प्रमृज्य कुमारीपालाय प्रयच्छति ॥१॥ तुम्बरदण्डेन प्रतिपाद्य निर्व्रजेत्

अनिध्म०" इत्यादि से जल में एक मट्टी का ढेला फेके ॥१४॥ "इदमहं०" इत्यादि से नदी में बैठकर घट को जलसे भर लेवे ॥१५॥ "यो भद्र०" इत्यादि को पढ़ कर ॥१६॥ "आस्यै ब्राह्मणा०" इत्यादि से उदक हार को जलभरा कलश देवे ॥१७॥ मार्ग में जाते समय कुमारी के आगे ब्रह्मा, धनुर्धर पीछे ॥१८॥ घर में जाने पर वेदि के बाहर पाकर की शाखापर-अग्नि के उत्तर भाग में जलभरे कलश को स्थापन करे ॥१९॥ उसी से जल का काम करे ॥२०॥ यदि कलश में जल थोड़ा हो तो दूसरे जल से सेचन करे ॥२१॥ "अन्तरुपाती०" इत्यादि से वेदि में प्रवेश कर आहुति देवे ॥२२॥ "प्र त्वा मुञ्चामि०" इत्यादि से कुमारी के केशों को लपेट कर बांधे ॥२३॥ "उशती:०" इत्यादिसे तीन समिधों को अग्नि में डाले ॥२४॥ "उशती:०" इत्यादि ७ मंत्रों से उष्णजल के ढार से "यदासन्द्यां०" पूर्वोत्तर कोण में खड़ी कुमारी को शिर से स्नान करावे ॥२५॥२६॥ "यच्च वर्चो यथा०" से उस जगह से जाती हुई अन्य स्थान में ठण्डे जल से उसे सिक्त करे ॥२७॥१॥७५॥ यह पचहत्तरवी कण्डिका पूरी हुई ॥

"यद् दुष्कृतं०" इत्यादि से वस्त्र से कुमारी को सब अङ्गों को पोंछे

॥२॥ तद्वन आसजति ॥ ३ ॥ या अकृन्तंस्त्वष्टा वास इत्यहतेनाच्छादयति ॥४॥ कृत्रिम इति शतदतैषीकेण कङ्कतेन सकृत्प्रलिख्य ॥५॥ कृतयाममिस्यवसृजति ॥६॥ आशासाना सं त्वा नह्यामीत्युभयतः पाशेन योक्त्रेन सन्नह्यति ॥७॥ इयं वीरुदिति मदुघमणिं लाक्षारक्तेन सूत्रेण विग्रथ्यानामिकायां बध्नाति ॥८॥ अन्ततो ह मणिर्भवति बाह्यो ग्रन्थिः ॥९॥ भगस्त्वेत इति हस्तेगृह्य निर्णयति ॥१०॥ शाखायां युगमाधाय दक्षिणतोऽन्यो धारयति ॥११॥ दक्षिणस्यां युगधुर्युत्तरस्मिन्युगतर्द्मनि दर्भेण विग्रथ्य शं त इति ललाटे हिरण्यं संस्तभ्य जपति ॥१२॥ तर्द्म समयावसिञ्चति ॥१३॥ उपगृह्योत्तरतोऽग्ने-रङ्गादङ्गादिति निनयति ॥१४॥ स्योनमिति शकृत्पिण्डे

और तुम्बर दण्डके साथ वस्त्र को कुमारी के रक्षक को देकर चला जावे ॥१॥२॥ और कुमारी वन में जाकर उसे फेक देवे ॥३॥ "या अकृन्तं-स्त्वष्टा" मंत्र से अन्य नये अखण्ड वस्त्र को अभिमंत्रितकर यज्ञोपवीत की भांति बांह में बांध लेवे ॥४॥ "कृत्रिम०" इत्यादि से १०० दांतवाली कंघी से एक बार केशों को प्रलेखन करे ॥५॥ और "कृतयाम०" इत्यादि से अवसृजन करे॥६॥ "आशासाना०" इत्यादि से कमर इजरबन्द बांधे ॥७॥ "इयं वीरुद्" से मदुघ मणि को लाख के लाल रंग से सूत को रंग कर उससे मणि को गांथ कर अनामिका अङ्गुली में पुण्य दिन के अन्त में बांधे ॥८॥ गाँठ के अन्त में मणि हो एवं बाहर ग्रंथि हो ॥९॥ "भग-स्त्वेत०" इत्यादि से कुमारी के दहिने हाथ को पकड़ कर कौतुक गृह से बाहर निकाले ॥१०॥ शाखा पर गाड़ी का जूआ धरकर दक्षिण से अन्य पुरुष जूआ को पकड़े रहे, दहिने जूआ के धुरी को उत्तर वाले जूआ के छेद में वह डाभ से गांथकर कुमारी के ललाट में सोना बांध कर "शं त०" मंत्र का जप करे और छिद्र में जल सींचे ॥११॥१२॥१३॥ और अग्नि के उत्तर भाग में जाकर, "अङ्गात्०" आदि मंत्र से जल को लावे ॥१४॥ और 'स्योनम्' इत्यादि मंत्र से गोबर के पिण्ड पर पत्थर

ऽश्मानं निदधाति ॥१५॥ तमातिष्ठेत्यास्थाप्य ॥१६॥ इयं नारीति ध्रुवां तिष्ठन्तीं पूल्यान्यावापयति ॥१७॥ त्रिरविच्छिन्दन्तीं चतुर्थीं कामाय ॥१८॥ येनाग्निरिति पाणिं ग्राहयति ॥१९॥ अर्यम्ण इत्यग्निं त्रिः परिणयति ॥२०॥ सप्त मर्यादा इत्युत्तरतोऽग्नेः सप्त लेखा लिखति प्राच्यः ॥२१॥ तासु पदान्युत्क्रामयति ॥२२॥ इषे त्वा सुमङ्गलि प्रजावति सुसीम इति प्रथमम् ॥२३॥ ऊर्जे त्वा रायस्पोषाय त्वा सौभाग्याय त्वा साम्राज्याय त्वा संपदे त्वा जीवातवे त्वा सुमङ्गलि प्रजावति सुसीम इति सप्तमं सखा सप्तपदी भवेति ॥२४॥ आरोह तल्पं भगस्ततक्षेति तल्प उपवेशयति ॥२५॥ उपविष्टायाः सुहृत्पादौ प्रक्षालयति ॥२६॥ प्रक्षाल्यमानावनु मन्त्रयते ॥ इमौ पादौ सुभगौ सुशेवौ सौभाग्याय कृणुतां नो अघाय। प्रक्षाल्यमानौ सुभगौ सुपत्न्याः प्रजां पशून्दीर्घमायुश्च धत्तामिति ॥२७॥ अहं विष्यामि प्र त्वा

को धरे ॥ उस पर कुमारी को बिठलाकर "इयं नारी०" इत्यादि मंत्र से कुमारी से अग्नि में लावा और पुल्यों को डलवावे और "येनाग्नि०" मंत्र से वर कुमारी का पाणिग्रहण करे ॥१५॥१६॥१७॥१८॥ एवं "अर्यम्ण०" इत्यादि मंत्र से अग्नि की तीन वार परिक्रमा करे ॥ पुनः अग्नि के उत्तर भाग में पश्चिम को "सप्त मर्यादा०" इत्यादि मंत्र से वर सात रेखायें खींचे "उन पर कुमारी को सात पग इस भांति वर वाक्य पढता जावे और कुमारी पहिले दहिना पग आगे रखकर पीछे वाम पग रखती चले"—"इषे त्वा सुमङ्गलि प्रजावति सुसीम०" इससे पहिला पग और ऊर्जे त्वा०"इत्यादि से सप्तम पग धरवाता हुआ "सखा सप्तपदी भव०" अन्त में पढ़े ॥ और तब वर कुमारी को "आरोह तल्पं०" इत्यादि मंत्र पढ़कर शय्या पर बिठलावे ॥१९॥२०॥२१॥२२॥२३॥२४॥२५॥ शय्या पर बैठी हुई कुमारी के पैरों को दासी स्त्री धोवे और "इमौ पादौ

मुञ्चामीति योक्त्रं विचृतति ॥२८॥ अपरस्मिन् भृत्याः संरभन्ते ॥२९॥ ये जयन्ति ते बलीयांस एव मन्यन्ते ॥३०॥ बृहस्पतिनेति सर्वसुरभिचूर्णान्यृचर्चा काम्पील-पलाशेन मूर्ध्न्यावपति ॥३१॥ उद्यच्छध्वं भगस्ततक्षा-भ्रातृघ्नीमित्येकैकयोत्थापयति ॥३२॥ प्रतितिष्ठेति प्रति-ष्ठापयति ॥३३॥२॥७६॥

सुकिंशुकं रुक्मप्रस्तरणमिति यानमारोहयति ॥१॥ एमं पन्थां ब्रह्मापरमित्यग्रतो ब्रह्मा प्रपद्यते ॥२॥ मा विदन्ननृक्षरा अध्वानमित्युक्तम् ॥३॥ येदं पूर्वेति तेना-न्यस्यामूढायां वाधूयस्य दशां चतुष्पथे दक्षिणैरभि-तिष्ठति ॥४॥ स चेदुभयोः शुभकामो भवति सूर्यायै देवे-भ्य इत्येतामृचं जपति ॥५॥ समृच्छत स्वपथोऽनवयन्तः सुसीमकामावुभे विराजावुभे सुप्रजसावित्यतिक्रम-

---

सुभगौ" इत्यादि मंत्र से वर अनुमंत्रण करे ॥ २६॥ २७ ॥ "अहं विष्यामि०" मंत्र से आचार्य कुमारी के कमर से योक्त्र को खोले और दूसरी ओर नौकर गण खोलने में रोके इसमें जो जीते वे ही बलवान माने जावे ॥२८॥२९॥३० "बृहस्पतिना" मंत्र से सब सुरभि चूर्णों को काम्पील के पत्ते से कुमारी के शिर पर डाले ॥३१॥ "उद्यच्छ-ध्वं भगस्ततक्षाभ्रातृघ्नी०" इत्यादि मंत्र पढ़२ कर एक २ को शिर पर से उठाता जावे और वर "प्रतितिष्ठ०" से शिर पर धरता जावे ॥३३॥२ ॥७६॥ यह छिहत्तरवी कण्डिका पूरी हुई ।

"सुकिंशुकं रुक्मप्रस्तरणं०" इत्यादि मंत्र से वर वधू को सवारी पर सवार करावे ॥१॥ मार्ग में वर वधू के साथ आगे आगे पुरोहित जावे ॥२॥ मार्ग में चलते समय "माविदन्ननृक्षरा०" इत्यादि दो मंत्रों को पढ़ कर दाहिना पैर पहिले उठाकर चले ॥३॥ यदि मार्ग में चौराहे पर दूसरे की ब्याही हुई कुमारी और वर के कपड़े का किनारा चौराहे से दक्षिण भाग में पड़ा हो तो दोनों की भलाई समझ कर "सूर्यायै-देवेभ्य०" इत्यादि मंत्र जप करे ॥४॥५॥ और "समृच्छत स्वपथो०"

यतोऽन्तरा ब्रह्माणम् ॥६॥ य ऋते चिदभिश्रिष इति यानं संप्रोक्ष्य विनिष्कारयति ॥७॥ सा मन्दसानेति तीर्थे लोगं प्रविध्यति ॥८॥ इदं सु म इति महावृक्षेषु जपति ॥९॥ सुमङ्गलीरिति वध्वीक्षीः प्रति जपति ॥१०॥ या ओषधय इति मन्त्रोक्तेषु॥११॥ ये पितर इति श्मशानेषु ॥१२॥ प्र बुध्यस्वेति सुप्तां प्रबोधयेत्॥१३॥ संकाशयामीति गृहसंकाशे जपति ॥१४॥ उद्व ऊर्मिरिति यानं सम्प्रोक्ष्य विमोचयति ॥१५॥ उत्तिष्ठेत इति पत्नी शालां सम्प्रोक्षति ॥१६॥ स्योनमिति दक्षिणतो बलीकानां शकृत्पिण्डेऽश्मानं निदधाति ॥१७॥ तस्योपरि मध्यमपलाशे सर्पिषि चत्वारि दूर्वाग्राणि ॥१८॥ तमातिष्ठेत्यास्थाप्य ॥१९॥ सुमङ्गली प्रतरणीह प्रियं मा हिंसिष्टं ब्रह्मापरमिति प्रत्यृचं प्रपादयति ॥२०॥ सुहृत्पूर्णकंसेन

इत्यादि मंत्र से ब्राह्मण को, "य ऋतेचिदभिश्रिष०" मंत्र से सवारी को जल से भलीभांति प्रोक्षण कर साफ कर देवे ॥६॥७॥ और रास्ते में यदि तीर्थ मिले तो वहाँ "सा मन्दसान०" को पढ़ कर मट्टी का ढेला फेक देवे ॥८॥ वृक्षों को देखने पर "इदं सु म०" का जप करे ॥९॥ 'सुमङ्गली:' को वधू को देखने वाली स्त्री को देखने पर जप करे ॥१०॥ "या ओषधय०" का जप करे– जहाँ तहाँ ॥११॥ मरघट मिलने पर "ये पितर०" इत्यादि का जप करे ॥१२॥ "प्रबुध्यस्व०" पढकर सोती हुई वधू को जगावे ॥१३॥ संकाशयामि०" का जप जब वर के घर पास आ जावे तब करे ॥१४॥ "उद्व ऊर्मि:०" इत्यादि को पढ़कर सवारी को जल से धोकर उसमें दुलहिन उतार लेवे ॥१५॥ "उत्तिष्ठेत०" मंत्र को वर पढ़े एवं पत्नी शाला को प्रोक्षण करे ॥१६॥ और दक्षिणभाग में बैल के गोबर के पिण्ड पर "स्योनं०" मंत्र से पत्थर को धर उसपर कर मध्यम पलाश के काठ में घृत धर और "तमातिष्ठ०" मंत्र से दूर्वा के अग्रभागों धरकर "सुमङ्गली०" इत्यादि ऋचाओं में से प्रत्येक ऋ० से ब्रह्मा वधू को एक पग चलवावे और उसे कोई सुहृत् कांसे के पात्र से अग्नि की चारों ओर

प्रतिपादयति ॥२१॥ अघोरचक्षुरित्यग्निं त्रिः परिणयति ॥२२॥ यदा गार्हपत्यं सूर्यायै देवेभ्य इति मन्त्रोक्तेभ्यो नमस्कुर्वतीमनुमन्त्रयते ॥२३॥३॥७७॥

शर्म वर्मेति रोहितचर्माहरन्तम् ॥१॥ चर्म चोपस्तृणीथनेत्युपस्तृणन्तम् ॥२॥ यं बल्बजमिति बल्बजं न्यस्यन्तम् ॥ ३॥ उप स्तृणीहीत्युपस्तृणन्तम् ॥४॥ तदा रोहस्विस्यारोहयति ॥५॥ तत्रोपविश्येत्युपवेशयति ॥६॥ दक्षिणोत्तरमुपस्थं कुरुते ॥७॥ सुज्यैष्ठ्य इति कल्याणनामानं ब्राह्मणायनमुपस्थ उपवेशयति ॥ ८ ॥ वितिष्ठन्तामिति प्रमदनं प्रमायोत्थापयति ॥९॥ तेन भूतेन तुभ्यमग्रे शुम्भनी अग्निर्जनविन्मह्यं जायामिमामदात्सोमो वसुविन्मह्यं जायामिमामदात्पूषा जातिविन्मह्यं जायामिमामदादिन्द्रः सहीयान्मह्यं जायामिमामदादग्नये जनविदे स्वाहा सोमाय वसुविदे स्वाहा पूष्णे जातिविदे स्वाहेन्द्राय सहीयसे स्वाहेत्यागच्छतः ॥१०॥ सविता प्रसवानामि-

"अघोरचक्षुः०" से तीन वार परिक्रमण करावे ॥१७—२२॥ और घर के कुल देवता को बहू नमस्कार करती समय कर्त्ता "यदा गार्हपत्यं०" इत्यादि मं० से अनुमंत्रण करे ॥२३॥३॥७७॥ यह सतहत्तरवी कण्डिका पूरी हुई ।

"शर्मवर्म०" इत्यादि मंत्र से लाल बैल के चर्म को लाते हुए पढ़े, "चर्म चोपस्तृणीथन०" इत्यादि मंत्र से चर्म बिछाते समय पढ़े। और तृणों को लाते समय "यं बल्वजं०" इत्यादि पढ़े। जमीन पर प्रथम तृणों को बिछाकर उस पर चर्म को बिछावे । "आरोहतु" कह कर उसपर आरोहण कराकर "तत्रोपविश०" से उसपर उसे बिठलावे और कल्याण-वाचक नाम वाले ब्राह्मणायन के उत्तर मुख गोद में "सुज्यैष्ठ्य०" मंत्र से वर-वधू को बिठाकर "वितिष्ठन्ताम्०" से कुमार के लिये फल, मोदकादि देकर तब उसे उठावे ॥१—९॥ "तेन भूतेन०" इत्यादि मंत्रों से वर वधू के आते समय आहुतियां देवे। एवं "सविता

ति मूर्ध्नोः संपातानानयति ॥११॥ उदपात्र उत्तरान् ॥१२॥ शुम्भन्याञ्जल्योर्निनयति ॥१३॥ तेन भूतेनेति समशनम् ॥१४॥ रसानाशयति स्थालीपाकं च ॥१५॥ यवानामाज्यमिश्राणां पूर्णाञ्जलिं जुहोति ॥१६॥४॥७८॥

सप्त मर्यादा इति तिसृणां प्रातरावपते ॥१॥ अक्ष्यौ नाविति समाञ्जाते ॥२॥ महीमू ष्विति तल्पमालम्भयति ॥३॥ आरोह तल्पमित्यारोहयति ॥४॥ तत्रोपविश्येत्युपवेशयति ॥५॥ देवा अग्र इति संवेशयति ॥६॥ अभित्वेत्यभिच्छादयति ॥७॥ सं पितराविति समावेशयति ॥८॥ इहेमाविति त्रिः सन्नुदति ॥९॥ मदुघमणिमौक्षेऽपनीयेयं वीरुदमोऽहमिति संस्पृशतः ॥१०॥ ब्रह्म-

---

प्रसवानां०" इत्यादि से दोनों के शिरों पर आहुतियों का ढार देवे ॥१०॥११॥ "तेन भूतेन०" से रसों और स्थाली पाक का दोनों को भोजन करावे ॥१२॥१३॥१४॥१५॥ और आठ ऋ० वाले कल्पजसूक्त, एवं "आगच्छत०" इत्यादि ३ ऋ० वाले सूक्त और "सविता प्रसवानां०" सूक्त–इन सूक्तों से यव मिले आज्य की अञ्जुलियों से वर वधू हवन करें और सम्पातों को वर वधू के शिर पर डालते जावें ॥१६॥४॥७८॥ यह अठहत्तरवी कण्डिका पूरी हुई ।

"सप्त मर्य्यादा०" इत्यादि ऋ० से प्रातःकाल आहुति करें । "अक्ष्यौ नौ०" से दोनों परस्पर एक दूसरे को कज्जल से नेत्रों में अञ्जन करें ॥१॥२॥ और "महीमूषु०" से शय्या को स्पर्श करें । "आरोह तल्प०" कहने पर शय्यापर चढ़ावें "तत्रोपविशेत्" कहने पर–उन्हें बिठलावे और "देवा अग्रे०" पढ़कर दोनों को शय्या पर संवेशन करावे ॥६॥ "अभित्वामनुजातेन०" से दोनों को वस्त्र ओढ़ा देवे ॥७॥ "संपितरौ०" इत्यादि ४ ऋचाओं से दोनों को एक दूसरे के मुख सम्मुख करे ॥८॥ "इहेमौ०" से एक दूसरे के कण्ठ को ग्रहण करे ॥९॥ मदुघ-मणि को सुगन्ध में डालकर पीसकर उबटन बनाकर "इयं वीरुत्०" इस सूक्त से दोनों को उबटन लगावे ॥ "अमोऽहं०" इस दो ऋचा से अक्षत पढ़कर

जज्ञानमित्यङ्गुष्ठेन व्यचस्करोति ॥११॥ स्योनाद्योनेरित्यु-त्थापयति॥१२॥परिधापनीयाभ्यामहतेनाच्छादयति॥१३॥ बृहस्पतिरिति शष्पेणाभिघार्य व्रीहियवाभ्यामभिनि-धाय दर्भपिञ्जूल्या सीमन्तं विचृतति ॥१४॥ शणशक-लेन परिवेष्ट्य तिस्रो रात्रीः प्रति सुप्तास्ते ॥१५॥ अनु-वाकाभ्यामन्वारब्धाभ्यामुपदधीत ॥१६॥ इहेदसाथेत्येत-या शुल्कमपाकृत्य ॥१७॥ द्वाभ्यां निवर्तयतीह मम राध्य-तामत्र तवेति ॥१८॥ यथा वा मन्यन्ते ॥१९॥ परा देही-ति वाधूयं ददतमनुमन्त्रयते ॥२०॥ देवैर्दत्तमिति प्रति-गृह्णाति ॥२१॥ अपास्मत्तम इति स्थाणावासजति ॥२२॥

एक दूसरे को कण्ठ ग्रहण करे और "ब्रह्म जज्ञानं०" से वर वधू के नाभि प्रदेश को (जननेन्द्रिय को) स्पर्श करे ॥१०॥११॥ "स्योनाद्योनेः०" से दोनों को उठावे ॥१२॥ "या अकृन्तनत्वष्टा वासो०" इत्यादि दो ऋ० से दोनों के अखण्ड नये वस्त्रों को ओढ़ा देवे ॥ "बृहस्पति०" इत्यादि मंत्र से शष्प द्वारा अभिघारण कर व्रीहि और यवों का दर्भ पिञ्जुलि से वधू के मांग को (सीमन्त) केशों को शिर के बीचो बीच दोनों ओर फाड़कर सज देवे ॥१३॥१४॥ शण के टुकड़े से वधू के जूड़े को लपेट कर बान्ध देवे और तीन रात्रि दोनों साथ सोवें ॥१५॥ सब कर्म-काण्डों में आज्य की आहुति होती है। परन्तु तन्त्र की विधि है "आज्य, समिध, पुरोडाश, व्रीहि, यव, तिल आदि में से किसी एक से आहुति देवे। अतएव आज्य आदि १३ हविष्य वस्तुओं में से-किसी एक की "सत्येनोत्तभित०" इन दो अनुवाकों से आहुतियाँ देवे ॥१६॥ यदि चतुर्थी कर्म के भीतर वधू रजस्वला हो जावे तो उसका प्रायश्चित करे॥ "इहे-दसाथ०" ऋचा से वर वधू को अलग २ दहेज देवे ॥१७॥ "द्वाभ्यां निवर्तयतीह०" इत्यादि वर पढ़े ॥१८॥ या जैसा चाहें वैसा करें ॥१९॥ "परादेहि०" से बहू को पहनने को वस्त्र देते समय अनुमंत्रण करे। और "देवैर्दत्तं०" से वस्त्र को ग्रहण करे ॥२०॥२१॥ "अपास्मत्तम०" से वस्त्र को वर वधू के शरीरों पर डाल देवे ॥२२॥ "यावतीः कृत्या०"

यावतीः कृत्या इति व्रजेत् ॥२३॥ या मे प्रियतमेति वृक्षं प्रतिच्छादयति ॥२४॥ शुम्भन्याप्लुत्य ॥२५॥ ये अन्ता इत्याच्छादयति ॥२६॥ नवं वसान इत्याव्रजति ॥२७॥ पूर्वापरं यत्र नाधिगच्छेद्ब्रह्मापरमिति कुर्यात् ॥२८॥ गौर्दक्षिणा प्रतीवाहः ॥२९॥ जीवं रुदन्ति यदीमे केशिन इति जुहोति ॥३०॥ एष सौर्यो विवाहः ॥३१॥ ब्रह्माप-रमिति ब्राह्मयः ॥३२॥ आवृतः प्राजापत्याः प्राजापत्याः ॥३३॥५॥७९॥ इत्यथर्ववेदे कौशिकसूत्रे दशमोऽध्यायः समाप्तः ॥१०॥

अथ पितृमेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥ दहननिधानदेशे-परिवृक्षाणि निधानकाल इति ब्राह्मणोक्तम् ॥२॥ दुर्बली-

से वस्त्रों को लेकर चले ॥२३॥ "या मे प्रियतम०" से वस्त्र से वृक्ष को ढाके, "नवं वसान०" पढ़कर आवें, यदि पुरोहित विवाह कर्म कराने में पूर्वापर कर्म का अनुक्रम न जाने तो "ब्रह्मापरं०" इत्यादि ऋ० से कर्म करावे और अभ्यातानादि उत्तर तंत्र, हस्तहोम, मंत्रों का विकल्प और यदि पूर्वस्थण्डिल में अग्नि करे तो उत्तर तंत्र करना चाहिये और "कामस्तदग्र०" इत्यादि काम सूक्त का जप करे ॥२४—२८॥ कर्त्ता (पुरोहित) को गौदक्षिणा देवे ॥२९॥ यदि वधू पिता घर पर रोवे तो "जीवं रुदन्ति०" इत्यादि से आहुतियाँ देवे ॥३०॥ यह "सौर्यविवाह" कहलाता है ॥३१॥ "ब्रह्मापरं०" इत्यादि से जो विवाह होता है वह "ब्राह्मय" विवाह कहलाता है ॥३२॥ विना मंत्र के जो विवाह होता है वह प्राजापत्यविवाह होता है या शूद्र का विवाह है ॥३३॥५॥७९॥ इय उन्यासीवी कण्डिका समाप्त हुई ।

यह अथर्ववेद के कौशिक सूत्र का दशम अध्याय समाप्त हुआ ॥१०॥

अब अन्त्येष्टि कर्म्म को कहेंगे । वृक्ष रहित प्रदेश में दहन स्थान बनावे—ऐसा ब्राह्मण ग्रन्थ में लिखा है ॥१॥२॥ जब पित्र आदि दुर्बल

भवन्तं शालातृणेषु दर्भानास्तीर्य स्योनास्मै भवेत्यवरोहयति ॥३॥ मन्त्रोक्तावनुमन्त्रयते ॥४॥ यत्ते कृष्ण इत्यवदीपयति ॥५॥ आहिताग्नौ प्रेते सम्भारान् सम्भरति ॥६॥ आज्यं च पृषदाज्यं चाजं च गां च ॥७॥ वसनं पञ्चमम् ॥८॥ हिरण्यं षष्ठम् ॥९॥ शरीरं नान्वालभते ॥१०॥ अन्यं चेष्टन्तमनुमन्त्रयते ॥११॥ शान्त्युदकं करोत्यसकलं चातनानां चान्वावपते ॥१२॥ शान्त्युदकोदकेन केशश्मश्रुरोमनखानि संहारयन्ति ॥१३॥ आप्लावयन्ति ॥१४॥ अनुलिम्पन्ति ॥१५॥ स्रजोऽभिहरन्ति ॥१६॥ एवं स्नातमलंकृतमहतेनावाग्दशेन वसनेन प्रच्छादयत्येतत्ते देव एत-

---

अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो जावें या मरणापन्न हो जावें (यह संस्कार आहिताग्नि और एकाग्नि का है) तो अग्निशाला या आवसथ्यशाला में शाला तृणों को बिछाकर उस पर दर्भ तृणों को डालकर "स्योनास्मै भव०" इत्यादि से मृत वा मरणापन्न को उस बिछाये तृणों पर अवरोहण करावे ॥३॥४॥ "यत्ते कृष्ण०" से दीप जला देवे ॥५॥ यदि काक, पिपीलिका, सर्प, व्याघ्र, सींग वाले जन्तु, श्वापद, आदि जन्तुओं के सींग, नख, दन्त आदि के काटने से मनुष्य का मृत्यु होवे, तो उसका प्रायश्चित्त इस प्रकार होगा "यत्ते कृष्णः शकुनि०" इत्यादि ३ ऋचा से अग्नि को अभिमंत्रित कर दंशित-व्रण को उससे जला देवे ॥६॥ आहिताग्नि के मरने पर वक्ष्यमाण सामग्रियों को एकत्र कर रक्खे ॥६॥ शुद्ध अग्नि, दर्भ, तिल, घृत, हिरण्य शकल, चन्दनकाठ, गोपीचन्दन, तुलसी, पिष्ट, ताम्रपात्र, गोबर, कुदार, अखण्ड नयावस्त्र, सूत ॥७॥८॥९॥ सात कुर्सी के भीतर के व्यक्तियों को अन्य लोग बिना शुद्ध हुए नहीं स्पर्श करते हैं ॥१०॥ चेष्टा करते हुए अन्य व्यक्ति को अनुमंत्रण करे ॥११॥ कर्त्ता सकल प्रतीकत्रय से और ओषधित्रय से मातृ नाम प्रतीकत्रय को शान्त्युदक में आवपन करे ॥१२॥ शान्ति जल से, शिरके केश, दाढ़ी, मूँछ, लोम और नखों को कटवावे ॥१३॥ और प्रेत शरीर को जलाशय में डुबाकर स्नान करावें ॥१४॥ श्मशान भूमि को लीपे और स्रज से अग्नि को लावे ॥१४॥१५॥१६॥ इस भाँति नहवा धोलाकर के अखण्ड

त्वा वासः प्रथमं न्वागन्निति ॥१७॥ अपेममित्यग्निषु जुहोति ॥१८॥ उखाः कुर्वन्ति ॥१९॥ ताः शकृदाभ्यन्तरं लिम्पन्ति शुष्केण वा पूरयन्ति ॥२०॥ ताः पृथगग्निभिः संतापयन्त्या शकृदादीपनात् ॥२१॥ तेषां हरणानुपूर्वमाहवनीयं प्रथमं ततो दक्षिणाग्निं ततो गार्हपत्यम् ॥ ॥२२॥ अथ विदेशे प्रेतस्या रोहत जनित्रीं जातवेदस इति पृथगरणीष्वग्नीन्समारोपयन्ति ॥२३॥ तेषु यथोक्तं करोति ॥२४॥ अपि वान्यवत्सायाा वा संधिनीक्षीरेणैकशलाकेन वा मन्थेनाग्निहोत्रं जुहोत्या दहनात् ॥२५॥ दर्शपूर्णमासयोः कृष्णकतण्डुलानां तस्या आज्येन नान्तं न बहिः ॥२६॥ पलालानि बर्हिः ॥२७॥ तिलिपञ्ज्या इध्माः ॥२८॥ ग्रहानाज्यभागौ पुरस्ताद्धोमसंस्थितहोमानुद्धृत्य ॥२९॥ प्राणापानावरुद्ध्यै निधनाभिर्जुहुयात् ॥३०॥ अथो-

---

चीरे द्वार नये वस्त्र से "एतत्ते देव०" मंत्र से प्रेत को ढाक देवे ॥१७॥ "अपेमं०" मंत्र से अग्नि में आहुतियाँ देवे ॥१८॥ और "उखायें" तय्यार करे ॥१९॥ उखाओं को गोबर से लीप देवे या सूखे गोबर से उनको भर देवे ॥२०॥ उनमें एकही वार में अग्नि डाल कर सूखे गोबर को जलावे ॥२१॥ उनका हरणानुक्रम से आहवनीय अग्नि को पहिले। तब दक्षिणाग्नि को और अन्त में गार्हपत्याग्नि को ॥२२॥ यदि देशान्तर में मृत्यु हो तो आहिताग्नि का कर्म इस भाँति करे। "प्रेतस्यारोहत०" मंत्र से अरणी द्वारा अग्नि उत्पन्न कर उनमें यथोक्त प्रकार से कर्म करे ॥२३॥२४॥ अथवा अन्य वत्सा को गौ के पास धरकर जो दूध दूहा जाता—ऐसी गौ के दूध से एक शला का द्वारा या मन्थ से अग्निहोत्र की आहुति करे जब तक प्रेत का दाह होता रहे ॥२५॥ दर्शपूर्णमास में काले चावलों की उक्त गौ के दूध से न अन्त में न बाहर आहुति करे ॥२६॥ पलालों से बर्हि होम करे ॥२७॥ तिल के डांठ का इध्म करे ॥२८॥ ग्रह होम, आज्यभाग के होम, पुरस्तात् होम, संस्थित होमों को निकाल कर, प्राण, अपान वायु को रोककर निधनाग्नि से आहुति करे ॥२९॥३०॥

भयोरुत्तिष्ठेत्युत्थापयति ॥३१॥ प्रच्यवस्वेति त्रिः संहापयति यावत्कृत्वश्चोत्थापयति ॥३२॥ एवमेव कूदीं जघने निबध्य ॥३३॥ इमौ युनज्मीति गावौ युनक्ति पुरुषौ वा ॥३४॥ उत्तिष्ठ प्रेहि प्रच्यवस्वोदन्वतीत एतेऽग्नीषोमेदं पूर्वमिति हरिणीभिर्हरेयुरति द्रवेत्यष्टभिः ॥३५॥ इदं त इत्यग्निमग्रतः ॥३६॥ प्रजानत्यघ्न्य इति जघन्यं गामेधमग्निं परिणीय ॥३७॥ स्योनास्मै भवेत्युत्तरतोऽग्नेः शरीरं निदधाति ॥३८॥ अध्वर्यव इष्टिं निर्वपन्ति ॥३९॥ तस्यां यथादेवतं पुरस्ताद्धोमसंस्थितहोमानुद्धृत्य ॥४०॥ प्राणापानावरुद्ध्यै निधनाभिर्जुहुयात् ॥४१॥ अथोभयोरपेत ददामीति शान्त्युदकं कृत्वा सम्प्रोक्षणीभ्यां काम्पीलशाखया दहनं सम्प्रोक्ष्य ॥४२॥ उदीरतामित्युद्धृत्याभ्युक्ष्य लक्षणं कृत्वा पुनरभ्युक्ष्य प्राग्दक्षिणमेधश्चिन्वन्ति ॥४३॥ इयं नारीति पत्नीमुपसंवेशयति ॥४४॥ उदीर्ष्वेत्यु-

---

॥३०॥ अब "उभयोरुत्तिष्ठेत्०" मंत्र से दोनों का उत्थापन करे ॥३१॥ इसी प्रकार कूदी को जंघे में बान्धकर "इमौ युज्मि०" मंत्र से दो गौ या दो पुरुषों को गाड़ी में जोते ॥३२॥३३॥३४॥ "उत्तिष्ठ प्रेहि०" इत्यादि से हरिणी से कलश को उठाकर "द्रव०" इत्यादि आठ ऋचाओं से हड्डियों को अभिमंत्रित करके "इदं त०" से प्रेत के आगे अग्नि को धर कर "प्रजानत्यघ्न्य०" से जघन्य गौ को अग्नि की परिक्रमा करके "स्योनास्मै भव०" से अग्नि के उत्तर भाग में शरीर को रख देवे ॥३५॥३६॥ ३७॥३८॥ और अध्वर्युगण इष्टि को निर्वपन करें ॥३९॥ पुरस्तात् होम और संस्थित होमों को निकालकर प्राणापान को रोककर निधनाग्नि से आहुति देवे ॥४०॥४१॥ "अथोभयोरपेत ददामि०" से शान्ति उदक को करके संप्रोक्षणियों से काम्पील शाखा द्वारा दहन स्थान का मार्जन करके ॥४२॥ "उदीरतां०" इत्यादि से अभ्युक्षण कर रेखा खींच कर पुनः मार्जन करके पूर्व दक्षिण भाग में समिधों को आधान करे और "इयं नारी०" मंत्र से पत्नी को मरणार्थ प्रेत के स्थान सोला देवे ॥४३॥४४॥ "उदीर्ष्वं०"

स्थापयति ॥४५॥ यद्धिरण्यं बिभर्ति तद्दक्षिणे पाणावा-दायाज्येनाभिघार्य ज्येष्ठेन पुत्रेणादापयतीदं हिरण्यमिति ॥४६॥ स्वर्गं यत इति दक्षिणं हस्तं निर्मार्जयति ॥४७॥ दण्डं हस्तादिति मन्त्रोक्तं ब्राह्मणस्यादापयति ॥४८॥ धनुर्हस्तादिति क्षत्रियस्य ॥४९॥ अष्ट्रामिति वैश्यस्य ॥५०॥ इदं पितृभ्य इति दर्भानेधान्स्तृणाति ॥५१॥ तत्रैनमुत्तानमादधीतेजानश्चित्तमारुक्षदग्निमिति ॥५२॥ प्राच्यां त्वा दिशीति प्रतिदिशम् ॥५३॥ नेत्युपरिबभ्रवः ॥५४॥ अनुमन्त्रयते ॥५५॥ अथास्य सप्तसु प्राणेषु सप्त हिरण्यशकलान्यवास्यस्यमृतमस्यमृतत्वायामृतमस्मिन्धे-हीति ॥५६॥१॥८०॥

अथाहिताग्नेर्दर्भेषु कृष्णाजिनमन्तर्लोमास्तीर्य ॥१॥ तत्रैनमुत्तानमाधाय ॥२॥ अथास्य यज्ञपात्राणि पृषदा-

---

मंत्र से उसे उठावे ॥४५॥ और जो सोने का भूषण पहने हो उसको दहिने हाथ में लेकर आज्य के साथ घी का धार देकर जेठे पुत्र द्वारा "इदं हिरण्यं०" मंत्र पढ़कर दिलवावे ॥४६॥ "स्वर्गं यत:०" से दहिने हाथ को मार्जन करे ॥४७॥ "दण्डं हस्तात्०" मंत्रोक्त विधि से ब्राह्मण का दिलवावे "धनुर्हस्तात्०" से क्षत्रिय का और "अष्ट्रां०" से वैश्य का ॥४८॥४९॥५०॥ "इदं पितृभ्य:०" डाभ तृणों का आस्तरण करे ॥५१॥ उन बिछाये हुए कुशों पर "जानश्चित्तमारुक्षदग्निं०" से प्रेत को चित्त (उत्तान) डाल देवे ॥५२॥ "प्राच्यां त्वा दिशि०" से प्रति दिशा में करे ॥५३॥ "उपरिबभ्रव:" आचार्य्यगण ऐसा नहीं करते ॥५४॥ अनु-मंत्रण करे ॥५५॥ अब १ मुख, २ कान, दो नाक के छिद्र और दो नेत्र इन सात प्राणों में सोने के सात टुकड़ों को "अमृतमसि०" इत्यादि से डाले ॥५६॥१॥८०॥ यह अस्सीवी कण्डिका समाप्त हुई ॥

अब आहिताग्नि के अग्नि के पास बिछाये हुए कुशों पर काले मृग-चर्म को लोम ऊपर को करके बिछा देवे ॥१॥ उस पर प्रेत को उत्तान रख देवे ॥२॥ और इसके यज्ञपात्रों को पृषदाज्य से पूरा करके अनुरूप

ज्येन पूरयित्वानुरूपं निदधाति ॥३॥ दक्षिणे हस्ते जुहूम् ॥४॥ सव्य उपभृतम् ॥५॥ कण्ठे ध्रुवां मुखेऽग्निहोत्र-हवणीं नासिकयोः स्रुवम् ॥६॥ तान्यनुमन्त्रयते जुहू-र्दाधार द्यां ध्रुव आ रोहेति ॥७॥ ललाटे प्राशित्रहरणम् ॥८॥ इममग्ने चमसमिति शिरसीडाचमसम् ॥९॥ देवा यज्ञमित्युरसि पुरोडाशम् ॥१०॥ दक्षिणे पार्श्वे स्फ्यं सव्य उपवेषम् ॥११॥ उदरे पात्रीम् ॥१२॥ अष्ठीवतोरु-लूखलमुसलम् ॥१३॥ श्रोण्योः शकटम् ॥१४॥ अन्तरे-णोरू अन्यानि यज्ञपात्राणि ॥१५॥ पादयोः शूर्पम् ॥१६॥ अपो मृन्मयान्युपहरन्ति ॥१७॥ अयस्मयानि निदधाति ॥१८॥ अमा पुत्रा च दृषत् ॥१९॥ अथोभयोरपश्यं युव-तिं प्रजानत्यघ्न्य इति जघन्यां गां प्रसव्यं परिणीय-मानामनुमन्त्रयते ॥२०॥ तां नैर्ऋतेन जघनताघ्नन्त उपवेशयन्ति ॥२१॥ तस्याः पृष्ठतो वृक्कावुद्धार्य पाण्योर-

---

शरीर के प्रत्येक अंगों पर धरे ॥३॥ दहिने हाथ पर जुहू को, वाम हाथ में उपभृत् , कण्ठ में ध्रुवा को, मुख में अग्निहोत्र हवणी, नाक के छिद्रों में स्रुव को—उनको "जुहूर्दाधार०" मंत्र से अनुमंत्रण, ललाट पर प्राशि-त्रहरण को धरे "इममग्ने चमसं०" से इडाचमस को धरे ॥९॥ "देवा यज्ञं०" से कलेजे पर पुरोडाश को धरे ॥१०॥ दक्षिणपार्श्व में स्फ्य को वामपार्श्व में उपवेश को धरे ॥११॥ पेट पर पात्री को धरे ॥१२॥ और अष्ठीवत में उलूखल और मुसल क्रम से धरे ॥१३॥ श्रोणी में शकट को, दोनों जंघों के भीतर अन्यान्य यज्ञपात्रों को, दोनों पैरों पर शूर्प को ॥१४॥१५॥१६॥ जल को माटी के बर्तनों में लावे लोहे के बर्तनों को धरे, लोढ़ा, सीलवट ॥१७॥१८॥ अब "अथोभयोरपश्यं युवतिं प्रजा-त्यघ्न्य०" से जघन्या गौ को वामभाग से चलकर परिक्रमा करता हुआ अनुमंत्रण करे ॥२०॥ उस गौ को नैर्ऋत कोण से हनन करता हुआ उप-वेशन करे ॥२१॥ उसके पृष्ठभाग से दोनों वृक्‍ को निकाल कर दोनों

स्यादघस्यति द्रव श्वानाविति ॥२२॥ दक्षिणे दक्षिणं सव्ये सव्यम् ॥२३॥ हृदये हृदयम् ॥२४॥ अग्नेर्वर्मेति वपया सप्तच्छिद्रया मुखं प्रच्छादयन्ति ॥२५॥ यथागात्रं गात्राणि ॥२६॥ दक्षिणैर्दक्षिणानि सव्यैः सव्यानि ॥२७॥ अनुबद्धशिरःपादेन गोशालां चर्मणावच्छाद्य ॥२८॥ अजो भाग उत्त्वा वहन्त्स्वति दक्षिणतोऽजं बध्नाति ॥२९॥ अस्माद्वै त्वमजायथा अयं त्वदधि जायतामसौ स्वाहे-त्युरसि गृह्ये जुहोति ॥३०॥ तथाग्निषु जुहोत्यग्नये स्वाहा कामाय स्वाहा लोकाय स्वाहेति ॥३१॥ दक्षिणाग्नावि-त्येके ॥३२॥ मैनमग्ने वि दहः शं तप आरभस्व प्रजानन्त इति कनिष्ठ आदीपयति ॥३३॥ आदीप्ते स्रुवेण यामान् होमाञ्जुहोति परेयिवांसं प्रवतो महीरिति ॥३४॥ यमो नो गातुं प्रथमो विवेदेति द्वे प्रथमे ॥३५॥ अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा इति संहिताः सप्त ॥३६॥ यो ममार

हाथों पर "अतिद्रव श्वानौ०" से दहिने पर दहिने को, वाम पर वाम को ॥२२॥२३॥ हृदय पर हृदय को "अग्नेर्वर्म०" से वपा द्वारा सात छिद्रों को ढाक देवे ॥२४॥२५॥ जिस प्रकार शरीर के अंग हैं उसी प्रकार प्रत्येक अंगों को धरे ॥२६॥ दहिने पर दहिनों को, बायें पर बायों को धरे ॥२७॥ शिर पैरों को बांधकर गौ को गोशाला में चमड़े से ढाक देकर "अजो भाग उत्त्वा वहन्तु०" से दक्षिणभाग में बकरे को बान्धे ॥२९॥ "अस्माद्वै०" से हृदय पर आहुति देवे ॥३०॥ उसी प्रकार अग्नये स्वाहा०" इत्यादि से अग्नियों में आहुतियाँ देवे ॥३१॥ दक्षिणाग्नि में आहुति देवे—ऐसा कोई २ आचार्य कहते हैं ॥ ३२ ॥ "मैनमग्ने विदह०" इत्यादि से सब से छोटा पुत्र अग्नि प्रज्वलित करे ॥ ३३ ॥ अग्नि प्रज्वलित हो जाने पर स्रुव से "परेयिवांसं प्रवतो महीः०" मंत्र से याम होमों की आहुतियाँ देवे ॥३४॥ "यमो नो गातुं०" इत्यादि पहिली दो आहुतियाँ देवे ॥३५॥ "अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा" इत्यादि से लगा-तार ७ आहुतियाँ देवे ॥३६॥ "यो ममार प्रथमो मर्त्यानां०" इत्यादि से

प्रथमो मर्त्यानां ये नः पितुः पितरो ये पितामहा इत्येकादश ॥३७॥ अथ सारस्वताः ॥३८॥ सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीं पितरो हवन्ते सरस्वति या सरथं ययाथ सरस्वति व्रतेषु त इदं ते हव्यं घृतवत्सरस्वतीन्द्रो मा मरुत्वानिति ॥३९॥ दक्षिणतोऽन्यस्मिन्ननुष्ठाता जुहोति ॥४०॥ सर्वैरुपतिष्ठन्ति त्रीणि प्रभृतिभिर्वा ॥४१॥ अपि वानुष्ठानीभिः ॥४२॥ एता अनुष्ठान्यः ॥४३॥ मैनमग्ने वि दह इति प्रभृत्यव सृजेति वर्जयित्वा सहस्रनीथा इत्यातः ॥४४॥ आ रोहत जनित्रीं जातवेदस इति पञ्चदशभिराहिताग्निम् ॥४५॥ मित्रावरुणा परि मामधातामिति पाणी प्रक्षालयते ॥४६॥ वर्चसा मामित्याचामति ॥४७॥ विवस्वान्न इत्युत्तरतोऽन्यस्मिन्ननुष्ठाता जुहोति ॥४८॥२॥८१॥

यवीयः प्रथमानि कर्माणि प्राङ्मुखानां यज्ञोपवीतिनां दक्षिणावृताम् ॥१॥ अथैषां सप्तसप्त शर्कराः पाणिष्वाव-

---

११ आहुतियाँ देवे ॥३७॥ अब सारस्वत हवन करे ॥३८॥ "सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते०" इत्यादि मंत्रों से दक्षिण भाग में आहुतियाँ देवे और दूसरे अग्नि में अनुष्ठाता आहुति देवे ॥३८॥३९॥ ४० सब मंत्रों से या तीन मंत्रों से उपस्थान करें ॥४१॥ या अनुष्ठानी ऋचाओं से उपस्थान करें ॥४२॥ ये अनुष्ठानी ऋचायें हैं ॥४३॥ "मैनमग्ने विदह०" इत्यादि से "अवसृज०" तक छोड़ कर सहस्रनीथा०" इत्यादि तक जानो ॥४४॥ "आ रोहत जनित्रीं जातवेदस०" इत्यादि १५ ऋचाओं से आहिताग्नि को उपस्थान करे ॥४५॥ "मित्रावरुणा०" इत्यादि से दोनों हाथों को प्रक्षालन करे ॥४६॥ "वर्चसा मां०" इत्यादि से आचमन करे ॥४७॥ "विवस्वान्न०" से उत्तरभाग में आहुति करे और अन्य अग्नि में अनुष्ठाता आहुति करे ॥४८॥२॥८१॥ यह एक्यासीवी काण्डिका खतम हुई ।

बड़े प्रथम कर्मों को पूर्वमुख हो यज्ञोपवीती होकर दक्षिणावृत होम

पते ॥२॥ तासामेकैकां सव्येनावाचीनहस्तेनावकिरन्तो-ऽनवेक्षमाणा व्रजन्ति ॥३॥ अपाघेनानुमन्त्रयते ॥४॥ सर्वे-ऽग्रतो ब्राह्मणा व्रजन्ति ॥५॥ मा प्र गामेति जपन्त उद-कान्ते व्यपाघे जपन्ति ॥६॥ पश्चादवसिञ्चति ॥७॥ उदु-त्तममिति ज्येष्ठः ॥८॥ पयस्वतीरिति ब्रह्मोक्ताः पिञ्जूली-रावपति ॥९॥ शान्त्युदकेनाचम्याभ्युक्ष्याश्वावतीमिति नदीं तारयते ॥१४॥ नक्षत्रं दृष्ट्वोपतिष्ठते नक्षत्राणां मा संकाशश्च प्रतीकाशश्चावतामिति ॥११॥ शाम्याकीः समि-ध आधायाग्रतो ब्रह्मा जपति ॥१२॥ यस्य त्रया गतमनुप्र-यन्ति देवा मनुष्याः पशवश्च सर्वे। तं नो देवं मनो अधि-ब्रवीतु सुनीतिर्नो नयतु द्विषते मा रधामेति शान्त्यु दकेनाच-म्याभ्युक्ष्य ॥१३॥ निस्सालामिति शालानिवेशनं सम्प्रोक्ष्य ॥१४॥ ऊर्जं बिभ्रदिति प्रपादयति ॥१५॥ नदीमालभ्भ-

---

करे ॥१॥ अब इनके सात २ टुकड़े हाथों पर आवपन करे ॥२॥ उनमें से एक २ को वाम हाथ नीचे करके अवकिरण (छीटें-बखेरें) करते हुए इधर उधर न देखते हुए जावे ॥३॥ और "अपाघेन०" मंत्र से अनुमंत्रण करें ॥४॥ सब के आगे २ ब्राह्मण गण जावें ॥५॥ "मा प्र गाम०" इत्यादि का जप करते हुए जल के पास पहुँच कर जप करें ॥६॥ पीछे जल का सेक करे ॥७॥ "उदुत्तमं०" इत्यादि से जेठा जप करे ॥८॥ "पयस्वतीः०" से ब्राह्मण के कहने पर पिञ्जुलियों का आवपन करे ॥९॥ शान्ति जल से आचमन करके अभ्युक्षण कर "अश्वावतीं०" ऋचा से नदी को पार करे ॥१०॥ नक्षत्र को देख कर "नक्षत्राणां०" इत्यादि से उपस्थान करे ॥११॥ शाम्याकी समिधों का आधान करके आगे ब्रह्मा जप करे ॥१२॥ अर्थात् वक्ष्यमाण मंत्र का जप करे—"यस्य त्र्या०" इत्यादि मंत्र का जप करके शान्ति जल से आचमन और अभ्युक्षण करके "निस्सालां०" शाला में निवास करे और उसका संप्रोक्षण करके "ऊर्जं बिभ्रदिति०" से टहले ॥१३॥१४॥१५॥ नदी को स्पर्श करे एवं गौ,

यति गामग्निमश्मानं च ॥१६॥ यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातिमिति यवान् ॥१७॥ खल्वकास्येति खल्वा-न्खलकुलांश्च ॥१८॥ व्यपाद्याभ्यां शाम्याकीराधाप-यति ॥१९॥ तासां धूमं भक्षयन्ति ॥२०॥ यद्यत्क्रव्याद् गृह्णेद्यदि क्रव्यादा नान्तेऽपरेद्युः । दिवो नभः शुक्रं पयो दुहाना इषमूर्जं पिन्वमानाः ॥ अपां योनिमपाध्वं स्वधा याश्चकृषे जीवंस्तास्ते सन्तु मधुश्चुत इत्यग्नौ स्थालीपाकं निपृणाति ॥२१॥ आदहने चापि वान्यवत्सां दोहयित्वा तस्याः पृष्ठे जुहोति वैश्वानरे हविरिदं जुहो-मीति ॥२२॥ तस्याः पयसि ॥२३॥ स्थालीपाक इत्येके ॥२४॥ ये अग्नय इति पालाश्या दर्व्या मन्थमुपमथ्य काम्पीलीभ्यामुपमन्थनीभ्यां तृतीयस्यामस्थीन्यभिजु-होति ॥२५॥ उप द्यां शं ते नीहार इति मन्त्रोक्तान्यव-दाय ॥२६॥ क्षीरोत्सिक्तेन ब्राह्मणस्यावसिञ्चति मधू-

---

अग्नि, पत्थर को स्पर्श करे ॥१६॥ "यवोऽसि०" इत्यादि से गौओं को छूए ॥१७॥ और "खल्वकास्य०" मंत्र से खल्वा और खल कुलों को छूए ॥१८॥ "व्यपाद्या०" से शाम्या की इध्मों का आधान करे ॥१९॥ उनके धूम को भक्षण करे ॥२०॥ "यद्यत्क्रव्याद् गृह्णेत्०" इत्यादि मंत्रों से अग्नि पर स्थाली पाक को पकावे ॥२१॥ और दहन होते समय तक अन्य वत्सा को दूहकर उसके पीठ पर "वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि०" से आहुति करे ॥२२॥ उसके दूध में स्थालीपाक पकावे ऐसा कोई २ आचार्य कहते हैं ॥२३॥२४॥ "ये अग्नय०" इत्यादि से पलाश की दर्वी से मन्थ को उपमथन करके काम्पीली की दोनों उपमन्थनी से तीसरी उखा में हड्डियों की आहुति देवे ॥२५॥ "उप द्यां शं ते नीहार०" इत्यादि मंत्र से मंत्रोक्त पदार्थों को लाकर तीसरे या चौथे दिन अस्थि संचय करके "उप द्यां०" इन दो मंत्रों से, "हिरण्यपाणिं०" इन तीन से और "शं ते नीहार०" इस एक ऋ० से मंत्र में कही ओषधियों, जल एवं दूध को एकत्र करके ब्राह्मण की हड्डियों को सिंचन करे ॥ मधु से क्षत्रिय की

त्सिक्तेन क्षत्रियस्योदकेन वैश्यस्य ॥२७॥ अव सृजेत्यनु-मन्त्रयते ॥२८॥ मा ते मनो यत्ते अङ्गमिति सञ्चिनोति पच्छः ॥२९॥ प्रथमं शीर्षकपालानि ॥३०॥ पश्चात्कलशे समोप्य सर्वसुरभिचूर्णैरवकीर्योत्थापनीभिरुत्थाप्य हरिणीभिर्हरेयुः ॥३१॥ मा त्वा वृक्ष इति वृक्षमूले निदधाति ॥३२॥ स्योनास्मै भवेति भूमौ त्रिरात्रमरसा-शिनः कर्माणि कुर्वते ॥३३॥ दशरात्र इत्येके ॥३४॥ यथा-कुलधर्मं वा ॥३५॥ ऊर्ध्वं तृतीयस्या वैवस्वतं स्थालीपाकं श्रपयित्वा विवस्वान्न इति जुहोति ॥३६॥ युक्ताभ्यां तृतीयाम् ॥३७॥ आनुमतीं चतुर्थीम् ॥३८॥ शेषं शान्त्यु-दकेनोपसिच्याभिमन्त्र्य प्राशयति ॥३९॥ आ प्रच्यवेथा-

हड्डियों को और जल से वैश्य की हड्डियों की सींचे। मंत्र में कही गयीं ओषधियाँ—शमी की डाल, दूध, शतपत्र, पलाशपत्र, वेतसकर्ण, नदी-फेन, सीसा, सेमार, मुक्तिका एवं सूक्तिका, ॥२६॥२७॥ हड्डियों को "अव सृज०" से अनुमंत्रण करे ॥ कलश में धरे ॥ और पलाश के पत्तों से "मा ते मनो यत्ते अङ्गं०" से पैर से लेकर सब अङ्गों को सींचे। पहिले शिर एवं कपाल आदि को सींचे। उसके अनन्तर ओषधियों के चूर्ण को कलशे में धर कर उसे उठाकर "उत्तिष्ठ प्रच्यवस्व उदन्वती इत एत अग्नीषोमा इदं पूर्वं०" इस मंत्र से कलश को उठाकर "अतिद्रव०" इत्यादि हरिणी ऋचाओं से अभिमंत्रण करके उत्थापक गण उठावें और "मा त्वा वृक्ष०" से वृक्ष के मूल में भूमि को खोद कर कलश को गाड़ देवे। और उस पर मट्टी डालकर भर देवे। उस पर पिण्डदान करे॥२८॥ ॥२९॥३०॥३१॥३२॥ "स्योनास्मै भव०" से भूमि में तीन रात्रि तक रस सहित भोजन करते हुए कर्मों को करें ॥३३॥ कोई कोई दश रात्रि तक कहते हैं ॥३४॥ किसी का मत है कि कुल में जैसी परिपाटी हो वैसा करें ॥३५॥ तीसरी रात्रि बीतने पर वैवस्वत स्थालीपाक को पका कर "विवस्वान्न०" से आहुतियाँ करे। "युक्ताभ्यां०" से तीसरी रात्रि में आहुति देवे और "आनुमतीं०" से चौथी आहुति करे ॥३६॥३७॥ और शेष को जल से सींच कर अभिमंत्रण करके प्राशन करे ॥३९॥ "आ प्र-

मिति गावावुपयच्छति ॥४०॥ एयमगन्निति दशगवावराध्यां दक्षिणा ॥ ४१ ॥ द्वादशरात्रं कर्ता यमव्रतं चरेत् ॥४२॥ एकचैलस्त्रिचैलो वा ॥४३॥ हविष्यभक्षः ॥४४॥ सायंप्रातरुपस्पृशेत्॥४५॥ ब्रह्मचारी व्रस्यधः शयीत॥४६॥ स्वस्त्ययनानि प्रयुञ्जीत ॥४७॥३॥८२॥

पितृन्निधास्यन्संभारान् संभरति ॥१॥ एकादश चरूंश्चर्ककृतान् कारयति ॥२॥ शतातृणसहस्रातृणी च पाशीमूषं सिकताः शङ्खं शालूकं सर्वसुरभिशमीचूर्णकृतं शान्तवृक्षस्य नावं त्रिपादकम् ॥३॥ द्वे निःशीयमाने नीललोहिते सूत्रे सव्यरज्जुं शान्तवृक्षस्य चतुरः शङ्कूंश्चतुरः परिधीन्वारणं शामीलमौदुम्बरं पालाशं वृक्षस्य शान्तौषधीः ॥४॥ माघे निदध्यान्माघं भूदिति ॥५॥ शरदि निदध्याच्छाम्यत्त्वघमिति ॥ ६ ॥ निदाघे निद-

च्यवेथा०” दो गौ को लावे ॥४०॥ “एयमगन्०” के दश गौवें दक्षिणा आचार्य को देवे ॥४१॥ बारह रात्रि तक कर्ता यम व्रत से रहे ॥४२॥ एक वस्त्र से या तीन वस्त्रों से युक्त रहे ॥४३॥ हविष्य अन्न भोजन करता रहे ॥४४॥ सायं प्रातः जल स्पर्श करे (शौच सन्ध्यादि कर्मों में) ॥४५॥ ब्रह्मचारी व्रती भूमि पर शयन करे ॥४६॥ और स्वस्त्ययन कर्म्मों को करे ॥४७॥३॥८२॥ यह ब्यासीवी कण्डिका खतम हुई ॥

पितृमेध यज्ञ करने के लिये सामग्रियों को एकत्र करे। यह यज्ञ साल भर करे या वर्ष के भीतर यथा समय करे॥१॥ ग्यारह चरु कुम्भकार से बनवावे। मट्टी के दो पात्र ऐसे बनवावें जो एक में सौ छिद्र हों दूसरे में १००० छिद्र हों॥ पाशीमूष, बालुका, शङ्ख, शालूक, सर्व सुरभि एवं शमी चूर्ण किया हुआ, शान्तवृक्ष का तीन पैर का नाव, पुराने वस्त्र के नीले एवं लाल रंग के, दो सूत, सव्यरज्जु, शान्त वृक्ष के चार शङ्कु, चार परिधी, वारण, शामिल, गूलर और पलाश-ये शान्तवृक्ष हैं ॥२॥३॥४॥ “माघे निदध्यान्माघं भूत्०” यह ब्राह्मण वचन है-इससे पितृमेधका समय निर्धारित होता है ॥५॥ शरत् ऋतु में

ध्याग्निदग्धतामघमिति ॥७॥ अमावास्यायां निदध्यादमा हि पितरो भवन्ति ॥८॥ अथावसानम् ॥९॥ तद्यत्समं समूलमविदग्धं प्रतिष्ठितं प्रागुदक्प्रवणम् ॥१०॥ यत्राकण्टका वृक्षाश्चौषधयश्च ॥११॥ उन्नतं स्वर्गकामश्च ॥१२॥ श्वोऽमावास्येति गां कारयते ॥१३॥ तस्याः सव्यं चापघनं प्रपाकं च निधाय ॥१४॥ भिक्षां कारयति ॥१५॥ ग्रामे याम्सारस्वतान् होमान् दत्त्वा॥१६॥ सम्प्रोक्षणीभ्यां काम्पीलशाखया निवेशनमनुचर्य ॥१७॥ प्राग्दक्षिणं शाखां प्रविध्य सीरेण कर्षयित्वा शाखाभिः परिवार्य ॥१८॥ पुनर्देहीति वृक्षमूलादादत्ते ॥१९॥ यत्ते कृष्ण इति भूमेर्वसने समोप्य सर्वसुरभिचूर्णैरवकीर्योत्थापनीभिरुत्थाप्य हरिणीभिर्हरेयुः ॥२०॥ अविदन्तो देशात्पांसून्

पितरों का निधान करने से पाप की शान्ति होती है ॥६॥ निदाघ ऋतु में निधान करने से पाप भस्म हो जाता है ॥७॥ अमावास्या तिथि में निधान करने से पितृगण अमा (साथ) होते हैं ॥८॥ अब अवसान (जहां मृत मनुष्य का अस्थि संचय कलश रहता है—उस स्थान को कहते हैं ॥) के विषय में कहते हैं ॥९॥ जो स्थान समचौरस समूल-जहां मुर्दा न जला हो—और पूर्व या उत्तर को ढालुआ हो ॥ जहाँ काटे, वृक्ष, ओषधियां न हों ॥१०॥११॥ स्वर्ग की इच्छा वाला उन्नत (ऊँची) भूमि को अवसान बनावे ॥१२॥ कल्ह प्रातःकाल अमावास्या तिथि होगी-पितृयज्ञ होगा—अतएव आज गौ का प्रबन्ध करवा रक्खे ॥१३॥ उसके वाम चापघन और प्रपाक को लाकर धरे और भिक्षा करवावे ॥१४॥१५॥ और ग्राम में याम एवं सारस्वत होमों की आहुतियां देकर संप्रोक्षणी ऋ० से काम्पील शाखा द्वारा निवेशन (घर) बनाकर पूर्व पश्चिम भाग में शाखा को गाड़कर उस भूमि को हल से जुतवा कर शाखाओं से घेरा बनाकर "पुनर्देहि" से वृक्ष के मूल में से अस्थि-कलश को लाकर भूमि में वस्त्र बिछाकर उस पर धरे। और सर्वसुरभि के चूर्णों को उस पर बखेर कर उत्थापनी ऋचा को पढ़कर उसे उठा

॥२१॥ अपि वोदकान्ते वसनमास्तीर्यासावित्ति ह्वयेत् ॥२२॥ तत्र यो जन्तुर्निपतेत्तमुत्थापनीभिरुत्थाप्य हरिणीभिर्हरेयुः ॥२३॥ अपि वा त्रीणि षष्टिशतानि पलाशत्सरूणाम् ॥२४॥ ग्रामे दक्षिणोदग्द्वारं विमितं दर्भैरास्तारयति ॥२५॥ उत्तरं जीवसंचरो दक्षिणं पितृसंचरः ॥२६॥ अनस्तमित आ यातेत्यायापयति ॥२७॥ आच्या जान्वित्युपवेशयति ॥२८॥ सं विशन्त्विति संवेशयति ॥२९॥ एतद्वः पितरः पात्रमिति त्रीण्युदकंसान्निनयति ॥३०॥ त्रीन् स्नातानुलिप्तान् ब्राह्मणान् मधुमन्थं पाययति ॥३१॥ ब्राह्मणो मधुपर्कमाहारयति ॥३२॥ गां वेदयन्ते

कर हरिणी ऋचा से लावें ॥१६॥१७॥१८॥१९॥२०॥ अस्थि के नाश हो जाने पर प्रायश्चित्त कर्म को कहते हैं। अस्थि यदि नष्ट हो जावें, उस स्थान से मट्टी (पांसुधूली) लेकर अस्थि गृह में डाल कर वहाँ से उठावे ॥२१॥ या जलाशय के पास वस्त्र को बिछाकर "असौ०" ऐसा कहे ॥२२॥ वहाँ यदि कोई जन्तु गिर पड़े तो उसको उत्थापनी ऋचाओं से उठाकर हरिणी ऋ० से लावें ॥ या ३६० पलाशकी त्सरु के प्रान्त भागों से पुरुष बनाकर वहाँसे उत्थापनी ऋ० से उठाकर हरिणी ऋ० से लावें ॥ शरीर के नाश होने पर भी या दग्ध हो जाने पर भी यही प्रायश्चित्त होता है ॥२३॥२४॥ ग्राम में जो मण्डप बना है उसके द्वार एक दक्षिण मुख एवं दूसरा उत्तर मुख बनावे और उसमें डाभों को बिछावे ॥२५॥ उत्तर द्वार अन्य जीवों का आने जाने का होगा एवं दक्षिण द्वार पितरों के लिये जानो ॥२६॥ सूर्य रहते समय "आयात" इत्यादि ऋचा पढ़कर अस्थियों को मण्डप में लावे ॥ और "आच्या जानु०" इत्यादि से उसको धरे ॥२७॥२८॥ संविशन्तु०" से उसको संवेशन करे ॥२९॥ "एतद्वः पितरः पात्रं०" से तीन जलपात्र लावे ॥३०॥ और तीन नहाये पूजादि करके निवृत्त हुए ब्राह्मणों को मधुमन्थ को पिलावे ॥३१॥ ब्राह्मण के लिये मधुपर्क लावे ॥३२॥ गौ को लाकर

॥३३॥ कुरुतेत्याह ॥३४॥ तस्या दक्षिणमर्धं ब्राह्मणान् भोजयति सव्यं पितॄन् ॥३५॥४॥८३॥

वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैतान् वेत्थ निहितान्पराके । मेदसः कुल्या उप तान् स्रवन्तु सत्या एषामाशिषः सन्तु कामाः स्वाहा स्वधेति वपायास्त्रिर्जुहोति ॥१॥ इमं यमेति यमाय चतुर्थीम् ॥२॥ एकविंशत्या यवैः कृशरं रन्धयति युतमन्यत्प्रपाकं च ॥ ३ ॥ सयवस्य जीवाः प्राश्नन्ति ॥४॥ अथेतरस्य पिण्डं निपृणाति ॥५॥ यं ते मंन्थमिति मन्त्रोक्तं विमिते निपृणाति ॥६॥ तदुद्धृतोष्महर्तारो दासा भुञ्जते ॥ ७ ॥ वीणा वदन्त्वित्याह ॥८॥ महयत पितॄनिति रिक्तकुम्भं विमितमध्ये निधाय तं जरदुपानहाघ्नन्ति ॥९॥ कस्ये मृजाना इति त्रिः प्रसव्यं प्रकीर्णकेश्यः परियन्ति दक्षिणानूरूनाघ्नानाः ॥१०॥ एवं मध्यरात्रेऽपररात्रे च ॥११॥ पुरा विवाहात्

दिखलावे और ब्राह्मण कहे कि "करो" ॥३४॥ उस गौ का दहिना अर्द्ध भाग को ब्राह्मणों को खिलावे और वाम भाग को पितरों के निमित्त ॥३५॥४॥८३॥ यह तिरासीवी कण्डिका खतम हुई ॥

"वह वपां जातवेदः०"इत्यादि से वपा की तीन आहुतियाँ देवे ॥१॥ "इमं यमाय०"से चौथी आहुति देवे ॥२॥ इक्कीश यवों की खिचड़ी बनावे और दूसरे पाक को बनावे ॥३॥ यव की खिचड़ी को गोत्र वाले (सगोत्रीगण) लोग भोजन करें ॥४॥ और दूसरे प्रपाक का पिण्ड बनावे ॥५॥ "यं ते मन्थं०" से मन्त्रोक्त रीति से पिण्ड को विमित (पात्र) में धरे ॥ काम करने वाले दास भोजन करें ॥ प्रैष द्वारा "वीणां वदन्तु" ऐसा कहें तब बाजा बजावें "महयत पितॄन्०" से खाली घड़े को विमित में धर कर उसको पुराने जूते से मारें ॥९॥ "कस्येमृजाना०" से वाम ओर से शिर केशों को खोल कर दहिने जांघ को पीटती हुई तीन वार परिक्रमा करें ॥१०॥ इसी प्रकार आधीरात और आधीरात के पीछे करें

समांसः पिण्डपितृयज्ञः ॥१२॥ उत्थापनीभिरुत्थाप्य हरिणीभिर्हरेयुः ॥१३॥ अथावसायेति पश्चात् पूर्वकृतेभ्यः पूर्वाणि पूर्वेभ्योऽपराणि यवीयसाम् ॥१४॥ प्राग्दक्षिणां दिशमभ्युत्तरामपरां दिशमभितिष्ठन्ति ॥१५॥ यथा चितिं तथा श्मशानं दक्षिणापरां दिशमभिप्रवणम् ॥ ॥१६॥५॥८४॥

अथ मानानि ॥१॥ दिष्टिकुदिष्टिवितस्तिनिमुष्ट्यरत्निपदप्रक्रमाः ॥२॥ प्रादेशेन धनुषा चेमां मात्रां मिमीमह इति ॥३॥ सप्त दक्षिणतो मिमीते सप्तोत्तरतः पञ्च पुरस्तात् त्रीणि पश्चात् ॥४॥ नव दक्षिणतो मिमीते नवोत्तरतः सप्त पुरस्तात्पञ्च पश्चात् ॥५॥ एकादश दक्षिणतो मिमीत एकादशोत्तरतो नव पुरस्तात्सप्त पश्चात् ॥६॥ एकादशभिर्देवदाशनाम् ॥७॥ अयुग्ममानानि परि-

---

॥११॥ विवाह के पहिले समांस पिण्डपितृयज्ञ करे ॥१२॥ उत्थापनी ऋ० से उठावें और हरिणी से लावें ॥१३॥ यह कर्म अमावास्या के प्रातःकाल करे ॥ अर्थात् उन हड्डियों को मण्डप से उठा कर लावें और पाद पर धरें ॥ उसकी विधि यह है कि पीछे पूर्वकृत पितरों के लिये ॥ "अवसाय०" से पश्चात् पहिले किये हुओं के लिये, और अपरों को युवाओं के लिये ॥१४॥ पूर्व दक्षिण दिशा के सम्मुख उत्तर दिशा और पश्चिम दिशा के सम्मुख रहें ॥१५॥ जैसे चिति को उसी प्रकार श्मशान को दक्षिण पश्चिम ढालुआ बनावे ॥१६॥५॥८४॥ यह चौरासीवी कण्डिका खतम हुई ॥

अब मान (माप, नाप) के विषय में कहते हैं ॥१॥ दिष्टि, कुदिष्टि, वितस्ति, निमुष्टि, अरत्नि, पद, प्रक्रम होते हैं ॥२॥ प्रादेश और धनुष से "इमां मात्रां मिमीमह०" से मण्डप बनाने के लिये भूमि को नाप करे ॥३॥ सात दक्षिण से, सात उत्तर से, ५ पूर्व से और तीन पश्चिम से नाप करे ॥४॥ नौ दक्षिण से, नौ उत्तर से, सात पूर्व और पांच पश्चिम से नापे ॥५॥ ग्यारह दक्षिण से, ग्यारह उत्तर से, नौ पूर्व से, पांच पश्चिम से नाप करे ॥६॥ ग्यारह का नाप देवदर्शियों के लिये ॥७॥ विषम

मण्डलानि चतुरस्राणि वा शौनकिनाम् ॥८॥ तथाहि दृश्यन्ते ॥९॥ यावान् पुरुष ऊर्ध्वबाहुस्तावानग्निश्चितः ॥१०॥ सव्यानि दक्षिणाद्वाराण्ययुग्मशिलान्ययुग्मेष्टिकानि च ॥११॥ इमां मात्रां मिमीमह इति दक्षिणतः सव्यरज्जुं मीत्वा ॥१२॥ वारयतामघमिति वारणं परिधिं परिदधाति शङ्कुं च निचृतति ॥१३॥ पुरस्तान्मीत्वा शमेभ्योऽस्त्वघमिति शामीलं परिधिं परिदधाति शङ्कुं च निचृतति ॥१४॥ उत्तरतो मीत्वा शाम्यत्वघमित्यौदुम्बरं परिधिं परिदधाति शङ्कुं च निचृतति ॥१५॥ पश्चान्मीत्वा शान्तमघमिति पालाशं परिधिं परिदधाति शङ्कुं च निचृतति ॥१६॥ अमासीस्यनुमन्त्रयते ॥१७॥ अक्ष्णया लोहितसूत्रेण निबध्य ॥१८॥ स्तुहि श्रुतमिति मध्ये गर्तं खात्वा पाशिसिकतोषोदुम्बरशङ्खशालूक-

---

(बे जोड संख्या) मान परिमण्डलों के लिये या चतुष्कोण समचौरस श्मशान भूमि को बनावे यह विकल्प पक्ष शौनक शाखा वालों का है ॥८॥ लोक में ऐसा ही देखा जाता है ॥९॥ जितना ऊँचा पुरुष बाहु उठाने पर होता है, उसी परिमाण का अग्निचित् होता है ॥१०॥ दक्षिण के दरवाजे सव्य होवें, विषम संख्यक शिलायें या इष्टिका (ईंटें) ये होवें ॥११॥ "इमां मात्रां मिमीमह०" से दक्षिण से सव्य रज्जु को नाप करके "वारयतामघं०" से वारण परिधि को धरे और शङ्कु को गाड़े ॥१२॥१३॥ पूर्व से नाप करके "शमेभ्योऽस्त्वघं०" इत्यादि से शामील परिधि को धरे और शङ्कु को गाड़े ॥१४॥ उत्तर से नाप कर "शाम्यत्वघं०" से गूलर की परिधि को धर कर शङ्कु को गाड़े ॥१५॥ पश्चिम भाग को नाप करके "शान्तमघं०" से पलाश की परिधि को धरकर शङ्कु को गाड़े ॥१६॥ "अमासि०" से अनुमंत्रण करे ॥१७॥ अक्ष्णा द्वारा लाल सूत से बान्ध देवे ॥१८॥ "स्तुहि श्रुतं०" से बीच में गर्त्त खोदकर पाशि, बालुका, उषा, गूलर, शङ्ख, शालूक, सर्व सुरभि, शमी इनके चूर्णों को उस

सर्वसुरभिशमीचूर्णानि निवपति ॥१९॥ निःशीयतामघमिति निःशीयमानमास्तृणाति ॥२०॥ असंप्रत्यघम् ॥२१॥ विलुम्पतामघमिति परि चैलं दूर्शं विलुम्पति ॥२२॥ उक्तो होमो दक्षिणतः स्तरणं च ॥२३॥ एतदा रोह ददामीति कनिष्ठो निवपति ॥२४॥ एदं बर्हिरिति स्थितसूनुर्यथापरु सञ्चिनोति ॥२५॥ मा ते मनो यत्ते अङ्गमिन्द्रो मोदपूरिस्यातोऽनुमन्त्रयते ॥२६॥ धानाः सलिङ्गाभिरावपति ॥२७॥६॥८५॥

इदं कसाम्ब्विति सजातानवेक्षयति ॥१॥ ये च जीवा ये ते पूर्वं परागता इति सर्पिर्मधुभ्यां चरू पूरयित्वा शीर्षदेशे निदधाति ॥२॥ अपूपवानिति मन्त्रोक्तं दिक्ष्वष्टमदेशेषु निदधाति ॥३॥ मध्ये पचन्तम् ॥४॥ सहस्रधारं

गर्त्त में डाले ॥ १९॥ "निःशीयतामघं०" फटे पुराने कपड़े को बिछावे ॥२०॥ "असंप्रत्यघं०" और "विलुम्पतामघं०" से दूसरा परिचैल वस्त्र को बिछावे ॥२१॥२२॥ दक्षिण से होम करना एवं स्तरण करना कहा गया ॥२३॥ उसी स्थान में बाहर धरने से अग्नि कर्म होगा अतएव वस्त्र से होम और स्तरण दोनों कह गये ॥२३॥ "एतदारोह ददामि०" से सब से छोटा-(नाते में) सब हड्डियों को उसी गर्त्त में डाले ॥२४॥ "एदं बर्हिः०" से कुल में जो ज्येष्ठ हो वह हड्डियों को गर्त्त में डाले ॥२५॥ "मा ते मनो यत्ते०" से अनुमंत्रण करे ॥२६॥ "या ते धाना" ये दो "धानाधेनुः०" एक ऋचा "एतास्ते असौ धेनव०" यह एक ऋ० "यास्ते धान्य अस्तु०" यह एक ऋचा इन ऋचाओं से तिल मिश्र धान को अस्थियों पर डाले ॥२७॥६॥८५॥ यह पचासीवी कण्डिका समाप्त हुई ॥

"इदं कसाम्बु०" से सजाति के लोगों को दिखलावे ॥१॥ "ये च जीवा ये ते०" इत्यादि से घृत और मधु से दो चरु को भरकर शीर्ष देश में धरे और आठ चरुओं को अपूपों से भरकर अलग २ आठ दिशाओं में धरे "अपूपवान्०" से धरे। बीच में पकते हुए चरु को धरे ॥२॥३॥४॥ "सहस्रधारं शतधारं०" से जल से सींचकर "पर्णो

शतधारमित्यद्भिरभिविष्यन्द्य ॥५॥ पर्णो राजेति मध्यमपलाशैरभिनिदधाति ॥६॥ ऊर्जो भाग इत्यश्मभिः ॥७॥ उत्ते स्तभ्नामीति लोगान्यथापरु ॥८॥ निःशीयतामघमिति निःशीयमानेनावच्छाद्य दर्भैरवस्तीर्य ॥९॥ इदमिद्वा उ नोप सर्पासौ हा इति चिन्वन्ति ॥१०॥ यथा यमायेति संश्रित्य ॥११॥ शृणात्वघमित्युपरिशिरःस्तम्बमादधाति ॥१२॥ प्रतिषिद्धमेकेषाम् ॥१३॥ अकल्माषाणां काण्डानामष्टाङ्गुलीं तेजनीमन्तर्हितमघमिति ग्रामदेशादुच्छ्रयति ॥१४॥ प्रसव्यं परिषिच्य कुम्भान् भिन्दन्ति ॥१५॥ समेतेत्यपरस्यां श्मशानस्रक्त्यां ध्रुवनान्युपयच्छन्ते ॥१६॥ पश्चादुत्तरतोऽग्नेर्वर्चसा मां विवस्वा-

---

राजा०" से मध्यम पलाशों द्वारा उसको ढाक देवे ॥५॥६॥ "ऊर्जो भाग०" से पत्थरों से या विषम इष्टिकाओं से वामावर्त्त श्मशान को घेरेदार कर चुन देवे और लोक भी बड़े छोटे क्रम से यथास्थान बैठे ॥७॥८॥ 'निःशीयतामघं०" से फटे कपड़े से ढाक कर उसपर कुशों को बिछावे ॥९॥ "इदमिद्वा०"से ईंटादि से भलीभाँति चुन देवे ॥१०॥ "यथा यमाय०" से, एक इंटों के साथ दूसरी ईंटों को सटाकर लगावे ॥११॥ "शृणात्वघं०" से ऊपर शिर के स्तम्ब को धरे ॥१२॥ किन्हीं आचार्य्य के मत में ऐसा करना निषिद्ध है ॥१३॥ अकल्माषों के काण्डों की आठ अङ्गुली की तेजनी को "अन्तर्हितमघं०" से अभिमंत्रण करके ग्राम और श्मशान को छिपा देने के लिये खड़ी कर देवे ॥१४॥ आठ अङ्गुल की कटिका को कुश से प्रसव्य तीन बार जल सींच करके घुमाकर सींचे और पश्चिम दिशा में उसे फोड़ देवे ॥१५॥ "समेत विश्व०" इस ऋचा से सब ही बन्धुगण जल से सेचन करे और ध्रुवनों को देवे । और केशों को खोलकर स्त्रियाँ वाम भाग से तीन बार परिक्रमा करती हुई और अपनी दाहिनी जंघाओं को पीटती हुई फेरे लगावें ॥१६॥ यह ध्रुवन कर्म है ॥ अग्नि के पश्चात् भाग में स्थित हो कर्त्ता एवं गोत्रिगण "अग्नेर्वर्चसा मां०" इत्यादि ५ ऋचाओं से उप-

निन्द्र ऋतुमित्यातः ॥१७॥ समिन्धत इति पश्चात्संकसुकमुद्दीपयति ॥१८॥ अस्मिन्वयं यद्रिप्रं सीसे मृड्ढ्वमित्यभ्यवनेजयति ॥१९॥ कृष्णोर्णया पाणिपादान्निमृज्य ॥२०॥ इमे जीवा उदीचीनैरिति मन्त्रोक्तम् ॥२१॥ त्रिः सप्तेति कूद्या पदानि योपयित्वा श्मशानात् ॥२२॥ मृत्योः पदमिति द्वितीयया नावः ॥२३॥ परं मृत्यो इति प्राग्दक्षिणं कूदीं प्रविध्य ॥ २४ ॥ सप्त नदीरूपाणि कारयित्वोदकेन पूरयित्वा ॥२५॥ आ रोहत सवितुर्नावमेतां सुत्रामाणं महीमू ष्वित्ति सहिरण्यां सयवां नावमारोहयति ॥ २६ ॥ अश्मन्वतीरीयत उत्तिष्ठता प्रतरता सखाय इत्युदीचस्तारयति ॥ २७ ॥ शर्कराद्या समिदाधानात् ॥ २८ ॥ वैवस्वतादि समानम् ॥ २९ ॥ प्राप्य गृहान्समानः पिण्डपितृयज्ञः ॥३०॥७॥८६॥

अथ पिण्डपितृयज्ञः ॥१॥ अमावास्यायां सायं न्यन्हे-

स्थान करे ॥१७॥ "समिन्धत०" से पश्चात् संकसुक को जला देवे ॥१८॥ "अस्मिन्वयं यद्रिप्रं०" से अवनेजन करे ॥१९॥ काले सूत से हाथ पैर को मार्जन करके "इमे जीवा०" से गोत्र के लोग "त्रिः सप्त०" से कूदी से पैर को छिपाकर श्मशानभूमि से नदियों की ओर नावे ॥२०॥२१॥२२॥ "मृत्योः पदं०" इस दूसरी ऋचा से नाव को लावे । "परं मृत्योः" से प्रदक्षिणा कर कूदी को छेदे । और सात नदियों के समान बनवा कर उनमें जल भरवा देवे । और "आरोहत०" इत्यादि मंत्र पढ़कर सोने एवं जौ के साथ नाव पर सवार करवावे ॥२३॥२४॥२५॥२६॥ "अश्मन्वती०" इत्यादि से उत्तर दिशा में उतरवा देवे ॥२७॥ शर्करादि, समिदाधान से लेकर यमव्रत तक सारे कर्म पूर्ववत् यहाँ भी होंगे ॥२८॥२९॥ ३०॥७॥८६॥ यह छियासीवी कण्डिका समाप्त हुई ॥

अब पिण्ड पितृयज्ञ के विषय में कहेंगे ॥१॥ इस यज्ञ के करने का समय अमावास्या को सायंकाल और अपराह्न में है ऐसा ब्राह्मण ग्रन्थ

ऽहनि विज्ञायते ॥२॥ मित्रावरुणा परि मामधातामिति पाणी प्रक्षालयते ॥३॥ वर्चसा मामित्याचामति ॥४॥ पुनः सव्येनाचमनादपसव्यं कृत्वा प्रैषकृतं समादिशति ॥५॥ उलूखलमुसलं शूर्पं चरुं कंसं प्रक्षालय बर्हिरुदकुम्भमाहरेति ॥ ६ ॥ यज्ञोपवीती दक्षिणपूर्वमन्तर्देशमभिमुखः शूर्पे एकपवित्रान्तर्हितान्हविष्यान्निर्वपति ॥७॥ इदमग्नये कव्यवाहनाय स्वधा पितृभ्यः पृथिवीषद्भ्य इतीदं सोमाय पितृमते स्वधा पितृभ्यः सोमवद्भ्यः पितृभ्यो वान्तरिक्षसद्भ्य इतीदं यमाय पितृमते स्वधा पितृभ्यश्च दिविषद्भ्य इति त्रीनवाचीनकाशोन्निर्वपति ॥८॥ उलूखल ओप्य त्रिरवहन्तीदं वः पितरो हविरिति ॥९॥ यथा हविस्तथा परिचरति ॥१०॥ हविर्ह्येव पितृयज्ञः ॥११॥ प्रैषकृतं समादिशति चरुं प्रक्षालयाधिश्रयाप ओप्य तण्डुलानावपस्व नेक्षणेन योधयमास्व मा शिरो ग्रहीः ॥१२॥ शिरोग्रहं पश्चिक्षते ॥१३॥

से प्रतीत होता है ॥२॥ "मित्रावरुणा परि मामधातां०" से दोनों हाथों को प्रक्षालन करे ॥३॥ और "वर्चसा मां०" से आचमन करे ॥४॥ पुनः वाम से आचमन कर दहिने करके प्रैषकृत् आदेश करे ॥५॥ उलूखल, मुसल, सूप, चरु, कटोरा, इनको प्रक्षालन करो, कुश और जल भरा कलश लाओ ॥६॥ तब यज्ञोपवीती होकर दक्षिण पूर्व दिशा के सम्मुख हो सूप में एक पवित्रे धरकर उसमें हविष्य पदार्थों को धर कर अग्नि में आहुति करे ॥७॥ इन मंत्रों को पढ़कर एक २ आहुति देवे "इदमग्नये कव्यवाहनाय०" इत्यादि और तीन मुट्ठी नीचे करके डाले ॥८॥ और उलूखल में हविष्य पदार्थ को डालकर "इदं वः पितरो हविः०" से मूसल से कूटे ॥९॥ जैसी हवि हो तदनुसार उसको करे ॥१०॥ क्योंकि हवि ही पितर हैं ॥११॥ प्रैष से आज्ञा देवे चरु को प्रक्षालन करो, पकाओ, उसमें जल डालकर चावलों को डालो, नेक्षण से अग्नि पर

बाह्येनोपनिष्क्रम्य यज्ञोपवीती दक्षिणपूर्वमन्तर्देशमभिमुख उदीरतामिति कर्षूं खनति प्रादेशमात्रीं तिर्यगङ्गुरिम् ॥१४॥ अवागङ्गुरिं पर्वमात्रीमित्येके ॥१५॥ अपहता असुरा रक्षांसि ये पितृषद इति प्राग्दक्षिणं पांसूनुद्धृति ॥१६॥ कर्षूं च पाणी च प्रक्षाल्यैतद्वः पितरः पात्रमिति कर्षूमुदकेन पूरयित्वा ॥१७॥ अन्तरुपातीत्य मस्तुना नवनीतेन वा प्रतिनीय दक्षिणाग्रमुद्वास्य ॥ १८ ॥ द्वे काष्ठे गृहीत्वोशन्त इत्यादीपयति ॥१९॥ आदीप्तयोरेकं प्रतिनिदधाति ॥२०॥ इहैवैधि धनसनिरित्येकं हृत्वा ॥२१॥ पांसुष्वाधायोपसमादधाति ये निखाताः समिन्धते ये तातृषुर्ये सत्यास इति ॥२२॥ सम्भारानुपसादयति ॥२३॥ पर्युक्षणीं बर्हिरुदकुम्भं कंसं दर्विमाज्यमायवनं चरुं वासांस्याञ्जनमभ्यञ्जनमिति ॥२४॥ यद्-

---

चरु में चलाओ, शिर में कुछ बान्धे रहो क्योंकि इसका खण्डन वा प्रतिषेध है ॥१३॥ बाहर निकल कर यज्ञोपवीत पहन कर दक्षिण पूर्व की दिशा की ओर मुख करके "उदीरतां०" से प्रादेशमात्र लम्बी और अङ्गुरी परिमाण चौड़ी कर्षूं खोदे ॥१४॥ तिर्यक् अंगुरी गहरा कर्षू हो ऐसा कतिपय आचार्य कहते हैं, या पर्वमात्र ॥१५॥ "अपहता असुरा रक्षांसि ये पितृषद०" से पूर्वदक्षिण कोण में धूलि को फेंके ॥१६॥ कर्षूं और दोनों हाथों को प्रक्षालन करके" "एतद्वः पितरः पात्रं०" से कर्षूं को जल से भर कर उसमें नवनीत या मस्तु डालकर दक्षिण की ओर उद्वासन करके ॥१७॥१८॥ दो काठों को लेकर "उशन्त०" से दोनों को आग से प्रज्वलित कर देवे। और जलते हुए दोनों में से एक को धर देवे ॥१९॥२०॥ "इहैवैधि धनसनिः"। से एक को लेकर पांसु में धर कर "ये निखाताः समिन्धते०" इत्यादि से आधान करे ॥२१॥२२॥ अब इस यज्ञ में प्रयोजनीय सामग्रियों को लावे ॥२३॥ पर्युक्षणी, बर्हिकुश, उदकुम्भ, कटोरा, दर्वि, आज्य, आयवन, चरु, कपड़े, अञ्जन, कजरौटा, और भी

त्रोपसमाहार्यं भवति तदुपसमाहृत्य ॥२५॥ अतो यज्ञोपवीती पित्र्युपवीती बर्हिर्गृहीत्वा विचृत्य संनहनं दक्षिणापरमष्टमदेशमभ्यवास्येत् ॥ २६ ॥ बर्हिरुदकेन सम्प्रोक्ष्य बर्हिषदः पितर उपहूता नः पितरोऽग्निष्वात्ताः पितरो ये नः पितुः पितरो येऽस्माकमिति प्रस्तृणाति ॥२७॥ आयापनादीनि त्रीणि ॥२८॥ उदीरतामिति तिसृभिरुदपात्राण्यन्वृचं निनयेत् ॥ २९ ॥ अतः पित्र्युपवीती यज्ञोपवीती ये दस्यव इत्युभयत आदीप्तमुल्मुकं त्रिः प्रसव्यं परिहृत्य निरस्यति ॥३०॥ पर्युक्ष्य ॥३१॥८॥८७॥

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति। त्वं तानग्ने अप सेध दूरान्सत्या नः पितॄणां सन्त्वाशिषः स्वाहा स्वधेति हुत्वा कुम्भीपाकमभिघारयति ॥१॥ अग्नये कव्यवाहनायेति जुहोति ॥२॥ यथानिरुप्तं द्वितीयाम् ॥३॥ यमाय पितृमते स्वधा पितृभ्य इति

जो यहाँ लाना आवश्यक हो उन सब को लावे ॥२४॥२५॥ इसलिये यज्ञोपवीती, और उपवीती (प्राचीनावीती) हो बर्हिकुश को लेकर बर्हिकुशों को बिछाकर उस पर आयवन करे अर्थात् बर्हिको जल से संप्रोक्षण कर "बर्हिषदः पितरः०" इत्यादि से बर्हिकुश का आस्तरण करे॥२७॥ "आयात पितर." यह ऋ०, "आच्या जानु०" यह ऋचा और "संविशन्तु०" यह ऋचा। इन तीन ऋचाओं से तिलों को बखेर कर ॥२८॥ उदीरतां०" इत्यादि तीन ऋचाओं से जलपात्रों में से एक २ को ऋचा पढ़ २ कर लावे ॥२९॥ इसलिये "पित्र्युपवीती यज्ञोपवीती ये दस्यवः०" से दोनों ओर जलते उल्मुक को तीन वार बायें होकर-घुमाकर डाल देवे और जल से पर्युक्षण कर देवे ॥३१॥८॥८७॥ यह सत्तासीवी कण्डिका खतम हुई ॥

"ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना०" इत्यादि से स्वाहा, स्वधा लगाकर आहुति देकर कुम्भीपाक का अभिघार देवे ॥ १ ॥ "अग्नये कव्यवाहनाय०" से आहुति करे ॥ २ ॥ "सोमाय पितृमते०" से दूसरी आहुति देवे ॥ २ ॥ "यमाय पितृमते स्वधा पितृभ्यः"। से तीसरी आहुति

तृतीयाम् ॥ ४ ॥ यद्वो अग्निरिति सायवनांस्तण्डुलान् ॥५॥ सं बर्हिरिति सदर्भांस्तण्डुलान् पर्युक्ष्य ॥६॥ अतो यज्ञोपवीती पित्र्युपवीती दर्व्योद्धरति ॥७॥ द्यौर्दर्विरक्षितापरिमितानुपदस्ता सा यथा द्यौर्दर्विरक्षितापरिमितानुपदस्तैवा प्रततामहस्येयं दर्विरक्षितापरिमितानुपदस्ता॥८॥ अन्तरिक्षं दर्विरक्षितापरिमितानुपदस्ता सा यथान्तरिक्षं दर्विरक्षितापरिमितानुपदस्तैवा ततामहस्येयं दर्विरक्षितापरिमितानुपदस्ता ॥९॥ पृथिवी दर्विरक्षितापरिमितानुपदस्ता सा यथा पृथिवी दर्विरक्षितापरिमितानुपदस्तैवा ततस्येयं दर्विरक्षितापरिमितानुपदस्तेति ॥१०॥ उद्धृत्याज्येन संनीय त्रीन्पिण्डान् संहतान्निदधास्येतत्ते प्रततामहेति ॥११॥ दक्षिणतः पत्नीभ्य इदं वः पत्न्य इति ॥१२॥ इदमाशंसूनामिदमाशंसमानानां स्त्रीणां पुंसां प्रकीर्णाविशीर्णानां येषां वयं दातारो ये चास्माकमुपजीवन्ति । तेभ्यः सर्वेभ्यः सपत्नीकेभ्यः स्वधावदक्षय्यमस्त्वति त्रिः प्रसव्यं तण्डुलैः परिकिरति ॥१३॥ पिञ्जूलीराञ्जनं सर्पिषि पर्यस्याद्ध्वं पितर इति न्यस्यति ॥१४॥

देवे ॥ ४ ॥ "यद्वो अग्निः" से जौ के साथ चावलों "एवं संबर्हिः" से सदर्भ तण्डुलों को पर्युक्षण करके अर्थात् "संबर्हिरक्तं०" से सदर्भ चावलों की आहुति करे, तब पर्युक्षण करे ॥ ६ ॥ अतएव यज्ञोपवीती पित्र्युपवीती दर्वि से उद्धरण करे ॥ ७ ॥ "द्यौर्दर्विरक्षिता०" इत्यादि मंत्रों से निकाल कर आज्य में मिलाकर 'तीन' पिण्डों को एक साथ "एतत्ते प्रततामह०" इत्यादि से ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ दक्षिण से पत्नियों के लिये "इदं वः पत्न्यः" इत्यादि ॥ १२ ॥ "इदमाशं०" इत्यादि तीन बार वाम होकर चावलों को बखेर देवें ॥ १३ ॥ पिञ्जुली, आञ्जन, को घी में मिलाकर "वध्वं पितरो०" से पिण्डों पर धरे ॥१४॥

वद्धं पितरो मा वोऽतोऽन्यत्पितरो योयुवतेति सूत्राणि ॥१५॥ अञ्जते व्यञ्जते इत्यभ्यञ्जनम् ॥१६॥ आज्येनाविच्छिन्नं पिण्डानभिघारयति ये च जीवा ये ते पूर्वं परागता इति ॥१७॥ अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागं यथालोकमावृषायध्वमिति ॥१८॥ अत्र पत्न्यो मादयध्वं यथाभागं यथालोकमावृषायध्वमिति ॥१९॥ योऽसावन्तरग्निर्भवति तं प्रदक्षिणमवेक्ष्य तिस्रस्तामीस्ताम्यति ॥२०॥ प्रतिपर्यावृत्यामीमदन्त पितरो यथाभागं यथालोकमावृषायिषतेति ॥२१॥ अमीमदन्त पत्न्यो यथाभागं यथालोकमावृषायिषतेति ॥२२॥ आपो अग्निमित्यद्भिरग्निमवसिच्य ॥२३॥ पुत्रं पौत्रमभितर्पयन्तीरित्याचामत मम प्रततामहास्ततामहास्तताः सपत्नीकास्तृप्यन्त्वाचामन्त्विति प्रसव्यं परिषिच्य ॥२४॥ वीरान्मे प्रततामहा दत्त वीरान्मे ततामहा दत्त वीरान्मे पितरो दत्त पितॄन् वीरान्याचति ॥२५॥ नमो वः पितर इत्युपतिष्ठते ॥२६॥ अक्षन्नित्युत्तरसिचमवधूय ॥२७॥ परा यातेति

"वध्वं पितरो०" इत्यादि सूत्रों में है ॥ १५ ॥ "अञ्जते व्यञ्जत०" से अञ्जन धरे ॥ १६ ॥ आज्य से अविछिन्न पिण्डों का अभिघार करे। "ये च जीवा०" इत्यादि से ॥ १७ ॥ "अत्र पितर०" इत्यादि प्रति पिण्ड को देते समय जपता जावे ॥ १८ ॥ इसी प्रकार "अत्र पत्न्यो०" इत्यादि प्रति पत्नियों के पिण्ड को देते समय पढ़े ॥ १९ ॥ जो यह अन्तराग्नि को तीन २ बार प्रदक्षिण करके तीन २ बार प्राणायाम करता जावे ॥ २० ॥ और प्रत्येक बदलने में "अमीमदन्त०" इत्यादि पढ़ता जावे और प्रति पिण्ड में उपस्थान करता जावे ॥ २१ ॥ इसी प्रकार प्रति पत्नियों के पिण्डों में उपस्थान करता जावे ॥ २२ ॥ "आपो अग्नि०" इत्यादि से अग्नि को जल से अवसेचन करके ॥ २३ ॥ "पुत्रं पौत्रमभितर्पयन्ति०" से आचमन करे और "मम प्रततामहा०" से वाम होकर परिषेक करे ॥ २४ ॥ "वीरान्मे प्रततामहा०" इत्यादि से

परायापयति ॥२८॥ अतः पितृयुपवीती यज्ञोपवीती यत्र इदं पितृभिः सह मनोऽभूत्तदुपाह्वयामीति मन उपाह्वयति ॥२९॥६॥८८॥

मनो न्वाह्वामहे नाराशंसेन स्तोमेन ॥ पितॄणां च मन्मभिः ॥ आ न एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे ज्योक्च सूर्यं दृशे ॥ पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यः जनः ॥ जीवं व्रातं सचेमहि ॥ वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥ ये सजाताः सुमनसो जीवा जीवेषु मामकाः । तेषां श्रीर्मयि कल्पतामस्मिन्गोष्ठे शतं समा इति ॥१॥ यच्चरुस्थाल्यामोदनावशिष्टं भवति तस्योष्मभक्षं भक्षयित्वा ब्राह्मणाय दद्यात् ॥२॥ यदि ब्राह्मणो न लभ्येताप्स्वभ्यवहरेत् ॥३॥ निजाय दासायेत्येके ॥४॥ मध्यमपिण्डं पत्न्यै पुत्रकामाय प्रयच्छति ॥५॥ आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम् । यथेह पुरुषोऽसत् ॥ आ त्वारुक्षद्वृषभः पृश्निरग्रियो मेधाविनं पितरो गर्भमादधुः ॥ आ त्वायं पुरुषो गमेत्पुरुषः पुरुषादधि । स ते श्रैष्ठ्याय जायतां स सोमे साम गायत्त्विति ॥६॥ यद्यन्या द्वितीया भवत्यपरं तस्यै ॥७॥

पितरों का उपस्थान करे ॥ २५ ॥ २६ ॥ "अक्षन्न०" से उत्तरसिच को धोकर । "परायात०" से परायापन करे ॥ २८ ॥ "यत्र इदमिति मनो न्वाह्वामहे" इत्यादि सूक्त के मन्त्रों को हृदय को छूकर जप करे ॥ २९ ॥ ६ ॥ ८८ ॥ यह अट्ठासिवी कण्डिका समाप्त हुई ।

"मनो न्वाह्वामहे" इत्यादि का जप करे ॥१॥ जो चरुस्थाली में ओदन रह जावे उसका ऊष्म भक्षण कराकर ब्राह्मण के लिये दे देवे ॥२॥ यदि ब्राह्मण न मिलें तो उसे जल में डाल देवे ॥३॥ अपने दास को दे देवे ऐसा किन्हीं आचार्यों का मत है ॥४॥ मध्यम पिण्ड को पुत्र की इच्छा वाली पत्नी के लिये देवे ॥५॥ "आधत्त पितरो गर्भ०" इत्यादि

प्राग्रतमं श्रोत्रियाय ॥८॥ अथ यस्य भार्या दासी वा प्रद्राविणी भवति येऽमी तण्डुलाः प्रसव्यं परिकीर्णा भवन्ति तांस्तस्यै प्रयच्छति ॥९॥ अर्वाच्युपसंक्रमे मा पराच्युप वस्तथा । अन्नं प्राणस्य बन्धनं तेन बध्नामि त्वा मयीति ॥१०॥ पर्युक्षणीं समिधश्चादाय मा प्र गामे-त्यावृज्योर्जं बिभ्रदिति गृहानुपतिष्ठते ॥११॥ रमध्वं मा बिभोतनास्मिन् गोष्ठे करीषिणः । ऊर्जं दुहानाः शुचयः शुचिव्रता गृहा जीवन्त उप वः सदेम ॥ ऊर्जं मे देवा अद-दुरूर्जं मनुष्या उत । ऊर्जं पितृभ्य आहार्षमूर्जस्वन्तो गृहा मम । पयो मे देवा अददुः पयो मनुष्या उत । पयः पितृभ्य आहार्षं पयस्वन्तो गृहा मम । वीर्यं मे देवा अददुर्वीर्यं मनुष्या उत । वीर्यं पितृभ्य आहार्षं वीरवन्तो गृहा ममेति ॥१२॥ अन्तरुपातीत्य समिधोऽभ्यादधाति । अयं नो अग्निरध्यक्षोऽयं नो वसुवित्तमः ॥ अस्योपसद्ये मा रिषामायं रक्षतु नः प्रजाम् । अस्मिन् सहस्रं पुष्यास्मैधमानाः स्वे गृहे ॥ इमं समिन्धिषीमह्यायुष्मन्तः सुवर्चसः ॥ त्वमग्न ईडित आ त्वाग्न इधीमहीति ॥ १३ ॥ अभूद्दूत इत्यग्निं प्रत्यानयति ॥१४॥ यदि सर्वः प्रणीतः स्याद्दक्षिणाग्नौ

पढ़कर पत्नी को देवे ॥६॥ और जो यज्ञिया दूसरी होती है उसे श्रोत्रिय (वैदिक) पण्डित को देवे ॥७॥८॥ जिसकी भार्य्या या दासी भाग जाया करती हो, उसके लिये, चावल जो वाम भाग में बखेरे जाते उस को देवे ॥९॥ "अर्वाच्युपसंक्रमे०" इत्यादि पढ़कर पर्युक्षणी और शमी को लाकर "मा प्रगाम०" इत्यादि से घरों का उपस्थान करे ॥१०॥११॥ "रमध्वं मा" इत्यादि को जप कर समिधाओं को अग्नि में डाले और "अयं नो अग्निरध्यक्षो०" इत्यादि से समिदाधान करे॥ और "अभूदूत०" से अग्नि को लावे ॥१४॥ यदि सब ही अग्नि

स्वेनदाहिताग्नेः ॥१५॥ गृह्येष्वनाहिताग्नेः ॥१६॥ इदं चिन्मे कृतमस्तीदं चिच्छक्नवानि । पितरश्चिन्मा वेदन्निति ॥१७॥ यो ह यजते तं देवा विदुर्यो ददाति तं मनुष्या यः श्राद्धानि कुरुते तं पितरस्तं पितरः ॥१८॥१०॥८९॥

इत्यथर्ववेदे कौशिकसूत्रे एकादशोऽध्यायः समाप्तः ॥११॥

मधुपर्कमाहारयिष्यन् दर्भानाहारयति ॥१॥ अथ विष्टरान् कारयति ॥२॥ स खल्वेकशाखमेव प्रथमं पाद्यं द्विशाखमासनं त्रिशाखं मधुपर्काय ॥३॥ स यावतो मन्येत तावत उपादाय विविच्य संपर्याप्य मूलानि च प्रान्तानि च यथाविस्तीर्ण इव स्यादित्युपोत्कृष्य मध्यदेशेऽभिसंनह्यति ॥४॥ ऋतेन त्वा सत्येन त्वा तपसा त्वा कर्मणा त्वेति संनह्यति ॥५॥ अथ ह सृजत्यतिसृष्टो

प्रणीत हों तो दक्षिणाग्नि में यह होम कर्म आहिताग्नि का होगा ॥१५॥ और अनाहिताग्नि का अग्नि में होम घर ही में होगा ॥१६॥ "इदं चिन्मे कृतमस्ति०" मंत्र से अग्नि का उपस्थान करे ॥१७॥ जो कोई देवयज्ञ करता है उस को देवता जान लेते हैं, जो दान देता है उसको मनुष्य लोग जान लेते हैं, और जो श्राद्ध करता है उस को पितर लोग जानते हैं ॥१८॥१०॥८९॥ यह नवासिवी कण्डिका खतम हुई ॥

यह अथर्ववेद के कौशिकसूत्र का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥११॥

मधुपर्क कर्म को कहते हैं । जब आचार्य्य यजमान के घर आते हैं तो यह कर्म होता है । मधुपर्क सामग्री लाते समय दर्भों को भी लावे ॥१॥ अब विष्टरों को बनवावे ॥२॥ यह पहिला काम है । पाद्य (पैर धोने को जल) दूसरा है, आसन और तीसरा है मधुपर्क ॥ सो जितना चाहे उतना लाकर अलग २ धरे और कुशों के जड़ एवं प्रान्त भाग बिछाने की भाँति धरे तो वहाँ से लेकर मध्य देश में कुशों को यथाविधि बान्धे ॥ "ऋतेन त्वा सत्येन त्वा०" इत्यादि से कुशों को इस भाँति बान्धे जिसमें बिछाने के काम में आवे ॥५॥ अब

द्वेष्टा योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥६॥ अस्य च दातुरिति दातारमीक्षते ॥७॥ अथोदकमाहारयति पाद्यं भो इति ॥८॥ हिरण्यवर्णाभिः प्रतिमन्त्र्य दक्षिणं पादं प्रथमं प्रकर्षति । मयि ब्रह्म च तपश्च धारयाणीति ॥९॥ दक्षिणे प्रक्षालिते सव्यं प्रकर्षति । मयि क्षत्रं च विशश्च धारयाणीति ॥१०॥ प्रक्षालितावनुमन्त्रयते । इमौ पादाववनिक्तौ ब्राह्मणं यशसावताम् ॥ आपः पादावनेजनीर्द्विषन्तं निर्दहन्तु मे ॥११॥ अस्य च दातुरिति दातारमीक्षते ॥१२॥ अथासनमाहारयति । सविष्टरमासनं भो इति ॥१३॥ तस्मिन्प्रत्यङ्मुख उपविशति ॥१४॥ विमृग्वरीं पृथिवीमित्येतया विष्टरे पादौ प्रतिष्ठाप्याधिष्ठितो द्वेष्टा योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥१५॥ अस्य च दातुरिति दातारमीक्षते ॥१६॥ अथोदकमाहारयत्यर्घ्यं भो इति ॥१७॥ तत्प्रतिमन्त्रयते । अन्नानां मुखमसि मुख-

---

विष्टर को बनाते समय "अतिसृष्टो द्वेष्टा यो०" इत्यादि का जप करे। मधुपर्क के दाता को अर्घ्यव्यक्ति देखे। तब दाता जल लाकर कहे "पाद्यं भोः" (जल है भगवन्) "हिरण्यवर्णाभिः०" से अभिमंत्रण करके अर्घ्य के दहिने पग को दाता या उसका दास हाथ से खींचकर "मयि ब्रह्म च०" इत्यादि पढ़कर (पुरोहितादि) दहिने पैर को धो लेने पर बायें पैर को खींचकर "मयि क्षत्रं च०" इत्यादि पढ़े ॥६॥७॥८॥९॥ ॥१०॥ दोनों पैरों को धो लेने पर अनुमंत्रण करे—"इमौ पादाववनिक्तौ ब्राह्मणं यशसावताम्। आपः पादावनेजनीर्द्विषन्तं निर्दहन्तु मे" ॥११॥ "अस्य च दातुः०" से दाता को अर्घ्य पुरुष देखे ॥१२॥ तब दाता आसन लाकर "सविष्टरमासनं भो" कहे तब अर्घ्य पुरुष उस पर पश्चिमाभिमुख बैठे "विमृग्वरीं पृथिवीं०" इससे विष्टर पर पैरों को धरकर ठीक से बैठ जावे ॥ "द्वेष्टा यो०" इत्यादि पढ़े ॥१५॥ "अस्य च दातुः" से दाता को अर्घ्य देखे ॥१६॥ तब जल लाकर दाता बोले

महं श्रेष्ठः समानानां भूयासम् । आपोऽमृतं स्थामृतं मा कृणुत दासास्माकं बह्वो भवन्त्वश्वावद्गोमन्मय्यस्तु पुष्टमों भूर्भुवःस्वर्जनदोमिति ॥१८॥ तूष्णीमर्घ्यास्मं निनयति ॥१९॥ तेजोऽस्यमृतमसीति ललाटमालभते॥२०॥ अथोदकमाहारयस्याचमनीयं भो इति ॥२१॥ जीवाभिराचम्य ॥२२॥ अथास्मै मधुपर्कं वेदयन्ते ह्यनुचरो मधुपर्को भो इति ॥२३॥ द्वाभ्यां शाखाभ्यामधस्तादेकयोपरिष्टात्सापिधानम् ॥२४॥ मधु वाता ऋतायत इत्येताभिरेवाभिमन्त्रणम् ॥२५॥ तथा प्रतिमन्त्रणम् ॥२६॥१॥९०॥

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः। मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥ मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। मधु द्यौरस्तु नः पिता॥१॥ तत्सूर्यस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्ष इति प्रतीक्षते ॥२॥ अयुतोऽहं देवस्य त्वा सवितुरिति प्रतिगृह्य पुरोमुखं प्राग्दण्डं निदधाति ॥३॥ पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्या उपस्थ इति भूमौ प्रति-

"अर्घ्यं भोः" उसको "अन्नानां मुख०" इत्यादि से अनुमंत्रण करे ॥१८॥ और तूष्णीं अर्घ्यं की अञ्जलि को दाता लावे ॥१९॥ "तेजोऽस्यमृतमसि०" से अर्घ्य के ललाट का स्पर्श करे ॥२०॥ अब अर्घ्य के लिये मधुपर्क को लावे—एक छोटे कटोरे में मधुपर्क (दही, मधु, घी) धर कर उसपर बड़े कटोरे से ढाककर अनुचर लाकर बोले "मधुपर्को भोः" ॥२१॥२२॥२३॥२४॥ "मधु वाता ऋतायते०" इत्यादि से अभिमंत्रण करे ॥२५॥ और प्रतिमंत्रण करे ॥२६॥१॥९०॥ यह नब्बेवी कण्डिका पूरी हुई ॥

उक्त मंत्रों से देखे ॥१॥२॥ "अयुतोऽहं देवस्य०" इत्यादि से मधुपर्क को लेकर पूर्व मुख हो दण्ड को धर देवे ॥३॥ "पृथिव्यास्त्वा०" इत्यादि

ष्ठाप्य॥४॥ द्वाभ्यामङ्गुलिभ्यां प्रदक्षिणमाचाल्यानामिकयाङ्गुल्याङ्गुष्ठेन च संगृह्य प्राश्नाति ॥५॥ ओं भूस्तत्सवितुर्वरेण्यं भूः स्वाहेति प्रथमम् ॥६॥ भर्गो देवस्य धीमहि भुवः स्वाहेति द्वितीयम् ॥७॥ धियो यो नः प्रचोदयात्स्वः स्वाहेति तृतीयम् ॥८॥ वयं देवस्य धीमहि जनस्स्वाहेति चतुर्थम् ॥९॥ तुरं देवस्य भोजनं वृधस्स्वाहेति पञ्चमम् ॥१०॥ करस्स्वाहेति षष्ठम् ॥११॥ रुहस्स्वाहेति सप्तमम् ॥१२॥ महस्स्वाहेत्यष्टमम् ॥१३॥ तस्स्वाहेति नवमम् ॥१४॥ शं स्वाहेति दशमम् ॥१५॥ ओमित्येकादशम् ॥१६॥ तूष्णीं द्वादशम् ॥१७॥ तस्य भूयोमात्रमिव भुक्त्वा ब्राह्मणाय श्रोत्रियाय प्रयच्छेत् ॥१८॥ श्रोत्रियालाभे वृषलाय प्रयच्छेत् ॥१९॥ अथाप्ययं निगमो भवति। सोममेतत्पिबत यस्मिं चाश्नीत ब्राह्मणाः। माब्राह्मणायोच्छिष्टं दात मा सोमं पास्वसोमप इति ॥२०॥२॥९१॥

से उसको भूमि पर धर कर दोनो अङ्गुलियो से प्रदक्षिण कटोरे में के मधुपर्क को चलाकर अनामिका अङ्गुली और अंगूठे से लेकर चाटे ॥५॥ "ओं भूस्तत्सवितुर्वरेण्यं भूः स्वाहा" से पहिली बार। "भर्गो देवस्य धीमहि भुवः स्वाहा" से दूसरी बार। "धियो यो नः प्रचोदयात् स्वः स्वाहा" से तीसरी बार ॥८॥ "वयं देवस्य०" से चौथी वार ॥९॥ "तुरं देवस्य भोजनं०" से पञ्चम बार ॥१०॥ "करत्स्वाहा" से छठी बार ॥११॥ "रुहत्स्वाहा" से सप्तम बार ॥१२॥ "महत्स्वाहा" से अष्टम बार ॥१३॥ "तत्स्वाहा" से नवम बार ॥१४॥ "शं स्वाहा" से दशम बार ॥१५॥ "ओं" से ग्यारहवीं बार ॥१६॥ तूष्णीं बारहवी बार ।१७॥ उसको बड़ी मात्रा से खाकर श्रोत्रिय ब्राह्मण के लिये दे देवे ॥१८॥ यदि श्रोत्रिय न मिलें तो वृषल को देवे ॥१९॥ यहां पर निगम का प्रमाण भी है। यह जो ब्राह्मण पीता है, वह सोम पीता है। ब्राह्मण को उच्छिष्ट न देवे और न असोमप को सोम पीने को देवे ॥२०॥२॥९१॥ यह एक्यानबेवी कण्डिका खतम हुई।

दधि च मधु च ब्राह्मो मधुपर्कः ॥१॥ पायस ऐन्द्रो मधुपर्कः ॥२॥ मधु चाज्यं च सौम्यो मधुपर्कः ॥३॥ मन्थश्चाज्यं च पौष्णो मधुपर्कः ॥४॥ क्षीरं चाज्यं च सारस्वतो मधुपर्कः ॥५॥ सुरा चाज्यं च मौसलो मधुपर्कः ॥६॥ स खल्वेष द्वये भवति सौत्रामण्यां च राजसूये च ॥७॥ उदकं चाज्यं च वारुणो मधुपकः ॥८॥ तैलं चाज्यं च श्रावणो मधुपर्कः ॥९॥ तैलश्च पिण्डश्च पारिव्राजको मधुपर्कः ॥१०॥ इति खल्वेष नवविधो मधुपर्को भवति ॥११॥ अथास्मै गां वेदयन्ते गौर्भो इति ॥१२॥ तान्प्रतिमन्त्रयते । भूतमसि भवदस्यन्नं प्राणो बहुर्भव । ज्येष्ठं यन्नाम नामत ओं भूर्भुवः स्वर्जनदोमिति ॥१३॥ अतिसृजति । मातादित्यानां दुहिता वसूनां स्वसा रुद्राणाममृतस्य नाभिः । प्र णो वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥ ओं तृणानि गौरत्त्विस्याह ॥१४॥ सूयवसादिति प्रतिष्ठमानामनुमन्त्रयते ॥१५॥ नालोहितो मधुपर्को भवति ॥१६॥ नानुज्ञानमधीमह इति

दही और मधु ब्राह्म मधुपर्क है । १॥ पायस ऐन्द्र मधुपर्क है ॥२॥ मधु एवं घृत सौम्य मधुपर्क है। ३॥ मन्थ और आज्य पौष्ण मधुपर्क है ॥४॥ क्षीर और आज्य सारस्वत मधुपर्क है । ५॥ मदिरा और घृत मोसल मधुपर्क है ॥६॥ सो यह दो ही यज्ञों में होता है एक सौत्रामणी में और दूसरा राजसूय यज्ञ में ॥ ७ ॥ जल और घृत का वारुण मधुपर्क होता है ॥ ८ ॥ तैल और आज्य श्रावण मधुपर्क होता है । ९ ॥ तैल और पिण्ड पारिव्राजक मधुपर्क है ॥ १० ॥ इस प्रकार मधुपर्क नौ प्रकार का होता है ॥ ११ ॥ यहाँ गौ जानी जाती है—गौर्भोः ॥ इसका प्रतिमंत्रण "भूतमसि०" इत्यादि पढ़ कर गौ को छोड़ देवे। छोड़ते समय "मातादित्यानां०" इत्यादि पढ़कर गौ को छोड़ देवे "वह घास खावे"—ऐसा कहे ॥१४॥ "सूयवसात्०" से गौ को प्रतिष्ठमान करते हुए अनुमंत्रण करे ॥ १५ ॥ बिना मांस के मधुपर्क नहीं

कुरुतेस्येव ब्रूयात् ॥१७॥ स्वधिते मैनं हिंसीरिति शस्त्रं प्रयच्छति ॥१८॥ पाप्मानं मेऽप जहीति कर्त्तारमनुमन्त्रयते ॥१९॥ आग्नेयीं वपां कुर्युः ॥२०॥ अपि वा ब्राह्मण एव प्राश्नीयात्तद्देवतं हि तद्धविर्भवति ॥२१॥ अथास्मै स्नानमनुलेपनं मालाभ्यञ्जनमिति ॥२२॥ यदत्रोपसमाहार्यं भवति तदुपसमाहृत्य ॥२३॥ अथोपासकाः प्राप्योपासकाः स्मो भो इति वेदयन्ते ॥२४॥ तान् प्रतिमन्त्रयते । भूयांसो भूयास्म ये च नो भूयसः कार्ष्टापि च नोऽन्ये भूयांसो जायन्ताम् ॥२५॥ अस्य च दातुरिति दातारमीक्षते ॥२६॥ अथान्नाहाराः प्राप्यान्नाहाराः स्मो भो इति वेदयन्ते ॥२७॥ तान्प्रतिमन्त्रयते । अन्नादा भूयास्म ये च नोऽन्नादान्कार्ष्टापि च नोऽन्येऽन्नादा भूयांसो जायन्ताम् ॥२८॥ अस्य च दातुरिति दातारमीक्षते ॥२९॥ आहृतेऽन्ने जुहोति यत्काम कामयमाना इत्येतया ॥३०॥ यत्काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः । तन्नः सर्वं

होता है ॥१६॥ हम लोग विधि का उल्लङ्घन नहीं कर सकते अतएव "करो" ऐसा ही बोले ॥१७॥ "स्वधिते मैनं हिंसीः०" से शस्त्र को देवे ॥ १८ ॥ "पाप्मानं मेऽपजहि" से कर्त्ता को अनुमंत्रण करे ॥१९॥ आग्नेयी वपा को करें ॥२०॥ या ब्राह्मण ही खावे उसी देवताक हवि होती है ॥२१॥ इसके लिये स्नान, चन्दन, अनुलेपन, माला, अञ्जन लावे ॥२२॥ जो २ पदार्थ इसके लिये लाना पड़े उस २ को पहिले से लाकर धरे ॥२३॥ वस्त्रादि अलंकार सहित सब लाकर सब अर्घ्य को देवे और कहे कि "हमलोग आप के उपासक हैं" यह दाता कहे ॥२४॥ उनको प्रतिमंत्रण करे—"भूयांसो भूयास्म०" इत्यादि पढ़कर इसके दाता को देखे ॥२५॥२६॥ अब कहते हैं "अन्नाहाराः प्राप्यान्नाहाराः स्मो भो" ऐसा जतलावे ॥२७॥ इनको प्रतिमंत्रण करे "भूयास्म०"इत्यादि पढ़े ॥ "अस्य च दातुः०" से दाता को देखे ॥२८॥२९॥ अन्न लाने पर "यत्काम०"

समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहेति ॥३१॥ एष आचार्यकल्प एष ऋत्विक्कल्प एष संयुक्तकल्प एष विवाहकल्प एषोऽतिथिकल्पो एषोऽतिथिकल्पः ॥३२॥३॥९२॥

इत्यथर्ववेदे कौशिकसूत्रे द्वादशोऽध्यायः समाप्तः ॥१२॥

अथाद्भुतानि ॥१॥ वर्षे ॥२॥ यक्षेषु ॥३॥ गोमायुवदने ॥४॥ कुल कलहिनि ॥५॥ भूमिचले ॥६॥ आदित्योपप्लवे ॥७॥ चन्द्रमसश्च ॥८॥ औपस्यामनुष्यस्याम् ॥९॥ समायां दारुणायाम् ॥१०॥ उपतारकशङ्कायाम् ॥११॥ ब्राह्मणेष्वायुधिषु ॥१२॥ दैवतेषु नृत्यत्सु च्योतत्सु हसत्सु गायत्सु ॥१३॥ लाङ्गलयोः संसर्गे ॥१४॥ रज्ज्वो-

इस ऋचा से आहुति करे ॥ ३० ॥ "यत्काम कामयमाना०" इत्यादि से आहुति करे ॥३१॥ यह आचार्यकल्प है, यह ऋत्विक् कल्प है। यह संयुक्त कल्प है, यह विवाह कल्प है और यह अतिथि कल्प है यह अतिथिकल्प है॥३२॥३॥९२॥ यह ब्यानबेवी कण्डिका खतम हुई ॥

यह अथर्ववेद के कौशिकसूत्र का बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१२॥

अद्भुत् के विषय में कहेंगे। अद्भुत् की परिभाषा यह है कि जो संसार में स्वभावतः जो कर्म-क्रियायें होती हैं, कभी २ कुछ आश्चर्यमय लोकविरुद्ध क्रिया हो पड़ती है उसको "अद्भुत्" कहते हैं ॥ ऐसे अद्भुत् कार्य्यों की जहाँ यथाविधि शान्ति नहीं होती है वहाँ दोष होता है। जहाँ अद्भुत् होता है वहाँ दुःख होता है, नाश होता है। विनाश होने की सूचना के लिये देवता लोग अद्भुत् को सृजन करते हैं ॥१॥ जल की वृष्टि में, यक्षों के उपद्रव में, शृगाल के बोलने में, परिवार में परस्पर झगड़ने में, भूकम्प में, चन्द्र और सूर्य्यग्रहण में ॥२॥३॥४॥५॥६॥७॥८॥ उषा के न उगने में, दारुणसंवत्सर में, दुर्भिक्ष और हैजा प्लेगादि मारक में, उपतारक के सन्देह में, ब्राह्मणों के शस्त्रास्त्र ग्रहण में ॥९॥ ॥१०॥११॥१२॥ जहाँ देवमूर्तियाँ या आकाश में देवगण नाच करें, अपनी जगह से हटजावें, हँसे, गान करें या अन्य २ रूपों को धारण करें ॥१३॥ दो हलों का संसर्ग हो जावे ॥१४॥ दो अलग २ रज्जुओं का संसर्ग,

स्तन्स्वोश्च ॥१५॥ अग्निसंसर्गे ॥१६॥ यमवत्सायां गवि ॥१७॥ वडवागर्दभ्योर्मानुष्यां च ॥१८॥ यत्र धेनवो लोहितं दुहते ॥१९॥ अनडुहि धेनुं धयति ॥२०॥ धेनौ धेनुं धयन्त्याम् ॥२१॥ आकाशफेने ॥२२॥ पिपीलिकानाचारे॥२३॥ नीलमक्षानाचारे॥२४॥ मधुमक्षानाचारे॥२५॥ अनाज्ञाते ॥२६॥ अवदीर्णे ॥२७॥ अनुदक उदकोन्मीले॥२८॥ तिलेषु समतैलेषु ॥२९॥ हविःष्वभिमृष्टेषु ॥३०॥ प्रसव्येष्वावर्तेषु ॥३१॥ यूपे विरोहति ॥३२॥ उल्कायाम् ॥३३॥ धूमकेतौ सप्तर्षीनुपधूपयति ॥३४॥ नक्षत्रेषु पतापतेषु ॥३५॥ मांसमुखे निपतति ॥३६॥ अनग्नावबभासे ॥३७॥ अग्नौ श्वसति ॥३८॥ सर्पिषि तैले मधुनि च विष्यन्दे ॥३९॥ ग्राम्येऽग्नौ शालां दहति ॥४०॥ आगन्तौ च ॥४१॥ वंशे स्फोटति ॥४२॥ कुम्भोदधाने विकसत्युखायां सक्तुधान्यां च ॥४३॥१॥९३॥

दो भिन्न २ अग्नियों का संसर्ग ॥१५॥ गौ को एक साथ दो बचा हो, इसी प्रकार, घोड़ी, गदही और मनुष्य की स्त्री को हो तो ॥१८॥ जहाँ गौ को दूध की जगह रुधिर हो, बैल बैल से मैथुन करे, गौ गौ से मैथुन करे ॥१९॥२०॥२१॥ आकाश में फेन हो, चूँटियों के अनाचार में, नीले रंग की मक्खियों के अनाचार में, मधुमक्खियों के अनाचार में, अनाज्ञात-उपद्रव में, किसी पदार्थ के एकाएक फटने आदि में, जहाँ जल न हो वहाँ जल होने में, जितना तिल हो उससे उतना ही तैल होने में ॥२२॥२९॥ वपा या हवियों को चिड़ियायें या दो पद या चतुष्पद जन्तु लेकर भाग जाने में, कुमार या कुमारी दो आवर्त्त मूर्धन्य हों, एक सव्यावृत् और दूसरा देशावृत्त हो, यज्ञयूप के टूट जाने पर, दिन में उल्का पात होने पर, सप्तर्षि ताराओं को धूमकेतु अपने प्रकाश से छिपा देवे, नक्षत्रों के गिरने पर, मांस मुख गिरने पर, विना आग के धुआँ आना, अग्नि में श्वास-सा चलना, घी, तेल और मधु में विष्यन्दन होवे, गाँव के अग्नि से शाला जल जाने पर, आगन्तु के आग लगाने पर, वंश

अथ यत्रैतानि वर्षाणि वर्षन्ति घृतं मांसं मधु च यद्धिरण्यं यानि चाप्यन्यानि घोराणि वर्षाणि वर्षन्ति तत्पराभवति कुलं वा ग्रामो वा जनपदो वा ॥१॥ तत्र राजा भूमिपतिर्विद्वांसं ब्रह्माणमिच्छेत् ॥२। एष ह वै विद्वान्यद्भृग्वङ्गिरोवित् ॥३॥ एते ह वा अस्य सर्वस्य शमयितारः पालयितारो यद्भृग्वङ्गिरसः ॥४॥ स आहोपकल्पयध्वमिति ॥५॥ तदुपकल्पयन्ते कंसमहते वसने शुद्धमाज्यं शान्ता ओषधीर्नवमुदकुम्भम् ॥६॥ त्रीणि पर्वाणि कर्मणः पौर्णमास्यमावास्ये पुण्यं नक्षत्रम् ॥७॥ अपि चेदेव यदा कदाचिदार्तीय कुर्यात् ॥८॥ स्नातोऽहतवसनः सुरभिर्व्रतवान् कर्मण्य उपवसत्येकरात्रं त्रिरात्रं षड्रात्रं द्वादशरात्रं वा ॥९॥ द्वादश्याः प्रातर्यत्रैवादः पतितं भवति तत्र

में शब्द हो, कुम्भ के रखने सक्तुधानी या उखा या अनिङ्गिता विकसित हो, ये अद्भुत् कार्य्य हैं ॥४३॥१॥९३॥ यह तिरानबेवी कण्डिका खतम हुई ॥

जहाँ वर्षा में ये पदार्थ वर्षें घृत, मांस, मधु, सोना, और भी जो घोर वस्तुओं की वृष्टि हो वहाँ अत्यन्त दुःख होता है, चाहे कुल, ग्राम, जनपद क्यों न हो सबको कष्ट होता है ॥१॥ ऐसे स्थान में, राजा, भूमिपति विद्वान् ब्राह्मण की इच्छा करे ॥२॥ विद्वान् वही है जो भृगु-आङ्गिरस विद्या को जानने वाला हो ॥ ३ ॥ इन सारे अद्भुत् कार्य्यों की शान्ति करने एवं लोगों को बचाने वाले आङ्गिरस विद्या के विद्वान् ही हैं ॥४॥ राजा ने कहा इसकी तय्यारी करो ॥ ५ ॥ उसकी तय्यारी में कटोरा, अखण्ड नये वस्त्र, शुद्ध घृत, शान्ता ओषधी, नया जलकलश ॥६॥ इसके करने के तीन समय हैं। पौर्णमासी, अमावास्या और शुभ नक्षत्र ॥७॥ या आतुरता वश जब कभी चाहे तब ही करे ॥८॥ स्नान कर नये अखण्ड वस्त्र पहन कर सुगन्धित पदार्थों का सेवन, व्रतवान्, कर्मण्य, उपवास रहे एक रात्रि, ३ रात्रि, छः रात्रि, या १२ रात्रि ॥९॥ द्वादशी के प्रातःकाल जहाँ ही वह पड़े वहीं उत्तर अग्नि का आधान करके ॥१०॥

उत्तरमग्निमुपसमाधाय ॥१०॥ परिसमुह्य पर्युक्ष्य परिस्तीर्य बर्हिरुदपात्रमुपसाद्य परिचरणेनाज्यं परिचर्य ॥११॥ निस्यान्पुरस्ताद्धोमान् हुत्वाज्यभागौ च ॥१२॥ अथ जुहोति ॥१३॥ घृतस्य धारा इह या वर्षन्ति पक्वं मांसं मधु च यद्धिरण्यम् ॥ द्विषन्तमेता अनुयन्तु वृष्टयोऽपां वृष्टयो बहुलाः सन्तु मह्यम् ॥ लोहितवर्षं मधुपांसुवर्षं यद्वा वर्षं घोरमनिष्टमन्यत् ॥ द्विषन्तमेते अनुयन्तु सर्वे पराञ्चो यन्तु निवर्तमानाः ॥ अग्नये स्वाहेति हुत्वा ॥१४॥ दिव्यो गन्धर्व इति मातृनामभिर्जुहुयात् ॥१५॥ वरमनड्वाहं ब्राह्मणः कर्त्रे दद्यात् ॥१६॥ सीरं वैश्योऽश्वं प्रादेशिको ग्रामवरं राजा ॥१७॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥१८॥२॥९४॥

अथ यत्रैतानि यक्षाणि दृश्यन्ते तद्यथैतन्मर्कटः श्वापदो वायसः पुरुषरूपमिति तदेवमाशङ्क्यमेव भवति ॥१॥ तत्र जुहुयात् ॥२॥ यन्मर्कटः श्वापदो वायसो यदीदं राष्ट्रं जातवेदः पताति पुरुषरक्षसमिषिरं यत्प-

---

परिसमूहन, पर्युक्षण, परिस्तरण करके बर्हिः, एवं जलपात्र को लाकर परिचरण द्वारा आज्य की परिचर्या करके ॥११॥ नित्य पुरस्तात् होमों को करके और आज्यभाग की दो आहुतियाँ करके ॥१२॥ अब हवन करे "घृतस्य धारा इह०" इत्यादि से अग्नये स्वाहा से आहुति करके ॥१३॥१४॥ "दिव्यो गन्धर्व०" से मातृनामों से आहुतियाँ देवे । ब्राह्मण को दक्षिणा में बैल देवे ॥१५॥१६॥ वैश्य दक्षिणा में सीर देवे और प्रादेशिक हो तो दक्षिणा में घोड़ा देवे। एवं राजा अच्छा ग्राम दक्षिणा में देवे ॥१७॥ यही उसकी प्रायश्चित्ति है ॥१८॥२॥९४॥ यह चौरानबेवी कण्डिका खतम हुई ॥

जहाँ यक्षों को देखे—जैसे कि मर्कट, श्वापद, वायस, पुरुष रूप तब ही आशङ्का होती है ॥१॥ तब वहाँ आहुति करे ॥२॥ "यन्मर्कट;

ताति । द्विषन्तमेते अनुयन्तु सर्वे पराञ्चो यन्तु निवर्तमानाः ॥ अग्नये स्वाहेति हुत्वा ॥३॥ दिव्यो गन्धर्व इति मातृनामभिर्जुहुयात् ॥४॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥५॥३॥९५॥

अथ ह गोमायू नाम मण्डूकौ यत्र वदतस्तद्यन्मन्यन्ते मां प्रति वदतो मां प्रति वदत इति तदेवमाशङ्क्यमेव भवति ॥१॥ तत्र जुहुयात् ॥२॥ यद् गोमायू वदतो जातवेदोऽन्यथा वाचाभि जज्ञभातः ॥ रथन्तरं बृहच्च सामैतद्विषन्तमेतावभि नानदैताम् ॥ रथन्तरेण त्वा बृहच्छमयामि बृहता त्वा रथन्तरं शमयामि ॥ इन्द्राग्नी त्वा ब्रह्मणा वावृधानावायुष्मन्तावुत्तमं त्वा कराथः ॥ इन्द्राग्निभ्यां स्वाहेति हुत्वा ॥३॥ दिव्यो गन्धर्व इति मातृनामभिर्जुहुयात् ॥४॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥५॥४॥९६॥

अथ यत्रैतत्कुलं कलहि भवति तन्निर्ऋतिगृहीतमित्याचक्षते ॥१॥ तत्र जुहुयात् ॥२॥ आरादरातिमिति द्वे ॥३॥ अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिश्च सत्यमित्त्वमया असि ।

श्वापदो वायसो यदीदं राष्ट्रं जातवेदः पताति०" इत्यादि आहुति देवे ॥ ॥ ३ ॥ "दिव्यो गन्धर्वः" और मातृनामों से आहुति देवे, यही उसकी प्रायश्चित्ति है ॥ ५ ॥ ३ ॥ ९५ ॥ यह पंचानवेवी कण्डिका खतम हुई ।

अब गोमायू नाम दो मण्डूक जहाँ बोलते हैं, उसे वह समझते हैं कि मेरे प्रति बोलते हैं, मेरे प्रति बोलते हैं—यही सन्देह का स्थल है ॥ ॥ १ ॥ यहां आहुति देवे ॥ २ ॥ "यद् गोमायू वदतो०" इत्यादि से आहुतियां देकर ॥ ३ ॥ "दिव्यो गन्धर्वः" से एवं मातृनामों से आहुति देवे ॥ ४ ॥ यही उसकी प्रायश्चित्ति है ॥ ५ ॥ ४ ॥ ९६ ॥ यह छानवेवी कण्डिका खतम हुई ।

अब—जिस कुल में नित्य कलह हुआ करता है, उस कुल को निर्ऋति ने पकड़ा है जानो ॥ १ ॥ तहां आहुति देवे ॥ २ ॥ "आराद्-रातिं०" से दो आहुतियां देवे ॥ ३ ॥ "अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिश्च०"

अयासा मनसा कृतोऽयास्यं हव्यमूहिषे ॥ अयानो धेहि भेषजम् ॥ स्वाहेत्यग्नौ जुहुयात् ॥४॥ तत्रैवैतान् होमाञ्जुहुयात् ॥५॥ आरादग्निं क्रव्यादं निरूहज्जीवातवे ते परिधिं दधामि । इन्द्राग्नी त्वा ब्रह्मणा वावृधानावायुष्मन्तावुत्तमं त्वा कराथः ॥ इन्द्राग्निभ्यां स्वाहेति हुत्वा ॥ ६ ॥ अपेत एतु निर्ऋतिरित्येतेन सूक्तेन जुहुयात् ॥७॥ अपेत एतु निर्ऋतिर्नेहास्या अपि किञ्चन । अपास्याः सत्वनः पाशान्मृत्यूनेकशतं नुदे ॥ ये ते पाशा एकशतं मृत्यो मर्त्याय हन्तवे । तांस्ते यज्ञस्य मायया सर्वा अप यजामसि ॥ निरितो यन्तु नैर्ऋत्या मृत्यव एकशतं परः ॥ सेधामैषां यत्तमः प्राणं ज्योतिश्च दध्महे ॥ ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभ्यो अस्मान् वरुणः सोम इन्द्रो विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः ॥ ब्रह्म भ्राजदुदगादन्तरिक्षं दिवं च ब्रह्मावाघूष्टामृतेन मृत्युम् । ब्रह्मोपद्रष्टा सुकृतस्य साक्षाद्ब्रह्मास्मदप हन्तु शमलं तमश्च ॥८॥ वरमनड्वाहमिति समानम् ॥९॥५॥९७॥

अथ यत्रैतद्भूमिचलो भवति तत्र जुहुयात् ॥ १ ॥ अच्युता द्यौरच्युतमन्तरिक्षमच्युता भूमिर्दिशो अच्युता इमाः। अच्युतोऽयं रोधावरोधाद् ध्रुवो राष्ट्रे प्रति तिष्ठाति जिष्णुः ॥ यथा सूर्यो दिवि रोचते यथान्तरिक्षं मातरि-

---

इत्यादि से आहुति देकर ॥ ४ ॥ वही इन होमों को भी देवे ॥ ५ ॥ "आरादग्निं क्रव्यादं०" इस सूक्त से आहुति देवे ॥ ६ ॥ ७ ॥ "अपेत एतु०" इत्यादि से आहुतियां देवे ॥ ८ ॥ दक्षिणा में कर्त्ताको बैल देवे ॥ ९ ॥ ५ ॥ ९७ ॥ यह सत्तानवेवी काण्डिका खतम हुई ॥

जहां भूकम्प होवे वहां आहुति देवे ॥ १ ॥ "अच्युता द्यौरच्युत०"

श्वाभिवस्ते । यथाग्निः पृथिवीमा विवेशैवायं ध्रुवो अच्युतो अस्तु जिष्णुः । यथा देवो दिवि स्तनयन्नि राजति यथा वर्षं वर्षकामाय वर्षति । यथापः पृथिवीमा विविशुरेवायं ध्रुवो अच्युतो अस्तु जिष्णुः ॥ यथा पुरीषं नद्याः समुद्रमहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ॥ एवा विशः संमनसो हवं मेऽप्रमादमिहोपा यन्तु सर्वाः ॥ दृंहतां देवी सह देवताभिर्ध्रुवा दृढाच्युता मे अस्तु भूमिः । सर्वपाप्मानमपनुद्यास्मदमित्रान्मे द्विषतोऽनुविध्यतु ॥ पृथिव्यै स्वाहेति हुत्वा ॥२॥ आ त्वाहार्षं ध्रुवा द्यौः सत्यं बृहदित्येतेनानुवाकेन जुहुयात् ॥३॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥४॥६॥६८॥

अथ यत्रैतदादित्यं तमो गृह्णाति तत्र जुहुयात् ॥१॥ दिव्यं चित्रमृतूया कल्पयन्तमृतूनामुग्रं भ्रमयन्नुदेति । तदादित्यः प्रतरन्नेतु सर्वत आप इमां लोकाननुसंचरन्ति ॥ ओषधीभिः संविदानाविन्द्राग्नी स्वाभिरक्षताम् ॥ ऋतेन सत्यवाकेन तेन सर्वं तमो जहि ॥ आदित्याय स्वाहेति हुत्वा ॥२॥ विषासहिं सहमानमित्येतेन सूक्तेन जुहुयात् ॥३॥ रोहितैरुपतिष्ठते ॥४॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥५॥७॥६६॥

इत्यादि से आहुति देकर ॥ २ ॥ "आ त्वाहार्षं ध्रुवा द्यौः०" इत्यादि अनुवाकसे आहुति देवे ॥ ३ ॥ यही उसकी प्रायश्चित्ति है ॥ ४ ॥ ६ ॥ ॥ ९८ ॥ यह अट्ठानबेवी कण्डिका खतम हुई ॥

जहां सूर्य्य ग्रहण होता है, वहां आहुति देवे ॥ १ ॥ "दिव्यं चित्रमृतूया०" इत्यादिसे आहुति देकर ॥ २ ॥ "विषासहिं०" इत्यादि सूक्त से आहुति देवे ॥ ३ ॥ "रोहितैः" से उपस्थान करे ॥ ४ ॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥ ५ ॥ ७ ॥ ६६ ॥ यह निन्यानबेवी कण्डिका खतम हुई ॥

अथ यत्रैतच्चन्द्रमसमुपप्लवति तत्र जुहुयात् ॥१॥ राहू राजानं स्सरति स्वरन्तमैनमिह हन्ति पूर्वः । सहस्रमस्य तन्व इह नाश्याः शतं तन्वो विनश्यन्तु ॥ चन्द्राय स्वाहेति हुत्वा ॥२॥ शकधूमं नक्षत्राणीत्येतेन सूक्तेन जुहुयात् ॥३॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥४॥८॥१००॥

अथ यत्रैतदौषसी नोदेति तत्र जुहुयात् ॥१॥ उदेतु श्रीरुषसः कल्पयन्ती पूल्यान्कृत्वा पलित एतु चारः । ऋतून्बिभ्रती बहुधा विरूपान्मह्यं भव्यं विदुषी कल्पयाति ॥ औषस्यै स्वाहेति हुत्वा ॥ दिव्यो गन्धर्व इति मातृनामभिर्जुहुयात् ॥ ३ ॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥ ॥४॥९॥१०१॥

अथ यत्रैतत्समा दारुणा भवति तत्र जुहुयात् ॥१॥ या समा रुशत्येति प्राजापत्यान्वि धूनुते । तृप्तिं यां देवता विदुस्तां त्वा सङ्कल्पयामसि ॥ व्याधकस्य मातरं हिरण्यकुक्षीं हरिणीम् ॥ तां त्वा सङ्कल्पयामसि ॥ यत्ते घोरं यत्ते विषं तद्विषत्सु नि दध्मस्यमुष्मिन्निति ब्रूयात् ॥२॥ शिवेनास्माकं समे शान्त्या सहायुषा समायै स्वा-

---

जहां चन्द्रग्रहण होता है, वहां आहुति करे ॥ १ ॥ "राहू राजानं०" इत्यादि से आहुति करके ॥ २ ॥ "शकधूमं नक्षत्राणि०" इत्यादि सूक्त से आहुति करे ॥ ३ ॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥ ४ ॥ ८ ॥ १०० ॥ यह सौवी कण्डिका खतम हुई ॥

अब जहां जहां उषा का उदय नहीं होता है, वहां आहुति देवे ॥१॥ "उदेतु श्रीरुषसः०" इत्यादि आहुति देकर ॥ २ ॥ "दिव्यो गन्धर्वः०" से और मातृनामों से आहुतियाँ देवे ॥ ३ ॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥ ४ ॥ ९ ॥ १०१ ॥ यह एक सौ एकवी कण्डिका खतम हुई ॥

अब जहां का संवत्सर दारुण (दुःखप्रद वर्ष) होता है, वहां आहुति देवे ॥ १ ॥ "या समा रुशत्येति०" इत्यादि से आहुति

हेति हुत्वा ॥३॥ समास्त्वाग्न इत्येतेन सूक्तेन जुहुयात् ॥४॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥५॥१०॥१०२॥

अथ यत्रैतदुपतारकाः शङ्कन्ते तत्र जुहुयात् ॥ १ ॥ रेवतीः शुभ्रा इषिरा मदन्तीस्त्वचो धूममनु ताः संविशन्तु । परेणापः पृथिवीं सं विशन्त्वाप इमां लोकाननु संचरन्तु ॥ अद्भ्यः स्वाहेति हुत्वा ॥ २ ॥ समुत्पतन्तु प्रनभस्वेति वर्षाेर्जुहुयात् ॥ ३ ॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥४॥११॥१०३॥

अथ यत्रैतद्ब्राह्मणा आयुधिनो भवन्ति तत्र जुहुयात् ॥१॥ य आसुरा मनुष्या आत्तधन्वः पुरुषमुखाश्चरानिह । देवा वयं मनुष्यास्ते देवाः प्रविशामसि । इन्द्रो नो अस्तु पुरोगवः स नो रक्षतु सर्वतः । इन्द्राय स्वाहेति हुत्वा ॥२॥ मा नो विदन्नमो देववधेभ्य इत्येताभ्यां सूक्ताभ्यां जुहुयात् ॥ ३ ॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥४॥१२॥१०४॥

देकर ॥ २ ॥ ३ ॥ "समास्त्वाग्न०" इस सूक्त से आहुति देवे ॥ ४ ॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥ ५ ॥ १० ॥ १०२ ॥ यह एक सौ दूसरी कण्डिका समाप्त हुई ।

अब जहां यह उपतारकाओं की शङ्का होती है, तहां आहुति देवे ॥ ॥ १ ॥ "रेवतीः शुभ्रा इषिरा०" इत्यादि से आहुति देवे ॥ ३ ॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥ ४ ॥ ११ ॥ १०३॥ यह एक सौ तीसरी कण्डिका खतम हुई ।

अब जहां ब्राह्मणलोग अस्त्रधारी होते हैं, तहां आहुति देवे ॥ १ ॥ "य आसुरा मनुष्या०" इत्यादि से आहुति देकर ॥ २ ॥ "मा नो विदन्नमो०" इत्यादि दो सूक्तों से आहुति देवे ॥ ३ ॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥ ४ ॥ १२ ॥ १०४ ॥ यह एक सौ चारवी कण्डिका खतम हुई ।

अथ यत्रैतद्दैवतानि नृत्यन्ति च्योतन्ति हसन्ति गायन्ति वान्यानि वा रूपाणि कुर्वन्ति य आसुरा मनुष्या मा नो विदन्नमो देववधेभ्य इत्यभयैर्जुहुयात् ॥ १ ॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥२॥१३॥१०५॥

अथ यत्रैतल्लाङ्गले संसृजतः पुरोडाशं श्रपयित्वा ॥१॥ अरण्यस्यार्धमभिव्रज्य ॥२॥ प्राचीं सीतां स्थापयित्वा ॥ ३ ॥ सीताया मध्ये प्राञ्चमिध्ममुपसमाधाय ॥४॥ परिसमुह्य पर्युक्ष्य परिस्तीर्य बर्हिः शम्याः परिधीन्कृत्वा ॥५॥ अथ जुहोति । वित्तिरसि पुष्टिरसि श्रीरसि प्राजापत्यानां तां त्वाहं मयि पुष्टिकामो जुहोमि स्वाहा ॥६॥ कुमुद्वती पुष्करिणी सीता सर्वाङ्गशोभनी । कृषिः सहस्रप्रकारा प्रत्यष्टा श्रीरियं मयि ॥ उर्वीं त्वाहुर्मनुष्याः श्रियं त्वा मनसो विदुः । आशयेऽन्नस्य नो धेह्यनमीवस्य शुष्मिणः ॥ पर्जन्यपत्नि हरिण्यभिजितास्यभि नो वद ॥ कालनेत्रे हविषो नो जुषस्व तृप्तिं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ याभिर्देवा असुरानकल्पयन् यातून्मनून् गन्धर्वान् राक्षसांश्च । ताभिर्नो अद्य सुमना

अब जहां देवता (या मूर्तियां) नाचतीं, इधर उधर चलती, हँसती, गाती हैं या अन्यान्य रूपों को धारण करती हैं–वहां "य आसुरा०" इत्यादि से आहुति देवे ॥ १ ॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥ २ ॥ १३ ॥ ॥ १०५ ॥ यह एक सौ पांचवीं कण्डिका खतम हुई ॥

अब जहां लाङ्गल में बैल के पुच्छ का संसर्ग हो जावे या हल से हल का। वहां पुरोडाशको पकाकर ॥१॥ अरण्य के आधे भाग में जाकर ॥ २ ॥ पूर्व मुख सीता को स्थापन करके ॥ ३ ॥ सीता के मध्य भाग में पूर्वाभिमुख इध्मों का उपसमाधान करके ॥ ४ ॥ परिसमूहन, पर्युक्षण, परिस्तरण करके बर्हि, शम्या, परिधियों को करके ॥ ५ ॥ आहुति देवे । "वित्तिरसि पुष्टिरसि०" इत्यादि आहुतियाँ देवे ॥ ६ ॥ "कुमुद्वती पुष्क-

उपा गहि सहस्रापोषं सुभगे रराणा ॥ हिरण्यस्र-क्युष्करिणी श्यामा सर्वाङ्गशोभनी ॥ कृषिर्हिरण्यप्रकारा प्रस्यष्टा श्रीरियं मयि ॥ अश्विभ्यां देवि सह संविदाना इन्द्रेण राधेन सह पुष्ट्या न आ गहि ॥ विशस्त्वा रासन्तां प्रदिशोऽनु सर्वा अहोरात्रार्धमासमासा आर्तवा ऋतुभिः सह ॥ भर्त्री देवानामुत मर्त्यानां भर्त्री प्रजानामुत मानुषाणाम् ॥ हस्तिभिरितरासैः क्षेत्रसारथिभिः सह । हिरण्यैरश्वैरा गोभिः प्रस्यष्टा श्रीरियं मयि ॥७॥ अत्र शुनासीराण्यनुयोजयेत् ॥ ८ ॥ वरमनड्वाहमिति समानम् ॥९॥१४॥१०६॥

अथ यत्रैतत्सृजन्त्योर्वा कृन्तन्त्योर्वा नाना तन्तू संसृजतो मनायै तन्तुं प्रथममित्येतेन सूक्तेन जुहुयात् ॥१॥ मनायै तन्तुं प्रथमं पश्येदन्या अतन्वत । तन्नारीः प्रब्रवीमि वः साध्वीर्वः सन्तूर्वरीः ॥ साधुर्वस्तन्तुर्भवतु साधुरेतु रथो वृतः ॥ अथो ह्योर्वरीर्यूयं प्रातर्वोढवे धावत ॥ खर्गला इव पत्वरीरपामुग्रमिवायनम् । पतन्तु पत्वरीरिवोर्वरीः साधुना पथा ॥ अवाच्यौ ते तोतुद्येते तोदेनाश्वतराविव ॥ प्र स्तोममुर्वरीणां शशयानामस्ताविषम् ॥ नारी पञ्चमयूखं सूत्रवत्कृणुते वसु ॥ अरिष्टो अस्य वस्ता प्रेन्द्र वास उतोदिर ॥२॥ वासः कर्त्रे दद्यात्

रिणी०" इत्यादि से आहुति देवे ॥ ७ ॥ यहां शुनासीरों की अनुयोजना करे ॥ ८ ॥ कर्त्ता को दक्षिणा में बैल देवे ॥ ९ ॥ १४ ॥ १०६ ॥ यह एकसौ छहवी कण्डिका खतम हुई ॥

अब जहां सूतों के कातने या बिनने में सूत परस्पर संसृज होकर टूट जावे या बेकाम हो जाया करे वहां आहुति करे ॥१॥ "मनायै तन्तुं प्रथमं०" इत्यादि से आहुति करे ॥ २ ॥ कर्त्ता को दक्षिणा में वस्त्र देवे ॥ ३ ॥ यह-

॥३॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥४॥१५॥१०७॥

अथ यत्रैतदग्निनाग्निः संसृज्यते भवतं नः समनसौ समोकसाविस्येतेन सूक्तेन जुहुयात् ॥ १ ॥ भवतं नः समनसौ समोकसावरेपसौ । मा हिंसिष्टं यज्ञपतिं मा यज्ञं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥ अग्निनाग्निः संसृज्यते कविर्बृहस्पतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥ त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्सता। सखा सख्या समिध्यसे ॥ पाहि नो अग्न एकया पाहि न उत द्वितीयया । पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जांपते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ समीची माहनी पातामायुष्मस्या ऋचो मा सस्सि। तनूपात्साम्नो वसुविदं लोकमनुसंचराणि ॥२॥ रुक्मं कर्त्रे दद्यात् ॥३॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥४॥१६॥१०८॥

अथ यत्रैतद्यमसूर्यमौ जनयति तां शान्त्युदकेनाभ्युक्ष्य दोहयित्वा ॥ १ ॥ तस्या एव गोर्दुग्धे स्थालीपाकं श्रपयित्वा ॥२॥ प्राञ्चमिध्ममुपसमाधाय ॥३॥ परिसमुह्य पर्युक्ष्य परिस्तीर्य बर्हिरुदपात्रमुपसाद्य ॥ ४ ॥ एकैक-

---

उसकी प्रायश्चिति है ॥ ४ ॥ १५ ॥ १०७ ॥ यह एक सौ सातवी कण्डिका समाप्त हुई ॥

अब जहां जहां अग्नि से अग्नि का संघर्ष हो जावे वहां "भवतं नः समनसौ समोकसौ" इस सूक्त से आहुति देवे ॥ १ ॥ "भवतं नः समनसौ०" इत्यादि से आहुति देवे ॥ २ ॥ कर्त्ता को दक्षिणा में सोना देवे ॥ ३ ॥ यह उसकी प्रायश्चिति है ॥४॥१६॥१०८॥ यह एकसौ आठहवी कण्डिका खतम हुई ॥

अब जहाँ एक साथ अनेक बच्चे गौ को पैदा हों उसको शान्ति जल से अभ्युक्षण कर गौ को दुह करके ॥१॥ उसी गौ के दूध में स्थालीपाक पका कर ॥२॥ पूर्वाभिमुख इध्माधान करके ॥३॥ परिसमूहन, पर्युक्षण, परिस्तरण करके, बर्हिकुश एवं जलपात्र लाकरके ॥४॥ "एकैकयै-

यैषा सृष्ट्या सं बभूवेत्येतेन सूक्तेनाज्यं जुह्वन् ॥ ५ ॥ उदपात्रे सम्पातानानयति ॥ ६ ॥ उत्तमं संपातमोदने प्रत्यानयति ।७॥ ततो गां च प्राशयति वत्सौ चोदपात्रादेनानाचामयति च संप्रोक्षति च ॥ ८ ॥ तां तस्यैव दद्यात् ॥९॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥१०॥१७॥१०६॥

अथ चेद्वडवा वा गर्दभी वा स्यादेवमेव प्राञ्चमिध्ममुपसमाधाय ॥ १ ॥ एवं परिस्तीर्य ॥ २ ॥ एवमुपसाद्य ॥३॥ एतेनैव सूक्तेनाज्यं जुह्वन् ॥४॥ उदपात्रे संपातानानयति ॥५॥ उदपात्रादेनानाचामयति च संप्रोक्षति च ॥६॥ तां तस्यैव दद्यात् ॥७॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥८॥१८॥११०॥

अथ चेन्मानुषी स्यादेवमेव प्राञ्चमिध्ममुपसमाधाय ॥१॥ एवं परिस्तीर्य ॥२॥ एवमुपसाद्य ॥३॥ उपस्थे जातकावाधाय ॥४॥ एतेनैव सूक्तेनाज्यं जुह्वन् ॥५॥

षा सृष्ट्या०" इत्यादि सूक्त से आज्य की आहुति करता हुआ जलपात्र में सम्पातों को रखता जावे। उत्तम सम्पात को ओदन में लावे ॥५॥६॥७॥ तब गौ और दोनों बच्चों को प्राशन करावे और जलपात्र से इसको आचमन करा कर सम्प्रोक्षण करावे ॥८॥ उस गौ को कर्त्ता ही को देवे ॥९॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥१०॥१७॥१०९॥ यह एकसौ नौहवी कण्डिका खतम हुई ॥

यदि घोड़ी या गदही इसी प्रकार जोड़े बच्चे प्रसव करे तो पूर्वाभिमुख इध्मों का आधान करके एवं परिस्तरण करके सामग्रियों को आसादन करके इसी सूक्त से आज्य की आहुति देता हुआ ॥१॥२॥३॥४॥ जलपात्र में सम्पातों को रखे ॥५॥ जलपात्र ही से इनको आचमन और सम्प्रोक्षण करे ॥६॥ इसको दक्षिणा में कर्त्ता को ही देवे ॥७॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥८॥१८॥११०॥ यह एकसौ दसवी कण्डिका खतम हुई ॥

यदि मनुष्यस्त्री को यमल प्रसव हो तो, उसको भी इसी प्रकार पूर्वाभिमुख इध्मों का आधान, परिस्तरण और उपसादन करके ॥१॥२॥३॥

अमीषां मूर्ध्नि स मातुः पुत्रयोरित्यनुपूर्वं सम्पातानानयति ॥६॥ उदपात्र उत्तरान्संपातान् ॥७॥ उदपात्रादेनानाचामयति च संप्रोक्षति च ॥८॥ तां तस्यैव दद्यात् ॥९॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥१०॥ तस्या निष्क्रयो यथार्हं यथासंपद्वा ॥११॥१९॥१११॥

अथ यत्रैतद्धेनवो लोहितं दुहते यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्त इत्येताभिश्चतसृभिर्जुहुयात् ॥१॥ वरां धेनुं कर्त्रे दद्यात् ॥२॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥३॥२०॥११२॥

अथ यत्रैतदनड्वान्धेनुं धयति तत्र जुहुयात् ॥१॥ अनड्वान्धेनुमधयदिन्द्रो गोरूपमाविशत् । स मे भूतिं च पुष्टिं च दीर्घमायुश्च धेहि नः ॥ इन्द्राय स्वाहेति हुत्वा ॥२॥ मा नो विदन्नमो देववधेभ्य इत्येताभ्यां सूक्ताभ्यां जुहुयात् ॥३॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥४॥२१॥११३॥

गोदमें बच्चों को लेकर इसी सूक्त से आज्य की आहुति देता हुआ। "अमीषां मूर्ध्नि०" इत्यादि से सम्पातों को लावे ॥४॥५॥६॥ जलपात्र में शेष सम्पातों को धरे ॥७॥ जलपात्र ही से इनको आचमन और सम्प्रोक्षण करे ॥८॥ उसके बच्चों को उसीको देवे ॥९॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥१०॥ उसका निष्क्रय यथाशक्ति यथासम्पद् कर्त्ता को देवे ॥११॥ ॥१९॥१११॥ यह एक सौ ग्यारहवी कण्डिका खतम हुई ॥

अब जहाँ धेनु को दुहने पर दूध की जगह रुधिर आवे तो "यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्त०" इत्यादि ४ ऋचाओं से चार आहुतियाँ देवे ॥१॥ कर्त्ता को दक्षिणा में धेनु देवे ॥२॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥३॥ ॥२०॥११२॥ यह एकसौ बारहवी कण्डिका खतम हुई ॥

अब जहाँ बैल धेनु पर मैथुनार्थ चेष्टा करता है, वहाँ आहुति करे ॥१॥ "अनड्वान्धेनुमधयदिन्द्रो०" इत्यादि से आहुति देकर ॥२॥ "मा नो विदन्नमो देववधेभ्यः०" इन दो सूक्तों से आहुति देवे ॥५॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥४॥२१॥११३॥ यह एकसौ तेरहवी कण्डिका खतम हुई ॥

अथ यत्रैतद्धेनुर्धेनुं धयति तत्र जुहुयात् ॥१॥ योगक्षेमं धेनुं वाजपत्नीमिन्द्राग्निभ्यां प्रेषिते जञ्जभाने । तस्मान्मामग्ने परि पाहि घोरास्प्र नो जायन्तां मिथुनानि रूपशः ॥ इन्द्राग्निभ्यां स्वाहेति हुत्वा॥२॥ दिव्यो गन्धर्व इति मातृनामभिर्जुहुयात् ॥३॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥४॥२२॥११४॥

अथ यत्रैतद्गौर्वाश्वो वाश्वतरो वा पुरुषो वाकाशफेनमवगन्धयति तत्र जुहुयात् ॥१॥ पयो देवेषु पय ओषधीषु पय आशासु पयोऽन्तरिक्षे । तन्मे धाता च सविता च धत्तां विश्वे तद्देवा अभिसंगृणन्तु ॥ पयो यदप्सु पय उस्रियासु पय उत्सेषूत पर्वतेषु । तन्मे धाता च सविता च धत्तां विश्वे तद्देवा अभिसंगृणन्तु ॥ यन्मृगेषु पय आविष्टमस्ति यदेजति पतति यत्पतत्रिषु । तन्मे धाता च सविता च धत्तां विश्वे तद्देवा अभिसंगृणन्तु ॥ यानि पयांसि दिव्यार्पितानि यान्यन्तरिक्षे बहुधा बहूनि । तेषामीशानं वशिनी नो अद्य प्रदत्ता द्यावापृथिवी अहृणीयमाना इत्येतेन सूक्तेन जुहुयात् ॥२॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥३॥२३॥११५॥

अथ यत्रैतत्पिपीलिका अनाचाररूपा दृश्यन्ते तत्र

अब जहाँ धेनु धेनु से मैथुन करना चाहती है, वहाँ आहुति करे ॥१॥ "योगक्षेमं धेनुं०" इत्यादि से आहुति देकर ॥२॥ "दिव्यो गन्धर्व०" और मातृ नामों से आहुतियाँ देवे ॥२॥३॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥४॥२२॥११४॥ यह एकसौ चौदहवी कण्डिका खतम हुई ॥

अब जहाँ गौ या अश्व या अश्वतर या पुरुष आकाश के फेन का गन्ध लेता है, वहाँ आहुति करे ॥१॥ "पयो देवेषु०" इत्यादि इस सूक्त से आहुति करे ॥२॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥३॥२३॥११५॥ यह एकसौ पन्द्रहवी कण्डिका खतम हुई ॥

अब जहाँ पिपीलिका अनाचार रूप से दीखने लगतीं, तहाँ आहुति

जुहुयात् ॥ १ ॥ भुवाय स्वाहा भुवनाय स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भुवां पतये स्वाहा वोषाय स्वाहा विनताय स्वाहा शतारुणाय स्वाहा ॥२॥ यः प्राच्यां दिशि श्वेतपिपीलिकानां राजा तस्मै स्वाहा । यो दक्षिणायां दिशि कृष्णपिपीलिकानां राजा तस्मै स्वाहा । यः प्रतीच्यां दिशि रजतपिपीलिकानां राजा तस्मै स्वाहा । य उदीच्यां दिशि रोहितपिपीलिकानां राजा तस्मै स्वाहा । यो ध्रुवायां दिशि बभ्रुपिपीलिकानां राजा तस्मै स्वाहा । यो व्यध्वायां दिशि हरितपिपीलिकानां राजा तस्मै स्वाहा । य ऊर्ध्वायां दिश्यरुणपिपीलिकानां राजा तस्मै स्वाहा॥३॥ ताश्चेदेतावता न शाम्येयुस्तत उत्तरमग्निमुपसमाधाय ॥ ४ ॥ शरमयं बर्हिरुभयतः परिच्छिन्नं प्रसव्यं परिस्तीर्य ॥ ५ ॥ विषावध्वस्तमिङ्गिडमाज्यं शाकपलाशेनोत्पूतं बाधकेन स्रुवेण जुहोति ॥६॥ उत्तिष्ठत निर्द्रवत न व इहास्त्वित्यञ्जनम् । इन्द्रो वः सर्वासां साकं गर्भाण्डानि भेत्स्यति । फड्ढुताः पिपीलिका इति ॥ ७ ॥ इन्द्रो वो यमो वो वरुणो वोऽग्निर्वो वायुर्वः सूर्यो वश्चन्द्रो वः प्रजापतिर्व ईशानो व इति ॥८॥२४॥११६॥

अथ यत्रैतन्नीलमक्षा अनाचाररूपा दृश्यन्ते तत्र

करे॥१॥ "भुवाय स्वाहा, भुवनाय स्वाहा०" इत्यादि से आहुति देवे ॥२॥ ॥३॥ यदि इससे न शान्ति करें तो उत्तर अग्नि का आधान करके ॥४॥ शरमयबर्हि जो दोनों ओर टूटे हों प्रसव्य परिस्तरण करके ॥५॥ विषावध्वस्त इङ्गिड आज्य को शाक के पत्ते से उत्पवन करके बाधक वृक्ष के स्रुव से आहुति देवे ॥६॥ "उत्तिष्ठत निर्द्रवत०" इत्यादि से ॥७॥ फिर "इन्द्रो वो यमो०" इत्यादि से आहुति देवे ॥८॥२४॥११६॥ यह एकसौ सोलहवी कण्डिका खतम हुई ॥

जहुयात् ॥१॥ या मर्त्यैः सरथं यान्ति घोरा मृत्योर्दूत्यः कविशः सं बभूवुः। शिवं चक्षुरुत घोषः शिवानां शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ शान्तं चक्षुरुत वायसीनां या चासां घोरा मनसो विसृष्टिः ॥ मनसस्पते तन्वा मा पाहि घोरान्मा वि रिक्षि तन्वा मा प्रजया मा पशुभिर्वायवे स्वाहेति हुत्वा ॥२॥ वात आ वातु भेषजमित्येतेन सूक्तेन जुहुयात् ॥३॥ वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे ॥ प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा। स नो जीवातवे कृधि ॥ यददो वात ते गृहे निहितं भेषजं गुहा। तस्य नो धेहि जीवस इत्येतेन सूक्तेन जुहुयात् ॥४॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥५॥२५॥११७॥

अथ यत्रैतन्मधुमक्षिका अनाचाररूपा दृश्यन्ते मधु वात ऋतायत इत्येतेन सूक्तेन जुहुयात् ॥१॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥२॥२६॥११८॥

अथ यत्रैतदनाज्ञातमद्भुतं दृश्यते तत्र जुहुयात् ॥१॥ यदज्ञातमनाम्नातमर्थस्य कर्मणो मिथः ॥ अग्ने त्वं नस्तस्मात्पाहि स हि वेत्थ यथायथम् ॥ अग्नये स्वाहा ॥२॥ वायो सूर्य चन्द्रेति च ॥३॥ पुरुषसंमितोऽर्थः कर्मार्थः

अब जहाँ नीले रंग की मक्षिका अनाचार रूप से दीख पड़ें, तहाँ आहुति देवे ॥१॥ "या मर्त्यैः सरथं यान्ति०" इत्यादि से आहुति देवे ॥२॥ "वात आ वातु०" इत्यादि सूक्त से आहुति देवे ॥३॥ "वात आ वातु भेषजं०" इत्यादि सूक्त से आहुति देवे ॥४॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥५॥२५॥११७॥ यह एकसौ सतरहवी कण्डिका खतम हुई ॥

अब जहाँ मधुमक्षिका अनाचार रूपा दीख पड़े, वहाँ आहुति देना चाहिये ॥१॥ "यदज्ञातमनाम्नातं०" इत्यादि से आहुति देवे ॥२॥

पुरुषसंमितः । वायुर्मा तस्मात्पातु स हि वेत्थ यथा-यथम् ॥ वायवे स्वाहा ॥४॥ अग्निर्मा सूर्यो मा चन्द्रो मेति च ॥५॥२७॥११६॥

अथ यत्रैतद्ग्रामे वावसाने वाग्निशरणे वा समज्यायां वावदीर्येत चतस्रो धेनव उपक्लृप्ता भवन्ति श्वेता कृष्णा रोहिणी सुरूपा चतुर्थी ॥१॥ तासामेतद्द्वादशरात्रं संदुग्धं नवनीतं निदधाति ॥२॥ द्वादश्याः प्रातर्यत्रैवादीऽवदीर्णं भवति तत उत्तरमग्निमुपसमाधाय ॥३॥ परिसमुह्य पर्युक्ष्य परिस्तीर्य बर्हिः श्वेताया आज्येन सन्नीय ॥४॥ अग्निर्भूम्यामिति तिसृभिरभिमन्त्र्यालभ्य ॥५॥ अथ जुहुयात् ॥६॥ तथा दक्षिणार्धे ॥७॥ तथा पश्चार्धे ॥८॥ उत्तरार्धे संस्थाप्य वास्तोष्पत्यैर्जुहुयात् ॥९॥ अवदीर्णे संपातानानीय संस्थाप्य होमान् ॥१०॥ अवदीर्णं शान्त्युदकेन संप्रोक्ष्य ॥११॥ ता एव

"वायो सूर्य चन्द्रेति च०" इत्यादि से आहुति देवे ॥३॥४॥ "अग्निर्मा सूर्यो मा चन्द्रो मा०" इत्यादि से आहुति देवे ॥५॥२७॥११९॥ यह एकसौ उन्नीसवी कण्डिका खतम हुई ॥

अब जहाँ ग्राम में या दहन गृह में या अग्निशाला में, या समज्या में कोई काष्ठ आदि फट या टूट जावे तो उसकी शान्ति के लिये ४ धेनु की आवश्यकता होती है । एक श्वेता, दूसरी काली, तीसरी रोहिणी, चौथी सुरूपा ॥ इन चारों के दूध, नवनीत १२ रात्र तक ग्रहण करे और द्वादशी के प्रातःकाल जहाँ, दीवार या काष्ठादि फट गया हो उससे उत्तर अग्नि का आधान करे ॥१॥२॥ परिसमूहन, पर्युक्षण, परिस्तरण करके बर्हिकुश को श्वेत गौ के घी से चपोट कर ॥४॥ "अग्निर्भूम्यां०" इत्यादि तीन ऋचा से अभिमंत्रण कर भूमि को स्पर्श करे ॥५॥ तब आहुति देवे ॥६॥ उसी प्रकार अग्नि के दक्षिणार्ध भाग में तथा पश्चिमार्ध में और उत्तराद्ध में संस्थापन करके "वास्तोष्पत्य" ऋचाओं से आहुतियाँ देवे ॥७॥ ॥८॥९॥अवदीर्ण स्थान सम्पातों को लाकर होम को संस्थापन करके ॥१०॥

ब्राह्मणो दद्यात् ॥१२॥ सीरं वैश्योऽश्वं प्रादेशिको ग्राम-वरं राजा ॥१३॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥१४॥२८॥१२०॥

अथ यत्रैतदनुदक उदकोन्मीलो भवति हिरण्यवर्णा इत्यपां सूक्तैर्जुहुयात् ॥ १ ॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥ २ ॥ ॥२९॥१२१॥

अथ यत्रैतत्तिलाः समतैला भवन्ति तत्र जुहुयात् ॥१॥ अनूनाय स्वाहा। अक्षिताय स्वाहा । अपरिमिताय स्वाहा । परिपूर्णाय स्वाहा ॥ २ ॥ स यं द्विष्यात्तस्या-शायां लोहितं ते प्रसिञ्चामीति दक्षिणामुखः प्रसिञ्चेत् ॥३॥३०॥१२२॥

अथ यत्रैतद्वपां वा हवींषि वा वयांसि द्विपद चतुष्पदं वाभिमृश्यावगच्छेयुर्ये अग्नयो नमो देववधेभ्य इत्येताभ्यां सूक्ताभ्यां जुहुयात् ॥१॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥२॥३१॥१२३॥

अवदीर्ण को शान्ति जल से संप्रोक्षण करके ॥११॥ उसीको ब्राह्मण को दे देवे ॥१२॥ दक्षिणा में कर्त्ता को वैश्य (यजमान) सीर देवे, प्रादेशिक घोड़ा देवे और राजा ग्राम देवे ॥१३॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥१४॥ ॥२८॥१२०॥ यह एकसौ बीसवी कण्डिका खतम हुई ॥

अब जहाँ विना जल के स्थान जल हो तो "हिरण्यवर्णा०" इत्यादि जल सूक्तों से आहुतियाँ देवे ॥१॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥२॥२९॥ ॥१२१॥ यह एकसौ इक्कीसवी कण्डिका खतम हुई ॥

अब जहाँ तिल के बराबर उससे तैल निकले वहाँ आहुति देवे ॥१॥ अनूनाय स्वाहा। अक्षिताय स्वाहा। अपरिमिताय स्वाहा। परिपूर्णाय स्वाहा। "स यं द्विष्याचस्याशायां लोहितं ते प्रसिञ्चामि" से दक्षिणमुख सिंचन करे ॥२॥३॥३०॥१२२॥ यह एकसौ बाइसवी कण्डिका खतम हुई ॥

अब जहाँ वपा को हवियों को चिल्ह, कौवे आदि लेकर भाग जावें तो "अग्नयो नमो देववधेभ्यः" इन दो सूक्तों से आहुतियाँ देवे ॥१॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥२॥३१॥१२३॥ यह एकसौ तेइसवी कण्डिका खतम हुई ॥

अथ यत्रैतत्कुमारस्य कुमार्या वा द्वावावर्तौ मूर्धन्यौ भवतः सव्यावृदेको देशावर्तस्तत्र जुहुयात् ॥१॥ त्वष्टा रूपाणि बहुधा विकुर्वञ्जनयन्प्रजा बहुधा विश्वरूपाः ॥ स मे करोत्वविपरीतमस्माननुपूर्वं कल्पयतामिहैव ॥ त्वष्ट्रे स्वाहा ॥२॥ अन्तर्गर्भेषु बहुधा सं तनोति जनयन्प्रजा बहुधा विश्वरूपाः । स मे करोत्वविपरीतमस्माननुपूर्वं कल्पयतामिहैव ॥ त्वष्ट्रे स्वाहा ॥३॥ यद्युन्मृष्टं यदि वाभिमृष्टं तिरश्चीनर्थं उत मर्मृजन्ते । शिवं तद्देवः सविता कृणोतु प्रजापतिः प्रजाभिः संविदानः ॥ त्वष्ट्रे स्वाहा ॥४॥ सव्यावृत्तान्युत या विश्वरूपा प्रत्यग्वृत्तान्युत या ते परुःषु ॥ तान्यस्य देव बहुधा बहूनि स्योनानि शग्मानि शिवानि सन्तु ॥ त्वष्ट्रे स्वाहेति हुत्वा ॥५॥ त्वष्टा मे दैव्यं वच इत्येतेन सूक्तेन जुहुयात् ॥६॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥७॥३२॥१२४॥

अथ यत्रैतद्यूपो विरोहति तत्र जुहुयात् ॥१॥ यूपो विरोहञ्छतशाखो अध्वरः समावृतो मोहयिष्यन्यजमानस्य लोकान् । वेदाभिगुप्तो ब्रह्मणा परिवृतोऽथर्वभिः शान्तः सुकृतामेतु लोकम् ॥ यूपो ह्यरुक्षद्द्विषतां वधाय न मे यज्ञो यजमानश्च रिष्यात् । सप्तर्षीणां सुकृतां

अब जहाँ कुमार या कुमारी को दो आवर्त्त मूर्धन्य हों एक सव्यावृत् दूसरा देशावर्त्त तो, वहाँ आहुति करे ॥ १ ॥ "त्वष्टा रूपाणि बहुधा०" इत्यादि से आहुति देवे ॥२॥ "अन्तर्गर्भेषु बहुधा०" इत्यादि से आहुति देवे ॥३॥ "यद्यन्मृष्टं यदि वाभिमृष्टं०" इत्यादि से आहुति देवे ॥४॥ "सव्यावृत्तान्युत०" इत्यादि से आहुति देवे ॥५॥ "त्वष्टा मे दैव्यं वचः" इस सूक्त से आहुति देवे ॥६॥ यह उस की प्रायश्चित्ति है ॥७॥३२॥१२४॥ यह एकसौ चौबीसवी कण्डिका खतम हुई ।

अब जहां यूप टूट जाता है, तहां आहुति करे ॥१॥ "यूपो विरोह-

यत्र लोकस्तत्रेमं यज्ञं यजमानं च धेहि ॥ वनस्पतये स्वाहेति हुत्वा ॥२॥ वनस्पतिः सह देवैर्न आगन्निति जुहुयात् ॥३॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥४॥२३॥१२५॥

अथ यत्रैतद्दिवोल्का पतति तदयोगक्षेमाशङ्कं भवत्यवृष्ट्याशङ्कं वा ॥१॥ तत्र राजा भूमिपतिर्विद्वांसं ब्रह्माणं वृणीयात् ॥२॥ स वृतोऽरण्यस्यार्धमभिव्रज्य तत्र द्वादशरात्रमनुशुष्येत् ॥३॥ स खलु पूर्वं नवरात्रमारण्यशाकमूलफलभक्षश्चाथोत्तरं त्रिरात्रं नान्यदुदकात् ॥ ॥ ४ ॥ श्वो भूते सप्तधेनव उपक्लृप्ता भवन्ति श्वेता कृष्णा रोहिणी नीली पाटला सुरूपा बहुरूपा सप्तमी ॥ ५ ॥ तासामेतद्द्वादशरात्रं सन्दुग्धं नवनीतं निदधाति ॥६॥ द्वादश्याः प्रातर्यत्रैवासौ पतिता भवति तत उत्तरमग्निमुपसमाधाय ॥७॥ परिसमुह्य पर्युक्ष्य परिस्तीर्य बर्हिः ॥८॥ अथामुं नवनीतं सौवर्णे पात्रे विलाप्य सौव-

---

ञ्छतशाखो०" इत्यादि से आहुति करके ॥२॥ "वनस्पतिः सह देवैर्न०" से आहुति करे ॥३॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥४॥२३॥१२५॥ यह एकसौ पचीसवी कण्डिका खतम हुई ।

अब जहां दिन में उल्कापात होवे, वहां योग क्षेम होने में शङ्का है या अवृष्टि की शङ्का होगी ॥१॥ वहां राजा या भूमिपति विद्वान् ब्राह्मण को बुलाकर वरण करे ॥२॥ वह वृत्त हो वन के आध भाग में जाकर वहां १२ रात तपस्या करे ॥३॥ वह पहिले नौ रात वन्य शाक, फल, मूल खाकर निर्वाह करे और अन्तिम तीन रात फलादि भी न खावे, केवल जल पीकर रहे ॥४॥ प्रातः काल होते ही सात धेनु एकत्र करे । सफेद, काली, रोहिणी, नीली, पाटला, सुरूपा, बहुरूपा सप्तमी ॥५॥ उनका दूध एवं नवनीत १२ रात लेकर रखे ॥६॥ द्वादशी के प्रातःकाल में जहां, उल्का का पतन होता है उससे उत्तर में अग्न्याधान करके परिसमूहन, पर्युक्षण, परिस्तरण करके और बर्हि लाकर धरे ॥८॥

र्णेन स्रुवेण रक्षोघ्नैश्च सूक्तैर्यामाहुस्तारकैषा विकेशी-त्येतेन सूक्तेनाज्यं जुह्वन् ॥ ९ ॥ अवपतिते सम्पातानानीय संस्थाप्य होमान् ॥ १० ॥ अवपतितं शान्त्युदकेन सम्प्रोक्ष्य ॥११॥ ता एव ब्राह्मणो दद्यात् ॥१२॥ सीरं वैश्योऽश्वं प्रादेशिको ग्रामवरं राजा ॥१३॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥१४॥३४॥१२६॥

अथ यत्रैतद्धूमकेतुः सप्तर्षीनुपधूपयति तद्योगक्षेमाशङ्कमित्युक्तम् ॥१॥ पञ्च पशवस्तायन्ते वारुणः कृष्णो गौर्वाजो वाविर्वा हरिर्वायव्यो बहुरूपो दिश्यो मारुती मेष्याग्नेयः प्राजापत्यश्च क्षीरौदनोऽपां नप्त्र उद्रः ॥२॥ उतेयं भूमिरिति त्रिर्वरुणमभिष्टूय ॥३॥ अप्सु ते राजन्निति चतसृभिर्वारुणस्य जुहुयात् ॥४॥ वायवा रुन्द्धि नो मृगानस्मभ्यं मृगयद्भ्यः। स नो नेदिष्ठमा कृधि वातो हि रशनाकृत इति वायव्यस्य ॥५॥ आशानामिति दिश्य-

---

अब उस नवनीत को सोने के पात्र में गलाकर धरे ॥ और सोने के स्रुवा से रक्षोघ्न सूक्तों से "यामाहुस्तारकैषा विकेशी" इस सूक्त से आज्य की आहुती देता हुआ। गिरे हुए संपातों को लाकर और होम को संस्थापन करके ॥९॥१०॥ नीचे गिरे हुए सम्पात को शांति जल से संप्रोक्षण करके ब्राह्मण को देवे ॥११॥१२॥ सीर को वैश्य देवे, घोड़े को प्रादेशिक देवे और राजा ब्राह्मण को ग्राम देवे ॥१३॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥१४॥३४॥१२६॥ यह एकसौ छब्बीसवी कण्डिका खतम हुई ॥

अब जहां धूमकेतु अपने प्रकाश से सप्तर्षि ताराओं को तपाता है, वहां कल्याण होने में शङ्का है। अत एव वहां पांच वारुण पशुओं को जो काली गौ या बकरा या भेड़, हरि, वायव्य, बहुरूप, दिश्य, मारुती, मेषी, आग्नेय और प्राजापत्य ॥ "क्षीरौदनोऽपां नप्त्र उद्रः" ॥२॥ "उतेयं भूमिः" इत्यादि तीन ऋ० से वरुण देव की स्तुति करके ॥३॥ "अप्सु ते राजन्०" इत्यादि ४ ऋ० से आहुती देवे ॥४॥ "वायवा रुन्धि०"

स्य ॥६॥ प्रति स्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्रहूयसे । मरुद्भिरग्न आ गहीति मारुतस्य ॥७॥ अपामग्निरित्याग्नेयस्य ॥८॥ प्रजापतिः सलिलादिति प्राजापत्यस्य । अपां सूक्तैर्हिरण्यशकलेन सहोद्रमप्सु प्रवेशयेत् ॥१०॥ प्र हैव वर्षति ॥११॥ सर्वस्वं तत्र दक्षिणा ॥१२॥ तस्य निष्क्रयो यथार्हं यथासम्पद्वा ॥१३॥३५॥१२७॥

अथ यत्रैतन्नक्षत्राणि पतापतानीव भवन्ति तत्र जुहुयात् ॥१॥ यन्नक्षत्रं पतति जातवेदः सोमेन राज्ञेषिरं पुरस्तात् । तस्मान्मामग्ने परिपाहि घोरात्प्र णो जायन्तां मिथुनानि रूपशः ॥ इन्द्राग्निभ्यां स्वाहेति हुत्वा ॥२॥ सोमो राजा सविता च राजेत्येतेन सूक्तेन जुहुयात् ॥३॥ सोमो राजा सविता च राजा भुवो राजा भुवनं च राजा । शर्वो राजा शर्म च राजा त उ नः शर्म यच्छन्तु देवाः ॥ आदित्यैर्नो बृहस्पतिर्भगः सोमेन नः सह । विश्वेदेवा उर्वन्तरिक्षं त उ नः शर्म यच्छन्तु देवाः । उताविद्वान्निष्कृदयाथोस्रघ्नी यथायथम् । मा नो विश्वेदेवा

इत्यादि से वायव्य की आहुति करे ॥५॥ "आशानां०" से दिश्य देवता की आहुति करे ॥६॥ "प्रति स्यं०" इत्यादि से मारुत की आहुति देवे ॥७॥ "अपामग्निः" इत्यादि से आग्नेय आहुति देवे ॥८॥ "सलिलात्" से प्राजापात्य आहुति देवे ॥९॥ जल सूक्तों से सोने के टुकड़े से उद्र के सहित को जल में प्रवेश करावे ॥१०॥ अवश्य ही वृष्टि होगी ॥११॥ इसकी दक्षिणा सर्वस्व देवे ॥१२॥ या उसका निष्क्रय यथाशक्ति या यथासम्पत् देवे ॥१३॥३५॥१२७॥ यह एकसौ सत्ताइसवी कण्डिका खतम हुई ॥

अब जहां नक्षत्र गण गिरते या टूट कर गिरते से जान पड़ें, वहां आहुति करे ॥१॥ "यन्नक्षत्रं पतति०" इत्यादि से आहुति करके ॥२॥ "सोमो राजा०" इत्यादि सूक्त से आहुति देवे ॥३॥४॥ कर्त्ता को दक्षिणा

मरुतो हेतिमिच्छत ॥४॥ रुक्मं कर्त्रे दद्यात् ॥५॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥६॥३६॥१२८॥

अथ यत्रैतन्मांससमुखो निपतति तत्र जुहुयात् ॥१॥ घोरो वज्रो देवसृष्टो न आगन्यद्वा गृहान्घोरमुता जगाम। तन्निर्जगाम हविषा घृतेन शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ रुद्राय स्वाहेति हुत्वा ॥२॥ भवाशर्वौ मृडतं माभियातमित्येतेन सूक्तेन जुहुयात् ॥३॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥४॥३७॥१२९॥

अथ यत्रैतदनग्नावग्नभासो भवति तत्र जुहुयात् ॥१॥ या तेऽवदीप्तिरवरूपा जातवेदोऽपेतो रक्षसां भाग एषः। रक्षांसि तया दह जावेदो या नः प्रजां मनुष्यां सं सृजन्ते ॥ अग्नये स्वाहेति हुत्वा ॥२॥ अग्नी रक्षांसि सेधतीति प्रायश्चित्तिः ॥३॥३८॥१३०॥

अथ यत्रैतदग्निः श्वसतीव तत्र जुहुयात् ॥१॥ श्वेता कृष्णा रोहिणी जातवेदो यास्ते तनूस्तिरश्चीना निर्दहन्तीः श्वसन्तीः। रक्षांसि ताभिर्दह जातवेदो या

सोना देवे ॥५॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥६॥३६॥१२८॥ यह एकसौ अट्ठाइसवी कण्डिका खतम हुई ।

अब जहां मांस सम्मुख गिरता हो, तहां आहुति करे ॥१॥ "घोरो वज्रो०" इत्यादि से आहुति करे ॥२॥ "भवा शर्वौ०" इत्यादि सूक्त से आहुति करे ॥३॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥४॥३७॥१२९॥ यह एकसौ उन्तीसवी कण्डिका खतम हुई ॥

अब जहां विना आग के स्थान में आग का आभास हो, तहां आहुति करे ॥१॥ "या तेऽवदीप्ति०" इत्यादि से आहुति देवे ॥२॥ "अग्नी रक्षांसि सेधति०" इत्यादि से आहुति करे यही उसकी प्रायश्चित्ति है ॥३॥३८॥१३०॥ यह एकसौ तीसवी कण्डिका खतम हुई ॥

अब जहां अग्नि सांस लेती प्रतीत होवे, तहां आहुति करे ॥१॥ "श्वेता

नः प्रजां मनुष्यां संसृजन्ते ॥ अग्नये स्वाहेति हुत्वा ॥२॥ अग्नी रक्षांसि सेधतीति प्रायश्चित्तिः ॥३॥३९॥१३१॥

अथ यत्रैतत्सर्पिर्वा तैलं वा मधु वा विष्यन्दति यद्यामं चक्रुर्निखनन्त इत्येतेन सूक्तेन जुहुयात् ॥१॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥२॥४०॥१३२॥

अथ यत्रैतद्ग्राम्योऽग्निः शालां दहत्यपमित्य-मप्रतीत्तमित्येतैस्त्रिभिः सूक्तैर्मैश्रधान्यस्य पूर्णाञ्जलिं हुत्वा ॥१॥ ममोभा मित्रावरुणा मह्यमापो मधुमदेरयन्ता-मित्येताभ्यां सूक्ताभ्यां जुहुयात् ॥२॥ ममोभा मित्राव-रुणा ममोभेन्द्राबृहस्पती । मम त्वष्टा च पूषा च ममैव सविता वशे ॥ मम विष्णुश्च सोमश्च ममैव मरुतो भवन् । सरस्वांश्च भगश्च विश्वेदेवा वशे मम ॥ ममो-भा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं स्वर्मम । ममेमाः सर्वा ओषधीरापः सर्वा वशे मम ॥ मम गावो ममाश्वा ममा-जाश्चावयश्च ममैव पुरुषा भवन् । ममेदं सर्वमात्मन्वदे-जत्प्राणद्वशे ममेति ॥३॥ अरणी प्रताप्य स्थण्डिलं परि-

---

कृष्णा०" इत्यादि आहुति करके ॥२॥ "अग्नी रक्षांसि०" से आहुति करे यही उसकी प्रायश्चित्ति है ॥३॥३९॥१३१॥ यह एकसौ एकतीसवी कण्डिका खतम हुई ।

अब जहां घी, या तेल या मधु विष्यन्द करे तो "यद्यामं चक्रुर्निख-नन्त०" इत्यादि सूक्त से आहुति करे ॥१॥ यही उसकी प्रायश्चित्ति है ॥ ॥२॥४०॥१३२॥ यह एकसौ बत्तीसवी कण्डिका खतम हुई ॥

अब जहां ग्राम्य अग्नि अग्निशालाको दहन कर देवे । तहां "अप-मित्यमप्रतीत्तं०" इत्यादि तीन सूक्तों से मैश्रधान्य की पूर्णाञ्जलि आहुति करके ॥१॥ "ममोभा मित्रावरुणा०" इत्यादि दो सूक्तों से आहुति देवे ॥ ॥२॥ "ममोभा मित्रा०" इत्यादि से ॥३॥ अरणी को तपा करके वेदि

मृज्य ॥४॥ अथाग्निं जनयेत् ॥५॥ इत एव प्रथमं जज्ञे अग्निराभ्यो योनिभ्यो अधि जातवेदाः ॥ स गायत्र्या त्रिष्टुभा जगत्यानुष्टुभा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्निति जनयित्वा ॥ ६ ॥ भवतं नः समनसौ समोकसावित्येतेन सूक्तेन जुहुयात् ॥ ७ ॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥८॥४१॥१३३॥

अथचेदागन्तुर्दहस्येवमेव कुर्यात् ॥१॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥२॥४२॥१३४॥

अथ यत्रैतद्वंशः स्फोटति कपालेऽङ्गारा भवन्त्युदपात्रं बर्हिराज्यं तदादाय ॥१॥ शालायाः पृष्ठमुपसर्पति ॥२॥ तत्राङ्गारान्वा कपालं वोपनिदधात्या सन्तपनात् ॥ ३ ॥ प्राञ्चमिध्ममुपसमाधाय ॥४॥ परिसमुह्य पर्युक्ष्य परिस्तीर्य बर्हिरुदपात्रमुपसाद्य ॥५॥ परिचरणेनाज्यं परिचर्य ॥६॥ नित्यान्पुरस्ताद्धोमान्हुत्वाज्यभागौ च ॥७॥ अथ जुहोति

को मार्जन करके ॥४॥ अग्नि को उत्पादन करे ॥५॥ "इत एव प्रथमं०" इत्यादि मंत्रों से अग्नि उत्पादन करके "भवतं नः०" इत्यादि सूक्त से आहुति देवे ॥७॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥८॥४१॥१३३॥ यह एकसौ तैतीसवी कण्डिका खतम हुई ॥

अब जहां कोई आगन्तुक आकर आग लगा देवे तो ऐसा ही करे ॥१॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥२॥४२॥१३४॥ यह एकसौ चौंतीसवी कण्डिका खतम हुई।

अब जहां बांस स्फोट करे और कपाल में अङ्गारें हों। तो वहां जलपात्र को लाकर ॥१॥ शाला के पीठपर अङ्गारों या कपाल को आधान करे जब तक संतपन हो ॥२॥३॥ पूर्व भाग में इध्मों का आधान करके ॥४॥ परिसमूहन, पर्युक्षण, परिस्तरण करके बर्हिकुशों को लाकर ॥५॥ परिचरण करके आज्य तैयार करके ॥६॥ नित्य पुरस्तात् होमों को और आज्यभाग के दो होमों को करके ॥७॥ अब आहुति करे ॥८॥

॥८॥ असौ वै नाम ते माताऽसौ वै नाम ते पिता। असौ वै नाम ते दूतः स्ववंशमधितिष्ठति ॥ उत्तमरात्री णाम मृत्यो ते माता तस्य ते अन्तकः पिता। समं दधानस्ते दूतः स्ववंशमधितिष्ठति ॥ बहवोऽस्य पाशा वितताः पृथिव्यामसंख्येया अपर्यन्ता अनन्ताः। याभिर्वंशानभिनिदधाति प्राणिनां यान्कांश्चेमान्प्राणभृतां जिघांसन् । स इमं दूतं नुदतु वंशपृष्ठात्स मे गच्छतु द्विषतो निवेशं मृत्यवे स्वाहा ॥ बृहस्पतिराङ्गिरसो ब्रह्मणः पुत्रो विश्वेदेवाः प्रददुर्विश्वमेजत्। स इमं दूतं नुदतु वंशपृष्ठात्स मे गच्छतु द्विषतो निवेशं बृहस्पतय आङ्गिरसाय स्वाहा ॥ यस्य तेऽन्नं न क्षीयते भूय एवोपजायते। यस्मै भूतं च भव्यं च सर्वमेतत्प्रतिष्ठितम्। स इमं दूतं नुदतु वंशपृष्ठात्स मे गच्छतु द्विषतो निवेशमिन्द्राय स्वाहा॥ मुखं देवानामिह यो बभूव यो जानाति वयुनानां समीपे। यस्मै हुतं देवता भक्षयन्ति वायुनेत्रः सुप्रणीतः सुनीतिः। स इमं दूतं नुदतु वंशपृष्ठात्स मे गच्छतु द्विषतो निवेशमग्नये स्वाहा ॥ यः पृथिव्यां च्यावयन्नेति वृक्षान् प्रभञ्जनेन रथेन सह संविदानः। रसान् गन्धान् भावयन्नेति देवो मातरिश्वा भूतभव्यस्य कर्त्ता। स इमं दूतं नुदतु वंशपृष्ठात्स मे गच्छतु द्विषतो निवेशं वायवे स्वाहा। ब्रह्मचारी चरति ब्रह्मचर्यमृचं गाथां ब्रह्म परं जिगांसन्। तं विघ्ना अनुपरियन्ति सर्वे ये अन्तरिक्षे

"असौ वै नाम ते माता" इत्यादिसे आहुति करे॥ एवं "बृहस्पतिराङ्गिरसो०" इत्यादि से आहुति करे॥ "यस्य तेऽन्नं०" इत्यादि से आहुति करे॥ "मुखं देवानां०" इत्यादिसे। "यः पृथिव्यां०" इत्यादि से॥

ये च दिवि श्रितासः । तं विशो अनुपरियन्ति सर्वाः कर्माणि लोके परिमोहयन्ति । स इमं दूतं नुदतु वंश-पृष्ठात्स मे गच्छतु द्विषतो निवेशमादित्याय स्वाहा ॥ यो नक्षत्रैः सरथं याति देवः संसिद्धेन रथेन सह संवि-दानः । रूपं रूपं कृण्वानश्चित्रभानुः सुभानुः । स इमं दूतं नुदतु वंशपृष्ठात्स मे गच्छतु द्विषतो निवेशं चन्द्राय स्वाहा ॥ ओषधयः सोमराज्ञीर्यशस्विनीः । ता इमं दूतं नुद-न्तु वंशपृष्ठात्स मे गच्छतु द्विषतो निवेशमोषधीभ्यः सो-मराज्ञीभ्यः स्वाहा ॥ ओषधयो वरुणराज्ञीर्यशस्विनीः । ता इमं दूतं नुदन्तु वंशपृष्ठात्स मे गच्छतु द्विषतो निवेश-मोषधीभ्यो वरुणराज्ञीभ्यः स्वाहा ॥ अष्टस्थूणो दशपक्षो यद्दच्छजो वनस्पते । पुत्रांश्चैव पशूंश्चाभिरक्ष वनस्पते ॥ यो वनस्पतीनामुपतापो बभूव यद्वा गृहान्घोरमुताजगाम तन्निर्जगाम हविषा घृतेन शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ यो वनस्पतीनामुपतापो न आगयद्वा यज्ञं नो अद्भुत-माजगाम । सर्वं तदग्ने हुतमस्तु भागशः शिवान्वयमुत्तरे-माभिवाजान् । त्वष्ट्रे स्वाहेति हुत्वा ॥९॥ त्वष्टा मे दैव्यं वच इत्यत्रोदपात्रं निनयति ॥१०॥ कपाले अग्निं चादायो-पसर्पति ॥११॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥१२॥४३॥१३५॥

अथ यत्रैतत्कुम्भोदधानः सक्तुधानी बोखा वानि-

"ब्रह्मचारी चरति०" इत्यादि से ॥ "यो नक्षत्रैः सरथं०" इत्यादि से ॥ "ओषधयः सोमराज्ञी०" इत्यादि से ॥ "ओषधयो०" इत्यादि से ॥ "अष्टस्थूणो०" इत्यादि से ॥ आहुतियां करे ॥९॥ "त्वष्टा मे दैव्यं वचः" से जलपात्र को लावे ॥१०॥ और कपाल में अग्नि को लाकर उपसर्पण करे ॥११॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥१२॥४३॥१३५॥ यह एकसौ पैंतीसवी कण्डिका खतम हुई ॥

ङ्गिता विकसति तत्र जुहुयात् ॥१॥ भूमिर्भूमिमवागा-न्माता मातरमप्यगात्। ऋध्यास्म पुत्रैः पशुभिर्यो नो द्वेष्टि स भिद्यतामिति ॥२॥ सदसि सन्मे भूयादिति सक्तू-नावपेत् ॥३॥ अथ चेदोदनस्यान्नमस्यन्नं मे देह्यन्नं मा मा हिंसीरिति त्रिः प्राश्य ॥४॥ अथ यथाकामं प्राश्नीयात् ॥५॥ अथ चेदुदधानः स्यात्समुद्रं वः प्रहिणोमीत्येताभ्या-मभिमन्त्र्य ॥६॥ अन्यं कृत्वा ध्रुवाभ्यां दृंहयित्वा ॥७॥ तत्र हिरण्यवर्णा इत्युदकमासेचयेत् ॥८॥ स खल्वेतेषु कर्मसु सर्वत्र शान्त्युदकं कृत्वा सर्वत्र चातनान्यनुयोजये-न्मातृनामानि च ॥९॥ सर्वत्र वरां धेनुं कर्त्रे दद्यात् ॥१०॥ सर्वत्र कंसवसनं गौर्दक्षिणा ॥११॥ ब्राह्मणान् भक्तेनो-पेप्सन्ति ॥१२॥ यथोद्दिष्टं चादिष्टास्विति प्रायश्चित्तिः प्रायश्चित्तिः ॥१३॥४४॥१३६॥ इत्यथर्ववेदे कौशिकसूत्रे त्रयोदशोऽध्यायः समाप्तः ॥१३॥

अब जहां यज्ञ स्थान में कुम्भोदधान, सक्तुधानी या उखा या अनिङ्गिता विकसित हो वहां आहुति करे ॥१॥ "भूमिर्भूमि०" इत्यादि से सक्तु को वपन करे (डाले) ॥२॥३॥ "अथ चेदोदनस्यान्नं०" इत्यादि से तीन वार प्राशन करके ॥४॥ फिर यथेच्छ प्राशन करे ॥५॥ "अथ चेदुदधानः स्यात्०" इत्यादि दो ऋचाओं से अभिमंत्रण करके ॥६॥ दूसरे को बनाकर ध्रुवों से दृंहण करके ॥७॥ "हिरण्यवर्णा०" से जल का सेक करे ॥८॥ यह इन कर्मों में सर्वत्र शान्ति जल का प्रयोग करके सर्वत्र चातनों का अनुयोजन करे और मातृनामों को भी ॥९॥ सबही स्थान में सब लोग श्रेष्ठ धेनु कर्त्ता को देवें ॥१०॥ सर्वत्र कटोरा, कपड़ा, और गौ दक्षिणा देवे ॥११॥ ब्राह्मणों को ओदन भोजन करावें ॥१२॥ जैसा कहा गया वैसा या बिन कहे कर्मों के लिये यह प्रायश्चित्ति है ॥१३॥४४॥१३६॥ यह एक सौ छत्तीसवी कण्डिका समाप्त हुई ॥

यह अथर्ववेद के कौशिकसूत्र का तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१३॥

यथावितानं यज्ञवास्त्वध्यवसेत् ॥१॥ वेदिर्यज्ञस्याग्नेरुत्तरवेदिः ॥२॥ उभे प्रागायते किञ्चित्प्रथीयस्यौ पश्चादुद्यततरे ॥३॥ अपृथुसंमितां वेदिं विदध्यात् ॥४॥ षट्शमीं प्रागायतां चतुःशमीं श्रोण्याम् ॥५॥ त्रीन् मध्ये अधचतुर्थानग्रतः ॥६॥ त्रयाणां पुरस्तादुत्तरवेदिं विदध्यात् ॥७॥ द्विशमीं प्रागायतामृज्वीमध्यर्धशमीं श्रोण्याम् ॥८॥ ग्रीष्मस्ते भूम इत्युपस्थाय ॥९॥ विमिमीष्व पयस्वतीमिति मिमानमनुमन्त्रयते ॥१०॥ बृहस्पते परिगृह्णाण वेदिं सुगा वो देवाः सदनानि सन्तु । अस्यां बर्हिः प्रथतां साध्वन्तरहिंस्रा णः पृथिवी देव्यस्त्विति परिगृह्णाति ॥११॥ यत्ते भूम इति विखनति ॥१२॥ यत्त ऊनमिति संवपति ॥१३॥ त्वमस्यावपनी जनानामिति ततः पांसूनन्यतोदाहार्य ॥१४॥ बृहस्पते परिगृह्णाण वेदिमित्युत्तरवेदिमोप्यमानां परिगृह्णाति ॥१५॥ असम्बाधं बध्यतो मानवानामिति प्रथ-

---

यज्ञ के अनुसार (बड़े, छोटे आदि) यज्ञ गृह बनावे ॥१॥ अग्नि के उत्तर यज्ञवेदि बनावे। दोनों पूर्व-पश्चिम चौड़ा एवं कुछ मोटे हों उत्तर-दक्षिण लम्बी हो ॥ २ ॥ ३ ॥ अपृथु सम्मित वेदि बनावे ॥४॥ छः शमी पूर्वायत हों और चार शमी को श्रोणी में धरे ॥५॥ तीन को मध्य में, साढ़े चार शमी को आगे में ॥ ६ ॥ तीनों के पूर्व उत्तर वेदि को बनावे ॥ ७ ॥ दो शमी को पूर्वायता ऋज्वी हों और चौथाई शमी श्रोणी पर धरे ॥८॥ "ग्रीष्मस्ते भूम०" से उपस्थान करके ॥९॥ "विमिमीष्व पयस्वतीं०" से नापनेवाले को अनुमंत्रण करे ॥१०॥ "बृहस्पते परिगृह्णाण०" इत्यादि से परिग्रहण करे ॥११॥ "यत्ते भूम०" से भूमि को खनन करे ॥१२॥ "यत्त ऊनं०" से भर देवे ॥१३॥ "त्वमस्यावपनी०" इत्यादि से दूसरी जगह से धूलि को लाकरके ॥१४॥ "बृहस्पते परिगृह्णाण वेदिं०" इत्यादि से वेदि को भरते हुए को परिग्रहण करे ॥१५॥ "असंबाधं बध्यतो मानवानां०" से वेदि को पूर्व को ढालुआ बनावे और बालु को उस पर

यति ॥१६॥ यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या इति चतुरस्रां करोति ॥१७॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे इति लेखनमादाय यत्राग्निं निधास्यन्भवति तत्र लक्षणं करोति ॥१८॥ इन्द्रः सीतां निगृह्णात्स्विति दक्षिणत आरभ्योत्तरत आलिखति॥१९॥ प्राचीमावृत्य दक्षिणतः प्राचीम् ॥२०॥ अपरास्तिस्रो मध्ये ॥२१॥ तस्यां व्रीहियवावोप्य ॥२२॥ वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृतेत्यद्भिः सम्प्रोक्ष्य ॥२३॥ यस्यामन्नं व्रीहियवाविति भूमिं नमस्कृत्य ॥२४॥ अथाग्निं प्रणयेत् । त्वामग्ने भृगवो नयन्तामङ्गिरसः सदनं श्रेय एहि । विश्वकर्मा पुर एतु प्रजानन्धिष्ण्यं पन्थामनु ते दिशामेति ॥२५॥ भद्रश्रेयःस्वस्त्या वा ॥२६॥ अग्ने प्रेहीति वा॥२७॥ विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठेति लक्षणेप्रतिष्ठाप्य ॥२८॥ अथेध्ममुपसमादधाति ॥२९॥ अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निर्दिव आ तपस्यग्निवासाः पृथिव्यसितजूरेतमिध्मं

बिछावे ॥१६॥ "यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या" इत्यादि से चौकोन वेदि बनावे ॥१७॥ "देवस्य त्वा०" इत्यादि से लेखन को लेकर, जहाँ अग्नि का आधान करना होगा, वहाँ रेखायें खैंचे ॥१८॥ "इन्द्रः सीतां निगृण्हातु०" से दक्षिण से आरम्भ कर उत्तर तक रेखा करे ॥१९॥ पूर्व से लेकर दक्षिण पश्चिम रेखा करे ॥२०॥ दूसरी तीन रेखायें मध्य भाग में करे ॥२१॥ उसमें व्रीहि, यव को डाले ॥२२॥ "वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता०" से जल से संप्रोक्षण करके ॥२३॥ "यस्यामन्नं व्रीहियवौ०" से भूमि को नमस्कार करके ॥२४॥ अब अग्नि को प्रणयन करे "त्वामग्ने भृगवो०" इत्यादि से ॥२५॥ या "भद्रश्रेयःस्वस्त्या०" से ॥२६॥ या "अग्ने प्रेह०" से आहुति करे ॥२७॥ "विश्वंभरावसुधानी०" इत्यादि से रेखाओं को प्रतिष्ठा करके ॥२८॥ अब इध्मों का आधान करे ॥ २९ ॥ "अग्निर्भूम्यामोषधी०" इत्यादि पाँच ऋचा से स्तरण करे

समाहितं जुषाणोऽस्मै क्षत्राणि धारयन्तमग्न इति पञ्च-भिः स्तरणम् ॥३०॥ अत ऊर्ध्वं बर्हिषः ॥३१॥ त्वं भूमि-मस्येष्योजसेति दर्भान् सम्प्रोक्ष्य ॥३२॥ ऋषीणां प्रस्तरोऽ-सीति दक्षिणतोऽग्नेर्ब्रह्मासनं निदधाति ॥३३॥ पुरस्ता-दग्नेरुदक्संस्तृणाति ॥३४॥ तथा प्रत्यक् ॥३५॥ प्रदक्षिणं बर्हिषां मूलानि च्छादयन्तोत्तरस्या वेदिश्रोणेः पूर्वोत्तरतः संस्थाप्य ॥३६॥ अहे दैधिषव्योदतस्तिष्ठान्यस्य सदने सीद योऽस्मत्पाकतर इति ब्रह्मासनमन्वीक्षते ॥३७॥ निरस्तः पराग्वसुः सह पाप्मना निरस्तः सोऽस्तु योऽ-स्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इति दक्षिणा तृणं निर-स्यति ॥३८॥ तदन्वालभ्य जपतीदमहमर्वाग्वसोः सदने सीदाम्यृतस्य सदने सीदामि सत्यस्य सदने सीदामी-ष्टस्य सदने सीदामि पूर्तस्य सदने सीदामि मामृषदेव बर्हिः स्वासस्थं स्वाध्यासदेयमूर्णम्रदमनभिशोकम् ॥३९॥ विमृग्वरीमित्युपविश्यासनीयं ब्रह्मजपं जपति बृहस्पति-र्ब्रह्मा ब्रह्मसदन आसिष्यते बृहस्पते यज्ञं गोपाय यद्वुद्वत उन्नितः शकेयम् ॥४०॥ पातं मा द्यावापृथिवी अघान्न

॥२०॥ इसके पश्चात् बर्हि कुशों को ॥३१॥ "त्वं भूमिं०" से अग्नि के दक्षिण भाग में ब्रह्मा का आसन बिछावे ॥३३॥ अग्नि के पूर्व उत्तराग्र कुशों को बिछावे ॥३४॥ उसी प्रकार पश्चिम में उत्तराग्र कुशों को बिछावे ॥३५॥ प्रदक्षिण क्रम कुशों से वेदि के उत्तर कोण तक आच्छा-दन हो यों पूर्व उत्तर को संस्थापन करके ॥३६॥ "अहे दैधिषव्यो०" इत्यादि से ब्रह्मा के आसन को देखे ॥३७॥ "निरस्तः पराग्वसुः" इत्यादि से दक्षिण दिशा में तृण को फेक देवे ॥ ३८ ॥ उसको छूकर जप करे "इदमहमर्वाग्वसोः सदने०" इत्यादि से बैठकर आसनीय ब्रह्म जप को जप करे ॥ "बृहस्पतिर्ब्रह्मा०" इत्यादि से द्यावा और पृथिवी को देखे

इति द्यावापृथिव्यौ समीक्षते ॥४१॥ सविता प्रसवाना-मिति कर्मणिकर्मण्यभितोऽभ्यातानैराज्यं जुहुयात्॥४२॥ व्याख्यातं सर्वपाकयज्ञियं तन्त्रम् ॥४३॥१॥१३७॥

अष्टकायामष्टकाहोमाञ्जुहुयात् ॥१॥ तस्या हवींषि धानाः करम्भः शष्कुल्यः पुरोडाश उदौदनः क्षीरौदनस्तिलौदनो यथोपपादिपशुः ॥२॥ सर्वेषां हविषां समुद्धृत्य ॥३॥ दर्व्या जुहुयात्प्रथमा ह व्युवास सेति पञ्चभिः ॥४॥ आयमागन्संवत्सर इति चतसृभिर्विज्ञायते ॥५॥ ऋतुभ्यस्त्वेति विग्राहमष्टौ ॥६॥ इन्द्रपुत्र इत्यष्टादशीम् ॥७॥ अहोरात्राभ्यामित्यूनविंशीम् ॥८॥ पशावुपपद्यमाने दक्षिणं बाहुं निर्लोमं सचर्म सखुरं प्रक्षाल्य ॥९॥ इडायास्पदमिति द्वाभ्यां विंशीम् ॥१०॥ अनुपपद्यमान आज्यं जुहुयात् ॥११॥ हविषां दर्विं पूरयित्वा पूर्णा दर्वे

॥३९॥४०॥४१॥ "सविता प्रसवानां०" इत्यादि प्रत्येक कर्म में अभ्यातान मंत्रों से आज्य की आहुतियाँ देवे ॥४२॥ सर्व पाकयज्ञिय तन्त्र का व्याख्यान हुआ ॥४३॥१॥१३७॥ यह एकसौ सैतीसवी कण्डिका पूरी हुई ॥

अष्टकाओंमें अष्टकाहोमों की आहुतियाँ देवे ॥१॥ उसकी आहुति के लिये धाना, करम्भ, पूरियाँ, पुरोडाश, जल में पका भात, क्षीरौदन, तिलौदन यथोपपादि पशु ॥२॥ सब ही हवियों को निकालकर ॥३॥ दर्वी से आहुतियाँ देवे "प्रथमा ह व्युवास०" इन पाँच ऋ० से आहुतियाँ करे ॥४॥ "आयमागन्संवत्सर०" इन चार से आहुतियाँ देनी जान पड़ती है ॥५॥ "ऋतुभ्यस्त्वा०" से भी आठ आहुत्तियाँ ॥६॥ "इन्द्रपुत्र०" इत्यादि से अठारहवी॥ ७ ॥ "अहोरात्राभ्यां०" से उन्नीसवी ॥ ८ ॥ यदि पशु मिल जावे तो दहिने बाहु को लोम रहित, चर्म सहित, खुर सहित को प्रक्षालन करके ॥ ९ ॥ "इडायास्पदं०" इन दो ऋ० से बीसवी आहुति ॥१०॥ यदि पशु न मिले तो आज्य की आहुति करे ॥११॥ हवियों में दर्वी को डाल कर भर लेवे "पूर्णा दर्वे०" से दर्वी सहित आहुति देवे।

इति सदर्वीमेकविंशीम् ॥१२॥ एकविंशतिसंस्थो यज्ञो विज्ञायते ॥१३॥ सर्वा एव यज्ञतनूरवरुन्द्धे सर्वा एवास्य यज्ञतनूः पितरमुपजीवन्ति य एवमष्टकामुपैति ॥१४॥ न दर्विहोमे न हस्तहोमे न पूर्णहोमे तन्त्रं क्रियेतेत्येके ॥१५॥ अष्टकायां क्रियेतेतीषुफालिमाठरौ ॥१६॥२॥१३८॥

अभिजिति शिष्यानुपनीय श्वो भूते सम्भारान् सम्भरति ॥१॥ दधिसक्तून्पालाशं दण्डमहते वसने शुद्ध-माज्यं शान्ता ओषधीर्नवमुदकुम्भम् ॥२॥ बाह्यतः शान्त-वृक्षस्येध्मं प्राञ्चमुपसमाधाय ॥३॥ परिसमुह्य पर्युक्ष्य परिस्तीर्य बर्हिरुदपात्रमुपसाद्य परिचरणेनाज्यं परिचर्य ॥४॥ नित्यान् पुरस्ताद्धोमान् हुत्वाज्यभागौ च ॥५॥ पश्चादग्नेर्दधिसक्तूञ्जुहोत्यग्नये ब्रह्मप्रजापतिभ्यां भृग्व-ङ्गिरोभ्य उशनसे काव्याय ॥६॥ ततोऽभयैरपराजितैर्गण-

---

यह इक्कीसवी हुई ॥१२॥ इक्कीस संस्थ यज्ञ है ऐसा जान पड़ता है ॥१३॥ सब ही यज्ञ तनू को रोक लेता है। सब ही इसके यज्ञतनू से पितर लोगों का उपजीवन होता है जो अष्टका को करता है ॥१४॥ न दर्वि होम में, न हस्त होम में, न पूर्ण होम में तन्त्र को करे—ऐसा बहुत से आचार्य्य कहते हैं ॥१५॥ "अष्टका में करे" यह इषुफालि एवं माठर कहते हैं ॥१६॥२॥१३८॥ यह एकसौ अड़तीसवी कण्डिका पूरी हुई ॥

अभिजित् नक्षत्र के साथ जब चन्द्रमा हों तो शिष्यों को पास बुलाकर प्रातःकाल सामग्रियों को एकत्र करे ॥१॥ दही, सत्तू, पलाश का दण्ड, अखण्ड नये दो वस्त्र, शुद्ध आज्य, शान्ता ओषधी, नये घड़े ॥२॥ बाहर से शान्त वृक्ष के इध्मों को पूर्व को आधान करे ॥३॥ परिसमूहन, पर्युक्षण, परिस्तरण करके बर्हि कुश और जलपात्र लाकर यथाविधि परिचर्या करके ॥४॥ नित्य पुरस्तात् होम और आज्यभाग के दो होमों को करके ॥५॥ अग्नि के पश्चिम भाग में दही एवं सत्तू से "अग्नये ब्रह्मप्रजापतिभ्यां भृग्वङ्गिरोभ्य उशनसे काव्याय" की आहुति करके तब अभय गण, अपराजित गण, गणकर्म गण, विश्वकर्म गण, आयुष्य गण,

कर्मभिर्विश्वकर्मभिरायुष्यैः स्वस्त्ययनैराज्यं जुहुयात्॥७॥ मा नो देवा अहिर्वधीदरसस्य शर्कोटस्येन्द्रस्य प्रथमो रथो यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा नमस्ते अस्तु विद्युत्त आरेऽसावस्मदस्तु यस्ते पृथु स्तनयित्नुरिति संस्थाप्य होमान् ॥८॥ प्रतिष्ठाप्य स्रुवं दधिसक्तून्प्राश्याचम्योदकमुपसमारभन्ते ॥९॥ अव्यचसश्चेति जपित्वा सावित्रीं ब्रह्म जज्ञानमित्येकां त्रिषप्तीयं च पच्छो वाचयेत् ॥१०॥ शेषमनुवाकस्य जपन्ति ॥११॥ यो यो भोगः कर्त्तव्यो भवति तं तं कुर्वते ॥१२॥ स खल्वेतं पक्षमपक्षीयमाणः पक्षमनधीयान उपश्राम्येतादर्शात् ॥१३॥ दृष्टे चन्द्रमसि फल्गुनीषु द्वयान्रसानुपसादयति ॥१४॥ विश्वे देवा अहं रुद्रेभिः सिंहे व्याघ्रे यशो हविर्यशसं मेन्द्रो गिरावराग राटेषु यथा सोमः प्रातःसवने यच्च वर्चो अक्षेषु येन महानघ्न्या जघनं स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा ॥१५॥ रसेषु सम्पातानानीय संस्थाप्य होमान् ॥१६॥ तत एतान्प्राशयति रसान्समधुघृताञ्छिष्यान् ॥१७॥ यो यो भोगः

स्वस्त्ययन गण, इन सूक्तों के मंत्रों से आहुतियाँ देवे ॥७॥ "मा नो देवा०" इत्यादि से आहुतियाँ देवे और होमों को संस्थापन करके ॥८॥ स्रुव को धरकर, दधि सत्तू को प्राशन करके आचमन करके जल के पास जावे ॥९॥ "अव्यचसश्च०" इत्यादि का जप करके सावित्री को, "ब्रह्म जज्ञानं०" इस एक ऋचा को और त्रिषप्तीय को पद २ करके बाचें ॥१०॥ शेष अनुवाक का जप करे। जो २ भोग करना हो, उस २ को करे। वह अवश्य ही इस पक्ष को, अपक्षीयमाण पक्ष को नहीं पढ़ते हुए पर्व तक विश्राम करे ॥११॥१२॥१३॥ जब चन्द्रमा फल्गुनी नक्षत्र पर हों तो दो रसों को लाकर "विश्वे देवा०" इत्यादि से अग्नि में आहुति करके ॥१४॥१५॥ रसों में सम्पातों को लाकर होमों को संस्थापन करके ॥१६॥ इसके पश्चात् इन रसों को तीन शिष्यों को प्राशन करावे (मधु, रस,

कर्तव्यो भवति तं तं कुर्वते ॥१८॥ नान्यत आगताञ्छिष्यान् परिगृह्णीयात्परसन्दीक्षितत्वात् ॥१९॥ त्रिरात्रोनांश्चतुरो मासाञ्छिष्येभ्यः प्रब्रूयादर्धपञ्चमान् वा ॥२०॥ पादं पूर्वरात्रेऽधीयानः पादमपररात्रे मध्यरात्रे स्वपन्॥२१॥ अभुक्त्वा पूर्वरात्रेऽधीयान इत्येके ॥२२॥ यथाशक्त्यपररात्रे दुष्परिणामो ह पादः ॥२३॥ पौष्यस्यापरपक्षे त्रिरात्रं नाधीयीत ॥२४॥ तृतीयस्याः प्रातः समासं सन्दिश्य यस्मात्कोशादित्यन्तः ॥२५॥ यस्मात्कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरवदध्म एनम् । अधीतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेहेति ॥२६॥ यो यो भोगः कर्तव्यो भवति तं तं कुर्वते ॥२७॥ ये परिमोक्षं कामयन्ते ते परिमुच्यन्ते ॥२८॥३॥१३९॥

घृत,) ॥१७॥ जो २ भोग करना हो, उस २ को भोग करे ॥१८॥ अन्य स्थानों से आये हुए शिष्यों को रसों को प्राशन न करावे क्योंकि उनकी दीक्षा दूसरे आचार्यों से मिली है ॥१९॥ तीन रात न्यून चार मास तक आचार्य्य शिष्यों को प्रवाचन करे या साढ़े पाँच महीने ॥२०॥ रात्रि के पूर्व भाग में एक पाद और आधी रात्रि के पीछे एक पाद पढ़े, रात्रि के मध्य भाग में शयन करे ॥२१॥ विना भोजन किये हुए रात के पूर्व भाग में पढ़े ऐसा किन्हीं का मत है ॥२२॥ यथाशक्ति अपर रात्र में पढ़े, इस समय पाद पढ़ने का परिणाम बुरा होता है क्योंकि पाद दुष्परिणाम है ॥२३॥ पौष्य मास के अपर पक्ष में तीन रात्रि न पढ़े ॥२४॥ तृतीया के प्रातःकाल समास को आरम्भ कर "यस्मात् कोशात्" इस अन्त तक ॥२५॥ "यस्मात् कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरवदध्म एनम् । अधीतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेहेति ॥२६॥ यो यो भोगः कर्तव्यो भवति तं तं कुर्वते ॥२७॥ ये परिमोक्षं कामयन्ते ते परिमुच्यन्ते" ॥२८॥३॥१३९॥ यह एकसौ उनतालीसवी कण्डिका पूरी हुई ॥

अथ राज्ञामिन्द्रमहस्योपाचारकल्पं व्याख्यास्यामः ॥१॥ प्रोष्ठपदे शुक्लपक्षे अश्वयुजे वाष्टम्यां प्रवेशः ॥२॥ श्रवणेनोत्थापनम् ॥ ३ ॥ संभृतेषु संभारेषु ब्रह्मा राजा चोभौ स्नातावहतवसनौ सुरभिणौ व्रतवन्तौ कर्मण्या-वुपवसतः ॥४॥ श्वो भूते शं नो देव्याः पादैरर्धर्चाभ्यामृचा षट्कृत्वोदकमाचामतः ॥५॥ अर्वाञ्चमिन्द्रं त्रातारमिन्द्रः सुत्रामेत्याज्यं हुत्वा ॥६॥ अथेन्द्रमुत्थापयन्ति ॥७॥ आ त्वाहार्षं ध्रुवा द्यौर्विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्विति सर्वतो-ऽप्रमत्ता धारयेरन् ॥८॥ अद्भुतं हि विमानोत्थितमुपति-ष्ठन्ते ॥ ९ ॥ अभिभूर्यज्ञ इत्येतैस्त्रिभिः सूक्तैरन्वारब्धे राजनि पूर्णहोमं जुहुयात् ॥१०॥ अथ पशूनामुपाचारम् ॥११॥ इन्द्रदेवताः स्युः ॥१२॥ ये राज्ञो भृत्याः स्युः सर्वे दीक्षिता ब्रह्मचारिणः स्युः ॥१३॥ इन्द्रं चोपसद्य यजेरंस्त्रि-रात्रं पञ्चरात्रं वा ॥१४॥ त्रिरयनमह्नामुपतिष्ठन्ते हविषा च

अब राजाओं के इन्द्र महोत्सव का आचार कल्प को कहेंगे ॥१॥ भादो मास के शुक्लपक्ष में या आश्विन के अष्टमी को प्रवेश करे ॥२॥ और श्रावण मास में उत्थापन करे ॥३॥ सामग्रियों के जुट जाने पर ब्रह्मा और राजा दोनों, स्नान करके अखण्ड नये वस्त्र पहिने हुए, सुगन्धि से युक्त, व्रती, कर्म में उपवास रहते हुए ॥४॥ प्रातःकाल "शन्नो देव्या०" इत्यादि के पादों, आधी ऋचाओं से छः बार जल से आचमन करते हुए ॥५॥ "अर्वाञ्चमिन्द्रं०" से आज्य की आहुति करके ॥६॥ अब इन्द्र को उत्थापन करे ॥७॥ "आ त्वा हार्षं०" इत्यादि से सब ओर अप्रमत्त हो धारण करे ॥८॥ क्योंकि आश्चर्य है उठाये हुए विमान का उपस्थान करना ॥९॥ "अभिभूर्यज्ञ०" इन तीन ऋचाओं के सूक्तों से अन्वारब्ध करके राजा पूर्ण होम करे ॥१०॥ अब पशु के उपचार को कहते हैं ॥११॥ इन्द्र देवता होवें ॥१२॥ जो राजा के नौकर होवें वे सब दीक्षित ब्रह्मचारी होवें ॥ १३ ॥ इन्द्र के पास पहुँच कर तीन रात्रि या पाँच

यजन्ते॥१५॥ आवृत्त इन्द्रमहमिति॥१६॥ इन्द्र क्षत्रमिति हविषो हुत्वा ब्राह्मणान् परिचरेयुः॥१७॥ न संस्थितहोमाञ्जुहुयादित्याहुराचार्याः ॥१८॥ इन्द्रस्यावभृथादिन्द्रमवभृथाय व्रजन्ति ॥१९॥ अपां सूक्तैराप्लुत्य प्रदक्षिणमावृत्याप उपस्पृश्यानवेक्षमाणाः प्रत्युदाव्रजन्ति ॥२०॥ ब्राह्मणान् भक्तेनोपेप्सन्ति ॥२१॥ श्वः श्वोऽस्य राष्ट्रं ज्यायो भवत्येकोऽस्यां पृथिव्यां राजा भवति न पुरा जरसः प्रमीयते य एवं वेद यश्चैवं विद्वानिन्द्रमहेण चरति॥ २२॥४॥१४०॥

अथ वेदस्याध्ययनविधिं वक्ष्यामः ॥१॥ श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वोपाकृत्यार्धपञ्चमान्मासानधीयीरन् ॥ २ ॥ एवं छन्दांसि ॥३॥ लोम्नां चानिवर्तनम् ॥४॥ अर्धमासं चोपाकृत्य क्षपेरंस्त्र्यहमुत्सृज्य । आरम्भः श्रावण्या-

---

रात पूजा करे॥ १४ ॥ तीन अयन दिनों का उपस्थान करें आहुतियों से यज्ञ करे ॥ १५ ॥ इन्द्र को घेर, "इन्द्रमहं०" से आहुति करे। "इन्द्र क्षत्रं०" से हवियों की आहुति करके, ब्राह्मणों की परिचर्या करें ॥१६॥१७॥ आचार्यगण कहते हैं कि संस्थित होमों को न करे ॥१८॥ इन्द्र के अवभृथ से इन्द्र के अवभृथ के लिये जावें ॥ १९ ॥ जल सूक्त से स्नान कर, प्रदक्षिण फेरे लगाकर, जल छूकर, नहीं देखते हुए, आवें ॥ २० ॥ ब्राह्मण चाहें उनको देकर उन्हें प्रसन्न करें ॥ २१ ॥ दिन २ इसका राष्ट्र बढ़े, पृथिवी का राजा होवे और बुढ़ापेसे पहिले इसकी मृत्यु न होवे। जो ऐसा जानता है और जो विद्वान् इन्द्र महोत्सव जैसा करता है ॥२२॥४॥१४०॥ यह एकसौ चालीसवी कण्डिका खतम हुई ॥

अब वेद का अध्ययन विधि को कहेंगे ॥ १ ॥ श्रावण की पौर्णमासी या भाद्रपद की पौर्णमासी को वेद का उपाकृत्य (आरम्भ) कर साढ़े पाँच महीने पढ़ें ॥ २ ॥ इसी प्रकार छन्दों को पढ़ें ॥ ३ ॥ लोमों को न कटवावें ॥ ४ ॥ अर्ध मास तक आरम्भ करके तीन दिन पढ़ना बन्द

मुक्तः पौष्यामुत्सर्ग उच्यते ॥५॥ अथानध्यायान्वक्ष्यामः ॥६॥ ब्रह्मज्येषु निवर्तते ॥७॥ श्राद्धे ॥८॥ सूतकोस्थानच्छर्दनेषु त्रिषु चरणम् ॥९॥ आचार्योस्तमिते वा येषां च मानुषी योनिः ॥१०॥ यथा श्राद्धं तथैव तेषु ॥११॥ सर्वं च श्राद्धिकं द्रव्यमदसाहव्यपेतं प्रतिगृह्यानध्यायः ॥१२॥ प्राणि चाप्राणि च ॥१३॥ दन्तधावने ॥१४॥ क्षुरसंस्पर्शे ॥१५॥ प्रादुष्कृतेष्वग्निषु ॥१६॥ विद्युतार्धरात्रे स्तनिते ॥१७॥ सप्तकृत्वो वर्षेण विरत आप्रातराशम् ॥१८॥ वृष्टे ॥१९॥ निर्घाते ॥२०॥ भूमिचलने ॥२१॥ ज्योतिषोपसर्जन ऋतावप्याकालम् ॥ २२ ॥ विषमे न प्रवृत्तिः ॥ २३ ॥ अथ प्रमाणं वक्ष्यामः समानं विद्युदुल्कयोः। मार्गशीर्षपौषमाघापरपक्षेषु तिस्रोऽष्टकाः ॥२४॥ अमावास्यायां च ॥२५॥ त्रीणि चानध्ययनानि ॥२६॥ जनने मरणे चैव दश-

---

करके, श्रावणी में आरम्भ करना कहा गया और पौष की पौर्णमासी को पढ़ना छोड़ देवें ॥५॥ अब अनध्यायों को कहेंगे ॥ ६ ॥ ब्रह्मज्यों में छोड़े ॥ ९ ॥ आचार्य सूर्यास्त होने पर या जिनके घर में प्रसव होवे उनको सूतक तक न पढ़ना चाहिये ॥ १० ॥ जैसा श्राद्ध वैसा ही उनके लिये भी ॥ ११ ॥ सब ही श्राद्धिक दशाह तक प्रत्येक गृही को वर्ज्य है ॥१२॥ जीवधारी या अप्राणि हो ॥१३॥ दन्तधावन में, नापित के क्षुर के संसर्ग में, प्रादुष्कृत अग्नि में, आधी रात को बिजुली कड़कने में ॥१४॥१५॥१६॥१७॥ सात वार तक पढ़ने से विरत रहे जब तक प्रातःकालिक भोजन हो ॥१८॥ वर्षा होने में, उल्कापात में, भूमिकम्प में ॥१८॥१९॥२०॥२१॥ ज्योतिष (प्रकाश का छिप जाना) के उपसर्जन में, ऋतु में भी जब तक काल हो ॥२२॥ संकट में प्रवृत्ति न करे ॥२३॥ अब प्रमाण को कहते हैं । बिजुली एवं उल्कापात में समान दोष है ॥२४॥ अग्रहण, पौष, माघ के अपर पक्षों में तीन अष्टकायें होती हैं ॥२४॥ और अमावास्या में भो ॥२५॥ और तीन ही अनध्याय हैं ॥२६॥

रात्रो विधीयते ॥ आचार्ये दशरात्रं स्यात्सर्वेषु च स्व-योनिषु ॥२७॥ सूतके स्वेको नाधीयीत त्रिरात्रमुपाध्यायं वर्जयेत् ॥२८॥ आचार्यपुत्रभार्याश्च ॥२९॥ अथ शिष्यं सहाध्यायिनमप्रधानगुरुं चोपसन्नमहोरात्रं वर्जयेत्॥३०॥ तथा सब्रह्मचारिणं राजानं च ॥३१॥ अपर्तुदैवमाकालम् ॥३२॥ अविशेषर्तुकालेन सर्वे निर्घातादयः स्मृताः। यच्चान्यद्दैवमद्भुतं सर्वं निर्घातवद् भवेत्॥३३॥ ऋतावध्याय श्छान्दसः काल्प्य आपर्तुकः स्मृतः॥ ऋतावूर्ध्वं प्रात-राशाद्यस्तु कश्चिदनध्यायः। सन्ध्यां प्राप्नोति पश्चिमाम् ॥३४॥ सर्वेण प्रदोषो लुप्यते ॥३५॥ निशि निगदायां च विद्युति शिष्टं नाधीयीत ॥३६॥ अस्तमिते द्विसत्तायां त्रिसत्तायां च पाटवः। अथ तावत्कालं भुक्त्वा प्रदोष

जन्म और मरण में दश रात्रि अशौच होता है, आचार्य के मरण में भी दश रात अशौच होता है, सब ही सगोत्री को अशौच होता है ॥२७॥ तक में एकही न पढ़े, तीन रात उपाध्याय के पास जाना बन्द कर देवे ॥२८॥ आचार्य, पुत्र, उनकी भार्या, इनके पास न जावे तीन रात तक ॥२९॥ अब शिष्य जो साथ पढ़ता है, और अप्रधान गुरु, जो पास रहते है उनके पास एक दिन रात न जावे ॥३०॥ उसी प्रकार साथ के ब्रह्मचारी और राजा के पास भी एक दिन रात न जावे ॥३१॥ अपर्तु-दैव अर्थात् ऋतु अस्वाभाविक हो एवं दैवी उपद्रव हो तो जब तक अच्छा समय न हो तब तक न पढ़े ॥३२॥ अविशेष ऋतुकाल में सबही को वज्रपात की भांति अपसमय जानना ॥ और भी जितने अद्भुत हैं सबही वज्रपात की भांति हैं ॥३३॥ ऋतु में छन्दों का पढ़ना और कल्प पढ़ना अपर्तु में। ऋतु के पश्चात् प्रातराश। तक जो कोई अनध्याय है। सायंकाल होने पर (सायंकाल) ॥३४॥ सबही के मत से प्रदोष काल (रात्रि का आरम्भ) दूषित है ॥ ३५ ॥ रात्रि में निगदा (निःशब्द होने में) काल में, बिजुली कड़कने में न पढ़े ॥३६॥ अस्तमित काल में, दो या तीन सन्धिकाल में न पढ़े ॥ प्रदोष, दोनों सन्ध्या, जल में,

उभे सन्ध्ये ॥३७॥ अप्सु श्मशाने शय्यायामभिशस्ते खिलेषु च ॥ अन्तःशवे रथ्यायां ग्रामे चाण्डालसंयुते ॥३८॥ दुर्गन्धे शूद्रसंश्रावे पैङ्गे शब्दे भये रुते । वैधृते नगरेषु च ॥३९॥ अनिक्तेन च वाससा चरितं येन मैथुनम् । शयानः प्रौढपादो चाग्रतोपस्थान्तिके गुरोः ॥४०॥ विरम्य मारुते शीघ्रे प्रत्यारम्भो विभाषितः ॥ सर्वेणापररात्रेण विरम्य प्रत्यारम्भो न विद्यते ॥ ४१ ॥ पौषी प्रमाणमभ्रेष्वापर्तु चेदधीयानाम् ॥४२॥ वर्षं विद्युत्स्तनयित्नुर्वा विपद्यते ॥४३॥ त्रिरात्रं स्थानासनं ब्रह्मचर्यमरसाशं चोपेयुः ॥ ४४ ॥ सा तत्र प्रायश्चित्तिः सा तत्र प्रायश्चित्तिः ॥४५॥५॥१४१॥

इत्यथर्ववेदे कौशिकसूत्रे चतुर्दशोऽध्यायः समाप्तः ॥१४॥

॥ इति कौशिकसूत्रं समाप्तम् ॥

श्मशान में, बिछावन (शयन स्थान में) पर, जिस स्थान में शव हो, गली में, जिस ग्राम में चाण्डाल रहता हो, दुर्गन्ध स्थान में, शूद्र के संश्राव में, पैङ्ग के शब्द होने में, भय में, जानवरों के बोलने पर, वैधृत्य में, नगरों में न पढ़े ॥ ३७॥ ३८॥ ३९॥ जिस वस्त्र से मैथुन किया है उसको जल से प्रक्षालन किया और उसी को पहने हुआ हो, सोता हुआ, प्रौढ़ पैरों से गुरु के पास बैठकर न पढ़े ॥४०॥ वायु शीघ्र गति से बहती समय पढ़ना बन्द कर देवे और आधी रात्र के पश्चात् पढ़ना बन्द कर देवे ॥४१॥ पौष में यदि बादल लग जावे और अपर्तु हो तो न पढ़े ॥४२॥ वृष्टि, बिजुली, बादल इनसे विपद् ग्रस्त हो तो न पढ़े ॥४३॥ तीन रात, स्थान, आसन, ब्रह्मचर्य, रसरहित भोजन करके नियमित रहे ॥४४॥ यह उसकी प्रायश्चित्ति है। यह उसकी प्रायश्चित्ति है ॥४५॥५॥१४१॥ यह एकसौ एकतालीसवी कण्डिका खतम हुई ।

यह अथर्ववेद के कौशिक सूत्र के ठा० उदयनारायण सिंह मधुरापुर, जिला मुजफ्फरपुर कृत भाषानुवाद का चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥१४॥

और कौशिक सूत्र भी समाप्त हुआ ।

पुस्तक मिलने का पता--

ठाकुर उदयनारायण सिंह, शास्त्रप्रकाश भवन

मु० मधुरापुर, पो० बिद्दूपुर बाजार

जि० मुजफ्फरपुर।

❀ अथ ❀

पण्डित हारिलकेशवयोः

संक्षिप्तटीका प्रकाश्यते ।

अथर्ववेदस्य संहिताविधेर्विवरणं क्रियते । तत्र अथर्ववेदस्य नव भेदा भवन्ति । तत्र चतसृषु शाखासु शौनकादिषु कौशिकोऽयं संहिताविधिः । स च गोपथब्राह्मणादर्थवादादि परित्यज्य विधिमात्रं कल्पयित्वा विधेः कृतसूत्रयथोपयोगं टीका क्रियते संहिताविधेः ।

कण्डिका ॥ १ ॥

सू० १ । —अथशब्द आनन्तर्यार्थः । संहिताध्ययनानन्तरं विधेरधिकारः । संहिताविधिं वक्ष्यामः । शान्तिकपौष्टिकाभिचारिकाद्भुतादीनि कर्माणि संहिताविधौ उक्तानि । त्रिविधानि कर्माणि विधिकर्माणि अविधिकर्माणि उच्छ्रयकर्माणि त्रिप्रमाणको विधिः प्रत्यक्षं अनुमानं शब्दं चेति । उपवर्षाचार्येणोक्तम् । मीमांसायां स्मृतिपादे कल्पसूत्राधिकरणे नक्षत्रकल्पो वितानकल्पस्तृतीयः संहिताकल्पश्चतुर्थो अङ्गिरसां कल्पः शान्तिकल्पस्तु पञ्चमः । एते कल्पा वेदतुल्या हि इति भगवानुपवर्षाचार्येण प्रतिपादितं अन्ये कल्पाः स्मृतितुल्याः । प्रागुदग्वा कर्मसमाप्तिर्दैवकर्मसु दक्षिणा प्रत्यग्वा समाप्तिः पितृकर्मसु केचित्प्रागुदगन्तराले समाप्तिः । —सू० १७ । यथा परित्वाग्ने पुरं वयमिति त्रिः पर्यग्नि करोति । कौ० सू० २।१० । —सू० २६ । अग्निं पृष्ठतो नावसेत । —सू०२९।३० । सांख्यायनीये ब्राह्मणे उक्तं द्वे पौर्णमास्यौ द्वे अमावास्ये इति पौर्णमास्याः प्रतिपदिति अमावास्यायां प्रतिपदिति पूर्वा उपोष्या उत्तरा याज्या। कौ० । ब्रा० ३।१ । —सू० ३१ । तिथिभेदे मुख्यपौर्णमासोभेदे या पूर्वा सा उपोष्या । उपवासं करोति ।

कण्डिका ॥ २ ॥

सायंप्रातर्होमवैश्वदेवपिण्डपितृयज्ञादि उद्धृतेऽग्नौ कार्याणि। सू०—१७ । (केशवोऽन्यदपि पठति) ऊर्णाम्रदं —सू० १८ । भूपत इति ब्रह्मवरणं तथा च गोभिलब्राह्मणम्—प्रत्यक्षं वा दर्भमयं वा आसनं वा उदककमण्डलुं वा ब्रह्मस्थापने वा कुर्यात् ।

कण्डिका ॥ ३ ॥

सू० १। —युनज्मि त्वेत्येभिः पञ्चभिरिध्ममुपसमादधाति । द्वितीया कण्डिका। —सू० २। जागमायनमुदपात्रं कांस्यपात्रमुपसाद्य। —सू० ४। जीवास्थेति सूक्तेन त्रिराचामति। सत्यं बृहदिति नवभिः शन्तिवेत्यृचा उदायुषेति द्वाभ्यामुत्तिष्ठति। (कौ० २४।३१)

कण्डिका ॥ ४ ॥

सू० ९। —उदेनमुत्तरं नयति त्रिभिर्ऋग्भिः प्रजापते न त्वदिति (७।८०।३) चतस्रश्चर्वाहुतीर्जुहोति (कौ० ५।९)। त्वामग्न इत्यृचा (९।५९।१) चतस्र आज्याहुतीर्जुहोति।

कण्डिका ॥ ५ ॥

सू० १३। —स्वाहेष्टेभ्य इत्येवमादिभिरेकादशभिः सर्वप्रायश्चित्तीयाजुहोति "यन्मे स्कन्नं पुनर्मैत्विन्द्रियमिति च द्वाभ्यामृग्भ्याम्"।

कण्डिका ॥ ६ ॥

सू० १०।—केशवः पठति० निसिलः। सू० १६।—अगन्म स्वरिति पर्यायद्वयेन। सू० १७।—पल्न्याञ्जलौ। सू० २२।—तस्मान्नादक्षिणं हविःशब्देनाज्यतन्त्रं पाकतन्त्रं चोच्यते। कर्ममात्रमभिमन्त्रणाद्यदक्षिणं न कुर्यात्। पाकतन्त्रे पूर्णपात्रं माणकं सेतिका प्रस्थद्रोणाढकादि। पूर्णपात्रं यजमानशक्त्यपेक्षं "शक्त्या वा दक्षिणां दद्यान्नातिशक्तिर्विधीयते" इत्युक्तं नवमे। आज्यतन्त्रे धेनुः। सू० २६। तथा च ब्राह्मणम्। सू० ३०। आज्यतन्त्रे पाकतन्त्रे दर्शपूर्णमासधर्मा भवन्ति पूर्वतन्त्रं च उत्तरतन्त्रं च सर्वेषु पाकतन्त्रेषु सर्वमाथर्वणं कर्म पाकयज्ञशब्देनोच्यते। सू० ३४।—अत्रापि गोपथब्राह्मणपठितौ श्लोकौ भवतः। सू० ३४।—केशवोऽपि पठति—देवतेति। सू० ३७।—त्वमग्ने व्रतपा असि तृचं सूक्तं कामस्तदग्र इति पञ्चर्चं सूक्तं एते चारणवैद्यानां पठ्यन्ते तस्मिन्नेव तन्त्रे आज्यं जुहोति शान्तसमिधो वा आदधाति सूक्तयोर्विकल्पः। दर्शपूर्णमासव्यतिक्रमे प्रायश्चित्तम्। सर्वत्र कर्मव्यतिक्रमे सर्वप्रायश्चित्तीयान्होमाञ्जुहोति। तस्मिन्नेव तन्त्रे अन्यस्मिन्तन्त्रे वा तन्त्रमध्ये सर्वे होमा इति भद्रमतम्। अथ सर्वार्थाः परिभाषा विधिकर्मार्था अविधिकर्मार्था उच्छ्रयकर्मार्था उच्यन्ते। मेधाजननादिपिण्डपितृयज्ञान्तं यावद्विधिकर्माणि। मधुपर्कादि इन्द्रमहान्तं यावदविधिकर्माणि। पाकयज्ञविधिकर्मसूक्तेन विनियोगं कृत्वा पश्चाद्दर्चा विनियोगस्तान्युच्छ्रयकर्माणि। त्रिविधानि कर्माणि। उपदधातीत्यनादेशे आज्यं समित् पुरोडाशः पयः उदौदनः पायसः व्रीहिः यवः तिलः धानाः करम्भः

शष्कुल्यः एतानि त्रयोदश हवींषि जानीयात्। सर्वत्र इयं पैठीनसिपरिभाषा सर्वत्र हविषां विकल्पः। यत्र गणस्तत्र सर्वत्र सूक्तानां विकल्पः यत्रौषधिगणस्तत्रौषधीनां विकल्पः। हविषां त्वा जुष्टं प्रोक्षामीति सर्वद्रव्येषु प्रोक्षणम्। सर्वत्र उत्पवनं हविषामिति युवाकौशिक आचार्यो मन्यते। अवशिष्टानां परिभाषाः पुनरुच्यन्ते सर्वकर्मार्थाः। आज्यतन्त्रादि वैदिकेषु कर्मसु सर्वत्र वृद्धिश्राद्धम्। यत्र उदकेन प्रयोजनं तत्र सर्वत्र शान्त्युदकं कुर्यात्। चतुर्भिर्गणैरेकेन वा गणेन। सूक्तादिग्रहणे सूक्तं जानीयात्। सर्वत्र स्रुवहोमे नित्यं तन्त्रं हस्तहोमे विकल्पेम तन्त्रम्। आज्यतन्त्रे सर्वत्र धेनुर्दक्षिणा हविरुच्छिष्टं च अधिकरणं च। आज्यतन्त्रमुच्यते। अभ्यचसश्च बर्हिर्लवनं वेदिः उत्तरवेदिः अग्निप्रणयनं अग्निप्रतिष्ठापनं व्रतग्रहणं पवित्रकरणं पवित्रेणेध्मप्रोक्षणं इध्मोपसमाधानं बर्हिःप्रोक्षणं ब्रह्मासनं ब्रह्मस्थापनं स्तरणं स्तीर्णप्रोक्षणं आत्मासनं उदपात्रस्थापनं आज्यसंस्कारः स्रुवग्रहणं पुरस्ताद्धोमाः आज्यभागौ अभ्यातानान्तं पूर्वतन्त्रम्। अथ उत्तरतन्त्रमुच्यते। अभ्यातानादि पार्वणहोमः समृद्धिहोमाः स्विष्टकृद्धोमः सर्वप्रायश्चित्तीयहोमाः स्कन्नहोमः पुनर्मैत्विन्द्रियहोमः। स्कन्नास्मृतिहोमौ संस्थितहोमाः चतुर्गृहीतहोमः बर्हिर्होमः संस्रवहोमः विष्णुक्रमाः व्रतविसर्जनं दक्षिणादानं ब्रह्मोत्थापनं यस्मात्कोशादित्येतद् उत्तरतन्त्रम्। उत्तरतन्त्रं समाप्तम्।

कण्डिका ॥ ७ ॥

परिभाषाव्याख्यानं क्रियते—। सू० ९। —यथा पिञ्जूलीभिराप्लावयति। घटं वा कांस्यपात्रं वा। सू० ११। —दूराद्देशाद्वृक्षसंभारा आहर्तव्याः। सू० १३। नित्यनैमित्तिककाम्यानां कर्मणां प्रयोगः। अरण्यं शान्तिकल्पे उक्तम्। यत्र ग्रामशब्दो न श्रूयते तत्रारण्यम्। —सू० १४। प्रेक्षमाणा—सू० १४। सर्वहोमकर्म समाप्यते ततोऽवभृथं कुर्यात्। सर्वत्र पुंसवनादिषु संस्कारेषु गृहे प्रयोगः नावभृथ इति रुद्रभाष्यमतम्। सू० १५। —आज्यादिषु सर्वत्र संपाताभिमन्त्रणं भवति। सू० १६। —सर्वे पदार्था अभिमंत्र्य कर्तव्याः। सू० १८। तं पुरुषं अग्रे कृत्वा गृहे प्रवेश्य ततो मन्थौदनौ प्रयच्छति। (कौशिक ७।७।) यथा उतामृतासुः शिवास्त इत्यभ्याख्याताय प्रयच्छति (कौ० ४६।१।) मंत्रेण। —सू० १९। —यत्र वासितं बध्नाति तत्र सर्वत्र त्रयोदश्यादि भवति। यथा युग्मकृष्णलं वासितं बध्नाति। (कौ० ११।१९।५२।२०)—सू० २०। —मणिं बद्ध्वा तद्दधिमधु आशयति। सू० २१। —अन्वारब्धे यजमाने च कर्तव्याः। अभिमन्त्रणम्। यजमान उत्तरतो भूत्वा दर्भैरन्वारभते। सू० २४। —समर्थवृषभचर्म। सू० २६। —यत्र आप्लवनं अवसेचनं च तत्र आचमनं च भवति। सू० २८। —समित्पुरोडाशचरुव्रीहि-

यवतिलादीन्याभ्याधेयादीनि यजमानं धूमं भक्षयति । सू० २९ । —कर्मसमाप्तौ शुचिना कर्मप्रयोगः । नित्यनैमित्तिककाम्यानि कर्माणि स्नानं कृत्वा प्रयुञ्जीत ।

कण्डिका ॥ ८ ॥

सू० १ । —सर्वकर्मार्था परिभाषा । अथ निशाकर्मपरिभाषा उच्यन्ते । येषु निशाकर्मसु तन्त्रं तेषु अयं धर्मः । केचित् स्नातोऽहतवसनः प्रयुङ्क्ते इति सर्वार्था परिभाषा मन्यन्ते । —सू० २ । अथ स्वस्त्ययनपरिभाषा उच्यन्ते । स्वस्त्ययनेषु चेज्यानो दिश्यान् बलीन् हरति प्रतिदिशमुपतिष्ठते । येऽस्यां स्थेति सूक्तेन प्रतिदिशं प्रत्यृचं बलिहरणं करोति । प्राचीदिगिति । प्रतिदिशमुपतिष्ठते । यथा उत्तमेन सारूपवत्सस्य रुद्राय त्रिर्जुहोति । (कौ० ५०।१४) तत्र हविरुच्छिष्टेन बलिहरणं कुर्यात्। समाप्ता स्वस्त्ययनपरिभाषा। सू० ५। —पुनः सर्वार्थाः परिभाषा उच्यन्ते। सर्वत्राधिकरणं कर्तुर्दक्षिणा । हविरुच्छिष्टं आज्यधानी उदपात्रं चर्मंमण्डपदर्भसमिधः शान्त्युदकभाजनं स्रुक्स्रुवादीनि देयानि । नित्येषु नाधिकरणमस्ति परद्रव्येषु नाधिकरणमस्ति यथा नापितस्य क्षुरम् । (कौ० ५५।) सू० ६ । —प्रोक्षणाचमनपर्युक्षणादि त्रिः कर्त्तव्यम् । सू० ८ । सर्वत्र शान्तिकेषु शान्तं संभारं दर्भसमिधादि । अभिचारे रौद्रं आङ्गिरसं संभारं (कौ० ४७।२।) सू० ९। —स्रुक्स्रुवसमिधः काष्ठादि मणिद्रव्यकाष्ठाः कर्तव्यानि । प्रतीकं च द्रव्यञ्च । यथा कथं मह इति मादानकश्र्तं क्षीरौदनमश्नाति । चमसे सरूपवत्सायाः दुग्धे (कौ० १२।१।२।) चमसोऽपि मादानक एव । कथं मह इति उत्तरमपि अनेन सूक्तेन कर्म कुर्यात् । सू० १० विषये यथान्तरम् । मन्त्रद्रव्यसंशये संनिधानं गृहीतव्यं यथा लोमानि हस्तिरोमाणि यथा विद्मा शरस्येति प्रमेहणं बध्नाति (कौ० २५।१०) सू० १२ । उलूखलमुसलकाष्ठम्। अन्यार्थं इन्धनार्थं काष्ठतक्षणं करोति। सू० १५। —अथ शान्तवृक्षा उच्यन्ते। स्रगूमालवके प्रसिद्धः। बंधः कान्यकुब्जे प्रसिद्धः। शिरीषो भोजपुरे वाटिकायां प्रसिद्धः। स्रक्त्यस्तिलकः प्रसिद्धः। वरणो वरुणकः इति आनन्दपुरे प्रसिद्धः। जङ्गिडो वाराणस्यां प्रसिद्धः। कुडको मालवके। गर्ह्यो हिमवति। गलावलस्तत्रैव प्रसिद्धः। स्यन्दनः हिमवति नर्मदायां प्रसिद्धः। अरणिका नर्मदातटे प्रसिद्धः। अश्मयोक्त अश्मन्तको भृगुकच्छे प्रसिद्धः। तुन्युस्तैन्दुका। पूतदारुर्देवदारुर्वैद्यके प्रसिद्धः। समाप्ताः शान्तवृक्षाः। सू० १६। अथ शान्त्यौषधय उच्यन्ते। चित्तिः प्रसिद्धा प्रायश्चित्तिः पर्वणि पर्वणि तस्याः त्रीणि त्रीणि पात्राणि भवन्ति। शमकानन्दपुरे विश्वामित्रीवाप्याः समीपेऽस्ति। सर्वशावर्मौलिका साम्यवाका काकजंघासदृशा तलाशा वेतसी। वास्तक आटरूषकः (कौ० ३९।६) सीसपात्रं (शीशम) प्रसिद्धम्। शाल्मलिः प्रसिद्धः सिपुनांकुरी। आकृतिलोष्टः क्षेत्रमृत्तिका वल्मीकमृत्तिका। एताः सर्वाः

शान्ता ओषधयः शान्त्युदकादौ प्रयोक्तव्याः एतासां समुच्चयः । एतासामलाभे यव-प्रतिनिधिः कार्यः इति पैठीनसिः । शान्त्यौषधिकल्पः समाप्तः । सू० १७ । प्रमन्दोशीरशलल्युपधानं शकधूमा जरन्तः । उपधानं विद्यागन्धुकं शकधूमः ब्राह्मणः एता जरन्तः जीर्णा ग्राह्याः । सू० १८ ।—यत्र सीसानि तत्र एतानि सर्वाणि प्रत्येतव्यानि । नदीसीसं नदीफेनम् । सू० १९ ।—रसकर्मणि एते रसाः प्रत्येतव्याः समुच्चयेन ।—सू० २० यवाकस्ति इन्द्रयव । प्रियङ्गुः कंगुणिका । सू० २१ ।—ग्रहणं प्रतीकग्रहणं ग्रहणमनुग्रहणं तावदनुवर्तते यावत्प्रतीकग्रहणं द्वितीयम् । सू० २२ ।—अनुषङ्गः यथार्थं सर्वत्र कर्तव्यः । यथा विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्ण्यमिति (कौ० २५।१०) वैदिकं लौकिकमिति भवति कृतयामं कंकतमवसृजामीति (कौ० ७६।५।६) अनुष्वङ्गः पुनरुक्तमित्यर्थः । सू० २४ ।—अथ चतुर्गणो महाशान्त्याः पठ्यन्ते । सू० २५ ।—अरायक्षयणमिति तिस्रः । १८।३।५

कण्डिका ॥ ९ ॥

सू० १—ये अग्नय इति सप्त ब्रह्मयज्ञानमित्येका । अग्नेर्मन्व इति सप्त मृगार सूक्तानि ग्रहीतव्यानि ॥ सू० २ ।—प्रथमे द्वे उत्तमं वर्जयित्वा शं च नो मयश्च न इत्येका पुनर्मैत्विन्द्रियमित्येका शिवान इत्येका शं नो वातो वातु इत्येका शेषाणि सूक्तानि । अनेन शान्तिगणेन शान्त्युदकं कुर्यात् । सू० ३ ।— यत्र शान्त्युदकं क्रियते तत्र पृथिव्यै श्रोत्रायेति त्रिभिर्ऋग्भिः शान्त्युदकं शान्त्युदकमध्ये प्रक्षिपेत् । अनेनैव कारयिता प्रोक्षणाचमनादीनि प्रत्यृचं करोति । सू० ४ ।— एष शान्तातीयो गणः । यत्र शान्तातीयेन प्रयोजनं तत्रायं सर्वत्र प्रयोक्तव्य इति । यथा शान्तातीयेन तिलाञ्जुहोति ।—सू० ६ । शान्तिसूक्तानि । इह शान्त्युदके सर्वेषां सूक्तानां समुच्चयः । अन्यत्र सर्वत्र यथोक्तेन न्यायेन विकल्पः न सूक्तविकल्पः । सू० ७ ।—उभयतः शान्तिगणस्य प्रारम्भे समाप्तौ च । सू० ८ ।— अथ शान्त्युदकविधानमुच्यते । सू० ९ । —अवकरं विसर्जयति । अनुज्ञातः शान्त्युदकं करोति शं नो देवीत्यृचा सावित्री च अम्बयो यन्ति गणेन च शान्त्युदकं करोति लघुगणेन बृहद्गणेन वा चतुर्गणैर्वा । सावित्री शन्नो देवी । ततः पृथिव्यै श्रोत्रायेति त्रिः प्रत्यासिञ्चति शान्त्युदके शान्त्युदकं प्रक्षिपति । सू० १० ।— एते चतुर्गणेन बृहद्गणेनैकेन वा शान्त्युदकं कुर्वन्ति । शान्त्युदककर्मपरिभाषा समाप्ता । नवमी कण्डिका । तत्र भद्रश्लोकः ।

प्रमाणं पार्वणे चैव प्रकृतित्वात्परीक्षिते ।
परिभाषा च सर्वार्था प्रथमेऽध्याये संहिताविधौ ॥

इति प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

कण्डिका ॥ १० ॥

सू० २। —सारिका जिह्वां बध्नाति। सारिका कंटारिका प्रसिद्धा। —सू० २। —कृशो भारद्वाजः॥ सू० ४। —कर्कन्धूः बृहद्बदरी। सू० ६। —ये त्रि षप्ता० इति सूक्तेन क्षीरौदनं संपात्याभिमन्त्र्यभक्षयति। पुरोडाशं भक्षयति। रसान् भक्षयति। रसप्राशनं सर्वत्र त्वे क्रतुमित्यृचा कर्त्तव्यम्। (कौ० २१।२१) सू० ७।—ये त्रि षप्ता इति सूक्तेन उपनयनानन्तरं द्वादशरात्रम्। बहुभैक्ष्यमेकत्र कृत्वाभिमन्त्र्य उपाध्यायो ददाति। सू० ८।— सुप्तस्योपाध्यायस्य कर्णमनुमन्त्रयते ब्रह्मचारी। सू० ९।— यदा यदा उपाध्यायगृहं याति तदा तदा जपति ब्रह्मचारी॥ सू० १५।— उपाध्यायाय। सू० १६।— शुक्लपुष्पहरितपुष्पे इति शंखपुष्पिका अन्धपुष्पिका प्रसिद्धे। सू० १७।— सम्यक् वर्चस्कामो मेधाकामश्च प्रथमप्रवदस्य। सू० १९।— अहं रुद्रेभिरिति शुक्लपुष्प्येत्यादि पञ्च कर्माणि आयुष्यकामोऽपि करोति वार्षशतिकं कर्मेति वचनात्। सू० २३।— आदित्यमुपतिष्ठते मेधाकामः। सू० २४।— निद्रां त्यक्त्वा मुखप्रक्षालनं वर्चस्कामोऽपि करोति।

कण्डिका ॥ ११ ॥

सू० १।—पौर्णमास्यां निर्ऋतिकर्म।.(कौ० १८) कृत्वा सक्तुच्छोभूते साम्पदं कुरुते। सू० ३।— ब्रह्मचारिगृहात्‌'''तृणान्यादधाति। सू० ४।— आरण्यपिपीलिकाछिद्रे। सू० ५।— संगृह्य स्थाल्यां कृत्वा ग्रामे आगत्य स्थाल्याः सक्तूञ्जुहोति। सू० ६।— समासानि ब्रह्मचारिसाम्पदानि शिष्यसम्पत्तिर्भवति। सू० ७।—पूर्वेद्युर्निर्ऋतिकर्म कृत्वा (कौ० १८) ग्रामसाम्पदानि ग्रामकामो यदा भवति तदा ग्रामसाम्पदं कुरुते। सू० १५।१६।— ये त्रिषप्ता इति सूक्तेन पृश्निमन्थो जिह्वाया उत्साद्य भक्षो परिस्तरणमक्षिहं हृदयं दूरिशउपनह्य। सू० १८।— पृश्निमन्थं मैश्रधान्यं च दधिमधुमिश्रं कृत्वा अश्नाति। समासः पृश्निमन्थः। सू० १९।— युग्मकृष्णलं सुवर्णमणिं। सू० २०।— सारूपवत्से ओदने पुरुषाकृतिमालिख्य।

कण्डिका ॥ १२ ॥

सू० १।— मादानककाष्ठभृतम्। सू० ४।— मन्थान्तानि (कर्माणि)

(कौ०-४-६; ११, १२,— १८) सू० ५ ।– सांमनस्याधिकार आवर्चस्येभ्यः कर्मभ्यो यावत् । जातपुत्रस्य सांमनस्यं क्रियते । यावज्जीवं संजातानां सगोत्राणां सांमनस्यं भवति । सू० ६ ।— उदकुम्भं सम्पातवन्तं कृत्वा ग्रामपार्श्वे भ्रामयित्वा । सू० ८ ।— शुक्तयानि । अम्लेन रसेन सिक्तानि मांसानि ॥ सू० ९ ।— सहृदयमिति भक्तं सम्पात्याभिमन्त्र्याशयति । सुरां प्रयच्छति पुरुषेभ्यः त्रैवर्णिकेभ्यः प्रपोदकं प्रयच्छति । सांमनस्यानि समाप्तानि । सू० १० ।— अथ वर्चस्यविधिं वक्ष्यामः । ये त्रिषप्ता इति सूक्तेन औदुम्बरसमिध आदधाति । सर्वत्र वर्चस्कामोऽनुवर्तते आराजकर्मभ्यो यावत् । (कौ० १४।१) सू० १२ । अथ कुमारीवर्चस्यमुच्यते । कुमारी रूपवती वर्चस्विनी भर्तृगृहे प्रधाना भवति । सू० १६ ।– वैश्यशूद्रानुलोमजाः ।

कण्डिका ॥ १३ ॥

सू०—१।२ । हस्तिवर्चसमिति हस्तिदन्तं दृष्ट्वा उपतिष्ठते । हस्तिदन्तमणिं बध्नाति । हस्तिलोमानि लाक्षाहिरण्येन वेष्टयित्वा बध्नाति । सू०— ४ । कृष्ण, वृष्णि सूकाभ्यां मेषनाभिरोममणिं लाक्षाहिरण्येन वेष्टयित्वा बध्नाति । सू० ६ ।— स्नातकादि सप्त मर्माणि स्थालीपाकेन दत्वा । सू० ७ ।– इदं कर्म क्षत्रियादीनां न ब्राह्मणस्य । सू०११ ।— चन्दनादिगन्धानासाद्य तस्मिन्मध्ये आकाशोदकं प्रक्षिप्य चतुरङ्गुलेन दर्भतृणेनालोड्य । सू० १२।— यस्ते गन्ध इति त्रिभिः राज्ञां समालभते ।

कण्डिका ॥ १४ ॥

अथ राजकर्माण्युच्यन्ते । सांग्रामिकाणां कर्मणां तन्त्रं वक्ष्यामः । अश्वत्थस्य वधकस्य वा अरण्योऽग्निं मन्थति "इन्द्रो मन्थत्वित्यृचा मथ्यमानमनुमन्त्रयते । पूतिरज्जुरित्यर्धर्चेनाग्निपतनस्थाने रज्जुं निदधाति । धूमं पराहश्येत्यर्धर्चेन धूममनुमन्त्रयते । अग्निं पराहश्येत्यर्धर्चेन जातमग्निमनुमन्त्रयते । एष सेनाग्निः । अभ्यचसश्च । बर्हिर्लवनादि समानं सेनाग्निप्रणयनं ग्रहणं पञ्च गृहीतमाज्यम् । अभ्यातामान्तं कृत्वा लोहिताश्वत्थस्य शाखां रोपयति उत्तरतः । ततः प्रधानकर्म कुर्यात् । तत उत्तरतन्त्रे विशेषः । संततिहोमान्तं कृत्वा इमे जयन्तु स्वाहेभ्यः (कौ० १६–१८) इत्येतेन मन्त्रेणाज्यं जुहोति । ततो वधककाष्ठप्रज्वालितेऽग्नौ वामेन हस्तेन इङ्गिडं जुहोति । (कौ० ४७।३१) । पराभिजयाग्नादुराहामीभ्यः (कौ० १६।१९) ॐ स्वाहेति । ततः शाखायां दक्षिणतः प्रक्षिपति नीललोहितेनामूनिति मन्त्रेण स्विष्टकृदाद्युत्तरतन्त्रम् । एतत्सांग्रामिकं तन्त्रम् । सांग्रामिकेषु सर्वत्र उच्चैर्मन्त्राणां प्रयोगः । तन्त्र मध्ये ये प्रधानमन्त्रास्ते उच्चैर्भवन्ति । सू०

१।—शत्रोर्हस्तित्रासनानां कर्मणां विधिं वक्ष्यामः। सू० २।— तं हस्तिनं संप्रति मुखं रथमावर्तयति। सू० ६।— ये त्रिषप्ता इति सूक्तेन वेलुकामभिमन्त्र्य यत्र हस्तिनस्तत्राभिमुखो याति। समाप्तानि हस्तित्रासनानि। सू० ७।— जयकर्माण्यनुवर्तन्ते। आराष्ट्रप्रवेशकर्मभ्यो यावत्। सू० ८।— इध्मसमाधानस्थाने धनुरिध्म आदधाति। धनुस्समिध आदधाति। सू० ९।— शरेध्मोपसमाधानं शरसमिधः प्रादेशमात्रीरादधाति। सू० ११।— विजयकर्माणि सांग्रामिकाणि समाप्तानि। संग्रामे अयुध्यमाने जयो भवति। एभिः कर्मभिः दृष्टमात्रतः शत्रवः पलायन्ते। सू० १२।— इषुनिवारणानि कर्माण्युच्यन्ते। अनेन कर्मणा पुरुषशरीरे इषवो न पतन्ति पार्श्वतो गच्छन्ति। सू० १४।— सर्वशास्त्रनिवारणानां कर्मणां विधिं वक्ष्यामः। सू० १५।— जुहोति सेनाग्नौ। सू० १६।— आरेऽसाविति सूक्तेन शत्रुं दृष्ट्वा जपति। सू० १७।— अथ मोहनकर्मणां विधिं वक्ष्यामः। परसेनामोहनानि। सू० १८।— ओदनेन फलीकरणं पिण्डीकृत्य। सू० १९।— ओदनेन सह कण्डिकां पिण्डीकृत्य। सू० २०।— शर्कराशूर्पे कृत्वा निष्पुनाति। सू० २१।— अप्वा देवता चरुतन्त्रं आज्यभागान्तं कृत्वाग्निर्नः शत्रूनग्निर्नोदूत इति सूक्ताभ्यां (सू० १७) चरुं जुहुयात्। निर्वापे प्रोक्षणे बर्हिर्होमे विशेषः। अप्वा यै त्वा जुष्टं निर्वपामि। अप्वायै त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। अप्वां गच्छतु हविः। सू० २२।२३।— उद्वेगकरकर्म उच्यते। अजां सितपदां शत्रुसेनां प्रति विसर्जयति। श्वेतेन पादेन अजा वा अविर्वा एणी वा। इत्युद्वेगकरं समाप्तम्। समाप्तानि परस्परोद्वेगकरणानि मोहनस्तम्भनमित्यर्थः। सू० २४।— पुनर्जयकर्मोच्यते। सू० २५।— स्वसेनारक्षार्थं कर्मोच्यते। स्वसेनां प्रति दिशमुपतिष्ठते। २६।— अथ स्वसेनाया उत्साहकरणं वक्ष्यामः। सू० २७।— सेनयोर्मध्ये स्थितो जपति निरीक्षमाणः। सू० २८।— परसेनायां प्रक्षिपति। उच्छ्वसकः क्रुद्धः। सू० ३०।— अथ जयपराजयविज्ञानमुच्यते। शरतृणानि। आङ्गिरसेनादीपयति। आङ्गिरसोऽग्निः चाण्डालाग्निः सूतिकाग्निः। सू० ३१।— सेनयोर्मध्ये कृत्वा यान् धूमोवतनोति ते जयन्ति यत्र धूमो गच्छति तत्र न जयः।

कण्डिका ॥ १५ ॥

सू० १।— अथ सांग्रामिकं विधिं वक्ष्यामः। जयकर्माण्युच्यन्ते। सूक्ताभ्यामाश्वत्थ्यां पात्र्यां त्रिवृत्तिगोमये परिचयेऽग्निं प्रज्वाल्य हस्तिपृष्ठे शत्रुमभिमुखो गच्छन्नाज्यं जुहोति। पुरुषशिरसि'''तत्पात्रं प्रक्षिपति भूम्यां। सू० ४।— युद्धे मृतस्य पुरुषस्येध्ममुपसमाधाय उपरि चक्रं धारयित्वा दीर्घदण्डेन स्रुवेण। सू० ५।— युद्धं योजयेत्। सू० ७।— वैद्याय संग्रामविधिं वक्ष्यामः। सू० ८।— सेनापतिजयकर्म'''

दण्डनायकजयकर्म । स्वसेनाजयपराजयपुरुषवधशङ्कायां विज्ञानमुच्यते । उद-पात्रमभिमन्त्रयते ततो द्वौ द्वौ योद्धारौ अवेक्षयेद् राजा । सू० १०॥—यं न पश्येत् तं न युध्येत योधयेत् । सू० ११॥—अथ नवरथे घटिते संस्कार उच्यते । सू० १२॥—अथारोग्यविधानमुच्यते । ब्रह्मयज्ञान मन्त्राप्तेति । सू० १५॥—अथ सांग्रामिकविधानमुच्यते । एका आत्मसेना रज्जुर्द्वितीया मध्ये मृत्युः तृतीया रज्जुः परसेना । एवं संकल्पः । तत अङ्गारेषु निधाय इष्यते यस्य उपरि मृत्युर्गच्छति तस्य सेनाया जयो भवति ॥ सू० १८॥—आरोग्यविज्ञानकर्म । जयविजयपराजयविज्ञानकर्म । एकरज्जुमुख्यमध्यमधरविज्ञानकर्म । एतानि त्रीणि कर्माणि भवन्ति । इषीका शरमया वा वीरिणमया वा कर्तव्या ।

कण्डिका ॥ १६ ॥

सू० १॥—अथ त्रासनं परसेनाविद्वेषणमुच्यते । सू० ३॥—सोमाङ्कुरमणिं बध्नाति । सू० ४॥-राजा त्रिः कण्टकं भ्रामयति । सू० ६॥-जयकाम इदं कर्म कुर्यात् । जयकर्माणि अनुवर्तन्ते अस्मिन्वस्विति राष्ट्रावगमनं यावत् । (सू० २७) सू० ७॥-अभयकर्म उच्यते । सू० ८॥—अभयं द्यावापृथिवी इति सूक्तेन—सप्तऋषीन्यजते प्रतिदिशं सेनायाः । प्रतिदिशं सेनाया उपतिष्ठते वा । श्येनोऽसि गायत्रेति सूक्तेन । सप्तऋषीन्यजते उपतिष्ठते वा सेनायाः प्रतिदिशम् । सू० ९ ॥-उक्तमग्निमन्थनमादौ इन्द्रो मन्थत्वित्यादि । अग्निं मन्थति । सू० १४ ॥—अथ सपत्नक्षयणी कर्म उच्यते । अरण्ये न ग्राममध्ये कुर्यात् । (वधकः) कृमिमालकः । तिर्णिसमिधः । सू० १६ ॥ —भाङ्गानि ज्वालानि । सेनाक्रमेषु वपति । सू० १७ ॥—सेनाक्रमेषु वपति । सू० १८॥—स्वाहैभ्य इत्यमित्रेभ्यः । सू० २१॥—आवासानि जयकर्माण्युच्यन्ते । ये बाहव इत्यनुवाकं युद्धकाले जपति कर्ता । सू० २३ ॥—सर्वत्र पात्रेषु अश्वत्थेषु कूटेषु भाङ्गेषु जालेषु वाधकदण्डेषु वज्ररूपेषु पात्रेषु चेङ्गिडालङ्करणे कुद्दालमर्पणं कुर्यात् । सू० २४ ॥—त्रिषन्धीनि लोहमयानि'''वज्ररूपाणि लोहमयानि अर्बुदिरूपाणि पृषदाज्येन संपात्याभिमन्त्र्य निवपति'''सू० २५॥—ये बाहव इत्यनुवाकेन शितिपदं आज्यं पृषदाज्येन सम्पात्याभिमन्त्र्य राज्ञो (राज्ञा राजा वा) दण्डे बध्नाति । सू० २६॥—द्वितीया शितिपदीं'''शत्रुसेनां प्रति क्षिपति । शितिपद्योर्द्वयोररण्ये कर्म । सू० २७॥—अथावश्यकं राष्ट्रप्रवेशककर्मविधिं वक्ष्यामः । स्वराष्ट्रे यो निष्क्रान्तः शत्रुणा पुनः प्रवेशमिच्छति तस्येदं कर्म । सू० २८॥—आशुशुष्का लूना व्रीहयः पुनरुत्थिताः छिन्नानि कामानि पुनरुत्थितानि । सर्वस्यामर्दितायां भूमौ यदा निष्क्रान्तो राजा तदा इदं करोति । सू० ३०॥—सेनाकारं पुरोडाशम् । सू० ३१॥ —ततो लोष्ठेन पूरयेत्'''क्षीरौदनं स्थालीपाकं राजानमाशयति ।

कण्डिका ॥ १७ ॥

सू० १ ।—अथ लघु अभिषेककर्मोच्यते। माण्डलिकस्य सामन्तस्य युवराजस्य सेनापतेरन्यस्य कस्यचिदभिषेकः । शान्त्युदकं करोति महानद्या उदकेन च पुष्कराणामुदकं देववृष्ट्युदकं दिव्यमुदकं च । उदकानां विकल्पः समुच्चयो वा । सू० २ ॥—दक्षिणतो वेद्याः ॥ सू० ३ ॥—खट्वायामार्षभं चर्म आस्तीर्य तत्र राजानमारोहयति। सू० ४ ।—उदपात्रमुभावप्यासिञ्चति। सू० ६ ।—राजा ब्रूते। सू० ७ ।—ब्रह्मा ब्रूयात् ।···सू० १० ।—अभिषेकादनन्तरं घृतावेक्षणमारात्रिकं राजकर्माणि पितृराज्यादीनि कर्माणि प्रत्यहं कर्तव्यानि ॥ सू० ११ ।—महाभिषेकविधिं वक्ष्यामः स सार्वभौमस्य भवति ॥ सू० १६ ।—राजकीयो महाशूद्रः । प्रक्षालनं ददाति । सू० १७ ।—राजा द्यूतक्रीडां करोति ॥ सू० १८ ।—वैश्यः राजानमुपतिष्ठते उत्सृजन्नायुष्मन्निति मन्त्रेण । सू० १९ ।—ततो राजा ब्रूते । सू० २१ ।—राजानमाशयति । सू० २५ ।—राजानमाशयति । सू० २६ ।—स्त्रीणां गृहे याति । सू० २७ ।—तत्र मधुपर्को देयः। महाभिषेकः समाप्तः । अतो भूप्रभृतिराजकर्माधिकारः। घृतावेक्षणम् । पुरोहितकर्म ॥ आरात्रिकं नक्षत्रपूजाग्रहपूजादिकं कर्तव्यम् । सू०३० ।—शूद्रेणाहृताः समिध आदधाति। सू० ३४ ।—अथ वाचयेदिति विकल्पं मन्यन्ते आचार्याः । समाप्तानि राजकर्माणि । तत्र श्लोकः—

मेधासाम्पदकर्माणि सांमनस्यं च वर्चसाम्पदं
क्रमाच्च राजकर्माणि द्वितीयेऽध्याये महर्षिणा ।

इति कौशिकपद्धतौ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

कण्डिका ॥ १८ ॥

अथ निर्ऋतिकर्मणां विधिं वक्ष्यामः । आ पुष्टिकर्मभ्यो यावत् । सू० ११।—प्रदक्षिणं भूत्वा निर्ऋतिदिशमभिमुखो भूत्वा ये त्रिषप्ता इति सूक्तेनाज्यं सकृज्जुहोति। सू० १२ ।—अग्नौ छत्रोपानहौ जुहोति। सू० १४।—धाना शर्करामिश्रान् सकृज्जुहोति । सू० १५ । सह पिटकेन तृतीयामाहुतिं जुहोति । सू० १६ ।—काकजङ्घायां लोहकण्टकं बद्ध्वा कण्टके पुरोडाशं बध्नाति तथा निर्ऋत्यभिमुखो भूत्वा प्रपतेत इत्यृचा काकं विसर्जयति । सू० १७ ।—नीलं वस्त्रमधः परिधत्ते रक्तवर्णमुपरि आच्छाद्य शुक्लवस्त्रोष्णीषं कृत्वा या मा लक्ष्मीरित्यृचा लोहखण्डेन सह उष्णीषमुदके

प्रक्षिपति । सू० १८ ।—एकशतं लक्ष्म इत्यृचा रक्तवस्त्रं लोहखण्डेन सहाप्सु क्षिपति । एता एना इत्यृचा नीलं वासो लोहखण्डेन सहाप्सु क्षिपति । गृहे आगच्छति । ततः कर्माणि कुर्यात् पौष्टिकानि साम्पदानि च । समाप्तानि निर्ऋतिकर्माणि । सू० १९ ।—पूर्वस्य चित्राकर्मादीनि पौष्टिकानि तान्युच्यन्ते आ भैषज्येभ्यः कर्मभ्यो यावत् । (कौ० २५) । एतत्कर्म चैत्र्यां पौर्णमास्यां कुर्यात् । अथवा चित्रानक्षत्रे कुर्यात् । नित्यं चैत्रीकर्म । सू० २२ ।—परशुवन्मुखेनाश्नाति न हस्तेन । सू० २६ ।—मन्थान्तानि कर्माणि । सू० २७ ।—अध्वानं गच्छता पुष्टिकर्माण्युच्यन्ते । सू० २८–२९ ।—यदा गच्छति तदा एतत्कर्म । यदा ग्रामं गच्छति तदा एतत्कर्म कुर्यात् । समाप्तं प्रस्थानकर्म । सू० ३०–३१ ।—यथार्थं याचते तदा द्रव्यकाम एतत्कर्म कुर्यात् । अथवा निष्कामोऽपि करोति । सू० ३२–३४ ।—अथ समुद्रकर्म व्याख्यास्यामः । अभ्यातानान्तं कृत्वा ततश्चत्वारः पूलकाः पलाशसमिन्धनं चत्वारो दर्भपूलका व्यतिषङ्गेन जुहोति । एकं समिद्भारकं द्वितीयं तस्योपरि दर्भभारकं पुनरपि तथैव च अष्टौ उपर्युपरि कृत्वा ततो ब्रह्मजज्ञानेन सहस्रधारेणाज्यं जुहोति । सू० ३७–३८ ।— सात्रिकस्याग्नेः प्रणयनम् । अथवा सत्रस्थाने प्रणयनम् । अथवा सत्रस्थाने एतत्कर्म करोति धनधान्यपुत्रलक्ष्मीयशोमेधाधर्मकामः । आयुर्बलप्रजासम्पद् ग्रामकूपादि'''सम्पद्यते समुद्र इत्याक्षते कर्मेतिवचनात् ।

कण्डिका ॥ १९ ॥

सू० १–२ ।—अथ गवां रोगेषु गवां पुष्टिप्रजननेषु शान्तिरुच्यते । बहुदुग्धा गावो भवन्ति ज्वरगण्डमालादिरोगे एतत्कर्म गर्भग्रहणार्थमेतत्कर्म भवति । सू० ३ ।–तडागमवरुध्य ततो गाः पाययति । समाप्तानि गवां पुष्टिकर्माणि । सू० ४ ।—सर्वार्थानि पुष्टिकर्माण्युच्यन्ते । द्वाभ्यां महानदीभ्यामुदकमाहृत्य सर्वत उपसिच्य । सू० ७ ।—अथ लक्ष्मीकर्म व्याख्यास्यामः । यस्य गृहे लक्ष्मी नास्ति तस्य गृहात् । सू० ८ ।—श्रीमतीगृहात् गोमयमाहार्यं...। सू० ९ ।– अथ समुद्रे इदं कर्म क्रियते पुष्टिकर्म । अलक्ष्मीविनाशककर्माण्युच्यन्ते । शापेटमालिप्याप्सु निविध्य तत्राग्निं प्रणीय । शेरभकेति सूक्तेन भक्तं सम्पात्याभिमन्त्र्याश्नाति...पुष्ट्यर्थी । सू० १० ।—कण्डितयवानाम् । सू० १४ ।—गोष्ठकर्मणां विधिं वक्ष्यामः । सू० १८ ।—गोवाटे पांसुकूटं कृत्वा अर्धं दक्षिणेन निक्षिपति । सू० २० ।—चतुर्थे उत्थाय...अश्नाति । सू० २२–२३ ।—अथ सर्वकाममणिशान्तिरुच्यते । पालाशमणिं त्रिवासितं कृत्वा सम्पात्याभिमन्त्र्य बध्नाति त्रयोदश्यादयस्तिस्रो दधिमधुनि वासयित्वा परिभाषावचनात् । (कौ० ७।१९।) पलाशादि चतुर्षु मणिषु संबध्यते पुष्टिकामः । तिलकमणिं, वरणमणिं, खदिरपलाशमणिं बध्नाति । सू० २६ ।—पलाशमणिं बध्नाति । सू० २७ ।—

समाप्ता मणिबन्धनशान्तिः। सू० २८।—अथ अष्टकाकर्म पुष्टिकामो वा नित्यं वा··· कुर्यात्। माघाष्टकायां पूर्वाण्हे यज्ञोपवीती शालानिवेशनं समूहयति॥ उपवत्स्यद्भक्तमशित्वा स्नातोऽहतवसनः प्रयुङ्क्ते रात्रौ वशातन्त्रं पाकयज्ञविधानं धानादीनां श्रपणं कृत्वा। तत आज्यभागान्तं कृत्वा ततः पुरस्तादग्नेः प्रतीचीं गां धारयन्ति। पश्चादग्नेः प्राङ्मुख उपविश्य अन्वारब्धाय शान्त्युदकं करोति। प्रथमा ह व्युवास सेति सर्वेण तिस्रः पश्चादाहुतीर्जुहोति। सू० २९।—ततः प्रथमा ह व्युवास सेति सूक्तेन सर्वेण स्थालीपाकं जुहोति।

कण्डिका॥ २०॥

सू० १।—कृषिनिष्पत्तिकर्म वक्ष्यामः। क्षेत्रे गत्वा। सू० ४।—हालिको अन्यांश्चतुरो वृषभान्युनक्ति षड्द्गवं हलमिति वचनात्। सू० ५।—लोहफालमभिमन्त्र्य हले प्रतिकर्षति। सू० ७।—अपूपानभिमन्त्र्य हले फालमुखे ददाति। ततः कर्ता हलेन कृषति। सू० ८।-हालिकाय। सू० ९।-तिस्रः सीताः प्राचीर्हालिकः कृषति। सू० १४-१५।-उदपात्रे निदधाति। तेनोदकेन हलं सर्वमनक्ति। सू०-१६-१९।-यत्र सीता सम्पातिता तस्मात्स्थलात् मृत्तिकां पत्नी गृह्णाति हस्तेन। अतोऽन्यो मनुष्यः पृच्छति किमाहार्षीः? । ततः पत्नी ब्रूते वित्तिं भूतमिति। सू० २०।-मृत्तिकां निदधाति पत्नी। सू० २१।—ततो लोहफालं घृतेनाभ्यज्य तत्रैव क्षेत्रे निदधाति। सू० २२।—सीताशिरः सूत्रेषु। सू० २३।— एकैकस्याः सीताया दक्षिणे चमसे रसान् प्रक्षिप्य मध्यमेषु विरूढं निदधाति पुरोडाशमुत्तरेषु निदधाति। सू० २४।— चमसोपरि दर्भाग्रान्निदधाति ततः चमसान् पांसुना प्रच्छादयति मृत्तिकां ददाति तत्र। ततः प्रभाते अवश्यं तस्मिन् क्षेत्रे द्वितीयेऽहनि कर्षितव्यम्। एतत्सर्वं एकं कर्म। कृषिभ्यः निष्पत्तिकर्म समाप्तम्। सू० २४।—अथ वृषभलाभकर्म उच्यते। सू० २५।—आनडुहसांपदकर्म समाप्तम्।

कण्डिका॥ २१॥

सू० १।—अथ स्फातिकरणकर्म उच्यते। सू० ५-६।—यदा यदा भक्तं राध्यते तदा तदा अभिमन्त्रयते। यदा दीयते कण्डेन। ...निष्पवने रन्धने परीक्षणे दाने च सर्वत्राभिमन्त्रणम्। सू० ७।—स्थिरधान्यमक्षयं भवति। समाप्तानि स्फातिकरणानि पुष्टिकर्माण्येव वर्तन्ते। सू० ८।—सन्ध्याकाले॥ सू० ९॥—यदा प्रथमं होममिच्छति तदा इदं कर्म करोति। सू० ११।—सूर्यस्य रश्मीनन्विति तिसृभिर्द्वादश नाम्न्यां बध्नाति। इह वत्सां निबध्नीम इति पादेन वत्सां बध्नाति। अयं घासं इति पादेन घासं ददाति गोभ्यो वा वत्सेभ्यश्च। समाप्ता गोशान्तिः। सू० १२।—वत्ससाम्पदानि कर्माण्युच्यन्ते। सू० १३।—सूत्रेण परिवेष्ट्य घृतेनाक्ता आदधाति।

सू० १४ ।—इषीकाः तिस्रो मधुना चिकसेन प्रलिप्ता आदधाति। सू० १५–१६ ।—ज्येष्ठेन पुत्रेण सह भागविधि वक्ष्यामः । उत पुत्र इत्यृचा गृहकाष्ठकाद्या अभिमन्त्र्य ततो गृहं कारयेत् पुष्टिकामः पुत्रो वा साम्पदं करोति पिता वा करोति । सू० १७ ।—आर्द्रपाणिर्भूत्वा शान्तशाखया ऋचं जपित्वा पुत्रं पिता पुत्रभागं प्रयच्छति । सू० १८–१९ । प्राग्भागमपाकृत्य पुत्रस्य गृहे गोधनं बध्नाति । अग्निसंमुखं कुरुते । पुत्रस्य भागं क्रियते । सू० २० ।—आग्नेया अमावास्या भविष्यति तस्यां पुत्राश्च भ्रातरोऽपि अनेन विधानेन भागं कुर्वन्ति । समाप्तं विभागकर्म। सू० २१।२३ ।—त्वे क्रतुमित्यृचा सर्वत्र रसप्राशनं परिभाषा सर्वस्मिन्नथर्ववेदे रसकर्मसु पाकयज्ञविधानेन प्रजापतये चरुं श्रपयित्वा। स्तुष्व वर्ष्मन्निति ऋचा जुहोति पुष्टिकामः । अमावास्यायामस्तमिते रात्रौ वल्मीके दर्भानास्तीर्य तत्र दीपं ददाति ।

कण्डिका ॥ २२ ॥

सू० १ ।—पुनः पुष्टिकर्माण्युच्यन्ते । भ्रष्टपिष्टं सक्तुम् । सू० ६ ।—क्षेत्रकामस्य कर्म उच्यते । यत्र क्षेत्रं कामयते तस्मिन् क्षेत्रे इदं कर्म कुर्यात् । सू० ७ ।—सप्त ग्रामलाभकर्म । सू० १० ।—अथ समृद्धिकर्म उच्यते । सू० १० ।—उदक्याम् । सू० १४ ।—अथ समुद्रकर्म उच्यते। शत्रुदेशे गत्वा गार्हपत्यदक्षिणाग्न्याहवनीयेषु कर्म कुर्यात् । ततो गार्हपत्ये अभ्यातानान्तं कृत्वा ममाग्ने वर्च इति सारूपवत्सं गार्हपत्यश्रृतं गार्हपत्ये प्रथमं संपात्य ततो दक्षिणाग्नितन्त्रं कृत्वा पूतीकैस्तरणम् । तत अभ्यातानान्तं कृत्वा तमेव सारूपवत्सं सम्पात्य तत आहवनीयभागस्तरणम् । ततस्तमेव सारूपवत्सं संपात्यानेनैव सूक्तेन ततः पश्चात्सक्तूदभिमन्त्रणं कृत्वा ततोऽश्नाति । गार्हपत्यप्रभृति उत्तरतन्त्रं कुर्यात् । अशनं गार्हपत्यदेशे करोति । उत्तरतन्त्रम्। व्रतग्रहणादि करोति। दक्षिणाग्न्याहवनीयगार्हपत्येषु यथाक्रमं व्रतग्रहणादि। गार्हपत्यस्य दर्भैस्तरणं दक्षिणाग्नेः पूतिकैः । आहवनीयस्य भाङ्गाभिः । समाप्तं समुद्रकर्म ।

कण्डिका ॥ २३ ॥

सू० १ ।—अथ नवे गृहे अग्निशालायां गोशालायां वा ग्रामे वा पुरे वा अन्यश्राभिततेषु वा कर्माणि । पाषाणमये वा काष्ठमये वा तृणमये वा इष्टकामये वा सर्वत्र नवे वासिते इदं कर्म । सू० ६ ।—तूष्णीमादौ वाग्यमनं कृतमिहैव स्तेति वाग्विसर्गः । सू० ७ ।—अग्नौ रविकां औदुम्बरं दत्वा आज्यं जुहोति । धूमं नियच्छति। लेपं प्राश्नीयात्। सू० ९ ।—दायादेषु विभागकर्म वक्ष्यामः । सू० १२ ।—अथ चित्राकर्म चित्रानक्षत्रे उच्यते । संभारान् संपातयति । वृक्षशाखा । उदकम् । करम्बकम् । औदुम्बरशकलम् । ताम्रक्षुरिका । सू० १४ ।—वत्सकर्णं छिनत्ति।

सू० १५।—कर्णांल्लोहितम्। रसमिश्रितः अश्नापयति पुष्टिकामः। सू० १७।—अथ कृषिकर्म उच्यते।

कण्डिका ॥ २४ ॥

सू० १-२।—बीजवापनं कर्म करोति। केदारे वा क्षेत्रे निवपति। त्रीन् मुष्टिबीजस्य। ततः पांसुभिराच्छादयति। सू० ३-६।—उच्चस्थाने गत्वा। ततः अभ्यातानान्तं कृत्वाभित्यमिति चतुर्ऋचेन सूक्तेनोदपात्रं सम्पात्य तदुदपात्रं सोमरसमिश्रं सारूपवत्सं ओदनं सम्पात्याभिमन्त्र्याश्नाति। तत उत्तरतन्त्रं प्राग्द्वारप्रत्यग्द्वारे मण्डपे एतत्कर्म। पश्चान्मण्डपमग्निना दहति। सू० ७।—एकवारप्रसूता गौर्गृष्टिः। गोदाममणिं बध्नाति पुष्ट्यर्थी। सू० ८।—अश्नाति पुष्ट्यर्थी। सू० ९।—इत्यृचा वपया वृषभस्येद्रं यजते वशाविधानेन (कौ० ४४) सू० १६।—अथ प्रवक्ष्यत एकाग्निकस्य इदं कर्म कथ्यते। इहैव स्तेति गृहं मानुष्यांश्चावेक्षते। सू० १८।—अथ प्रवेशाय यजमानो यदा आगच्छति तदा इदं कर्मोच्यते। मौनं कृत्वा समिधमादाय गृहं दृष्ट्वा ऊर्जं बिभ्रदिति षडर्चं सूक्तं जपति। वामेन हस्तेन समिधः कृत्वा दक्षिणेन शालावलोकं संस्तभ्य जपति ऊर्जं बिभ्रदिति। ततः समिध आदधाति अग्नौ। सुमङ्गलीति कल्पजेन स्थूणे गृह्णात्युपतिष्ठते। यद्वदामीत्यृचा वाग्विसर्गं करोति। गृहपत्न्यासाद उपविश्योदपात्रं निनयति तूष्णीं दूर्वाग्राणि अङ्गुलिकायां कृत्वा पूर्वापरमिति षडर्चं सूक्तं जपति। अमावास्यायां केचिच्चन्द्रमसं दृष्ट्वा जपं कुर्वन्ति पुष्टिकामाः। सू० १९। —अथ वृषोत्सर्गविधि वक्ष्यामः। ऋषभं सम्पात्य विवाहवदग्निपरिणयनं कृत्वा सह वत्सरीभिः विसर्जयति। सू० २२।—अत एकादशाहे वृषभं करोति तदा शान्त्युदकं कृत्वा वृषोत्सर्गं करोति। वृषोत्सर्गः समाप्तः। वृषभपुच्छं गृहीत्वा देवपितृषिभ्योऽहं ददे ऋषभमुच्चारयति। सू० २४-२५।—अथाग्रहायणीकर्म उच्यते। रात्रौ अभ्यातानान्तं कृत्वा त्रयश्चरवः श्रपयितव्याः। सत्यं बृहदित्यनुवाकेन पश्चादग्नेर्दर्भेषु खदायां भूमौ एकं चरुं सकृत् सर्वहुतं जुहोति। सू० ३१।—सत्यं बृहदिति नवभिः शान्ति द्वेति दशम्या। सू० ३६।—सत्यं बृहदित्यनुवाकेन कृषिकर्म आयोजनकर्म भवति। सू० ३७।—यस्यां सदो हविर्धाने इति तिसृभिराज्यं जुहोति। तत उत्तरतन्त्रम्। वरो म आगमिष्यतीति वरस्य प्रार्थितोऽभिलाषः उत्कृष्टपुत्रधनादि वा सर्वफलकामः। सू० ३८।—उपतिष्ठते पृथिवीं पुष्टिकामः। सू० ३९। निधिं बिभ्रतीति द्वाभ्यामुपतिष्ठते पृथिवीं मणिहिरण्यद्रव्यनिधिरत्नकामः। सू० ४१।—वृष्टिकाले यस्यां कृष्णमिति नवोदकमभिमन्त्र्याचमनं करोति पुष्टिकामः। यस्यां कृष्णमित्यृचा नवोदकमभिमन्त्र्य स्नानं करोति पुष्टिकामः। नवोदकस्य

कर्म समाप्तम् । सू० ४५ ।—सर्वे मंत्राः पुष्टिकर्मसु पठिताः तृतीयेऽध्याये तेषामुपधान-मुपस्थानं भवति । एते मन्त्राः पौष्टिकाः पौष्टिकानां सर्वेषां मन्त्राणां हविरुपधान-मुपस्थानं वा करोति विकल्पेन । सू० ४६ ।—ततः श्लोकः ।

पूर्वं निर्ऋतिकर्माणि सर्वेषां पापनुत्तये ।
पौष्टिकानि ततः पश्चात्तृतीये संहिताविधौ ॥

इति कौशिकपद्धतौ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

कण्डिका ॥ २५ ॥

सू० १—३ ॥ भेषजशान्तिर्भैषज्यशब्देनोच्यते । तत्र द्विविधा व्याधयः आहारनिमित्ता अन्यजन्मपापनिमित्ताश्च । तत्राहारनिमित्तेषु चरकवाहटसुश्रुतेषु··· व्याध्युपशमनं भवति । अशुभनिमित्तेषु अथर्ववेदविहितेषु शान्तिकेषु व्याध्युपशमनं भवति । तथाचाग्रे वक्ष्यति । अनूक्तान्यप्रतिषिद्धानि भैषज्यानामंहोलिङ्गाभिः (कौ० ३२।२६।२७) सर्वाणि कर्त्तव्यानि । उक्तान्यनूक्तानि च कर्त्तव्यानि । बन्धन-पायनादीनि च कार्याणि । सू० ५ ॥—मुखवलीर्विमार्ष्टि अङ्गवलीश्च । तरुणस्य यदि वल्यस्तदा एतत्कर्म । सू० ६ ॥—अथ ज्वरातिसारभैषज्यान्युच्यन्ते । मुञ्जपुष्प-मणिं मुञ्जरज्ज्वा बध्नाति । सू० ७ ॥—अतिसारे चातिमूत्रे च भैषज्यम् ।······। सू० ८ ॥—अपानं प्रक्षाति । सू० ९ ॥—अपाने शिश्नं वा नाडीं वा व्रणमुखं धमति अतिसारे । समाप्तानि ज्वरातिसारे अतिमूत्रे अङ्गनाडीप्रवाहे च भैषज्यानि । सू० १० ॥—अतिदुःखमूत्रे दुःखपुरीषकरणे च शमनभैषज्यान्युच्यन्ते ।······ विद्या शरस्येति द्वितीयेन हरीतकीं कपूरं वा सम्पात्याभिमन्त्र्य बध्नाति । सू० १२ ॥ —विषितं ते बस्तिबिलमिति द्वाभ्यामृग्भ्यां मूषिकमृत्तिकोपरि उपविश्य जपति । तृणोपरि उपविश्याभिमन्त्रयते ।···बस्तिबिलमुखमभिमन्त्रयते । दारुतक्षशकलान् दधिमथितोपरि उपविश्य ततोऽभिमन्त्रयते ।····· अरत्नमन्दोपरि उपविश्याभि-मन्त्रयते ।···दारुतक्षशकलानामुपरि उपविश्य व्याधितं ततोऽभिमन्त्रयते मूत्रादि-प्रतिबन्धे मूत्रं मुच्यतामिति लिङ्गात् । सू० १३ ॥—व्याधितमारोहयति । सू० १४ ॥—व्याधितः शरं प्रक्षिपति । सू० १५ ॥—शरशिश्नमभिमन्त्र्य निष्कोदति शिश्नं चर्मणो निःसारयतीत्यर्थः । सू० १६ ।—लोहशलाकामभिमन्त्र्य शिश्ने प्रवेश-

यति । मूत्रप्रवाहं विदारयति । सू० १७ ।—विद्मा शरस्येति द्वितीयेन द्रुघ्रीं ज्याधनुषं जघने शिश्नदेशे ऊर्ध्वंकृत्वा गोदोहन्यामुदकं कृत्वा यवानेकविंशतिं प्रविश्य प्रक्षिप्य तेन उदकेन धनुषमुपरिफलं सिञ्चति सूक्तं जपित्वा ॥ यथा उदकं शिश्ने पतति तथा कार्यम् । सू० १८ ।—यवगोधूमवल्ली पद्ममूलं यातिका एतानि क्वाथयित्वाभिमन्त्र्य व्याधितं पाययति । समाप्तानि मूत्रप्रतिबन्धे दुःखमूत्रकरणे दुःखपुरीषकरणे…उदर-पूर्णनिरोधकरणे च एतानि भैषज्यानि कार्य्याण्यारोग्यकामः । सू० २० ।—अथ सर्व-रोगभैषज्यान्युच्यन्ते । अभ्यातानान्तं कृत्वा अम्ब यो यन्तीति वायोः पूत इति सूक्ते-नाज्यं जुहोति । पलाशोदुम्बराद्याः समिध आदधाति । सर्वव्याधिभैषज्यकामः । सू० २१ ।—अथ सोमभक्षणे भैषज्यमुच्यते । सोमपवने सोमरसायने सोमपाने सोमाभिषवे च सोमविषये व्याधौ उत्पन्ने भैषज्यं समाप्तम् । सू० २२ ।––अथ भूततन्त्रकर्माण्युच्यन्ते । भूतपिशाचशङ्कायां शान्तिरुच्यते । कुक्कुसाञ्जुहोति । तुषाञ्जुहोति । बुसं जुहोति । काष्ठशकलानि जुहोति । (कौ० १४। १५ ।) अभेयाध्येयानां धूमं नियच्छति । पिशाचगृहीतपुरुषं धूमं पाययति । गृहे ग्रामे वा पत्तने क्षेत्रे वा देवगृहे वा यत्र क्वचित् पिशाचशङ्कास्ति तत्र होमं कृत्वा धूमं नियतं कुर्यादित्यर्थः । पिशाचगृहीतं पुरुषमन्वाह आक्रोशं ददाति । सू० २३ । —कर्कटिकासमिध आदधाति । मुसलकाष्ठशकलानि जुहोति । खदिरसमिध आदधाति । सर्षपसमिध आदधाति । सू० २४ ।––खदिरवितस्तिमात्रशङ्कून् सप्त वा नव वा अभिमन्त्र्य पश्चादग्नेर्निखनति । भूमिं समां करोति । अक्ष्यौ निविध्य इत्यृचा निखननमन्त्रः पिशाचोपद्रवे । सू० २६ ।—शर्करानभिमन्त्र्य शयनं वा अन्तराणि वा गृहं वा परिकिरेत् रक्षोभये । सू० २७–२९ ।––अमावास्याया-मभ्यातानान्तं कृत्वा शरमयं बर्हिस्तृणाति सर्षपेध्मानामुपसमाधानम् । सकृद्गृही-तान्यवसक्तूञ्जुहोति । एतस्मिन्तन्त्रे यवराशिमध्यात् मुष्टिमेकां गृहीत्वा उलूखलेन अप्रदक्षिणं पिष्यते ततो व्याधितं सम्पात्य शणसूत्रेण जिह्वामार्जनं करोति । ततो ग्रहणमुक्तो न करोति शणेन जिह्वामार्जने ततो न गतो ग्रह इति विजानीयात् । सू० ३० ।––अथ ग्रहाभिचार उच्यते । इदं कर्म अवश्यमस्य ग्रहस्य वशीकरण-मुच्यते । पलाशपुटेन जुहुति । सू० ३१–३३ ॥ अथास्मिन् गृहे पिशाचो-ऽस्ति वा न वास्ति संशये इदं कर्मउच्यते । सर्षपेध्मं शरमयं बर्हिरभिमन्त्र्य शालाया उपरि निदधाति । ततः प्रभाते निरीक्षणं विकृते पिशाचशङ्का । तदा उक्तो होमः । वीरिणतूलमित्यादि । (सू० ३० ।) ॥ ३४ ॥ पिशाचगृहीतं पुरुषम् । सू० ३५–३६ ।––रात्रिकर्माण्युच्यन्ते ।—रात्रौ उल्मुके अभिमन्त्र्य परस्परं संघृष्यति । ततः प्रभाते स्वस्तिदा इति सूक्तेन प्रक्रामति पदानि ददाति । रक्षोभैषज्यम् । समाप्तानि रात्रिकर्माणि । सू० ३७ ।—अथ जलोदरभैषज्यमुच्यते । घटे दर्भपिञ्जूलीः प्रक्षिप्य

एकविंशति गृहतृणानि च प्रक्षिप्य तं घटमभिमन्त्र्य ततो व्याधितं सिञ्चति । ततो मार्जनञ्च दर्भत्रयमेकत्र बद्धं पिञ्जूलीत्युच्यते । समाप्तं जलोदरभैषज्यम् । अभ्यासेन कर्मसिद्धिः दिने दिने कुर्यात् जलोदरनाशनार्थम् ॥

कण्डिका ॥ २६ ॥

सू० १ ।—अथ वातपित्तश्लेष्माणि भैषज्यान्युच्यन्ते । मांसमेदोऽभिमन्त्र्य पाययति वातविकारे। मधु अभिमन्त्र्य पाययति श्लेष्मविकारे। घृतमभिमन्त्र्य पाय· यति वातपित्तसहविकारे। तैलमभिमन्त्र्य पाययति वातश्लेष्मविकारे। सू० २-६ ।—अतिकाशे शीर्षक्ति शिरोवेदनायां च कर्माण्युच्यन्ते। व्याधितं शिरं मौञ्जवेष्टितं कृत्वा वामेन हस्तेन वपनं जालसहितं गृहीत्वा जरायुज इति सूक्तेन लाजान् प्रकिरन् व्रजति व्याधिदेशं यावत् । तत्रैव मुञ्जप्रश्नं लाजाश्च वपनानां प्रक्षेपः। वामेन हस्तेन वपनं मौञ्जं इन्दुकं च गृहीत्वा दक्षिणेन हस्तेन ज्यां द्रुघ्नीं गृहीत्वा...व्याधितमग्रे कृत्वा यत्र व्याधिरुत्पन्ना तत्र स्थाने गत्वा जरायुज इति जपित्वा मौञ्जप्रश्नं वपनं क्षिपति व्याध्युत्पत्तिस्थाने ज्यां तूष्णीं प्रक्षिपति । वातज्वरे कटिभङ्गे शिरोरोगे च वातगुल्मे वातविकारे च सर्वरोगे च भैषज्यम् । धनुर्वाते अङ्गकम्पने वाते शरीरभङ्गे सर्ववातविकारे भैषज्यम् । सू० ८ ।—घृतमभिमन्त्र्य नासिकानस्तं दद्यात् । सू० ९ ।—जरायुज इति सूक्तेन पञ्चपर्ववेणुदण्डं ललाटे संस्तभ्य जपति शिरोरोगे कटिभङ्गे वा वातगुल्मे विकारे च। लिङ्ग्युपतापः समाप्तः। सू० १० ।—अथ लोहितं वहति शरीरमध्ये बहिश्च । कर्माण्युच्यन्ते । पञ्चपर्ववेणुदण्डं रुधिरवहनस्थाने दत्वा "असूर्या" इति सूक्तं जपति । रथ्यायाः पांसून् गृहीत्वाभिमन्त्र्य रुधिरव्रणे विकिरति । सू० ११ ।—अर्भकपालिकां बध्नाति । केदारमृत्तिका इति । सू० १२ ।—अर्भकपालिकामभिमन्त्र्य पाययति। अर्भकपालिकां शुष्कपङ्कमृत्तिकाम् । स्त्रीरजसोऽतिप्रवर्तने भैषज्यं रुधिरप्रवाहे च । सू० १४ ।—अथ हृद्रोगे कामले चेत्यादिभैषज्यान्युच्यन्ते। सू० १६-१७ ।—अनुसूर्यमिति सूक्तेन गोरक्तचर्मछिद्रमणिं गोदुग्धे तं दत्वा संपात्याभिमन्त्र्य बध्नाति दुग्धं च पाययति । अभ्यातानाद्युत्तरतन्त्रम् । कामले हृद्रोगे चेत्यादि लिङ्ग्युपतापः । सू० १८ ।—हरिद्रौदनं व्याधितस्य भोजनं दत्वा तस्योच्छिष्टं चानुच्छिष्टं चैकत्र कृत्वा तेन च उद्वर्तनं कृत्वा शिरःप्रभृत्यारभ्य यावत्पादौ उद्वर्त्य ततो व्याधितं च खट्वायामुपवेश्य खट्वाधस्तात् शुकां काष्ठसुसुकं च गोपितिलकां च एते त्रयः पक्षिणः सव्यजङ्घायां हरितसूत्रेण बद्ध्वा खट्वाधस्ताद् बध्नाति ।······अपस्मारे भैषज्यम् । उदकमभिमन्त्र्य व्याधितं स्नापयति । सू० १९ ।—मन्थमभिमन्त्र्य प्रपाद्य प्रयच्छति भक्षार्थम् । सर्वत्र गृहद्वारे अग्रे व्याधितं कृत्वा तमग्रे प्रवेश्य स्वयं प्रविश्य ततो भक्तमभिमन्त्र्य

व्याधिताय प्रयच्छति। सर्वत्र यत्र यत्र प्रयच्छतिशब्दस्तत्र तत्रैव बोद्धव्यम्। (कौ० ७।१८) सू० २०।—अनुसूर्यं इति सूक्तेन शुष्कचन्दनमभिमन्त्रयेत्। काष्ठशुष्कचन्दनमभिमन्त्रयेत्। गोपीतिलकां–यस्मिन्कस्मिंश्च दृष्ट्वा वदन्तीं तत्राभिमन्त्रयते व्याधितः। सू० २१।—वृषभहृदयलोमभिः सुवर्णवेष्टितं मणिं कृत्वा सम्पात्याभिमन्त्र्य व्याधिताय बध्नाति। समाप्तानि अपस्मारविस्मयहृद्रोगकामलकरोहिणकानि भैषज्यानि। सू० २२।—अथ श्वेतकुष्ठभैषज्यान्युच्यन्ते। श्वेतकुष्ठं गोमयेन प्रघृष्य यावल्लोहितं दृष्ट्वा भृङ्गराजहरिद्राभ्यां इन्द्रवारुणीनीलिकापुष्पा एताः पञ्च पिष्ट्वाभिमन्त्र्य कुष्ठं प्रलिम्पति। सू० २३।—पलितानि छित्त्वा घृष्ट्वा अवलिम्पति। सू० २४।—अथ मारुतान्युच्यन्ते। समाप्तानि कुष्ठभैषज्यानि श्वेतपलितनाशनं दुर्भिक्षनाशनं च। सू० २५।—अथ ज्वरभैषज्यमुच्यते। नित्यज्वरे वेलाज्वरे सततज्वरे एकान्तरितज्वरे चातुर्थिकज्वरे च ऋतुज्वरे च। सू० २६।—अथोद्वेगविनाशभैषज्यान्युच्यन्ते। सू० २८।—उप प्रागादिति सूक्तेन उल्मुकद्वयमभिमन्त्र्य घृषीयत रात्रौ उषाकाले एतत्कर्म। तथा प्रभाते स्वस्तिदा इति सूक्तेन दक्षिणेन पादेन प्रक्रामतीति (कौ० ५०।११) स्वस्त्ययनम्। वृद्धबालयुवस्त्रीपुरुषाणामकस्मादुद्वेगः प्रलापो वा भवेत्तदा एतत्कर्म कुर्यात्। सू० २९।—गन्धर्वराक्षसेऽप्सरसे भूतग्रहादिषु भैषज्यान्युच्यन्ते। सू० ३०।—चतुष्पथे व्याधितं कृत्वा ततः प्रज्वालिताग्नौ घृताक्ताः सर्वौषधीर्जुहोति। सू० ३१।—व्याधितस्य वल्गुणिकां सर्वौषधिसहितां हस्तेन कृत्वा नदीमुखसंमुखां प्रविश्य नदीमध्ये वल्गुणिकायां सर्वौषधिं घृताक्तां हुत्वा। ततः प्रक्रामति। उदकमध्ये सर्वौषधीर्जुहोति घृताक्ताः। पश्चात्स्थितो व्याधितं सिञ्चति। सू० ३२।—ततो मृण्मये आमपात्रे होमशेषाः सर्वौषधीः कृत्वा पक्षिणो यस्मिन् वृक्षे वसन्ति तत्र त्रिपादे कृत्वा बध्नाति। सू० ३३–४०।—अथ लौकिके शापे वैदिके शापे च स्त्रीणामाक्रोशे च पुरुषाणाञ्च भैषज्यमुच्यते। सर्वस्मिन् संहिताविधिकर्मणि प्रधानकर्ममध्ये नवं घटं यत्प्रथममास्थापितमुत्तरतस्तेनोदकेन हिरण्यवर्णा इति सूक्तेन अभिमन्त्रितेन कारयिताभिषेचयेत्। सर्वत्र मेधाजननादिकर्मसु। ततः पश्चान्मणिबन्धनादिकर्म कुर्यात्। भैषज्येष्वभिषेकं न कुर्यात्। अभ्यातानान्तं कृत्वा अघद्विष्टा इति सूक्तेन यवमणिं सम्पात्याभिमन्त्र्य पुनः सूक्तं जपित्वा बध्नाति। लौकिके आक्रोशे वैदिके च ब्राह्मणस्य शापे आक्रोशे च क्रूरचक्षुर्दृष्टिनिपाते च पिशाचरक्षादिषु भैषज्यं समाप्तम्। अथ रक्षोग्रहे भैषज्यमुच्यते। आज्यतन्त्रं कृत्वा शं नो देवीति सूक्तेन पृश्निपर्णीमोषधिं पिष्ट्वा सम्पात्याभिमन्त्र्य पुनः सूक्तं जपित्वा शरीरं प्रलिम्पति। अभ्यातानाद्युत्तरतन्त्रम्। पापगृहीते च स्त्रीगर्भस्रावे च मृतापत्यायां च क्रव्याद्गृहीते च पिशाचगृहीते च रक्षोभयभैषज्यं समाप्तम्। अथ राजयक्ष्मादिभैषज्यमुच्यते। तन्त्रं कृत्वा वरणोवारयता इति तृचेन वरणवृक्षमणिं बध्नाति।

राजयक्ष्मादिपूगव्याधिषु श्वेतोदुम्बरकुष्ठाद्यष्टादशजातिषु ज्वरादिसर्वरोगेषु भैषज्यं समाप्तम् । अथ वातविकारे भैषज्यमुच्यते। पिप्पलीक्षिप्तभेषजीमिति सूक्तेन पिप्पलद्रव्यं आशयति । वातविकारे धनुर्वातगुल्मे वातशूले क्षिप्तवातप्रदोषे कर्मकृते वाते उत्पन्ने सर्वव्याधिविकारे भैषज्यं समाप्तम् । जलोदरे भैषज्यमुच्यते। विद्रधस्य बलासस्येति तृचेन सूक्तेन व्याधितस्य मूर्धनि सम्पातानानयति। सर्वव्याधिविसर्पणे प्रकोपे च बलासे च आन्त्रविसर्पणे च अक्षिविसर्पणे च विद्रधिविसर्पणे च हृदयामये च अज्ञातराजयक्ष्मणि च एतेषां भैषज्यं समाप्तम् । या बभ्रव इति सूक्तेन दश वृक्षशकलानि लाक्षाहिरण्येन वेष्टितं मणिं कृत्वा...बध्नाति। सर्वव्याधिभैषज्यं समाप्तम् । सू० ४१ ।—अथ क्षेत्रियव्याधिभैषज्यमुच्यते । क्षेत्रियो व्याधिर्लिङ्गी पितृपर्यागतः क्षेत्रियरोगः कुष्ठक्षयरोगः ग्रहणीदोषः सर्वशरीरविस्फोटकारः । सू० ४३ ।—बभ्रोरर्जुनकाण्डस्येत्यृचा अर्जुनकाष्ठं यवबुसं तिलपिञ्जिकां च एकत्र त्रीणि बद्ध्वा बध्नाति । आकृतिलोष्टं जीवकोषण्यां बद्ध्वा बध्नाति । वल्मीकमृत्तिकां जीवकोषण्यां बद्ध्वा··· बध्नाति । जीवतः पशोश्चर्म जीवकोषणीत्युच्यते ।

कण्डिका ॥ २७ ॥

सू० ३।४ ।—शालातृणानि गर्ते प्रक्षिप्य तस्मिन् गर्ते व्याधितमुपवेश्य तत आचामयति···अवसिञ्चति । समाप्तं क्षेत्रियस्य भैषज्यम् । सू० ५ ।—अथ ब्रह्मग्रहे भैषज्यमुच्यते । दशवृक्षेति सूक्तेन वृक्षविकल्पेन पलाशादिदशवृक्षशकलानि गृहीत्वा लाक्षाहिरण्यवेष्टितं मणिं कृत्वा बध्नाति । सू० ६ ।—दश ब्राह्मणा अथर्वाङ्गिरसः सुहृदो दशवृक्षेति सूक्तं जपन्तो व्याधितं शरीरमभिमृशन्ति । सू० ७ ।—पुनः क्षेत्रियभैषज्यान्युच्यन्ते । सू० ९ ।—उदकतृषाक्रान्तभैषज्यमुच्यते । सू० १३ ।—सवासिनाविति सूक्तेन मन्थघटमभिमन्त्र्य पाययति व्याधिताव्याधितौ एकवस्त्रपरिहितौ सन्तौ । सू० १४–१७ ।—अरुषो उदरगण्डुलकभैषज्यान्युच्यन्ते । इन्द्रस्य या महीति सूक्तेन कृष्णचणकान् घृतमिश्राञ्जुहोति ॥ गोवालचित्रितं शरसंध्यं परिवेष्ट्य पाषाणेन चूर्णयति । अग्नौ प्रतपति। ततः सूक्तान्तेऽग्नौ आदधाति । सू०१८ ।–सव्ये हस्ते पांसून् कृत्वा दक्षिणेन विसृज्य दक्षिणामुखः स्थितः सूक्तं जपित्वा व्याधितस्योपरि किरति । अरुषो गण्डुलकानां भैषज्यम्। सू० १९ ।—पांसून् मर्दयति हस्ताभ्यां व्याधितः । सू० २० ।—पलाशोदुम्बराम्राः समिध आदधाति। समाप्ता उदरकृमयः उदरगण्डुलकाश्च दृष्टकृमयश्च तेषां सर्वेषां भैषज्यम्। सू० २१ ।—अथ गोकृमिभैषज्यान्युच्यन्ते। सू० २६ ।—उद्यन्नादित्य इति सूक्तेन घृतमिश्रान् कृष्णचणकाञ्जुहोति । उद्यन्नादित्य इति सूक्तेन शरगोवालवेष्टितं धारयति पाषाणेन । सू० २७–२८ ।–सर्वव्याधिभैषज्य-

मुच्यते । आज्यतन्त्रं कृत्वा व्याधितं पर्वसु बद्ध्वा अक्षीभ्यां त इति सूक्तेनोदपात्रं सम्पात्य ततः पुनः सूक्तं जपित्वावसिच्य व्याधितस्य पर्वग्रन्थिर्विमुच्यते। तत उत्तर-तन्त्रम् । समाक्षमक्षिरोगनासिकाकर्णशिरोजिह्वाग्रीवाराजयक्ष्मादि सर्वभैषज्यम् । सू० २९ ।—हरिणस्येति सूक्तेन हरिणश्रृङ्गमणिं'''बध्नाति ॥ हरिणश्रृङ्गेन सहोदकं आचामयति । अथोषाकाले एतत्कर्म । हरिणचर्मशङ्कुधानं प्रज्वाल्योदकेन प्रक्षिप्य ततो व्याधितमवसिञ्चति । सू० ३२ ।—बालरोगगृहीते च मैथुनदोषभैषज्यान्यु-च्यन्ते । पूतिगन्धमत्स्यसहितमोदनं व्याधिताय प्रयच्छति भक्षणार्थम्। सू० ३३ ।—अरण्यतिलैः प्रज्वालितमुदपात्रमभिमन्त्र्य प्रक्षिपति उषाकाले । अवसिञ्चति व्याधि-तम् । मैथुनराजयक्ष्मणि भैषज्यम् । अरण्यशणेन अरण्यगोमयेनावज्वालितमुदकम-भिमन्त्र्यावसिञ्चति । उषाकाले मार्जनाचमनम् । चित्यादिभिः प्रज्वालितमुदकमभि-मंत्र्य व्याधितमवसिञ्चति । मार्जनाचमनं च । केचित्तिलशणादिचतुर्षु कर्मसु अरण्ये अवसेकमिच्छन्ति । केचिद् गृहे अवसेकमिच्छन्ति । सू० ३४ ।—अथ सर्वभैषज्यान्युच्यन्ते । आ गाव इति दशभिः सूक्तैः मुञ्जशीर्षक्त्या इत्यृचा घटमुद-कपूर्णं संपात्याभिमन्त्र्य व्याधितमवसिञ्चति ॥

कण्डिका ॥ २८ ॥

सू० १ ।--स्कन्दविषभये भैषाज्यान्युच्यन्ते । तक्षकदेवतायै नमस्कारं कृत्वा ततो ब्राह्मणो जज्ञे वारिदमिति सूक्ताभ्यां उदकमभिमन्त्र्य आचामयति । संप्रोक्षति विषदुष्टं । सू० २ ।—क्रमुकवृक्षशकलं सहोदकमभिमंत्र्य तत आचामययति''' अभ्युक्षयति दूर्वावज्वालितमुदकमभिमन्त्र्यावसिञ्चति । जीर्णहरिणचर्मावज्वालित-मुदके प्रक्षिप्य तमभिमन्त्र्य ततोऽवसिञ्चति । मार्जालिकावकरतृणैरवज्वालितमुदक-मभिमन्त्र्यावसिञ्चति । सू० ३ ।—उदपात्रं सम्पात्य तत आप्लावयति विषदुष्टं विषलिप्ता-भ्यां सक्तुमन्थमुपमथ्य ततोऽभिमन्त्र्य पाययति । मदनफलानि प्रत्यृचं भक्षयति यथा च छर्दयति तथा च कर्त्तव्यम् । सू० ५ ।—शस्त्राद्यभिघाते रुधिरप्रवाहे भैषज्या-न्युच्यन्ते। रोहिण्यसीति सूक्तेन लाक्षोदकं क्वथितमभिमन्त्र्य व्याधिदेशमवसिञ्चति ॥ उषाकाले कर्म। अस्थिभङ्गे रुधिरप्रवाहे शस्त्राभिघातादौ भैषज्यम् । सू० ७ ।--रक्षो-भैषज्यमुच्यते । सदम्पुष्पा सन्ध्या प्रसिद्धा । सू० ८ ।---अथ सर्वव्याधिभैषज्य-मुच्यते ॥ भवाशर्वौ मन्वे वामिति सूक्तेन । सू० ९ । सर्वभूतग्रहभैषज्यमुच्यते । शमीपर्णचूर्णं शमीफले कृत्वाभिमन्त्र्य सक्तुमध्ये ददाति भक्षार्थं रक्षोग्रहभैषज्यम् । सू० १० ।--शमीचूर्णं शमीफले कृत्वाभिमन्त्र्यालङ्कारे ददाति । सू० ११ ।—शमीचूर्णं शमीफले कृत्वाभिमन्त्र्य व्याधितस्य शालां चूर्णैः परिकिरति । सू० १२।—भ्रमतिगृहीते पुरुषे भैषज्यमुच्यते । प्रज्ञानष्टे अज्ञानगृहीते अधर्मगृहीते त्रिवर्गे च

विनष्टे द्यूतक्रीडाद्यतिप्रवृत्ते कुबुद्धिभैषज्यम् । सू० १३ ।--राजयक्ष्मणि शिरोरोगे कुष्ठमये सर्वगात्रवेदनायां भैषज्यमुच्यते । यो गिरिष्वजायत इति सूक्तेन । अश्वत्थ देवसदन इति द्वे गर्भोऽसीति तृचेन च कुष्ठपिष्टं नवनीतमिश्रमभिमन्त्र्य अप्रतिहारं व्याधितशरीरं प्रलिम्पति । सू० १४ ।--अथ शस्त्राभिघाते भैषज्यमुच्यते। रात्री मातेति सूक्तेन । दुग्धलाक्षां क्वाथयित्वाभिमन्त्र्य पाययति । शस्त्राभिघाते काष्ठाभिघाते पाषाणपतनाभिघाते अग्निदग्धे सर्वशरीराभिघाते भैषज्यं समाप्तम् । सू० १५ ।—सूतिका स्त्री अरिष्टकस्य भैषज्यान्युच्यन्ते । ब्रह्मयज्ञानमनाप्ता "ये सहस्रधार एष ते इति सूक्तेन भक्तमभिमन्त्र्य ददाति भक्षणार्थम् । सू० १६।—समाप्तं स्त्रीप्रसवदोषे सूतिकारोगे च भैषज्यम् । अद्भुतदर्शने दोषनाशनभैषज्यं समाप्तम् । सर्वाद्भुतेषु भक्तकर्म वा मन्थकर्म वा आचमनकर्म वा कुर्यात् । यानि चरकादिवैद्यकेषु अद्भुतानि पठ्यन्ते तेषां सर्वेषामियं शान्तिभैषज्यं भवति । सू० १७ । अथ सर्वव्याधिभैषज्यान्युच्यन्ते । सू० १९ ।—द्वौ सम्पातौ भूमौ दत्वा ततः सम्पातितां भूमिमृत्तिकां गृह्य तत उदपात्रे प्रक्षिप्य व्याधितमाप्लावयति ।

कण्डिका ॥ २९ ॥

सर्वविषभैषज्यमुच्यते । सू० २-४॥—यत्ते अथोदकमित्यृचा अप्रदक्षिणं परिक्रामति व्याधितम् । विषस्तम्भनभैषज्यम् । शिरसि शिखां बध्नाति ।" श्वेतवस्त्रेण ग्रन्थिं बध्नाति ।"'शणस्तम्बे ग्रन्थिं बध्नाति । विषं न विसर्पति देशस्थितं भवति शरीरे न सर्पति विषस्तम्भनं भवति ॥ सू०५ ।—वृषामेरव इत्यृचा । यस्मिन् स्थाने दष्टं तं स्थानं न पीडयति । ऋचं जपित्वा दंशाद्विपमन्यत्र गच्छति । विषशासने भैषज्यम् ॥ सू० ६ ।—चक्षुषा ते चक्षुरित्यृचा आचार्यस्ततः प्रदक्षिणं परिक्रामति । अपेह्यरिरसीत्यृचं जपित्वा तृणानि प्रज्वाल्य ततो अह्यभिमुखं प्रक्षिपति । सू० ७ ।—अपेह्यरिरित्यृचं जपित्वा यतो दष्टस्ततो ज्वलिततृणानि क्षिपति दर्शनेन । सू० ८ । — कैरातपृश्न इत्यृचा उदकं गृहतृणावज्वालितमभिमन्त्र्य व्याधितं पाययति प्रोक्षति च । सू० ९ ।—असितस्य तै मातस्येति ऋचा आर्त्नीज्यापाशं संपात्याभिमन्त्र्य बध्नाति आलिगी च विलिगी च उरुगूलाया इति च द्वाभ्यां मधुमक्षिकां मधुवृक्षमृत्तिकामभिमन्त्र्य पाययति । सू० १४ ।—अलाबुवृन्तं सम्पात्याभिमन्त्र्य बध्नाति । सू० १५ । अथ दुष्टवक्तॄणां मुखस्तम्भनमुच्यते । एका च मे यद्येकवृषोऽसीति सूक्ताभ्यां कलापपच्छूवां मधूदकं च एकत्र कृत्वा व्याधितं पाययति । दुष्टवक्तृमुखबन्धनभैषज्यम् । दुष्टपुरुषबन्धनम् । परोक्षेण वदन्ति । सू० १६ ।—यद्येकवृष इति सूक्तेन भोजनमभिमन्त्र्य भक्षयति शापभैषज्यम् । सू० १७ । यद्येकवृष इति सूक्तेन गृहद्वारमभिमन्त्र्य ददाति अपिदधातीत्यर्थः । सू० १८ ।—अथ ज्वरभैषज्यमुच्यते । सू०

१९ ।–अग्निस्तक्मानमिति सूक्तेन । ताम्रस्रुवेण मूर्ध्नि संपातानानयति। तत उत्तर-तन्त्रम् । एकस्मिन् तन्त्रे दावाग्निप्रणयनम् । सू० २० ।—अथ कृमिभैषज्यमुच्यते । करीरमूलं सम्पात्याभिमंत्र्य बध्नाति । गोबालैः करीरकाष्ठं वेष्टयित्वा सूक्तं जपित्वा पाषाणेन चूर्णयति । ततः सूक्तेनाग्नौ प्रतपति । ततः सूक्तेनादधाति । सू० २४ ।—एकविंशत्युशीराणां मूलान्यभिमन्त्र्य ततः पाषाणेन कुट्टयति ततः सूक्तं जपित्वा उशीराण्यग्निना दहति । सू० २६ ।—एकविंशत्युशीरपिञ्जूली-सहितं सम्पात्याभिमन्त्र्य ततो व्याधितमाप्लावयति । सू० २७ ।—अथ राक्षस-भैषज्यमुच्यते ।—वयोनिवेशनकाष्ठश्रुतम् । सू० २८ ।—अथ सर्पविषभैषज्यमुच्यते। सर्पविषलिङ्गश्युपतापः । सू० ३० ।—श्लेष्मभैषज्यमुच्यते । उदकेन इदं क्रियते । अप्स्विदं कृत्वा तत्राग्निं प्रज्वाल्य । अस्थिस्रंसमिति सूक्तेन काष्ठशकलं संपात्य ततः शकलेन सम्पातवतावसिञ्चति व्याधितम् ॥

कण्डिका ॥ ३० ॥

सू० १।२ ।—अथाक्षिरोगे भैषज्यमुच्यते । सर्षपकाण्डमणिं संपात्याभि-मंत्र्य बध्नाति सर्षपतैलेन सम्पातवन्तं करोति। आज्येन प्रधानं अङ्गानि सर्षपतैलेना-भ्यज्य मणिं वा ततो बध्नाति । सू० ३ ।—सर्षपशाकं सर्षपतैलेनाभ्यक्तमभिमन्त्र्य व्याधिताय प्रयच्छति । सू०५ ।–मूलक्षीरं मुखेन प्राश्य ततोऽभिमन्त्र्य अङ्क्ते अक्षिणी व्याधितस्य । मूलक्षीरं क्षीरपाटिकालग्नं तदुच्यते । सू० ६ ।—मूलक्षीरं भक्षयति । सू० ७ ।–पित्तज्वरभैषज्यमुच्यते । ताम्रस्रुवेण मूर्ध्नि संपातानानयति । अस्मिन् तन्त्रे दावाग्निप्रणयनं कुर्यात् । सू० ८ ।—अथ केशवृद्धिकरणे केशपतने भैषज्य-मुच्यते । वृक्षभूमिजातौषधीभिरवज्वालितमुदकमभिमंत्र्यावनक्षत्रेऽवसिञ्चति । सू० ९ ।–मधु क्राथयित्वा विभीतकं क्राथयित्वाभिमन्त्र्य व्याधितमवसिञ्चति । सू० १० ।–दारुहरिद्रा हरिद्रे च द्वाभ्यां क्राथयित्वाभिमन्त्र्यावसिञ्चति । सू०११ ।—अथ उदरतुण्डभैषज्यमुच्यते । कृष्णं नियानं सस्रुरिति सूक्ताभ्यां चित्र्याद्योषध्या सहित-मुदकमभिमन्त्र्य ततो व्याधितमवसिञ्चति । सू० १२ ।—कृष्णं नियानं सस्रुषो-रितिसूक्ताभ्यां मरुतो यजते पाकयज्ञविधानेन यथा वरुणम् । मारुतं क्षीरौदनं मारुतश्रुतम् । सू० १३ ।······अथ हृदयदग्धे जलोदरे कामले च भैषज्यान्युच्यन्ते। नद्युदकमनुलोममाहार्यं तत्र वलीकतृणानि प्रक्षिप्य व्याधितमवसिञ्चति । सू० १४ ।—अथ गण्डमालाभैषज्यमुच्यते । पञ्च च या इति सूक्तेन गोपाशूलिकां पञ्चाशत्पंचाशत्यधिकाअग्नौ प्रज्वाल्य अधस्तादयः समिध आदधाति ।

कण्डिका ॥ ३१ ॥

सू० ४ ।—पुरोडाशं···पयो जुहोति । व्रीहीन् । आवपति शान्तवृक्षसमिध

आदधाति । रक्षोग्रहभैषज्यम् । सू० ५ ।—अथ सर्वभैषज्यमुच्यते । वैश्वानरो न ऊतये ऋतावानं वैश्वानरमिति सूक्ताभ्यां उदपात्रमभिमन्त्र्य पाययति । सक्तुमन्थं पाययति । हरिद्रां सर्पिषि पाययति । अप्सु घृतमुदकमभिमन्त्र्य पाययति । सू० ६।—अपवादे भैषज्यमुच्यते, बहुभाषणमधर्मे च प्रवर्तते तस्यापवादः । अभ्यातानान्तं कृत्वा अस्थाद् द्यौरिति पूर्वेण स्वयंपतिते गोशृङ्गे उदकं कृत्वाभिमन्त्र्याचामयति अभ्युक्षति च । सू० ७ ।—अथ उदरे वा हृदये वाङ्गे वा सर्वाङ्गे वा शूले उत्पन्ने भैषज्यमुच्यते । या ते रुद्र इति सूक्तेन शूलमणिं संपात्याभिमन्त्र्य बध्नाति । शूलं लोहमणिः पाषाणो वा दारिलरुद्रमतम् । यां ते रुद्र इति व्याधितमभिमन्त्रयते रुद्रभाष्यमतम् । शूलभैषज्यं समाप्तम् । सू० ८ ।—रक्षोग्रहे भैषज्यमुच्यते । उत्सूर्यं इति चित्याद्योषधीभिः सहोदकघटमभिमन्त्र्य व्याधितमवसिञ्चति । शम्युदकेन सह अवसिञ्चति । शमीबिम्बमुदकसहितं अवसिञ्चति शीर्षपर्णीमुदकं दत्त्वा अवसिञ्चति । सू० ९ ।—दुष्टगण्डविशिष्टभैषज्यमुच्यते । तैलमभिमन्त्र्य व्याधितं गण्डं संमार्ष्टि । सू० १० ।—स्थूणायां निकर्षति घृष्यति व्रणं रुधिरकृते दुष्टव्रणे दुष्टगण्डव्याधिभैषज्यं समाप्तम् । सू० ११ ।—अक्षितव्रणभैषज्यमुच्यते । गोमूत्रमभिमन्त्र्य तेन व्रणं मर्दयति । यस्य व्रणस्य मुखं नास्ति । अक्षतदुष्टव्रणे भैषज्यम् । सू० १४ ।—तृणरजस्य फेनमभिमन्त्र्य व्रणं प्रलिम्पति । यस्य गण्डदुष्टस्य रुधिरं न च वहति तस्य समाप्तमक्षतव्रणभैषज्यम् । सू० १६ ।—गण्डमालाभैषज्यमुच्यते । शंखं घृष्ट्वाभिमन्त्र्य गण्डमालां प्रलिम्पति । श्वानलालां कुकुंटलालां प्रलिम्पति । जलौकामभिमन्त्र्य गण्डमालायां संसर्जयति । सू० १७ ।—सैन्धवलवणं चूर्णयित्वाभिमन्त्र्य गण्डमालाया उपरि प्रकिरति । ततस्तस्योपरि निष्ठीवति मुखलालां प्रक्षिपति । सू० १८।—अथ पक्षिणोऽभिघाते भैषज्यमुच्यते । श्वानपदस्थानमृत्तिकामभिमन्त्र्य पक्षाहतं देशं प्रलिम्पति । पक्षहतभैषज्यम् । सू० १९ ।—शुनो मक्षिकामभिमन्त्र्याग्नौ प्रक्षिप्य ततो धूपयति व्याधिप्रदेशम् । काकगृध्रकपोतश्येनादिपक्षिणाभिघाते भैषज्यं समाप्तं । सू० २० ।—अथ गण्डभैषज्यमुच्यते । ग्लौरितः प्रपतिष्यतीति अर्धर्चेन गोमूत्रमभिमन्त्र्य गण्डं मर्दयति । प्रक्षालयति । दन्तमलं प्रलिम्पति । तृणरजःफेनं ··· प्रलिम्पति । समाप्तं गण्डभैषज्यं गण्डस्कोटिकां इत्यर्थः । सू० २१ ।—गर्दभाद्युरं गण्डभैषज्यमुच्यते ··· । शान्त्युदकमभिमन्त्र्य क्षतं प्रोक्षति । आज्यं जुहोति । ततो मनसा संकल्पयति सम्पातान्ददाति । समाप्तं गर्दभदशजातिपिकादिक्षतगण्डभैषज्यम् । सू० । २२ ।—पापगृहीते जलोदरे च भैषज्यमुच्यते । सू० २६ ।—विषे उपविषे स्थावरजङ्गमे च भैषज्यमुच्यते । मक्षिकायां च भैषज्यम् । सू० २७ ।—कासो श्लेष्मपतने च भैषज्यमुच्यते । भोजनमभिमन्त्र्य ददाति । सक्तुमभिमन्त्र्य भक्षयति । उपस्थानमादित्यस्य । उदकमभिमन्त्र्याचामयति । सू० २८ ।—केशवृद्धिकरणे भैषज्य-

मुच्यते । काचीमाचीफलमणिं बध्नाति । जीवन्तीफलं बध्नाति । भृङ्गराजं बध्नाति । केशदृढीकरणे केशजनने ह्रस्वकेशेषु वृद्धकरणभैषज्यम् । माषतिलादि कृष्णमन्नं भक्षयित्वा काचीमाचीफलं भृङ्गराजाभ्यां सहोदकमभिमन्त्र्य रात्रौ ब्राह्मे मुहूर्तेऽवसिञ्चति ।

कण्डिका ॥ ३२ ॥

सू० १ ।—जम्भगृहीते भैषज्यमुच्यते । स्तनमभिमन्त्र्य बालकाय प्रयच्छति पानार्थं पतिः करोति कर्ता करोति । दुःस्वनाशने भैषज्यम् । सू० २ ।—पाययति बालकं पिता वा माता वा पाययति तत्रोपरि दुह्यते अभ्यवदुग्धाः । सू० ३ ।—सर्वव्याधिभैषज्यमुच्यते......सू० ५ । वृश्चिकभैषज्यमुच्यते "तिरश्चिराजेरित्यृचेन" ज्येष्ठीमधु पिष्ट्वाभिमन्त्र्य पाययति । सू० ६ ।—क्षेत्रमृत्तिकां जीवकोषणीचर्मवेष्टितां मणिं कृत्वा सम्पात्याभिमन्त्र्य बध्नाति । वृश्चिकमशकभैषज्यम् । जीवतः पशोश्चर्म जीवकोषणीत्युच्यते । सू० ७ । यानि यानि पायनान्युक्तानि तानि "तिरश्चिराजेरि"-त्यस्य सूक्तस्य भवन्ति । समासं वृश्चिकपिपीलिकामशकदंशशार्कोटजलूकाभैषज्यम् । ...सू० ८ । अथ गण्डमालाभैषज्यमुच्यते । "अपचितां लोहितीनामिति द्वाभ्याम् । "आसुसुस" इत्येका एताभिस्तिसृभिर्वंशधनुषं कृष्णोर्णमयीं ज्यां कृत्वा चित्रितेन शरेण गण्डमालां विध्यति प्रत्यृचम् । त्रयः शरा भवन्ति । सू० ९ ।—"या ग्रैव्या अपचित" इति चतुर्थ्या ऋचा चतुर्थेन शरेण गण्डमालामभिनिधाय विध्यति । सू० १० ।-कृष्णोर्णज्यावज्वालितोदकमभिमन्त्र्य उषाकाले...अवसिञ्चति व्याधितम् । सू० ११ ।—अथ राजयक्ष्मभैषज्यमुच्यते ।......तृचेन वीणातन्वीखण्डं सम्पात्याभिमन्त्र्य बध्नाति । सू० १२ ।—वाद्यवीणा तस्याङ्गस्वरं विष्णोर्वाद्यवीणाकण्ठं शिखण्डं वीणातन्त्रीं बद्ध्वा सम्पात्याभिमन्त्र्य बध्नाति । सू० १३ । स्वयंपतितवीरिणखण्डत्रयमेकत्र बद्ध्वा सम्पात्याभिमन्त्र्य बध्नाति । सू० १४ ।—जलोदरे वरुणगृहीते भैषज्यमुच्यते । सू० १७ ।—अथ ज्वरभैषज्यमुच्यते । "नमो रूप्येति" सूक्तद्वयेन खट्वायां व्याधितं कृत्वा बध्वा तत अधः खट्वायां व्याधितमुपवेश्य तत उदकमभिमन्त्र्य व्याधितमवसिञ्चति । व्याधितं सिच्यमानं यथा मण्डूकमभिषिच्यते तथा कुर्यात् । सू० १८ ।—अथ सर्वभैषज्यमुच्यते । अर्थसूक्तेन व्याधितेन...... अभिमृशति । सू० २० ।—सर्वविषभैषज्यमुच्यते । सू० २१ ।-"इन्द्रस्य प्रथम०" इत्यर्थसूक्तेन पैद्वं कीटकं तालिणीति लोकप्रसिद्धा तं पिष्ट्वाभिमन्त्र्य नस्तं ददाति... दक्षिणनासिकापुटे । सू० २२ ।—अथ सर्पभये भैषज्यमुच्यते । पैद्वं श्वेतवस्त्रवेष्टितमभिमन्त्र्य यत्र सर्पभयं तत्र निखनति । पैद्वं हिरण्यवर्णसदृशः कीटश्चित्रितो वासः पैद्व इत्युच्यते । सू० २४ ।—"आरे अभूदित्यृचान्तेन उल्मुकं प्रताप्याभिमन्त्र्य ततो

विषव्रणं दृष्ट्वा तत्संमुखं क्षिपति । सू० २५ ।—सर्पादर्शने यतो दष्टस्ततः प्रक्षिपति उल्मुकम् । सू० २६-२७ ।—अथानुक्तेषु कौशिकीयेषु सर्वव्याधिभैषज्येषु उक्तेषु चानुक्तेषु वा पठितेषु तत्र सर्वभैषज्यमुच्यते । सर्वव्याधिभैषज्येषु मन्त्रओषधिवनस्पतीनामनुक्तान्यप्रतिषिद्धानि भैषज्यानां अंहोलिङ्गाभिरुच्यते अंहोलिङ्गेन गणेन तानि कर्त्तव्यानि । "आशानामाशापालेभ्य" इत्येका अंहोलिङ्गगणः । यानि च वै प्रतीकान्युच्यन्ते तान्यभिमन्त्रणेन सर्वव्याधिभैषज्यानि भवन्ति तान्युच्यन्ते । "अक्षिभ्यां ते मुञ्चामि त्वा०", उत देवाः०", "आवतस्तशीर्षक्ति, अंहोलिङ्गगणः । एतैः पञ्चप्रतीकैः... अन्यतमेनैकेनाभिमन्त्रणं कुर्यादित्यर्थः । अंहोलिङ्गगणः ।" सर्वव्याधिषुभैषज्यानि । अथवा तैः सूक्तैः कर्तव्यानि । अथवा अंहोलिङ्गेन कर्तव्यानि । उक्तव्याधीनां परिगणनं क्रियते । सू० २८ । अथ स्त्रीकर्मणो विधिं वक्ष्यामः । पुत्रकामायै स्त्रीकामायै स्त्रियै मृतापत्यायै रजोनाशे च शान्तिरुच्यते ।

कण्डिका ॥ ३३ ॥

सू० १ ।—अथ प्रसवकाले इदं कर्म क्रियते यथा सुखेनैव प्रसवो भवतीत्यर्थः । अथ प्रसूतिकरणमुच्यते सू० ३ ।—छिद्यमानासु मुञ्जेषीकासु गर्भसंस्थमरणं भवेत । एकं कर्म ॥ सू० ५ ॥ शालाग्रन्थीन् विचृतति । द्वितीयं कर्म सू० ६ ।—कटिप्रदेशे बध्नाति तृतीयं कर्म । केचित् "वषट् ते पूषन्निति सूक्तेन तैलमभिमंत्र्य प्रसवकाले अभ्यञ्जनं कुर्वन्ति । सू० ८ ।—"अन्या वो अन्यमवेति" ओषध्यस्ता एवं एकत्र बध्नाति । सू० ९ ।—सर्वत्रौषधिखननमेतेन विधानेन कर्तव्यं । यत्र क्वचिदौषधिखननं तत्र सर्वत्रानेन विधानेन कर्तव्यं । सू० १८ ।—यदि तान्येकत्र भवन्ति तदा पुत्रो जायते । विज्ञानकर्मेदं । सू० २० ।—यदि पुंनामधेयं स्पृशन्ति तदा कुमारो जायते ।

कण्डिका ॥ ३४ ॥

सू० १ ।—अथ वन्ध्याप्रजननकरणमुच्यते । सू० २ । —ततो गृहे पुरोडाशं प्रमन्दं कटुपा अलंकारान्सम्पात्य प्रयच्छति । सू० ३ ।—अथ मृतापत्यायाः स्त्रियस्तस्याः शान्तिरुच्यते । गर्भस्रावे जातमात्रे मृते वा स्त्रियां वा पुरुषे वा बाले वा यूनि वा मृते इदं कर्म । त्रीणि मण्डपानि प्रागुद्काराणि कृत्वा एकस्मिन् मण्डपे अभ्यातानान्तं कृत्वा ।... सू० ४ ।—पालाशपत्रे ॥ ५ ॥ सीसेषूपरि स्त्रीमधिष्ठाप्य तेनोदपात्रेणाप्लावयति । सू० १० । —प्राक्पश्चिमद्वारेषीकं द्वार्योरुपरि बद्ध्वा ततो "निःसालामि"ति-सूक्तेनौदुम्बरीः समिधः मृतापत्यायै आदधाति । सू० १२ ।—पतिलाभकर्माण्युच्यन्ते । सू० १३ ।—आसयति कुमारीं । सू० १४ ।—मृगाखरमृत्तिकाया वेदिं कृत्वा हिरण्याङ्गारान् गुग्गुलु मौक्षं च यथोक्तान् सम्पात्य बन्धनं धूपनं प्रलेपनं कुर्यात् । पूर्वस्य संहिताविधिश्लोकः ।

आवपेन्सुरभिगन्धान् क्षीरे सर्पिस्तथोदके ।
एतदायनमित्याहु रौक्षं तु मधुना सह ॥—

सू० १५ ।—दक्षिणामुखी कुमारी प्रक्रामति । सू० १६ ।—नावं सम्पात्य "भगस्य नाव" मित्यृचा उत्तारयति । सू० १७ ।—सप्तदानतंत्र्या वत्सान् बन्धयित्वा सम्पात्याभिमंत्र्य कुमारीं मोचयति । स्वयं न कर्त्ता । यदि प्रदक्षिणं मोचयति तदा पतिलाभः । सू० १८ ।—वृषभं विसर्जयति । सू० २१ ।—आगम कृशरं आशयति आज्यतंत्रे भगिनीकं । सू० २३ ।—तत "अर्यम्ण" इत्यर्धर्चेन गृहाभ्यन्तरे कोणे, बलिहरणं करोति । सू० २४ ।—यत आगच्छति काकस्तत आगच्छति वरः समाप्तानि पतिलाभकर्माणि ।

कण्डिका ॥ ३५ ॥

सू० १ ।—पुंसवानान्युच्यन्ते । सू० २ । — नक्षत्रकल्पे उक्तानि पुंनक्षत्राणि सू० ३ । —बाणं विवृहति । शरमणिं सम्पात्याभिमंत्र्य बध्नाति । सू० ४ ।—अश्वयण्डे बृहतिपालाशविदार्यौ वा एकत्र पिष्ट्वाभिमंत्र्य दक्षिणेनाङ्गुष्ठेन दक्षिणस्यां नासिकायां नस्तं ददाति । पुत्रार्थं कर्म पुंसवनमित्युच्यते । सू० ५।६।७ ।—केलूनांश्च पलाशत्सरु निर्वर्तें निघृष्य शिश्ने आधाय ततो मैथुनं करोति । समाप्तं गर्भाधानं । सू० ८।९ । —पुनः पुंसवनमुच्यते मधुमन्थेऽग्निं निक्षिप्याभिमंत्र्य पाययति स्त्री । सू० १० ।—शमीगर्भाश्वत्थस्याग्नि कृष्णोर्णया वेष्टयित्वा सम्पात्याभिमन्त्र्य बध्नाति आज्यतन्त्रे । समाप्तं पुनः पुंसवनं । सू० ११ ।—अथ गर्भाधानमुच्यते हस्तावर्तकं कर्णादिकं सम्पात्याभिमन्त्र्य बध्नाति आज्यतन्त्रे । समाप्तं गर्भाधान । सू० १२ ।—अथ गर्भदंहणमुच्यते । "अच्युता द्यौरि"ति । सू०१६ । "धाता दधात्वि"ति चतसृभिर्गर्भिण्या उदरमभिमंत्रयते वीरकर्म समाप्तं सू० १७ । अथ प्रजननकर्म । "प्रजापतिर्जनयती"ति सूक्तेन । सू० १९ ।—उदकुलिजं संम्पातवन्तं कृत्वा गर्भिणीं परिहृत्य मध्ये निनयति । सुरा कुलिजं ... भक्तं सुरां प्रपां सम्पात्याभिमन्त्र्य प्रजाकामायै प्रयच्छति । समाप्तं प्रजागर्भकर्म वन्ध्यायाः । सू० २० । —अथ सीमन्तकर्म उच्यते । श्वेतपीतसर्षपान् सम्पात्याभिमन्त्र्य पुण्याहान्ते बध्नाति । सू० २१ ।—अथ स्त्रीवशीकरणमुच्यते । वृक्षत्वक् , तगरं, शरखण्डं, अञ्जनं, कुष्ठं, ज्येष्टीमधु, वातसंभ्रमतृणानि । एतानि द्रव्याणि आज्येनालोड्य अङ्गं समालभेत् रुच्यर्थम् । सू० २२ । —अङ्गुल्या तुदति भार्यायामुदरे पृष्टौ रुच्यर्थी । सू० २३ । —एकविंशतिबदरीकण्टकानादधाति । सू० २४ ।—एकविंशतिबदरीप्रान्तानि सूत्रेण वेष्टयित्वा । सू० २६ । —खट्वां अधोमुखपट्टिकां गृहीत्वा...स्वपिति । त्रिरात्रं कर्म । सू० २७ ।—अर्दयञ्छेते । सू० २८ ।—समाप्तानि संवननानि वशीकरणानि कामविषये स्त्रियामुत्साहो भवति ।

कण्डिका ॥ ३६ ॥

सू० १–२ ।—स्वापनविघ्नशमनम् । स्त्रीस्वापनकर्म उच्यते । अभ्यन्तरद्वारे शेषमुदकं न्युब्जति । सू० ४ ।—स्त्रियाः खट्वाया दक्षिणपादमभिमन्त्रयते । खट्वाया रज्जुमभिमन्त्रयते । स्त्रीस्वापनं पुरुषस्य विषये काम उत्पद्यते । कामविषये स्त्रीस्वापनं समाप्तम् । लज्जाप्रच्छादनं लज्जा भवतीत्यर्थः । स्वापनं सर्वेषां मानुषाणां निद्राकामानाम् । मैथुनमाचरतो विघ्नं न भवति । सू० ५-६ ।— अथ पलायिन्याः स्त्रियाः बन्धनकर्म तन्त्रक्रमेण क्रियते । रज्जु कल्पते तद्रज्जुवेष्टनमुच्यते । "अस्थाद् द्यौरस्थादि"ति द्वितीयेन सूक्तेन रज्जुवेष्टनमभिमन्त्र्य वंशाग्रे बध्वा मध्यमस्थूणे बध्नाति । सू० ७ । —शयनपादमभिमन्त्र्य उत्पले बध्नाति । सू० ९ ।—अङ्कुशेन तिलाञ्जुहोति । सू० १० । —जायापत्योरक्रोधकरणमुच्यते । सू० १२ । —सौभाग्यकरणमुच्यते । शङ्खपुष्पीमूलमोषधिवत् खात्वा ... बध्नाति । सौवर्चलपुष्पमभिमन्त्र्य यस्य सौभाग्यमिच्छति तस्य पुष्पमभिमंत्र्य तस्य शिरसि बद्ध्वा । सौवर्चलं सूर्यवेलेति प्रसिद्धा । सू० १३–१४ ।—दुष्टस्त्रीवशीकरणमुच्यते "रथजितामि"ति सूक्तैस्त्रिभिर्माषानभिमन्त्र्य स्त्रियाः क्रमेषु वपति ।··· चणकान्··· वपति । खट्वास्थाने वा गृहे शयनदेशे वा । शरभृष्टीरादीषा अभिमन्त्र्य प्रतिदिशमभ्यस्यति । एषु पतिप्रतिकृतिं कृत्वा··· हृदये विध्यति । दार्म्यूषेण भाङ्गज्येन । समाप्तानि पतिद्वेषिणीकर्माणि । पुरुषो वा स्त्रीणां द्वेषं करोति । अनेन कर्मणा शान्तिर्भवति । सू० १५ ।—अथ स्त्रियो वा पुरुषस्य वा दौर्भाग्यकरणमुच्यते । दहनघातिता गौः अनुस्तरणीत्युच्यते । ईशानहता ज्वरहतेत्युच्यते । तत उलूखलदरणे त्रिशिले निखनति तत उलूखले ददाति । उपरि यस्य दौर्भाग्यं क्रियते तस्य एतानि गृह्णीयात् । सू० १६ ।—स्त्रीपुष्पमालां पिष्ट्वा अन्वाह । सू० १७—कृष्णसूत्रेण वेष्टयित्वाभिमन्त्र्य··· व्यत्यासं अश्मानं शालाया उपरि ददाति । व्यत्यासेन निखनति दौर्भाग्यकामः । सू० १८ ।—अथ तस्याः सौभाग्यकरणमुच्यते । "यं ते भगं निचख्नु"रिति–शिला उत्खनति उत्पादयति । "भगमस्या" इत्यनेन सूक्तेन यत्कृतं तदनया विनश्यति । समाप्तं यस्या दौर्भाग्यं कृतं तस्याः सौभाग्यकरणम् । सू० १९ ।— अथ सपत्नीजयकर्माण्युच्यन्ते । सपत्नीविद्वेषणं···बाणपर्णी मासिका लोकेप्रसिद्धा । सू० २२ ।— अथ स्त्रीविषये काम उत्पन्ने कामविनाशकान्युच्यन्ते । यस्मिन्देशे काम उत्पन्नस्तत्स्थानं यावत् स्त्री वा पुरुषो वा···व्रजति । सू० २५ ।—स्त्रीविषये ईर्ष्याविनाशकान्युच्यन्ते । ईर्ष्यालुं दृष्ट्वा जपति । सक्तुमन्थमभिमन्त्र्य ईर्ष्यालुकाय ददाति···भक्षार्थम् ॥ २६ ॥ ईर्ष्यालुकस्य कटिप्रदेशे खल्वाभिमन्त्र्य धमति ॥ २८ ॥ अथ मन्युविनाशकान्युच्यन्ते स्त्रीविषये पुरुषस्य । मन्युमन्तं

पुरुषं दृष्ट्वाश्मानमभिमन्त्र्य हस्तेन गृह्णाति ॥ सू० २९ ॥ अश्मानं भूमौ निदधाति। सू० ३१ ।—मन्युमतः पुरुषस्य छायायां धनुरभिमन्त्र्य सज्जं करोति। सू० ३२—अथ सर्वविषये मन्युविनाशकान्युच्यन्ते । दर्भमूलमोषधिवत् खात्वा सम्पात्याभिमन्त्र्य बध्नाति मन्युके । सू० ३३ ।—अवीरजननमुच्यते अपुत्रजननमित्यर्थः। अग्रे जातानित्यृचा अश्वतरीमूत्रेण पाषाणं निघृष्य ततोऽभिमन्त्र्य भक्तेन सह ददाति।...अलंकारं समालभते। विद्वेषणं परस्य । अथ वन्ध्याकरणमुच्यते। "प्रान्या"निति तृचेन अश्वतरीमूत्रेण । सू० ३४ ।—समाप्तानि विद्वेषणानि परस्त्रीवन्ध्याकरणानि। सू० ३५ ।—जारोच्चाटनमुच्यते... ॥ ३७ ॥ पाषाणमभिमन्त्र्य जारमैथुनस्थाने प्रक्षिपति उच्चाटनार्थम्। सू० ३८ ।—पुरुषस्य स्त्रिया सह परस्परं विद्वेषणकरणान्युच्यन्ते । बाणापर्णी लोहिताजाया द्रप्सेन संनीयाभिमंत्र्य शयनमुपरि किरति । स्त्रीपुरुषस्य उभयरुचिविनाशकरणम्। सू० ३९ ।—अथ दौर्भाग्यकरणमुच्यते।'''हृदयं मुखं वाभिमन्त्रयते परस्त्रियै। समाप्तानि स्त्रीकर्मकरणानि। तत्र भद्रश्लोकः।

भैषज्यकर्माणि प्रोक्तानि सर्वव्याध्युपशान्तये।
स्त्रीकर्माणि ततः पश्चाच्चतुर्थः संहिताविधौ ॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

कण्डिका ॥ ३७ ॥

अथ विज्ञानकर्मणां विधिं वक्ष्यामः । लाभालाभजयपराजयसुखदुःखोत्कर्षापकर्षसुभिक्षदुर्भिक्षक्षेमाक्षेमभयाभयरोगारोगाः। त्रसोऽस्तीति नवेति–धनाधनधर्माधर्म–मरणामरणं। धान्यं भविष्यति न वेति। क्षेत्रं भविष्यति न वेति। गृहे वासो भविष्यति न वेति धान्यपुत्रपशुहिरण्यस्रग्वस्त्राणि च। विद्याशास्त्रादिलाभो भविष्यति न वेति। जीवितमरणे गमनागमने बलाबले । सदसद्योगाद् व्याधितस्य जीवितमरणाभ्यां प्रसवे पुत्रयोगात् पुत्रे जाते धर्माधर्मसंयोगात् मित्रामित्रसंयोगात्। ग्रामोऽस्ति वा न वेति। पुरुषस्य विवाहोऽस्ति वा न वेति। संवत्सरे मासे वा भविष्यति सुभगा वा दुर्भगावा। गृहं ग्रामादि, भविष्यति न वा। आधानं भवेन्नवेति। इत्यादि मनसा वाचा वा संचिन्त्य तत्कर्म कुर्यात्। सू० १ ।—राध्यमानं क्षीरौदनमभिमन्त्र्य तत आसिञ्चेत्। मनसा चिन्तयेत्। वाचा चिन्तयेत्। ओदनं श्रृतं भवेदश्रृतं वा भवेत्। यदि यथा चिन्तितं भवति तदा तस्य कर्मसिद्धिर्भविष्यतीति जानीयात्। इध्ममुपसमाधायाभिमन्त्र्य आयाचेत् । उत्कुचनेनार्थः । दर्भस्तम्बमभिमन्त्र्य आयाचेत्। यत्र समं विषमं नानार्थसिद्धिः । पूर्वेद्युः पाठाभिमंत्र्य आयाचेत्। पत्राणां पत्राणां संकोचनेनार्थसिद्धिः। सू० २ ।—अम्बयो यन्तीति सूक्तेन संग्रामे

पूर्वेद्युर्वेदिं कृत्वा अभिमंन्य द्वितीयेऽहनि समविषमेण भावेन सिद्धिः । सू० ३ ।— पञ्चग्रन्थिवेणुदण्डमभिमंन्य आयाच्यं समे धारयति । अभीष्टदिशि पतनेनार्थसिद्धिः । इषुं सन्धायाभिमन्त्र्यायाचेत् । चिन्तितं प्रक्षेपणेनार्थं । कुम्भे उदकपूर्णे दुग्धं प्रक्षिप्यायाचेत् । जनाधिकेनार्थसिद्धिः यथा चिन्तितं तथा सिद्धिः कमण्डलुमुदकपूर्णं दुग्धमाक्षिप्याभिमंन्यायाचेत् । जनाधिकेनार्थसिद्धिः । दर्भस्तम्बमभिमन्त्र्यायाचेत् । काम्पीलशाखां मूर्ध्नि धारयित्वाभिमन्त्र्यायाचेत् । इष्टदिक्पतनेनार्थः । युगमभिमंन्यायाचेत् । ······ धान्यमभिमंन्यायाचेदग्नौ प्रक्षिपेत् प्रदक्षिणज्वलनेनार्थः। हस्तयोरङ्गुलिद्वयमभिमन्त्र्यायाचेत् । अज्ञातस्य "वेनस्तदि"ति सूक्तेन एकविंशत्या शर्करया अभिमन्त्र्यायाचेत् धनेनार्थः समविषमभावेन यथावतार्थः । सू० ४।—अथ नष्टद्रव्यपरीक्षणे क्रियमाणे इदं कर्म । "वेनस्तदि"ति सूक्तेन । सू० ६ । वेनस्तदिति सूक्तेनाहतेन वस्त्रेण वेष्टितं हलं सम्पात्याभिमन्त्र्य येन हरेतां ततो नष्टः । अक्षाः कुम्भवत्कृत्वा सम्पात्य येन हरेतां ततो नष्टः । समाप्तं नष्टद्रव्यपरीक्षणे विज्ञानम् । सू० ७ ।—अथ कुमारीविज्ञानमुच्यते । वेनस्तदिति सूक्तेन । सू० ११ ।—"वेनस्त"दिति सूक्तेन कुमारीमुदकाञ्जलिं पूरयित्वाभिमन्त्र्य । सू० १२ । समाप्तं कुमारीविवाहकाले विज्ञानम् ।

कण्डिका ॥ ३८ ॥

अथ नैमित्तिकान्युच्यन्ते । सू० १ ।—दुर्दिनविनाशकर्मणां विधिं वक्ष्यामः । दुर्दिनमभिमुखमुपतिष्ठते सर्वत्र दुर्दिनविनाशकानि । सू० २ ।—प्रत्यृचमुदकं प्रक्षिपति । सू० ३ ।—खड्गं गृहीत्वोपतिष्ठते अभिमुखः । उल्मुकं गृहीत्वोपतिष्ठते सूर्यस्याभिमुखः । लकुटं गृहीत्वोपतिष्ठते । सू० ४ ।—उन्मृजानो अर्कमुखो भूत्वोपतिष्ठते । सू० ६ ।— पटेरकसमिध अर्कसमिध आदधाति स्थण्डिले । सू० ७ ।— खदां खात्वा खदां त्रिःपरिक्रम्यार्कनिर्लुञ्चितं कृत्वा खदायां प्रक्षिपति सूक्तान्ते । ततः पांसुना खदां पूरयति । वृष्टिनिवारणं समाप्तं । सू० ८ ।—अशनिनिवारणं कर्म व्याख्यास्यामः । अशन्यभिमुखमुपतिष्ठते । सू० ९ ।–एतत्कर्मक्षेत्रे । अशनिनिवारणं ।

अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभा मूषकाः शुकाः ।
स्वचक्रं परचक्रं वा सप्तैता ईतयः स्मृताः ॥

सू० ११ ।—अवदीर्यमाणे ग्रामे वावसाने वाग्निशरणे वा सभायां वा गृहे वा प्राकारे वा रक्षार्थं कर्म वक्ष्यामः । सू० १२ ।—पत्तने रक्षार्थान्युच्यन्ते । सू०१३–१६ ।—दृंहणानि । दृतिकर्माणि दृढीकर्माणि वा । समाप्तानि दृढकर्माणि ।... गृहपत्तने ग्रामपत्तने कार्यदृढकरणे अवहरणरक्षार्थं । सू० १७ ।—विवादे जयकर्मणां विधिं व्याख्यास्यामः । ज्येष्ठीमधुमभिमन्त्र्य भक्षयति । ततः सभां प्रविशति अपराजित-

देशात्। परिषज्जयकर्म सभाजयकर्म समाप्तं। सू० १८।—विवादे जयकर्माण्युच्यन्ते। पाठामूलं मुखे प्रक्षिप्य तदनन्तरमपराजितादेशादागच्छति। सू० १९।—पाठामूलं मुखे प्रक्षिप्यान्वाह। सू० २०।—पाठामूलं बध्नाति। सू० २१। पाठापुष्पमालामभिमंत्र्य शिरसि धारयति। पाठापालाशी सप्तपालाशी सप्तपर्णी मालामभिमन्त्र्य धारयति। सू० २२।—वृष्टिनिवारणं भक्षभोजने कर्म उच्यते। भक्तमभिमन्त्र्य भक्तं शाकादि। ततो भुञ्जीत। वृष्टिनिवारणं समाप्तं। सू० २३।—ब्रह्मजज्ञानमिति सूक्तेन प्रथमेन काण्डादिना सूक्तेन वेदं वा अनुवाकं वा सूक्तं वा कल्पं वा ब्राह्मणं वा अध्ययनं कर्तुमिच्छति तदा तदा सूक्तं जपित्वा ततोऽध्ययनं कुर्यात्। कलहशमनं समाप्तं। सू० २४।—ब्रह्मजज्ञानमिति सूक्तं जपति विवादे जयार्थं। सू० २५।—ब्रह्मजज्ञानमिति सूक्तं जपित्वा मीमांसाव्याकरणादिशास्त्रे वादं करोति तदा जपित्वा करोति प्रतिवादिनं जयति। सू० २६।—विवादकर्म उच्यते। चाक्रिकस्य रज्जुमभिमंत्र्य धारयति हस्तेन विवादकर्मकर्तुं वदने कलहो न भवति। सू० २७।—सभाजयकर्माण्युच्यन्ते सभास्तम्भनकर्म जयकर्म तदा सभासद धर्माधिकरणादि जायते। क्षीरौदनं भक्षयति। सू० २९।—"यद्‌दाती"ति ऋचं जपित्वा सभां वदेत्। निरीक्षते। अन्वाह। यद्वदति तत्र तत्र तथैव वदति यच्चक्षुषा पश्यति तद्दृक्षन् विघातो न भवति।

कण्डिका ॥ ३९ ॥

सू० १।—तिलकमणिं सम्पात्याभिमंत्र्य पुण्याहान्ते बध्नाति। आत्मरक्षार्थं मणिः। सर्वत्र प्रत्यभिचरणार्थोमणिं बध्नाति। सू० ५–१२। ततः शान्त्युदकं करोति महाशान्तिधानं मातलीवर्जं कृत्वा "दूष्या दूषिरसी"ति कृत्वा प्रतिहरणोगणः। ततो वास्तोष्पत्यमातृनाम चातनशान्तिगणे एते पञ्चगणाः। शान्त्युदकेन आवाप्यन्ते। ततो मातलीं कृत्वा शाभ्युदकभाजनेचिन्त्याद्या आदधाति। मंत्रोक्तायां दर्भापामार्गसहदेवी आठरूषककाम्पीलशिते वारसदं पुष्पा एता मंत्रोक्ता भाजने एता ओषधयः शान्त्युदकेऽवधाय ततः शान्त्युदकं करोति। तेन शान्त्युदकेन प्रोक्षन् व्रजति। अथ रात्रौ इदं कर्म प्रमाणकं करोति॥ उपानहौ परिधाय उष्णीषं कृत्वा अग्रे भूत्वा कर्त्ता शान्त्युदकेन प्रोक्षति। कृत्यास्थानं यावत्। बालागमपात्रेषु कृत्यादिषुच सर्वेष्विदं कर्म भवति। "अमित्रचक्षुषा" इत्यनेन मंत्रेण कृत्यां निरीक्षते। स च निरीक्षते। "कृतव्यधनि इत्यृचा कृत्यास्थानं अवेक्षते। "कृतव्यधनि"–इत्यृचा कर्त्ता काण्डेन विध्यति आङ्गिरसकल्पविधानधनुषा। अथवा दार्भ्यूषेण काण्डेन विध्यति। सू० १५।—मांसानि शकले निधाय कर्त्ता संदंशं गृहीत्वा चर्मणि बद्ध्वा प्रैषकृत् परिक्रम्य बन्धान्मुञ्चति। सू० १८।—नवनीतेनाभ्यज्याक्षिणी वा अङ्क्ते। सू० २०।—

अरण्ये गच्छन्ति । सू० २७ ।—वास्तोष्पत्यादयश्चत्वारोगणा उच्चैः पठन्ति । सू० २८ ।—कर्त्ता अभिचारकृत्पुरुषस्य शान्त्युदकेन मर्माणि संप्रोक्षते । गार्हपत्य-सभाआमपात्रकूपकुक्कुट इत्यादीनि मर्माणि संप्रोक्षति । सू० २९ ।—कृत्यास्थानं कृष्णवृषभहलेन कर्षंति ।

कण्डिका ॥ ४० ॥

सू० १ ।—अथ नदीप्रवाहविधिं वक्ष्यामः । नदीप्रवाहं खात्वा प्रसिञ्चन् व्रजति । सू० २ ।—काशमभिमन्त्र्य तत्र खाते रोपयति । दिवि शेवालपर्णिमभिम-न्त्र्य रोपयति नदीप्रवाहे । वेधूकपाटरकं (पटेरकं) अभिमन्त्र्य नदीमार्गे निखनति । वेतसशाखामभिमन्त्र्य नदीप्रवाहने निखनति । सू० ६ ।—उदकं मण्डूकस्योपरि निनयति । सू० ७ ।–पूर्वंप्रवाहो न भवति । अथ नवधा प्रवाहे इदं कर्म कुर्यात । वरुणदेवतापाकयज्ञविधानेन आज्यभागान्तं कृत्वा "यददः सम्प्रयती"रिति सूक्तेन त्रिर्विभज्य जुहोति । तत उत्तरतन्त्रम् । कृष्णव्रीहिं कृष्णायाः गोः पयः घृतं च वेतसकाष्ठासु च इन्धनं । वेतसपत्रैः स्तरणं पटेरकेण वा अस्मिन् तन्त्रे सर्वं मारुतं कर्त्तव्यम् । उदकप्रवाहे उदकप्रवाहभये नदीभये ग्रामे नगरे वा । यत्र उदकनदी-भयं भवति तत्र सर्वत्र वारुणो होमः कर्तव्यः । सू० ९ ।—बलिं हरेत् ततः "अति-धन्वानी"ति द्वाभ्यां न भवति । मन्त्रोदकं नदीप्रवाहे प्रसिञ्चन् व्रजति । समाप्तं नदी दूरगमनकर्म । सू० १० ।—यदि न वहति नदी तदा वक्ष्यमाण इदं कर्म । यददः संप्रयतीरिति नदीं हन्ति । वेतसशाखामभिमन्त्र्य नदीमवसिञ्चति । यदि दूरं गता पुनः निवर्तते तदा इदं कर्म एके आचार्य्याः । "यददः सम्प्रयती"रित्यादि सर्वमेकं कर्म मन्यन्ते । अन्ये भिन्नानि कर्माणि मन्यन्ते । अन्ये प्रसिञ्चन् कर्म हिर-ण्यमण्डूककर्म योगकर्म मन्थनकर्म पाणिकर्म एतेषां विकल्पं मन्यन्ते । समुच्चयो वा इति दारिलमतं समुच्चयः । समाप्तं अन्यप्रवाहे नदीकर्म ॥ सू० ११।१२ ॥ अथ अरणिसमारोपणकर्म । अरणीद्वयं प्रतापयति पाणी वाप्रता पयति । उत्थाय वा गृह्णाति । ततोऽनेन विधानेन पथि गच्छता दोषो न भवति । सू० १३ ॥ अथावरोहणमुच्यते ॥ सू० १४।१५ । पुरुषस्य वीर्यंकरणे विधिं वक्ष्यामः । कपिकच्छुमूलमोषधिवत् खात्वा···सुरवालकमोषधिवत् खात्वा दुग्धे श्रपयित्वा उप-विष्टं धनुरुत्सङ्गे कृत्वा । दुग्धमभिमंत्र्य पाययति । सू० १६ । मयूखे मुसले वासीनो यांस्त्वे"त्यृचा सुरवालकं दुग्धे क्वाथयति पीत्वा कीलके उपविश्य पिबति । कपिक-च्छुं मुसले उपविश्य पिबति । सूकरवालकं मुसले उपविश्य पिबति न शिश्नस्य स्थूलकरणमुच्यते । "यथासित"—इति सूक्तेन एकशाखाकंमर्णिं सम्पात्याभिमन्त्र्य अर्कसूत्रेण बध्नाति । सू० १७।१८ । "यावदङ्गीन" मित्यृचा कृष्णमृगचर्मसर्णिं

बध्नाति ॥ "आ वृषायस्वे"ति सूक्तेन हरिणस्कन्धचर्ममणिं कृत्वा कृष्णबालेन बध्नाति ।। वीर्यकरणं उत्थापनं स्थूलकरणं च भवति रेतोनाशे च ॥

कण्डिका ॥ ४१ ॥

सू० १ । अथ वृष्टिकर्मविधिं वक्ष्यामः ॥ सू० २।३ । त्रयोदशेऽहनि पाकयाज्ञिकं तन्त्रं व्रतोपायनान्तं कृत्वा ततो "देवस्यत्वा सवितु"रित्यादि मरुद्भ्यो जुष्टं निर्वपामि। "मरुद्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामी"ति अनेन यजुषा तावत् समानं यावदाज्यभागौ ततः क्षीरौदनं जुहोति ॥ "समुत्पतन्त्विवति"सूक्तेन पञ्चभिर्ऋग्भिरेकामाहुतिं ततः पञ्चभिर्ऋग्भिर्द्वितीयां षड्भिर्ऋग्भिस्तृतीयामाहुतिं जुहोति । ततः पार्वणाद्युत्तरतन्त्रं। पाकयाज्ञिकं तन्त्रमाज्यभागान्तं कृत्वा ततः "प्रभस्वेति" क्षीरौदनं एकामाहुतिं जुहोति । "न घ्नंस्तताप"इत्यृचा द्वितीयामाहुतिं । युक्ताभ्यां तृतीयामाहुतिं । पार्वणाद्युत्तरतंत्रं बर्हिर्होमे "मरुतो गच्छतु हविः स्वाहे"ति । सर्वेषु वृष्टिकर्मसु कृष्णाया गोराज्यं कृष्णायाः गोः पयः कृष्णाव्रीहिशालयः वेतसः स्रुवः वैतसी समिदिन्धनं च । सू० । ३ । ४ ।—काशदिविधुवकवेतसामेकत्र कृत्वा''' तत उदकमध्ये पात्रं अधोमुखं निनयति । उदके विप्लावयति । सू० ६ । कुक्कुरशिरमभिमंत्र्य उदके विप्लावयति । मेषशिरमभिमंत्र्य उदके प्रक्षिपति मानुषकेशजरद् उपानहौ वंशाग्रे प्रबध्य योधयेति जपन्। सू० ८ । अर्थोत्थापने विघ्नशमनविधि वक्ष्यामः ।। अर्थकामोद्यमं यदा करोति तदा इदं करोति ।'''द्रव्य हस्त्यश्वरत्न हिरण्यधनधान्यादि एवं कामो यदोद्यमं वणिजादि करोति तदा इदं कर्म करोति ॥ यस्मिन्नारम्भा गृहादि न सिध्यन्ति तदा इदं कर्म ॥ सू० १० ।—अथ द्यूतजयकर्म उच्यते ॥ सू० ११। उत्तराषाढ नक्षत्रे संमिनोति पूरयति । सू० १३। त्रयोदश्यादयस्तिस्रो दधिमधुनि वासयित्वा'''अक्षान् वा कपर्दकान् वा द्यूतक्रीडां कुर्यात् । सू० १४ ।—अथार्थोत्थापनोद्यमकरविघ्नशमनकर्म उच्यते मरुतो यजते पाकयज्ञविधानेन यथा वरुणं मारुतं क्षीरौदनं मारुतश्रितमित्यादि भवति ॥ एवमाद्या ओषधीः संपात्य अभिन्युञ्जनं । विप्लावयति । श्वशिर एडकशिरः केशजरदुपानहौ युद्धउदपात्रकर्म एतानि अभिवर्षणानि कर्माणि भवन्ति एकैकस्यसूक्तस्य । एके आचार्यामारुतस्थाने मन्त्रोक्त देवतायागं कुर्यात् यथा वरुणं । अथोषधि होमसमानं वर्षकर्मणां । उदकघटं सम्पात्याभिमंत्र्य तत आप्लावयति । अवसिञ्चति । विघ्नशमनकामः । समासानि अभिवर्षणावसेचनानि कर्माणि । सू० १५ ।— वैश्वानरो रश्मि"रिति सूक्तेन "उदेहि वाजिन्निति विंशत्या ऋग्भिश्च उद्यन्तमादित्यं स्नानं कृत्वोपतिष्ठते अर्थमुत्थापनकामः । सू० १७ ।—वस्त्रं ददाति । विद्रावणादिविषये शमनकामः । समासानि विघ्नशमनकर्माणि । सू० १८ ।—अथ गोवत्सद्वेषो विरोधसांमनस्यमुच्यते।

सू० १९।—ततो वत्सं त्रिः परिभ्रामयित्वा पानार्थं मुञ्चति । सू० २० ।–गवां वत्सेन सह विरोधि वत्सगोविरोधिसांमनस्यकर्म समासं । गोवत्सस्य विरोधि सौमनस्यं । अकरणे गोः पूर्वां विनश्यति । अथ गोवत्सः । तदा राजा प्रजाः । सू० २१ ।— अश्वशान्तिविधिं वक्ष्यामः । अश्वाः शान्तास्तेजस्विनो निरुपद्रवा वेगवन्त आरोग्या भवन्ति ।

कण्डिका ॥ ४२ ॥

सू० १ ।—अथ प्रवासनद्रव्योत्थापनमुच्यते । प्रवासे गत्वा चौरभयं उदक-भयं गमनविघ्नं न भवति । हविषामुपधानं कुर्यात् । सू० ३ ।—यदि यानेन याति तदा इदं कर्म । सू० ४ ।—वाणिजद्रव्यं वस्त्राश्वादिसर्वद्रव्यं···विक्रयार्थं नयति। यदा द्रव्यं गृह्णाति तदा इदं कर्म । सू० ६ ।—अथाभ्यागतपुरुषाणां सांम-नस्यं क्रियते । यदा विशिष्टो गृहे आगच्छति तदा इदं मैत्रीकर्म क्रियते । मित्रं-ष्वेषां दर्शनं आगतानां । यदा गृहे आगच्छति तदा इदं कुर्यात् । सू० ७ ।— हस्त्यादियानं सम्पात्याभिमंत्र्य तस्मिन्याने यस्य सांमनस्यं क्रियते···उपरि उपवि-शंति । सर्वे यानस्योपरि चटन्ति ततः पश्चिमदिशि गत्वा पुनर्गृहे आगच्छन्ति । ततः ओदनमभिमंत्र्य सह भुञ्जन्ति मन्थं वा । समासं सांमनस्यं । एकस्मिन् युद्धे क्रियमाणे सहागतस्य कर्म इदं कर्म अन्यस्य च साधारणमित्यर्थः । यो युद्धे साहा-य्यत्वं करोति तस्येदं कर्म । प्रथमं पादौ प्रक्षाल्य ततः कर्म चेति । क्षत्रिययोरिदं कर्म मन्यन्ते केचित् । सू० ८ ।—अथ गृहे विरुद्धे सति सांमनस्यमुच्यते । कर्त्ता-रण्ये गत्वा समिधो गृहीत्वा तूष्णीं गृहमागत्य···गृहमनुष्याणां सांमनस्यं भवति कलहनिवारणं । सू० ९ ।—अथ मंत्रब्राह्मणयोर्द्रव्यमिच्छति तस्येदं कर्म प्रति-गृह्यादि उच्यते । वेदपाठेन शास्त्रपाठेन अर्थोत्थापनमिच्छन्निदं करोति । समासं वेदेन अर्थोत्थापने विघ्नशमनं। सू० १२-१७ अथ परिमोक्षविधि वक्ष्यामः । गोदानिकतन्त्रमाज्यभागान्तं कृत्वा ततः शान्त्युदकं कृत्वाभिमंत्रयते । "अपोदिव्या" इति चतसृभिः । ततोऽभ्यातानादि परिदानान्तं कृत्वा । केचित् परिदानान्ते ततोऽभ्यातानं हुत्वा तत इदावत्सरायेति कल्पजैश्चतसृभिर्ऋग्भिराज्यं जुहुयात् । समिध आदधाति । वेदव्रतं कल्पव्रतं मृगारव्रतं विषासहिव्रतं यमव्रतं शिरो-व्रतं अङ्गिरोव्रतं इत्येवमादिषु "इदावत्सराये"ति व्रतविसर्जनं व्रतश्रावणं च करोति । यत्र क्वचित् व्रतं वैदिकं लौकिकं च तत्र सर्वत्र व्रतादानं व्रतविसर्जनं च भवति विधानेन। शिरोव्रतादीनि नित्यानि—कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि काम्यानि स्मृति-पुराणशास्त्रवेदविहितानि । तानि सर्वाणीत्येतेन विधानेन कर्त्तव्यानि । सू० १८— परिमोक्षानन्तरं त्रिरात्रं स्नानव्रतं चरेत् । सू० १९ ।—अथ पापलक्षणाख्यी तस्याः

शान्तिरुच्यते। स्त्रीमुखं प्रत्यृचं प्रक्षालयति तस्या मुखं हस्तयोर्मशकशिग्रुकशिरकौ अस्थानतिलकं ह्रस्वकेशादि पापलक्षणं सामुद्रिके स्त्रीलक्षणं व्याख्यातं। स्त्रियं पापलक्षणामभिषिञ्चति दक्षिणात् केशादारभ्य यावदुत्तरपार्श्वं ततः पापलक्षणं विनश्यति सू० २२।— अथ पापदर्शने शान्तिरुच्यते। दर्शनदोषो न भवति। पुरुषस्य भाग्यकाले हरिणो यान्ति प्रदक्षिणाः अप्रदक्षिणेषु हरिणेषु अयं जपः पक्षिषु च। श्वानरुदिते काकरुदिते काकमैथुनेषु पुरुषस्य मैथुनेषु श्येनमैथुनदर्शने नग्नस्त्रीदर्शने नग्नपुरुषस्य नपुंसकस्य दर्शने। यत्र क्वचिदपशकुनाः पतिताः तत्र सर्वत्र अयं जपः। श्रुतौ स्मृतौ पठिता अद्रष्टव्यास्तेषां सर्वेषां दर्शने अद्भुतानां दर्शनेष्वयं जपः कर्त्तव्यः। लोके यद्विरुद्धं अन्वीक्ष्य'''अयं जपः। अपशकुनजपः समाप्तः। सू० २३–अथ पुरुषहवे अकार्यकरणेन विघ्नशमनकर्म उच्यते।

कण्डिका ॥ ४३ ॥

सू० १।— पुनर्विघ्नशमनमुच्यते। पिशङ्गवर्णसूत्रे बद्ध्वा'''अरलुमणिं सम्पात्याभिमन्त्र्य बध्नाति'''विस्कन्ध विघ्नशमनोमणिः। स्पर्धमानस्य स्पर्धा विनश्यतीत्यर्थः। वेणुदण्डादीन् सम्पात्य ततः सूक्तेन विमृज्य धारयति।'''चित्रदण्डे ध्वजदण्डे चिन्हदण्डे। लकुटादिदण्डं सर्वं सम्पात्य'''धारयति तस्य सर्पश्रृङ्गि दंष्ट्रादि विघ्नं न भवति। आयुधं सम्पात्याभिमन्त्र्य विमृज्य सूक्तेन धारयति। सर्वशस्त्रसम्पातिते मायादिकं मायाजालयुद्धे निवारणं संग्रामे इन्द्रजालनिवारणं युद्धे विघ्नं न भवति शत्रुहवं निवारयति। शत्रवो गच्छन्ति। स्पर्धिमानं शत्रुं जयति हवं विनाशयत्ति। सू० २।—विघ्नं गृहीतं पुरुषं धूपयत्ति। यस्यारम्भा न सिध्यन्ति। सू० ३।—अथ भूमिशुद्धिं गृहं करिष्यमाणस्तस्येदं करोति। अथवा नवे गृहे श्येनयागः कर्तव्यः विकल्प इति भाष्यकारः। प्रथमतो वा श्येनयागो नवे वा गृहे। सू० ४।—अथ गृहप्रवेश उच्यते। वास्तुसंस्कार उच्यते। सू० ५।—ततः शान्त्युदकं करोति। मातलीं पूर्वं कृत्वा वास्तोष्पत्यादीनिचतुर्गुणीं महाशान्ति शान्त्युदके आवपते। ततो मातलीं कृत्वा ततः शान्त्युदकं समाप्यते। तेन भूमिं प्रोक्षयेत्। सू० ७।—अन्येषु स्थूणा गर्तेषु पार्श्वस्थितेषु प्रक्षिपति। सू० ८।—नीयमानां शालामनुमन्त्रयते। सू० ११।–दृढां कारयति शालाभूमिं। सू० १३।–द्वाभ्यां चरुं जुहोति। केचिदस्मिन्तन्त्रे यजूंषि यज्ञ इति। सू० १५।—वृद्धस्त्रियोगीतमङ्गल्यादि कुर्वन्ति ब्राह्मणाः पुण्याहानि पठन्ति श्राद्धं च केचित्पश्चात्कुर्वन्ति। यत्र गृहं मण्डपं वा कुटीं वा चित्रशालां वा मठस्थानं वा देवगृहं वा अन्यं वा तृणमयं वा काष्ठमयं वा इष्टकामयं वा पाषाणमयं वा गृहादिकं करोति तत्रानेन विधानेन वास्तुयागः कर्तव्यः। सू० १६।–अथ क्रव्यादोपहतगृहे क्षेत्रे वान्यत्र गोष्ठे

वा यत्र क्वचित्तत्र शान्तिरुच्यते । क्रव्यादा प्रविष्टे गृहे कुमारा म्रियन्ते वत्सान् वा किशोरान् वा धननाशो यत्र भवति तद्गृहं ग्रामं नगरं वा क्रव्यादोपहतं जानीयात् । सू० १८ ।—पालाशसमिध आदधाति । सू० १९ ।—कुमारवत्सगोमरणादि धन-धान्यविनाशादि चिन्तितोद्वेगादि क्रव्यादचिन्हानि । क्रव्यादोपहतशान्तिः समाप्ता । सू० २० ।—अथ क्रव्याच्छमनविधानमुच्यते । लौकिके वाग्नौ गृहे वावसथ्ये वा शान्तिकपौष्टिकार्थं मन्थने वा यत्र वा क्रव्यादोपहतिर्दृश्यते तत्र सर्वत्र कुर्यात् । सू० २१ । अथ वशाशमनविधानमुच्यते "ये अग्नय"इति दशर्चेन सूक्तेन वशा-मभिमन्त्र्य ततो ब्राह्मणाय ददाति । यस्य गृहे वशा भवति जायते तद्गृहं दैवहतं विजानीयात् ।

कण्डिका ॥ ४४ ॥

सू० १ ।— वशाशमनविधानमुच्यते । सू० ३ ।—शान्त्युदकं करोति अन्वा-रब्धायै वशायै काष्ठेन तृणेन वा । सू० ५ ।—मातल्यन्तेन शान्त्युदकेनाचामयति च संप्रोक्षति च । सू० ६ ।—वशां कर्ता ऊर्ध्वस्थितः वास्तोष्पत्यादि चतुर्गणीं महाशान्तिं उच्चैस्तृतीयसवने जपति वशाभिमुखः स्थितः । सू० १४ ।— समस्येति मन्त्रेण भूमौ कृत्वा तत उपरि वशां पातयति । सू० १५ ।—निरुच्छ्वासं करोति मार-यतीति । सू० १७ ।—यद्वशेत्यृचा कल्पजया आज्यं जुहोति । सू० १९ ।—इति कर्त्ता ब्रूयात् । सू० २८ ।—शेषमुदकं पार्श्वदेशे निक्षिप्य ततोऽभ्यन्तरे प्रविश्य । सू० ३६ ।—छेदनस्थानमभिधार्य ।

कण्डिका ॥ ४५ ॥

सू० ३ ।—अवदानानि पशोरेकादश गृह्णाति । सू० ४ ।—ततः स्विष्टकृद-वदानानि गृह्णाति तानि त्रीणि दक्षिणो बाहुः वामजंघा च अन्त्रविभागं । एतानि त्रीणि भागानि । सू० ६ ।—ततो यद्दैवत्यः पशुस्तद्दैवत्यश्चरुः श्रपयितव्यः । सू० १२ ।—वपाश्रपण्यौ द्वे सह जुहोति । सू०१३ ।—अथ पित्र्येषु काम्येषु विशेषः । सू० १६ । —सम्राडिति मन्त्रेणाज्यं जुहोति सर्ववीरायेत्यादि चतस्र आहुतीर्जुहोति । समाप्तं वशाशमनविधानं । दैवहतं तस्य गृहं यस्य गृहे वशा-जायते तस्य धनादिनाशो भवति तस्माच्छान्तिः कर्तव्या । सू० १७ ।—अथ दुष्टे प्रतिग्रहे सौम्ये वा कृते याजने वा दक्षिणाप्रतिग्रहणे येन कर्मणा पापं विन-श्यति तदुच्यते । प्रतिग्रहं प्रतिगृह्णाति प्रतिग्रहदोषो न भवति । सू० १८ ।—सर्वाणि कर्माणि कृत्वा "पुनर्मैत्विन्द्रिय"मित्यृचा कर्म समाप्य तत आत्मानमनु-मन्त्रयते । सर्वकर्मसु भवति । इत्यात्मशान्तिः । सन्ध्यावन्दने आज्यतन्त्रे

अस्मिन् कर्मणि नित्यनैमित्तिककाम्येषु "पुनर्मैत्विन्द्रियमि"त्यृचा आत्महृदय-मनुमन्त्रयते । सू० १९ ।—एतेन विधानेन पशवो व्याख्याताः । नित्यनैमित्तिक-काम्याः । पैठीनसिना काम्याः पठिताः ।

कण्डिका ॥ ४६ ॥

सू० १ ।—अथ अकृते पापे लोके पापवचनमुत्पद्यते तत्र शान्तिरुच्यते । सक्तुमन्थं…भक्तमभिमन्त्र्य ददाति प्रथममग्रे कृत्वा अभ्याख्यातं गृहे प्रवेश्य कर्ता पश्चात्प्रविशति । सू० २ ।—द्रुघणमणिं सम्पात्याभिमन्त्र्य बध्नाति । सू० ३ ।—पलाशकाष्ठमणिं द्रुघणप्रतिरूपं कृत्वा अभिशस्ते बध्नाति । कृष्णलोहमणिं… ताम्रमयद्रुघणप्रतिरूपमणिं हिरण्यमणिं द्रुघणप्रतिरूपं बध्नाति । सर्वत्रकौशिके कर्मणां विकल्पः । एकस्मिन्विषये यत्र बहूनि कर्माणि पठितानि तत्रैकं कुर्यात् सर्वाणि वा तन्त्रविकल्पः । सू० ४ । —अथ यागे क्रियमाणे येन कर्मणा विघ्नशमनं भवति तदुच्यते । ऋत्विजो यजमानश्चाशयन्ति अविघ्नेन यज्ञसिद्धिर्भवति । सू० ५ ।—यागसमाप्तौ विघ्नशमनमुच्यते । सोमदेवत्यं चरुं जुहोति । सू० ६ ।—अथ धनधान्यादि प्रतिग्रहादियाचनामिच्छन्निदं कृत्वा याचित-विघातो न भवति । याचितं न प्रतिषेधयति । सारूपवत्सं पायसं सम्पात्याभि-मन्त्र्याश्नाति । सू० ७ ।—अथ कपोते उलूके वा गृहं प्रविष्टे अन्यत्राभीष्टदेशेऽपि तत्र शान्तिरुच्यते । शान्त्युदके आवपते ततो मातलिं कृत्वा शान्त्युदकं समाप्यते रात्रौ तेन शान्त्युदकेन तत्स्थानं प्रोक्षति "यतायै" इत्येतैर्मन्त्रैः कपोतोलूक-स्थानं यावत् । सू० ८ ।—त्रिः शालां परिणयति कपोतस्थानं वा परिभ्रामयेत् । आरण्यके पक्षिणि प्रविष्टे इदं कर्म कुर्यात् । कपोतोलूके वा प्रविष्टे द्विपदचतुष्प-दविनाशो वेदे श्रूयते तस्य दोषशमनम् ॥ सू० ९ ।—

अथ स्वप्नाध्याये पठिते उग्रे स्वप्नदर्शने शान्तिरुच्यते । स्वप्नाध्यायपठितदुःस्वप्नं च रुद्रभाष्यकारमतेन गृहीतव्यं । पक्वमांसे प्रेतदर्शने परिष्वङ्गमर्कटे दृष्ट्वा तैलाभ्यङ्गे नग्नपुरुषदर्शने नग्नस्त्रीदर्शने कालसूत्रे इत्यादि स्वप्नाध्यायपठिता अनेकशः । इति दुःस्वप्नदर्शने शान्तिरुच्यते । स्वप्नं कुत्सितं दृष्ट्वा मुखं प्रक्षालयति ॥ सू० १३ ।—अथ पुनर्घोरदुःस्वप्ननाशनकर्म उच्यते । "विद्मा ते" स्वप्ने इत्येकेन पर्यायेण दुःस्वप्नं दृष्ट्वा मुखं विमार्ष्टि ।" पार्श्वेन द्वितीयेन भूयते । अन्नं स्वप्ने दृष्ट्वा निरीक्षते । मैश्रधान्यं पुरोडाशं जुहोति । सू० १४ ।—अथ आचार्ये मृते ब्रह्मचारी इदं करोति । श्रेयस्कामः आचार्यदहने । अग्नेर्भूम्यामित्यादि पञ्च सामिधेनी हुत्वा ततो दहनं त्रिर्भ्रामयित्वा तत "नहि ते अग्ने तन्व" इति सूक्तान्ते पुरोडाशं जुहोति तस्मिन्दहने ॥ सू० १६ ।—कौशिकसूत्रे शयनं न मन्यते च प्रेतादिभयात् तद्विघातशमनं । सू० २७ ।—"अपो दिव्या"इति चतसृभिर्ऋग्भिः स्नानं कृत्वा

त्रिरात्रं गृहे आगत्य ततः शयीत इति कौशिकमतं । मृते आचार्ये इदं कर्म प्रायश्चित्तं कृत्वा ततः समावर्त्तनं कुर्यादित्यर्थः । अन्यं गुरुमुपासीत । सू० १९ । अथ ब्रह्मचारी स्त्रिया मैथुनसंयोगे इदं करोति । स अवकीर्णीत्युच्यते । तस्य प्रायश्चित्तमिदमुच्यते । ब्रह्मचारिणं दर्भरज्ज्वा कण्ठे बद्ध्वा । सू० २२ ।—अथ स्वयं प्रज्ज्वालिते अग्नौ प्रायश्चित्तमुच्यते । सू० २३ ।—अथ अग्निशब्दकरणे शान्तिरुच्यते । अग्निमुपतिष्ठते ॥ २४ ॥ अथ संदेशे विस्मृते'' अग्निमुपतिष्ठते । यदि ग्रामे वा गृहे वा संदेशं न कथयति तदा इदं प्रायश्चितं ॥ सू० २५–अथ पापनक्षत्रे जाते स्त्री वा पुरुषो वा यो जातस्तस्य शान्तिरुच्यते । तस्य मुञ्जरज्ज्वा कण्ठे पादे बद्ध्वा ततः "प्रत्नोह्री"ति–सूक्तेन उदकघटं सम्पात्याभिमंत्र्य दर्भपिञ्जुलीघंटे प्रक्षिप्य ततोऽभिषिञ्चति ।'''ग्रीवा पाशं नदीफेनेषु निदधाति । नदीनां फेनानित्यर्धर्चेन कटिपाशं उदकमध्ये प्रक्षिपति । मातृपितृभ्रातृषु दोषः श्रवणात् । तस्मात् पापनक्षत्रेण शान्तिः कर्तव्या । मूलनक्षत्रे इदं कर्म क्रियते । यो नक्षत्रकल्पोक्तं कर्म कुर्यात् । तदुच्यते । "प्रत्नो ह्री"ति सूक्तेन क्षीरौदनं सम्पात्याभिमंत्र्याश्नाति । एतस्मिन् तंत्रे समूलं बर्हिस्तृणाति समूलेध्मानुपसमाधाय एष विशेषः । नक्षत्रकल्पोक्तं । एषा नक्षत्रकल्पोक्ता शान्तिः । आप्लवनावसेचने च क्षीरौदनं च प्राशनं एतानि त्रीणि । अथवा "प्रत्नो ह्री"ति सूक्तेन उदकमभिमंत्र्य पापनक्षत्रजातमवसिञ्चति शिरसि एतानि त्रीणि कर्माणि भवन्ति ॥सू०२६।–अथ ज्येष्ठे भ्रातरि जीवति विवाह आधान दीक्षां च करोति तस्य शान्तिरुच्यते ॥ सू० २८।—उत्तरपाशं नदीनां फेनानित्यर्धर्चेन नदीफेने निदधाति ॥ अधरपाशं नदीमध्ये प्रक्षिपति । ततो बन्धनं कृत्वा ततोऽवसिञ्चति ॥ सू०२९।–अपां सूक्तैर्घटं सम्पात्याभिमंत्र्य तत आप्लावयति। अवसिंचति । परिवित्ति परिवेत्तृ प्रायश्चित्तं । सू० ३०–अथ मृते आचार्ये इदं कर्म । सू० ३३—अथ देवपितृवर्जितखदाशयनिहितस्य अन्नस्य याज्ञाकेन येन कर्मणा भवति तदुच्यते । अनुवाकेन खदाशयादन्नादुद्धृत्य सेतिकामेकां जुहोति। सू० ३४—प्रायश्चित्तम् । सू० ३५–खदाशयान्नसंस्कारशान्तिः समाप्ता। सू० ३६–अथ मृते धनिके ऋणकस्य ऋणदानशान्तिरुच्यते । अपमित्यमप्रतीत्तमिति त्रिभिः सूक्तैर्द्रव्यमभिमंत्र्य पुत्राय ददाति । अनृणो भवति । सू० ४१–आकाशोदकेन शरीराप्लवने दोषो भवति तस्य शान्तिरुच्यते॥ सू० ४२ ।—"दिवो नु मां बृहत" इति सूक्तेन एकतैलं सर्वौषधिगन्धं हिरण्यं वा एतान्यभिमंत्र्य शरीरमुद्वर्तयेत् ॥ आकाशबिन्दुदोषोपशान्तिः समाप्ता । सू० ४३ ।—अथ कुमारस्य कुमार्यां वा यस्योत्तमदन्तौ पूर्वौ जातौ तस्य मातापित्रोर्मरणशङ्का भवति तत्र शान्तिरुच्यते । सू० ४४ ।—व्रीहियवतिलमाषानेकीकृत्याभिमन्त्र्य उत्तमजातदन्ताभ्यां दंशयति । सू० ४७ ।—अथ शिरसि अङ्के वा काकोपविष्टे दोषः श्रूयते तस्य शान्तिरुच्यते । ४८।—

उल्मुकमभिमन्त्र्य काकमुखेन अपमृष्टं पुरुषं पर्यग्निकरोति। उपरि भ्रामयित्वा दूरे निक्षिपति। ४९।—अथ संसर्गदोषशान्तिरुच्यते। सर्वेषु रोगेषु शावदन्तादि कुनखिनावण्डेन ज्वरेणापामार्गादिरोगेषु संसर्गेषु सर्वदोषान्मुच्यते। सू० ५०।—अनृतमुक्त्वाचमनं करोति। वणिजि अनृतं कृत्वा दोषो न भवति। सू० ५१।—यत्र क्वचित् खनति तत्र सर्वत्र "यत्ते भूम" इति। खननदोषो न भवति। सू०५३।—अथ शकुनशान्तिरुच्यते। अपशब्दं श्रुत्वा कपिञ्जलवाशितं श्रुत्वा ग्रामे अरण्ये पक्षिवाशितं श्रुत्वा वा स्वयं वा क्रुद्धभाषणं कृत्वा अन्यस्य वचनं श्रुत्वा–उलूकवाशने कपोतवाशने पूर्वतो वा उत्तरतो वा लोके निन्दितः। यत्किंचिल्लोके विरुद्धं दृष्ट्वा श्रुत्वा सर्वत्र जपने स्वस्त्ययनं भवति। सू० ५५–आकाशे यदि स्वपिति अरण्ये वा शून्ये गृहे वा पर्वते वा तदा तदा "यो अभ्य बभ्रूण" इत्यृचं जपित्वा स्वपिति। समाप्तानि नैमित्तिकानि सर्वज्ञानप्रबोधनार्थं...दुष्टदोषविनाशनैमित्तिकानि। नैमित्तिकान्यवश्यं कर्तव्यानि। अकरणे धनधान्यपश्वादिविनाशः। "जरायुज" इति दुर्दिनमायन्नित्यादीनि। अथाद्भुतानि वर्षे यक्षेष्वादिनैमित्तिकानि तानि अवश्यं कार्याणि।

इति पञ्चमोध्यायः ॥ ५ ॥

कण्डिका ॥ ४७ ॥

क्रमप्राप्तो अथर्ववेदविहितोऽभिचार उच्यते। मीमांसायामभिचारो निषिद्धः। मनुस्मृतौ च विहितोऽभिचारः। सू० २।—आङ्गिरसकल्पोक्ताः संभाराः प्रत्येतव्याः। दक्षिणस्यां दिशि मण्डपं, कारयेत्तत्र यथोक्तविधिना गुरुः। पताकातोरणैर्युक्तं द्वारं...स्मृतम्। सू० ९। तथा तदग्र इत्यादि समस्तंव्यं सर्वत्र। अभ्यातानान्ते "दूष्या दूषिरसी" ति सूक्तेन तिलकमणिं सम्पात्याभिमन्त्र्य बध्नाति कारयिता कर्त्ता सदस्यश्च...आत्मरक्षार्थम्। सू० १२—अधुना दीक्षा उच्यते शुक्लपक्षे त्रयोदश्यां पूर्वाह्णे अभ्यातानान्तं कृत्वा "द्यावापृथिवी उर्वन्तरिक्षमि" ति सूक्तं कर्त्ता "कनक रजतेति" सूक्तं द्वाभ्यां सूक्ताभ्यां वेणुदण्डं छिनत्ति। सू० १४–१६। "य इमां देवो मेखला" मिति पञ्चर्चेति सूक्तेन। मेखलां सम्पात्य। "अयं वज्र इति" सूक्तेन दण्डं सम्पात्य। "य इमा" मित्यृचेन मेखलां बध्नाति। "वज्रो" सीति तृचेन सूक्तेन दण्डं गृह्णाति। "नमो नमस्कृद्भ्य" इति सप्तर्षिभ्य उपस्थानं करोति शालाया बहिः। ततः शालां प्रविश्य व्रतादानीयाः समिध आदधाति शान्ताः। व्रतश्रावणं तस्मिन् करोति। अभ्यातानामुत्तरतन्त्रम्। दीक्षितस्त्रिरात्रमनशनं। त्रिरात्रे निवृत्ते कृष्णपक्षे प्रतिपदि कर्म भविष्यति। सू० १७।—आङ्गिरसदण्ड बृश्चन सूक्तं प्रतिपादन उक्तं गृहीत्वा मेखलाया ग्रन्थिमालिम्पति "आहुतास्यभिहुता" इत्यृचा। सू०

१८–२० ।—"अयं वज्र"–इति तिसृभिर्ऋग्भिः "यदश्नामि यद्गिरामि–"इति द्वाभ्यां ऋग्भ्यां भोजनं करोति "यत्पिबामी" त्यृचा उदकं पिबति । अमुष्यस्थाने शत्रुनाम ग्रहणं—। सू० २१ ।—फड्ढतो महुमद इत्येतेन मन्त्रेण भोजनपात्रं भिनत्ति । सू० २२ ।—"इदमहं महुमदस्य तुरुष्कस्य मूतिकर्णपुत्रस्य प्राणापाना-वपयच्छा"मीत्यनेन मन्त्रेण मेखलां ग्रन्थ्या बध्नाति गाढं करोति । सू० २५–२७ ।–"द्यावापृथिवी उर्विति" सूक्तेन परशुंवृक्षपत्रं च गृहीत्वा शत्रोर्दक्षिणा धावतः पदं ऋजुं छिनत्ति । तिरश्चीनत्रिकोणे एकैकं एवमष्टावरान् सूक्तावृत्तिः । सू० २८ ।—तस्माच्छेदात्पांसुं च गृहीत्वा वधपत्रे बद्धा···भ्रष्ट्रे न्यस्यति । सू० ३० ।—अथवा एतत्···अभिचारतन्त्रमुच्यते । पश्चादग्नेः करिष्यां कृद्युपस्तीर्णायां । सू० ३१ ।—उदकं हस्ते कृत्वा दक्षिणामुखः प्रक्षिपति । सू० ३२–३३ ।—इदं च उष्णोदक-मध्ये अक्षितसक्तून् प्रक्षिप्य पिबेत् अनालोडितानेकोच्छ्वासेन । सू० ३४–३६ ।—"त्रींस्त्रीन्मुष्टी"स्त्रिरात्रं द्वौ द्वौ त्रिरात्रमेकैकं षड्रात्रे भुंक्ते "आहुतास्यमिहुते"त्येव-मादि समस्तंव्यं । सू० ३७ ।—ब्राह्मणान्परिचारकांश्च भोजयित्वा पात्रस्थितमुच्छिष्ट-मेकधा कृत्वा बहुमत्स्ये गर्ते प्रक्षिपेत् । सू० ३८ ।—यदि ते धावन्तो दृश्यन्ते ततो द्वेष्यो मृतो जानीयात् । सू० ३९–४२ ।—"द्यावा पृथिवी"इति सूक्तेन लोहितशि-रसं शशकमाशयित्वा । प्रेतवत् कृत्वा अभिमन्त्र्य दहति ततः "अग्ने यत्ते तप"इति पञ्चभिः सूक्तैरुपतिष्ठते । अन्यः कर्ता अभ्यातानान्तं कृत्वा कृकलासमष्टधा कृत्वा प्रत्यृचं जुहोति । सू० ४४ ।—निवृत्य वेद्यामुपवेश्य···स्वेदाक्ताः शरभृष्टीः प्रत्यृचं जुहोति । सू० ४५ ।—शत्रुपदात्पांसुं गृहीत्वा पश्चादग्नेर्निधाय उदग् व्रजत्यास्वेदज-ननात् । निवृत्य स्वेदालङ्कृतान्पांसून्···जुहोति । सू० ४६–५२ ।—कृकलासशरीरे शर्करानवधाय विषमवधाय···बध्नाति "पाशेस" इति पादेन । "आमु"मित्यादत्ते । मर्मणि खादिरेण स्रुवेण गर्तं खनति "अतीव य"इति तत्र निदधाति । सू०५३ ।—संचित्य मृत्तिकोपरि निदधाति "द्यावापृथिवी"इति सूक्तेन जुहोति । सू० ५४ ।—"द्यावापृथिवी" इति सूक्तेन आवलेखनीं हृदये विध्यति······सू० ५७ ।—शत्रु-मारणकामः ।

कण्डिका ॥ ४८ ॥

सू० १ ।—अश्वत्थ···कृकलास···एरण्ड···श्लेष्मान्तक···खदिर···शरस-मिध आदधाति । सू० ३ ।—स्रुवाग्रे दण्डं बध्नाति । सू० ४ ।—शत्रुमर्मणि निख-नति···सू० ५ ।—तौ अश्वत्थशाखायां प्रणुदति । सू० ६ ।—यावन्तः सपत्ना-स्तावन्तः पाषान्···उदके प्लावयति । सू० ७ ।—शत्रुकोशं तमन्वाह मरणं भवति । सू० ८ ।—उपसमाधानं । ···स्रुवग्रहणं । ···जुहोति···सू० ९ ।—कृकलासकर्म

शरभृष्टिकर्म सपत्नक्षयणीयकर्माणि षट्ग्राममेत्य च कर्माणि षट्मणिकर्म पाश-कर्माणि त्रीणि विकङ्कतस्रुवकर्म एकोनविंशति तन्त्राणि भवन्ति। सू० १०।—सर्पच्छत्रं चूर्णयति। सू० ११।—गोहरणेऽभिचारः। सू० १२।—चौरानन्वाह। सू० १३–२२।—"नैतां ते"ति सूक्ताभ्यां श्रमेण तपसेत्यनुवाकः सदा गोहरणमारणेषु··· क्रियमाणेषु ब्रह्मचारी जपति। श्मशाने जपति। उवध्ये श्मशानमवधाय ततो परिस्थितः "श्रमेण तपसे"त्यनुवाकं जपति। द्वादशरात्रं यावत् अहरहः ततः मृतो द्वेष्य इति जानीयात्। सू० २३।—श्वेतमृत्तिकामभिमन्त्र्य शुने प्रयच्छति। सू० २४।—पलाशमणिं सम्पात्याभिमन्त्र्य बध्नाति। सू० २५।—इङ्गिडं जुहोति। सू० २७।—"इदं तद्युज"—इति चिताग्न्यभिचारः। सू० २८।—"इदं तद्युज"—इति सूक्तेन मध्यमपरिभवापर्णेन फलीकरणाञ्जुहोति। यत्किंचासाविति सूक्तेन पञ्चर्चेन मध्यमपलाशेन फलीकरणाञ्जुहोति। सू० २९–३१।—बर्हिर्लवनादि प्रतिष्ठापनान्तं कृत्वा तमग्निं स्फोटयति शर अन्यमग्निं प्रणयति निरमुमिति सूक्तेन स्तरणं कृत्वा पुनर्मन्त्रेण स्तृणाति। "निरमुमि"ति सूक्तेनाभ्यातानान्तं कृत्वा इङ्गिडं जुहोति। सू० ३२।—वत्सखल्वायां कृत्वा तस्य वृषणैरपिधाप्य वाधकेन काष्ठेन हन्यात्। सू० ३५।—शत्रुं दृष्ट्वा जयति। सू० ३७।—विद्युद्धतवृक्षस्य समिध आदधाति। सू० ३८।—ऊर्ध्वशुष्कवृक्षसमिध आदधाति। सू० ४१–४३।—"असदन्गाव" इति चारक्तोशालि शकुनीक्षीरौदनं पक्त्वाभिमन्त्र्य द्वेष्याय प्रयच्छति भक्षार्थं। आमपात्रस्योपरि हस्तप्रक्षालनं करोति।

कण्डिका ॥ ४९ ॥

सू० १।—द्वेष्याभि मुखं विसृजति वृषोत्सर्गवत्। सू० २।—आश्वत्थीः स्वयं पतिताः समिध आदधाति। सू० ३–२७।—उदवज्राणां विधानमुच्यते। "इन्द्रस्यौज"—इति दूर्वांभवैर्घटं प्रक्षालयति। "जिष्णवे योगायेत्युत्तराभवैः षडुदकां सवटानुदकसमीपे निदधाति। "इदमहं यो मा प्राच्यां दिश" इति अष्टर्चेन कल्पजेन सूक्तेन उदकमध्ये निदधाति घटं। "इदमहमि"ति घटेनोदके इदमहमिति सूक्तेन घटमध्ये मुखं करोति। "इदमहं यो मा प्राच्यां दिश"इति सूक्तेन घटमुदकपूर्णं कृत्वा अपक्रामति। "इदमहमि"ति सूक्तेन उदकपूर्णं घटं मण्डपे स्थापयति एतदभिचारे उदकाहरणम्। येन विधानेन वज्रप्रहरणं क्रियते तदुच्यते "इन्द्रस्यौज०" इत्यादि सर्वं कृत्वा। इदमहमिति स्थापनान्तं कृत्वा "अग्नेर्भाग"—इत्याद्यष्टभिर्ऋग्भिर्द्विधाकरणं। अर्धं घटे कृत्वा अर्धं भाजने करोति भाजनमग्नौ तापयति। घटमन्यस्मै पुरुषाय प्रदाय "अग्नेर्भाग"—इत्यष्टभिस्तापने मन्त्रः। बहिर्दक्षिणामुखं उपविश्य भाजनमग्रे कृत्वा "वातस्य रंहितस्य"—इति मन्त्रेण उदकं गृह्य। "सम-

भय"—इति सूक्तेन कल्पजेन सर्वेभ्यो भूतेभ्यो अभयवदनम्। "यो वा आपोऽपा"मिति वज्रप्रक्षेपः। "एता मनाधरा च परा च" इति कल्पजया ऋचाभाजनमुदकभूमौ निनयति "यं वयमि"ति सूक्तेनैव "अपामस्मै वज्र"मित्येकया एवमेव "इन्द्रस्यौज"–इत्यादि कर्तव्यं। तत्र रुद्रकृताः श्लोकाः—

प्रक्षालनं तथा योगो अप्सु पात्र निधापनं।
अपोहनमनेनैव तन्निवेद्य पात्र पूरणम् ॥ १ ॥

विष्णोः क्रमोऽसीति द्वादशभिः प्रत्यृचं विष्णुक्रमान्क्रमते। शत्रोरभिमुखं। सवविधानेन बृहस्पतिशिरओदनं द्वेष्याय ददाति। "ममाग्ने वर्च"–इति सूक्तेन तं पृषातकेनोपसिच्य "तस्यौदनस्येत्यर्थं"–सूक्तेनाभिमन्त्र्य ददाति। सूक्तेनाभिमृते सति सूक्तेन सम्पातवन्तं करोति।···उदेहि···नार्च···द्वेषस्तु अन्वाह—। समिद्धो शङ्कुसहितान् पाशानभिमन्त्र्य अरण्ये निदधाति। द्वेषस्य पदं वृश्चति। पाशान् अग्नेऽभ्यस्यति। आमपात्रस्योपरि द्वेष्यस्य हस्तप्रक्षालनं करोति। वृषभं सम्पात्य उत्सृजति शत्रुगृहानभिसृजति। रक्तशालिक्षीरौदनं सम्पात्याभिमन्त्र्य द्वेष्याय ददाति। शत्रुप्रतिकृतिं च मृन्मयां कृत्वा वेदिमध्ये ऊर्ध्वं स्थाणौ निबध्य···मूर्ध्नि-सम्पातानानयति। घृतेन पाचयति। "यस्मिन् पड्डुर्वीः पञ्च"इति उदवज्रान् प्रहरति उक्तेन विधानेन। "योऽन्नादोऽन्नपति"रित्यृचा द्वेष्यं मनसा ··आचामति स्वयं द्वेष्यस्य मरणं भवति। सू० २५।—यश्च गां पदा स्फुरति ऋगुद्धयाधिकारः तृचेन द्वेष्यं दृष्ट्वा अन्वाह। सू० २६।—अवभृथे स्नात्वा "निर्दुर्मण्य"–इति सर्वौषधिभिरात्मानमभिमृशति। अभिचारं कृत्वा इमां कर्त्ता शान्तिं करोति। समाप्ता अभिचारपद्धतिः। मरणं बन्धनं वा प्रणिपात उन्मत्तभावो वा भवति। भद्रमतेन भाष्यकारदारिलमतेन च एभिः त्रिभिर्भाष्यकारैः कौशिकोविचारितः तस्य तस्य एते पदार्था भवन्ति। ततः श्लोकाः। दस्योमरणं व्यसनं चैव बन्धनं च विशेषतः। प्रणिपातोन्मत्तो वा देवोपहतिरेव च।···उपाध्यायकवीश्वरेण नाम्नातोऽभिचारः कृतः। तुरुष्कमद्दुमदोपरिकारितः। पृथिव्यां दुष्टउत्पन्नः सर्वदा च विनाशयेत्। अधर्मसम्भवोदुष्टः प्रजाहिंसनतत्परः। तुरुष्कनाम्नापापिष्ठाः देवब्राह्मणहिंसकाः पृथिव्यां श्रीभोजदेव धर्मसंरक्षणाय च। देशे तु मालवके उत्पन्नः श्रीराजगृहेषु च।"

कण्डिका ॥ ५० ॥

सू० १।—स्वस्त्ययनकर्मणां विधिं वक्ष्यामः यदा ग्रामे गच्छति तदा आचमनं कृत्वा···प्रथमं दक्षिणेन पादेन प्रकामति अध्वानं। सू० २।—गृहे वा क्षेत्रे वा अन्यत्र वा प्रक्षिपति। यत्र क्षिपति तत्राविनाशोभवति। द्विपदचतुष्पदादीनां स्वस्त्ययनं भवति। सू० ३।—दर्भादीनि तृणानि गृहे वा क्षेत्रे प्रक्षिपति। इन्द्र-

मुपतिष्ठते। सू० ४।—खड्गादिशस्त्रं सम्पात्य हस्तेन विमृज्याभिमंन्य धारयति। राज्ञे प्रयछति। सुखं भवति इत्यर्थः। सू० ५।—दिष्ट्या मुखं मीत्वा स्वपिति रात्रौ स्वस्त्ययनकामः। मध्यमाङ्गुल्याङ्गुष्ठाभ्यां। प्रदेशन्याङ्गुष्ठाभ्याम् प्रदेशीदिष्टीरित्युच्यते। सू० ६।—प्रभाते निद्रां त्यक्त्वा यदा उत्तिष्ठति तदा सूक्तं जपित्वा त्रीणि पदानि प्रक्रम्य तदा···प्रयोजनार्थं गच्छति। गच्छतां स्वस्तिर्भवति। सू० ७।—सुप्त्वोत्थाय··· भूमौ तिस्रो दिष्टीर्मीत्वा ततो गच्छति प्रयोजनार्थं स्वस्त्ययनकामः। दिष्टीः प्रादेश-मात्रीः। सू० ८-९।—अथाध्वाने गच्छतां कर्म उच्यते। पथि गच्छन्तं सम्बलं सक्त्वादि प्रेतं पादावित्यृचा अभिमंन्य ब्राह्मणाय ददाति स्वस्त्ययनकामः। सू० १०। —"उपस्थास्त"-इत्यृचा ओदनसक्तून् वटकादीनि त्रीणि द्रव्याण्यभिमन्त्र्य भूमौ निक्षिपति। त्रीणि त्रीणि प्रसृतिर्वा अञ्जलीर्वा मुष्टीर्वा। पथि ततो गच्छति। स्वस्ति-र्भवति सर्वस्य अनेन विधानेन। एतदध्वानकर्म समाप्तं। सू० ११।—अथ सर्वार्थं स्वस्त्ययनकर्म उच्यते। गृहे वा अथवा अरण्ये वा भये समुपस्थिते स्वस्त्ययनं नित्यं···कुर्वीत। सू० १२।—वणिक्कर्मलाभार्थमुच्यते। उत्थापयति विक्रय-योग्यत्वात्।···लाभो भवति स्वस्तिर्भवति। सू० १३।—"येऽस्यां प्राचीदिगि"ति सूक्ताभ्यां···आज्यादित्रयोदशद्रव्याणि भवन्ति। पालाशादयो द्वाविंशतिर्वृक्षाणां समिध आदधाति। यत्र समिध आदधाति तत्र सर्वत्र एते समुचिता वा विकल्पिता वा भवन्ति। सू० १४।—भवा शर्वौमृडतमिति सूक्तेन चरुं जुहोति।···रुद्र भूत प्रेत राक्षस लोकपाल गृह देव महादेव गणाद्युपहताभिघाते स्वस्त्ययनं। समाप्तं महादेवाभिघाते स्वस्त्ययनं। सू० १५।—अथ शीघ्रेण पुण्यमङ्गलकर्मकरणे स्वस्त्ययनमुच्यते।···ब्राह्मणस्य शक्तुपिण्डान् पर्वस्वाध्याय अग्रेभूत्वाभिमन्त्र्य ततः प्रयच्छति-किमद्याहरिति पृच्छति। सू० १६।—स च शोभन मद्याह मङ्गल मद्याहरिति ब्राह्मणो वदति।···यदा शीघ्रे प्रयोजने कार्यं कर्त्तुमिच्छति तदा इदं कर्म कृत्वा ततः शान्तिकर्म करोति। सू० १७।—अथ सर्पादिस्वस्त्ययनमुच्यते। सर्पवृश्चिकद्विदंशकमशकभ्रमरभूमिकीटकृमयः। एतेषां भयं न भवति। "येऽस्यां-स्थेति सूक्तेन··प्राचीदिगिति सूक्तेन युक्तयोः दिग्युक्तयोः मा नो देवा"इति सूक्तेन···सिक्तामभिमन्त्र्य शालां परितः किरति।···शर्करामभिमन्त्र्य शयने वा शालायां वा उर्वरायां वा गृहे वा वने वा ग्रामे वा तत्र परिकिरति। सू० १८— "येऽस्यां स्थे"ति तृणमालां युगछिद्रेण सम्पात्याभिमन्त्र्य द्वारे बध्नाति स्वस्त्ययन कामः। महानवम्यां दीपोत्सवे च शिष्टाचारः। गजमार्गे बध्नाति। महानवम्यामिदं जयकर्म। तृणमालां युगछिद्रेण सम्पात्य पथि वा पत्तनद्वारे वा गृहद्वारे वा बध्नाति। अहिभये वृश्चिकभये मशकभये भ्रमरसंघे कृमिभये। सू० १९।—"येऽस्यांस्थेति" शुष्कगोमयमभिमन्त्र्य गृहे विसृजि···स्तृणाति।सू०२०।—गोमयमभिमन्त्र्य पत्तनद्वारे

गृहद्वारे क्षेत्रे वा निखनति । सू० २१ ।—गोमयं अग्नौ । सू० २२ ।—"येऽस्यां-स्थे"ति–अपामार्गमञ्जरीमभिमन्त्र्य संभिनत्ति गृहे स्तृणाति ।···अपामार्गप्रसूनमभि-मन्त्र्य द्वारे निखनति । अपामार्गमञ्जरीं निखनति ग्राममध्ये । गुडूचीमभिमन्त्र्य नाना करोति । गृहे स्तृणाति । गुडुचीपादानभिमन्त्र्य निखनति । गुडुचीपादानग्नौ जुहोति । पराचीन मूलान् समासानि मशकादीनां स्वस्त्ययनानि ।

कण्डिका ॥ ५१ ॥

सू० । १ ।—अथ व्याघ्रचौरवृकचरकसिंहारण्यकादीनां भये स्वस्त्ययनान्यु-च्यन्ते । गांपृष्ठतो गच्छति । कीलकं निखनन्नुद्‌घाटयन् गृहारण्यं गच्छति व्या-घ्रादि स्वस्त्ययनकामः । सू० २ ।—उदकघटमभिमन्त्र्य गोमचारे निनयति । ततः पांसुन्कूटतन्त्रं कृत्वा अर्धं दक्षिणेन हस्तेन विक्षिपति । इन्द्राय पाकयज्ञ विधानेन । सू० ४ ।—ये ऽस्यामिति सूक्तेन प्रत्यृचमुपतिष्ठते । सू० ५ ।—मध्ये पञ्च बलिहरणं···। सू० ७ ।—पर्वतदेवतायै अरण्ये पाकयज्ञविधानेनाज्यभागान्तं कृत्वा" ब्रह्मजज्ञानमनासा ये सहस्रधारेति सूक्तेन जुहोति" । हिमवते त्वा जुष्टं निर्वपामि हिमवते त्वा जुष्टं प्रोक्षामि हिमवन्तं गच्छतु हविः स्वाहेति । निकटं पर्वतं यजते । भवाशर्वौ मृडतमित्यर्थं सूक्तेन चरुं जुहोति । भवाय जुष्टं निर्वपामी-त्यादि । सू० ८ ।—भवाशर्वादिभ्यो देवताभ्यो निर्वापं कृत्वा बृहद् भाण्डके श्रपणं ।···एते सप्तपर्वतदेवताः । व्याघ्रचौरवृश्चिकहस्त्यारण्यकगवि इत्यादि-भये स्वस्त्ययनं । सू० ९ ।—गोष्ठकर्म व्याख्यास्यामः । गोशान्तेः पाकयज्ञं तन्त्रं कृत्वा इन्द्रदेवतायै ब्रह्मजज्ञानमनासा ये सहस्रधार इति सूक्तेन । भवाशर्वौ मृडत मिति सूक्तेन चरुं जुहोति ।···रुद्रदेवस्य चरोः हविरुच्छिष्टं यजमानोऽश्नाति । सू० ११ ।—प्रथमप्रसवे गवां शान्तिरुच्यते । ब्रह्मजज्ञानं···वत्सस्य वा वत्सिकाया वा मुखं म्रक्षति स्वस्त्ययनकामः । सू० १३ ।—शाखामुदकमभिमन्त्र्य गोभ्यो बहिरुदकधारां निनयति । सू० १४ ।—अथ पत्तनग्रामस्य गृहस्य शान्ति-रुच्यते । गृहकोणेषु निखनति चतुरः एकं मध्ये एकं गृहोपरि निदधाति । सू० १५ ।—अथात्र स्वस्त्ययनमुच्यते । सू० १६ ।—त्रीणि सस्यवल्ली अभिमन्त्र्य क्षेत्रमध्ये निखनति । समासमन्नव्याधिरक्षास्वस्त्ययनम् । सू० १७ ।—अथ मूषकपतङ्ग शलभहरिणरुरुशल्यादीनि सस्यविनाशकानि तेषां शान्तिरुच्यते । अभिक्रामति मूषिकादिस्थाने । सू० १९ ।—मूषकादिमुखं केशेन बन्धयित्वा क्षेत्रमध्ये निखनति । सू० २२ । तस्मिन्नहनि मौनं कुर्यादस्तमयनं यावत् । समासं मूषकशलभपतङ्गटिट्टिभकीटक्कीटिकाहरिणरुरुशल्यकगोसेधागोकृम्यादिस्वस्त्य-यनम् ।

कण्डिका ॥ ५२ ॥

सू० १ ॥—आज्यं जुहोति। समिध आदधाति । पुरोडाशादि योज्यं सर्वत्र। सू० २ ॥—मन्थमभिमंत्र्य पथिकाय प्रयच्छति स्वस्त्ययनकामः । भक्तमभिमंत्र्य भक्षयति। समाप्ता ग्रामदूरगमनस्य शान्तिः। कलहदोषो न भवति । सू० ३ ॥—पुरुषबन्धने मोचनशान्तिरुच्यते "यस्यास्त"—इति चतुर्ऋचेन सूक्तेन येन बद्धः तत्सदृशं सम्पातवन्तं कृत्वा सूक्तसदृशं द्वितीयं च सम्पातवन्तं करोति। यत्ते देवीति तृचेन सूक्तेन निगडयुगलद्वयं च सम्पातवन्तं करोति। "विषाणापाशानि"ति चतुर्ऋचेन निगडयुगलद्वयं सम्पात्य एक मुक्तं निगडं चर्ममयं वा लोहमयं वा येन बद्धस्तन्मयं कृत्वा अभ्यातानाद्युत्तरतन्त्रं । समाप्तं बन्धनमोचनं। सू० ४ ।—वाचा बन्धनस्य मोचनमुच्यते। भूमिलेखां सम्पात्य तत उत्तरतन्त्रम्। समाप्तं बन्धनस्वस्त्ययनं बद्धो अनेन कर्मणा कृतेन मुच्यते बन्धनात्। सू० ५ ॥ अग्निदावरक्षार्थमुच्यते । उदकमभिमंत्र्य गर्त्ते प्रक्षिपति···उदकपूरणं करोति। सू० ६ ।—शालामध्ये द्वयो उदकमभिमंत्र्य गर्त्ते प्रक्षिपति । अग्निरक्षा भवति। सू० ७ ।—अग्न्युपसर्गे एतत्कर्म। सू० ८ ।—आयन इति सूक्तेन दिव्यमभिमंत्र्य गृह्णाति दिव्ये शुद्धयति तत्समापके दिव्ये। सू० ९ । अङ्गदग्धं उदकमभिमन्त्र्य प्रक्षालयति। अङ्गमारोग्यं भवति अङ्गे अग्निरक्षा। समाप्तानि अग्निदाहरक्षाणि । सू० १० ।—नावापेटकपट्टिकादिस्वस्त्ययनार्थोदकतरणार्थो रक्षा उच्यते ॥ नावादि अभिमंत्र्य ततश्चटन्ति उपविशन्ति। न कदाचिन्मज्जति क्वचित् । उदकरक्षार्थे दूरदेश गमने ॥ ११ ॥ सम्पातवतीं तृचेन नावं सम्पात्य। तत उत्तरतन्त्रं। समाप्तं दूरदेश गमने एतत्कर्म। तृचेन नौमणिं सम्पात्याभिमंत्र्य·· नाविकेभ्यो बध्नाति। ये नावं चटन्ति तेषां बन्धनं। सू० १२ ॥—अथ नष्टे द्रव्ये लाभकर्म उच्यते। उत्थापयति नष्टनिरीक्षणार्थं ॥ सू० १४ ॥—समाप्तं नष्टलाभकर्म ॥ १५ ॥ नमस्कृत्य द्यावा पृथिवीभ्यामित्येकां जपित्वार्थसूक्तं कुर्वीत स्वस्त्ययनकामः । केचित्स्वस्त्ययन कामोपस्थानं···॥ सू० १६ ॥ सप्तप्रतीको अंहोलिङ्गगणः । एकैकस्य प्रतीकस्य होमः। त्रयोदश हविर्भिः प्रतीकविकल्पः। भोजनमभिमंत्र्य पाययति स्वस्त्ययनकामः। भक्षं भक्षयति। हविराज्यसमिधादि जुहोति।···आप्लवनावसेचनाचमनादीनि यथासंभवं कर्त्तव्यानि। पापसंसर्गे व्याधिसंसर्गे वर्णसंसर्गे अन्यस्मिन्पापे स्वस्त्ययनं। अंहोलिङ्गेन विकल्पेन···हृदयमालभ्य जपं कृत्वा उपस्थानमादित्यस्य कुर्यात् तेनैव सूक्तेन···अभिमर्शनं पुरुषस्य अन्यस्य वा·· वृक्षगृहस्त्रीपुरुषादीनां स्वस्त्यनं क्रियते। अभिमर्शनं कृत्वा उपस्थानमादित्यस्य कुर्यात् ॥ १७ ॥ हविरभिमंत्र्य भक्षयति।···स्वयमभिमंत्रणं करोति स्वयं हविषां भोजनमिति वचनात् ॥ यत्र क्वचिच्छान्तिः क्रियते तत्र सर्वत्र स्वस्त्ययनहोमं कुर्यात्। गृहे नगरे वा बहिर्वा पत्त-

ने वा ग्रामे पुरे वा सर्वत्र । समाप्तानि स्वस्त्ययनानि । सू० १८ ।—आयुष्यकर्मणां विधिं वक्ष्यामः ॥ सू० १९ ।—स्थालीपाकेन घृतपिण्डत्रयं कृत्वा सम्पात्याभिमंत्र्य घृतमश्नाति स्थालीपाकमश्नाति । सू० २१ ।—हिरण्यमणिं युग्मकृष्णलं···त्रिगुणं कृत्वा सम्पात्याभिमंत्र्य बध्नाति । स्थालीपाके स्थापयित्वा स्थालीपाकमश्नाति । केचित्स्थालीपाके सम्पातं न कुर्वन्ति । अथ क्रमेण "यथाद्यौरि"त्यादि गोदान-मध्ये पठितं प्रथमं व्याख्यायते ।

कण्डिका ॥ ५३ ॥

सू० १ ।—अथ गोदानं सम्वत्सरे···यथाकुलधर्मेण वा कुर्यात् । सू० ८ ।—मातल्यन्तेन शान्त्युदकेन त्रिरेवाग्नि···सू० ९ ।—माणवकं । सू० १३ ।—उत्तर सम्पातान्दक्षिणतः सुहृदो हस्ते शकृत्पिण्डे आनयति । सू० १५–१६ ।—उदपात्रे पोथिकां गुडूचीं च प्रक्षिप्य ततः सम्पातः । शकृत्पिण्डे दूर्वां कृत्वा ततः सम्पातः । शान्त्युदकमुष्णोदकं चैकधाराभिः समासिच्य । सू० १८ । "अदितिःश्मश्रु" इति ओदनं ।

कण्डिका ॥ ५४ ॥

अत्र ब्राह्मणवाचनं वृद्धस्त्रीभिर्गीति च कारयेत् । सू० १ ।—अथ नापिताय प्रैषं ददाति । सू० ३ ।—क्षुरं मार्जयित्वा नापिताय प्रयच्छति पुनर्वपनार्थं । सू० ८ ।—वेद्युपरि प्रदक्षिणमग्निमनुपरिणीय ˙ सू० ९ ।—उपरिततं वस्त्रं गृह्णाति कर्त्ता । सू० १० ।—परिधानवस्त्रेण उपरि आच्छादयति माणवकं । सू० ११ ।—यथा इत्यादि प्रथमतो व्याख्यानं कृत्वा ततो गोदानं प्रारब्धम् । आयुष्यमंत्रा आयुष्यकर्ममध्ये पठिताः । सू० १२ ।— आज्यं जुहोति ।···समिध आदधाति··· पालाशादयः । पुरोडाशं···पयः···ओदनं···पायसं···पशुं जुहोति···आवपति । सू० १३ ।—पितुर्मन्त्रा न मातुः । सू० १४ ।—परिदानानि । गोदानं समाप्तम् । सप्तमे पञ्चमी कण्डिका । सू० १५ ।— अथ चूडाकरणमुच्यते–सम्वत्सरे द्विसम्वत्सरे वा गोदाने कृते पश्चाच्चूडाकरणं कार्यं पूर्वतन्त्रम् । शान्त्युदके तुभ्यमेवेति सूक्तमनु-योजयेत् । यत्र वपनं पठ्यते तत्र सर्वत्र गोदानविधानेन वपनं कुर्यादिति दारिलमतम्···।

कण्डिका ॥ ५५ ॥

सू० १।–२ गर्भपञ्चमे गर्भाष्टमे । वर्षे कुर्यादिति पैठीनसिः । वसन्ते ब्राह्मणमु-पनयीतेति च मीमांसायां । शान्त्युदके "आयातुमित्र" इति सूक्तमनुयोजयेत् । ततो अभ्यातानानि । ततः "आयातु मित्र" इति । "आयुर्दा" इति केचित् सूक्तेन

मूर्ध्नि सम्पातानानयन्ति । दक्षिणे पाणौ अश्म मण्डलवर्जं शान्त्युकमुष्णोदकं कृत्वा-तस्मिन्नुदपात्रे सम्पातानानयति । उत्तर सम्पातान् स्थालरूपे आनयति ।। सू० ४ ॥ वपनं करोति सकृद्दक्षिणे पिंजुलीवर्जं एवमुत्तरे शिरः पार्श्वे ॥ सू० ८ ।— ब्रह्मचारी ब्रवीति । आह ब्रूहि । सू० १० ।—तत आचार्यो ब्रवीति को नामासि ? किं गोत्र मिति ? । पुन र्ब्रह्मचारी ब्रवीति सोमदेव दत्त शर्म नामाहं अमुक सगोत्रोऽहं यथा संख्यप्रवरोऽहं ॥ सू० ११ ।—पुनर्ब्रह्मचारी ब्रवीति ॥ सू० १२ ॥—पुनराचार्यं आह । सू० १३ ।—उदकाञ्जलिमादित्याय ददाति ब्रह्मचारी । सू० १४ ।...दक्षिणं पाणिं गृह्णाति आचार्यः । सू० १४ ।—आदित्यं निरीक्षते ॥ सू० १६ ।—पूर्वाभि-मुखं ब्रह्मचारिणमुपवेश्यः... नाभिदेशं संस्पृश्य संस्तभ्य । सू० १७ ।—गणं जपति आचार्यः ॥...

कण्डिका ॥ ५६ ॥

सू० १ ।—मेखलां प्रवरां चतुःप्रवरां वा ।। बध्नाति । सू० २ ।—मित्रावरुण-योस्त्वेति श्येनोऽसीति च सूक्तेन ब्रह्मचारिणे प्रयच्छति ॥ ३ ॥ ब्रह्मचारीदण्डं गृह्णा-ति । पुनर्मैत्विन्द्रियमिति । यज्ञोपवीतमभिमंत्र्य परिधत्ते मन्वादिभिःविहितं अहं रुद्रेभिरिति सूक्तं प्रत्यृचं ब्रह्मचारिणं वाचयति । सू० ७ ।—अथ व्रतग्रहणं करोति ब्रह्मचारिव्रतं द्वादशवार्षिकं । यथा स्मर्यमाणधर्मकं इत्याद्युक्तं आङ्गिरसकल्पे व्रतश्रावणं । अग्नये गुरवे च ब्रह्मचारिव्रतं निवेदयेत् । "अग्ने व्रतपते इति प्रत्यृचं अष्टौ समिध आदधाति । सू० १२ ।—अथ आचार्यं आचारं कथयति । "माय-ज्ञायं कुरु इत्येवमादि आचारान्कथयति । सू० १३ ।—अथैनं भूतेभ्य इत्यादिभि-र्व्रीहियवशमीमभिमन्त्र्य मूर्ध्नि दद्यात् । सू० १६ ।—ब्रह्मचारिणमात्मसंमुखं करोत्याचार्यः । सू० १७ ।—समिध आदधाति । अभ्यातानानि हुत्वा "वाताज्जात"-इति सूक्तेन शंखमणिं सम्पात्याभिमन्त्र्य बध्नाति । उपनयनं समाप्तम् ।

कण्डिका ॥ ५७ ॥

सू० २१ ।—"मय्यग्र" इति पञ्चभिः पञ्चसमिध आदधाति । उपनयनाग्नौ नष्टे इदं प्रायश्चित्तं । अनेन विधिना पुनाराधानं ब्रह्मचारी करोति । इति ब्रह्मचारी-नाग्नौ अग्निपरिग्रहः । द्वादशरात्रं सावित्रीव्रतस्य न ग्रहणं नो दीक्षणं भवति द्वादश-रात्रं पयाशी भवति । त्रयोदशेऽहनि वेदव्रतं ददाति व्रतग्रहणं व्रतादानीयाः भवन्ति । सू० २२ ।—सायंप्रातरग्निकार्यमुच्यते । सू० ३१ ।—अथ ब्रह्मचारी उपनयना-नन्तरं मेधाजननमन्त्रैः आयुष्यमंत्रैश्चाज्यं जुहुयात् । ये त्रिषप्ता अहं रुद्रेभिस्त्वं नो मेधे द्यौश्च म इति । मेधा सम्पद्यते—

कण्डिका ॥ ५८ ॥

सू० १-२ ।—कर्णंक्रोशन्तमनुमन्त्रयते । अक्षि स्फुरन्तमनुमन्त्रयते । दुःस्वप्नदर्शने स्वस्ति अनिष्टदर्शने च अद्भुतदर्शने च । सू० ३ ।—पुरुषशरीर-मनुमन्त्रयते आयुष्यकामः । सू० ४ ।—ब्राह्मणोक्तमुच्यते । सप्तब्राह्मणानभीष्टान्न-भोजनं कारयित्वा एकः प्राङ्मुख एको दक्षिणामुखः चत्वार उदङ्मुखाः "सर्वे उत देवा"—इति सूक्तेनाभिमृशन्ति पुरुषस्य शरीरं । समाप्तं ब्राह्मणोक्तमायुष्कामस्य । ऋषिहस्त उच्यते । "अन्तकाय मृत्यव"—इति सूक्तेन नाभेरूर्ध्वमधस्तादभिमन्त्र-यते । द्विः सूक्तावृत्तिः । "आरभस्वे"ति-हृदयमभिमन्त्रयते-"आवतस्ते ब्राह्मणाय नम"-इति सूक्ताभ्यां दक्षिणकर्णमनुमन्त्रयते । समाप्त ऋषिहस्तः । सू० ५ ।—आयुष्कामस्य "कर्मणो वामि"त्ति-हस्तौ प्रक्षाल्य-"वि देवा"इति अभिमन्त्रयते । सू० ६-७ ।—आत्मानमनुमन्त्रयते आयुष्यकामः । सू० ८ ।—आयुष्कामा रक्षार्थे युद्धे नाशनं नैनं प्राप्नोति न शपथो न कृत्या नाभिशोचनं । सू० ९ ।—आयुष्काम-रक्षार्थी उपनयने नित्यं बन्धनं । सू० १० ।—सूक्तेन सुवर्णरजतलोहं त्रीणि शकलानि एकत्र कृत्वा नवशालाकं मणिं त्रिवृत्तं कृत्वा सम्पात्याभिमन्त्र्यबध्नाति । सू० ११ । आयुष्यकाम आरोग्यकामः रक्षाकामः बालशरीरमनुमन्त्रयत । सू० १२ ।—अनुलोमं प्रलिम्पति । अप्रतीहारं । यो विकलेन्द्रियस्तस्येदं कर्म । सू० १३-१४ ।—पाययति । ततः पिता नाम करोति । अथ आचार्यो वा दक्षिणे कर्णे श्रावयति । नक्षत्रकल्पोक्तं नाम द्व्यक्षरं चतुरक्षरमित्यादि । सू० १७ ।—प्रच्छादयति । शिवे ते स्तामित्यादि । परिदानानि सिंहावलोकनन्यायेन गोदानमध्ये उक्तानि । अभ्यातानाद्युत्तरतन्त्रम् । ततः श्राद्धं । नामकरणं समाप्तम् । सू० १८ ।—चतुर्थे मासि पुण्याहान्ते निष्क्रामयति । ततः पूर्वोक्तानि परिदानानि ददाति श्राद्धं च । सू० १९ ।—अथान्नप्राशनं षष्ठे मासि प्राशनं कुर्यादिति पैठीनसिः सर्वस्यां स्मृतौ । पञ्चमे कुमार्या इति । सू० २०-२१ ।—गोदानव-त्परिदानानि ददाति । नामकरणे निष्क्रमणे अन्नप्राशने च गोदानिकानि परि-दानानि भवन्ति । इत्यन्नप्राशनं समाप्तम् । ऊनो वातिरिक्तो वा यः स्वशाखोदितो विधिस्तेनैव सर्वं परिपूर्णं न कुर्यात्पारतन्त्रिकं पश्चाच्छ्राद्धं सर्वेषु संस्कारेषु कुर्या-दिति दारिलभाष्यकारस्याभिप्रायेण व्याख्यायत इति । श्राद्धं कृत्वा पश्चात्क-र्मेति रुद्रभद्रौ ।··· सू० २२ । पुनरायुष्यकर्म उच्यते । सू० २३ ।—"विषा-सहि" मित्यनुवाकेनादित्यमुपतिष्ठते त्रिकालमायुष्यकामः । सू० २५ ।—"अग्निं ब्रूम"-इति सूक्तस्य "यन्मातली रथक्रीतमि"ति सर्वासां द्वितीयाव्यतिसङ्गेन यन्मातलीकर्तव्या ॥

कण्डिका ॥ ५९ ॥

अथ काम्यानां कर्मणां विधिं वक्ष्यामः। संभारलक्षणे मण्डपविधानमुक्तम्। गृहे वा कुर्यात् ॥ सू० १ ॥—चरुं जुहोति। शतवर्षपरिमित आयुर्भवति ॥ २॥ उपतिष्ठते विश्वान्देवान् ॥ ३ ॥ पुष्टिकामो द्रव्यवृद्धिकामः ॥ ४ ॥ सम्पच्छब्द उदयशब्द उच्यते ॥ ५ ॥ पुरुषादिबलकामो राजा नित्यं कुर्यात् ॥ ७ ॥ जुहोति इन्द्राय ग्रामकामः। इन्द्रमुपतिष्ठते ॥ ८ ॥ पालाशसमिध आदधाति। समानामुपस्तरणानि जुहोति। सू० ९।—चरुं जुहुयात्। भृशमिन्द्रमुपतिष्ठते। सू० १०। इन्द्रं यजते। कूपतड़ागवापीपुष्करिणीउदकमर्थी सेतुबन्धादिउदकार्थी एवंकामः। अथवा उपतिष्ठते। सू० ११।—इन्द्रं यजते। उपतिष्ठते ॥ सू० १२।—इन्द्रं यजते। उपतिष्ठते। एकोऽस्यां पृथिव्यां राजा भवति। एकाधिपत्यकामः। सू० १३।—इन्द्रं यजते। उपतिष्ठते। निखिलं राज्यं भवतीत्यर्थः। सू० १४।—इन्द्रं यजते। उपतिष्ठते। द्विपदचतुष्पदानामविनाशमित्यर्थः। सू० १५।—अग्निं यजते। उपतिष्ठते। सू० १६।—पृथिवीमग्निमन्तरिक्षं वायु द्यौः आदित्यः दिशः चन्द्रमाः। एता अष्टौ देवताः। अष्टौ चरवः। उपतिष्ठते सर्वकामः ॥ सू० १७।—यजते वा उपतिष्ठते वा सर्वकामः। सू० १८।—इन्द्रं...अथर्वाणं..अदितिं देवान् बृहस्पतिं यजते वा उपतिष्ठते वा सर्वकामः। "बृहस्पते सवितरि"त्येकया सुप्तं ब्रह्मचारिणमुत्थापयति। आदित्य उदिते सति प्रायश्चित्तमेतत्। सू० १९। मन्त्रोक्ता देवताः यजते उपतिष्ठते च सर्वकामः। सू० २१। सर्वलोकाधिपत्यकामः। सू० २२।—अभीष्टमन्नमभिमन्त्र्य भिक्षुकेभ्यः करोति। सू० २५। अथर्वाणं यजते उपतिष्ठते वा सर्वलोकाधिपत्यकामः। परिमोक्षः। गोदानिकं तन्त्रं परिधाननान्तं कृत्वा ततो-इदावत्सरायेति ततोऽभ्यातानानि। ऋचं सामेति। ततोऽभ्यातानान्तं हुत्वा दोषो गायेति—सूक्तेन भक्तं सम्पात्याभिमन्त्र्याश्नाति। सू० २६। व्रतं समाप्य व्रतविसर्जनं कृत्वा "अभयं-द्यावापृथिवी" इति यस्य ग्रामस्य नगरस्य वा अभयमिच्छति तस्य प्रतिदिशं। सू० २७। ज्योतिष्टोमे दीक्षिताय दण्डप्रदानं करोति ब्रह्मा। सू० २८। द्यावापृथिव्यौ यजते उपतिष्ठते वा विरिष्यति यदि विनाशोपस्थितं तदा इदं कर्म कुर्यात् ॥—

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥

कण्डिका ॥ ६० ॥

अथ सवयज्ञानां विधानं व्याख्यास्यामः। संभृतेषु साविकेषु संभारेषु देवयजनमुक्तं। उदगयने। ऋषिमार्षेयं गुणयुक्तानृत्विजो वृणीते। एषः ऋत्विक्कल्पः।

उक्तो मधुपर्कः । एकादश्यां वरणं कृत्वा गोदानिकेन विधानेन केशश्मश्रुरोमनखानि वापयित्वा । केशवर्जं पत्नी नखानि कारयेत् । स्नातावहतवाससौ भवतः । सुरभिणी भूत्वा दाता उपनयनवद् दण्डमेखलायज्ञोपवीती । त्रिरात्रं दीक्षाग्रहणं सह पत्न्या । अग्नये ब्रह्मणे गुरवे व्रतश्रावणं कृत्वा ततो व्रतादानीया अष्टौ समिध आदधाति । ततः कर्त्ता अभ्यातानाद्युत्तरतन्त्रं करोति । हविष्यभक्षणादि कर्ता कारयिता पत्नी च करोति । अथ चतुर्दश्यां प्रातर्यज्ञोपवीती शान्त्युदकं कृत्वा देवयजनं संप्रोक्ष्याकृति-लोष्टवल्मीकेनास्तीर्य दर्भैश्च गो अश्वाजाविलोमभिः । पलाशमयी अरणीद्वयेनाग्निं मन्थयेद्यजमानः । अग्ने जायस्वेति । सू० २०–२१ ।—पत्नी नाम यजमाननामग्रहण-मिति प्रथमे अर्धर्चे । सू० २३ । अग्रेऽजानिष्ठ इति त्रिभिः पादैर्जातं । अस्यै रयिमिति पादेन पत्नीमनुमन्त्रयते । सू० २४ ।—उत्तमं नाकमिति दातारं पादेन वाचयति । एवं ब्रह्मौदनिकमग्निं मथित्वा स्थण्डिलेऽग्निं कृत्वा "यद्देवा पूर्णहोमं जुहुयात् । पूर्ण-होमस्य विधानं शान्तिकल्पे उक्तं । "यद्देवा देवहेडनमित्यनुवाकेनाज्यं जुहुयात्समि-धोऽभ्यादध्यात् । शकलान् वा दध्यात् । एवं ब्रह्मौदनिकमग्निं संवत्सरं दीपयत्यहो-रात्रौ वा यथा कामी वा । संवत्सरं तु प्रशस्तं । सू० २५ ।—अथामावास्यायां प्रात-रुदकाहरणं करोति । ब्राह्मणीमलंकृतां साधुवादिनीं उदकघटं हस्ते गृहीतां प्रेषयति । सू० २८ ।—गृहद्वारे । सू० ३१–३२ ।—ततः "पुमान्पुंस" इति पादेन यजमानं आरोहयति । तत्र व्हयस्वेति पादेन पत्नीं आव्हयीत । सू० ३३ ।—"यावन्तावग्ने प्रथममिति पादेन अपत्यानि अन्वाह्वयीत । सू० ३५ ।—उदकघटमनुनिपद्येते ॥

कण्डिका ॥ ६१ ॥

सू० १ ।—प्रतिदिशमुपतिष्ठते मन्त्रोक्तं ॥ सू० ४ ।—भूमौ स्थापयति सर्वाणि कर्माणि तेनोदकेन कुर्यात् ॥ सू० ५ ।—"पुनन्तु मा वायोः पूतो वैश्वानरो रश्मि-भि"रिति पवित्रगणः । एतेन दाता पत्नीमपत्यानि च···पवित्रेण प्रोक्षयेत् । सू० ६ ।—अथ निर्वापकरणं ॥ सू० ७ ।—ततोऽनडुहि व्रीहिं त्रीणि विभागानि करोति । ततो देवपितृमनुष्यत्रयं पत्नी अनजानत्यै प्रयच्छति । कर्त्रा प्रैषं ददाति । व्रीही-न्विभागेषु निधाय कर्ता "त्रेधा भागो निहित" इति त्रिभिः पादैः···अनुमन्त्रयते ॥ सू० ९ ।—यः पितृभागस्तेनावभृथान्ते वृद्धिश्राद्धं करोति ॥ सू० १२ ।—निरुप्तान् अभिमृशतः ॥ सू० १५–१७ ।—त्रीन्वरान्वृणीष्वेति दातृप्रैषं दत्त्वा एवं पत्न्यै ददाति । तौ "वृणन्तौ त्रयो वरा" इत्यर्धर्चेन प्रतिपत्न्यनुमन्त्रयते । दाता सर्वकर्मणां समृद्धिभिः प्रथमं वृणीते ॥ सू० २१ ।—उर्ध्वो नकस्येत्यर्धर्चेन मुसलमुच्छ्रयन्तीमनुमन्त्रयते ॥ २४ । उदूहन्ती ॥ सू० २६ ।—"अस्यै रयि"मिति पादेन । अवक्षिणन्ती ।—

कण्डिका ॥ ६२ ॥

सू० १ ।—पत्न्या दर्वीं ग्राहयति ।···सू० ३ । दर्व्या कुंभ्यां ॥ सू० ४ ।—

तस्मिन् दर्विकृते शेषं—॥ सू० १५।—ओदनस्योपरि गर्तं करोति॥ सू०२०-२१।— "अत्यासरत्"-इत्यर्धर्चेनाभिसरन्तीं गामनुमन्त्रयते । "उपवत्सं"-इति पादेन वत्सं सर्जयति। वाश्यते गौरिति वाश्यमानामनुमन्त्रयते । व्यसृष्ट सुमना हिं करोतीति हिंकुर्वन्तीं। बधान···इति वत्सं बन्धयति। भुञ्जती निज्येति नियोजयति । गोधुगुपसीदेति दोहायोपसादयति । दुग्धीत्यादिपदसहितेनार्धर्चेन दोहयति। सा धावत्वित्यर्धर्चेन विमुच्यमानां गामनुमन्त्रयते। "अतूर्णदत्तेत्यर्धर्चेन पुनः वत्सेन संसर्जयति॥ सू० २२॥ एवं दोहयित्वा दुग्धेनौदनमवसिच्य। "इदं मे ज्योतिरिति"पादं दातारं वाचयति हिरण्यमधिदधाति। दाता सूक्तेन सर्वं सम्पातवन्तं करोति। "श्राम्यत" इति प्रभृतिभिर्वा दातृपत्न्यपत्यानि अन्वारम्भं करोति। रसैरुपसिच्य प्रतिगृह्णीते। दातोपवहति॥ २४-३४॥

कण्डिका ॥ ६३ ॥

सू० १।—अथाथर्ववेदे ब्राह्मणानामाह्वानकालः। "दाता सोमराजन्नि"ति ऋचा चतुर आर्षेयान् भृग्वङ्गिरोविद आहूय। श्रुतं वा॥ सू० ३-९।—अथ दाता व्रतं निवेद्य साविकव्रतं त्रिरात्रं यथाशास्त्रविहितमित्यादिव्रतश्रावणं। इदावत्सरायेति। इति ब्रह्मौदनप्रकृति सर्वंसवविधानं समासं। अथर्ववेदविहिता यागा एते। आवसथ्याधाने सवयज्ञान् कृत्वा ततोऽग्न्याधानं कुर्यात्। ब्रह्मौदनं वा कुर्यात्। आधाने नित्यं सवदानम्।—

कण्डिका॥ ६४-६५-६६ ॥

सू० १।—द्वाविंशतिसवाः। सवयज्ञानां परिगणनं क्रियते। अग्ने जायस्वेत्यर्थसूक्तेन ब्रह्मौदनं ददाति। सू० १।-पुमान्पुंस इत्यनुवाकेन स्वर्गौदनं ददाति। सू०२। आशानामिति चतुः शराव सर्वं। सू० ३।-यद्राजान इति सूक्तेन अविसवं। सू० ४। अजो ह्यग्नेरजनिष्टेति सूक्तेन अजौदनसवं। सू० ५।-आनयैतामित्यर्थसूक्तेन पञ्चौदनसवं । सू० ६।—अघायतामित्यर्थसूक्तेन शतौदनसवं। सू० ७।— "ब्रह्मास्य शीर्षमि"ति सूक्तेन ब्रह्मास्यौदनसवं। सू०८।-यमौदनमिति सूक्तेनातिमृत्युं सवं। सू० ९।—"अनड्वान्दधारे"ति सूक्तेनाड्वाहं सवं। सू० १०।-सूर्यस्य रश्मीनिति तिसृभिर्ऋग्भिः कर्कं सवम्। सू० ११।—आयं गौरिति तिसृभिर्ऋग्भिः पृश्निसवं। सू० १२।-अयं सहस्रमिति द्वाभ्यामृग्भ्यां पृश्निगां सवं। सू० १३।- देवा इममित्यृचा पौनःशिलं सवं। सू० १४।—पुनन्तु मेति सूक्तेन पवित्रं सवं। सू० १५।—कः पृश्निमित्यृचा उर्वरां सवं। सू० १६।—साहस्रस्त्वेष इति सूक्तेन ऋषभं सवं। सू० १७।—प्रजापतिश्चेति सूक्तेनानड्वाहं सवं। सू० १८।— नमस्ते जायमानायै इत्यर्थसूक्तेन वशासवं। सू० १९।—ददामीत्यनुवाकेन

वशासवं । सू० २० ।—उपमितामित्यर्थसूक्तेन शालासवं । सू० २१ ।—तस्यो-दनस्येत्यर्थसूक्तेन बृहस्पतिसवं । सू० २२ ।—अभिचारकामस्य । सू० २३ ।—द्वाविंशतिः सवयज्ञाः संहितायां पठ्यन्ते स्वर्गौदनतन्त्रेण सर्वे कर्त्तव्याः ब्रह्मौदन-तंत्रेण वा स्वर्गब्रह्मौदनौ तन्त्रमिति वचनात् । ॥ इति अष्टमोऽध्यायः ॥

कण्डिका ॥ ६९ ॥

सू० १ ।—अथ क्रव्यादशमनेन सह आवसथ्याध्यानं व्याख्यास्यामः ।··· दक्षिणतः पत्नी अधरारणिं गृह्णाति । उत्तरतो यजमान उत्तरारणिं । अरणिलक्षणे अरणिरुक्ता । योऽश्वत्थ इति द्वाभ्यां यजमानं वाचयति । अर्चयित्वा देहाद्धूपं चन्द-नेन समालभते । उभयोर्वाग्यतस्तावत्पूर्णाहुतिविसर्जनं । सू० १७ ।—अरणिलक्षणे उक्तं मन्थनविधानं । सू० २०-२१ ।—उर्वश्यसीति मन्त्रेणोत्तरारणिमूलमधरार-णिना संयोज्यं । पत्नी पश्चात्मुखी मन्थं धारयति पूर्वाभिमुखो यजमानो मन्थयति । सू० २२ ।—वैश्वानरमाह्वयति—

कण्डिका ॥ ७० ॥

सू० ८-९ । सत्यं बृहदिति नवभिः । शन्ति वेति दशम्या । उदायुषेति द्वाभ्यां । अग्ने गृहत इति वैतानाग्निमुपतिष्ठते ।

कण्डिका ॥ ७१ ॥

सू० १ ।—क्रव्यादं विभजति । सू० ३ ।—नडोनलः । सू० ४ । अपावृत्येति षड्भि र्ऋग्भिः क्रव्यादं गृहीत्वा एकाग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा दक्षिणस्यां दिशि निष्क्रम्य ततो गृहाद्वारे भूमौ निदधाति । सू० ८ ।—अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्य इति तिस्रः··· हिरण्यपाणिमिति तिसृभिः···यथा शमयति तथा होतव्यं । भस्मनि होमः । सू० ९-११ ।—जीर्णपिटके क्रव्यादं भस्म कृत्वा शान्त्युदकेन सुशान्तं कृत्वा भूमि-स्थानं कृत्वा दग्धं खात्वा पिटके प्रक्षिप्य ततः "परं मृत्यो" इत्यृचा पिटकं यजमान-शिरसि ददाति । सू० १३-१५ ।—सीसं नदीफेनं लोहमृत्तिकां एतानि त्रीणि द्रव्याणि यजमानहस्ताञ्जलौ दत्वा । सू० १६ ।—अस्मिन्वयमिति द्वे । सीसे मृढमिति द्वे ।···उदकसहितेन सीसेन हस्तप्रक्षालनं करोति ।···सू० १८ ।—प्राङ्मुखा आगच्छन्ति । सू० १९ । लोपयति ।···२० । द्वितीयया कूद्या पदानि लोपयति सप्त नदी आ नावः । सू० २१ ।—प्रागुदक्षिणस्यां दिशि कूर्दीं प्रक्षिपति—

कण्डिका ॥ ७२ ॥

सू० १ ।—तस्मिन् अकर्णमश्मानमुदकमध्ये निदधाति—सू० ५ ।—सर्वे शालायां प्रविशन्ति । केचिद् गृहद्वारे महाशान्तिं चतुर्गणीमुच्चैरभिनिगदन्ति ।

सू० ७ ।—वृषभमनुमन्त्रयते अनड्वाहं वा…… । सू० १० ।—शयने उपविश्यानुमन्त्रयते । सू० ११ ।—त्राणि दर्भपवित्राणि एकत्र बद्ध्वा पिञ्जुलीमुच्यते । केचिदेकं । सू० १२ ।—इमे जीवा अविधवा सुजामय आञ्जनेन सर्पिषेति पिञ्जुलीं उदकघटोपरि भ्रामयित्वा यजमानादिपुरुषेभ्यः प्रयच्छति एकैकस्मै पुरुषाय त्रिस्त्राच्छः। सू० १३–१४ ।—एतैर्मन्त्रैराज्यं जुहोति । सू० १६ ।—शर्करान् स्वयं क्षिन्दितान् …बद्ध्वा अग्नेरुपनिदधाति । सू० २० ।—यजमानोऽशित्वा…दद्यात् । इति आवसथ्याधानं समाप्तम् । दक्षिणा । ॥ इति नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

कण्डिका ॥ ७५ ॥

सू० १४ ।—अधर्चेनावगाह्य । सू० २५ ।—उशतीरिति सहभिर्ऋग्भिरुष्णोदकपात्रं सम्पात्य ।

कण्डिका ॥ ७६ ॥

सू० २–३ ।—तद्वासस्तुम्बरदण्डेन गृहीत्वा गोवाटे प्रक्षिपति । सू० ५ ।—शतदन्तेषीकेन । सू० ६–१० ।–उपाध्याय कौतुकगृहे प्रविश्य कुमारीं हस्ते गृहीत्वा निर्णयति। सू० १८ ।—त्रिरविछिन्नत्ति । सू० १९ ।—वृषाकपि ब्राह्मणाः सूर्यं पठन्ति सूर्यपाठं । सू० २१ ।—प्राच्यः । सू० २२ ।—लेखासूपरि कुमारी पदानि ददाति। सू० २४ ।—कुमारी कटिवेष्टितं योक्त्रम् । सू० २९ ।—इति विवाहः समाप्तः ।

कण्डिका ॥ ७७ ॥

उद्वाह उच्यते सू० २ ।—पथि गच्छतो वरवध्वोरग्रे कर्त्ता व्रजति । सू०३—मा विदन्नृक्षरा इति द्वाभ्यामध्वानं दक्षिणेन प्रक्रामति । सू० ४ ।—तदा इदं प्रायश्चित्तं । सू० ६ ।—सम्पृच्छत शपथो नवयन्त सुशीम । सू० ८ ।—लोष्टं प्रक्षिप्य तत उत्तरन्ति । सू० ११ ।—व्रीहियवादिक्षेत्रं दृष्ट्वा वने वृक्षान् नद्यादिषु च । सू० १३ ।—यदि पथि स्वपिति । सू० १९ ।—वधूमास्थापयति । सू० २० ।—गृहे प्रवेशयति । सू० २३ ।—गृहदेवतां नमस्कारं कुर्वंतीं—

कण्डिका ॥ ७८ ॥

सू० ५ ।—बल्वजस्तृते चर्मणि वधूमारोहयति । सू० ९ ।—कुमाराय फलमोदकादि दत्वा तत उत्थापयति । सू० १०–११ ।—अष्टर्चं कल्पजं सूक्तं । आगच्छत इति तृचं सूक्तं । सविता प्रसवानामिति सूक्तं । एतैः सूक्तैराज्यं जुह्वद्वरवध्वोः क्रमेण सम्पातानानयति ।

कण्डिका ॥ ७९ ॥

सू० १० ।—मधुघमणिं पिष्ट्वा औक्षे प्रक्षिप्य अभिमंत्र्य परस्परं वरवधू समा-

लभेते । आह पैठीनसिश्लोकः । "आवपेत्सुरभि गन्धान् । क्षीरे सर्पिष्यथोदके । एत-द्देवनमित्याहुः । औक्षं तु मधुना सह" । सू० ११ । वरः प्रजननदेशं स्पृशति । सू० १२ ।—खट्वायां उत्थापयति । सू० १६ ।—यदि चतुर्थिकाकर्ममध्ये रजस्वला वधूर्भवति तदेदं प्रायश्चित्तं । सू० २१ ।–कर्त्ता । सू० २५ ।—स्नानं सर्वे कुर्वन्ति । सू० ३० ।—पितृगृहे यदि रोदनं भवति तदा इदं प्रायश्चित्तं । सू० ३३ ।—आ-वृताः प्राजापत्या इति शूद्रस्य विवाहे तूष्णीं सर्वं कार्यं। इति दशमोऽध्यायः ॥१०॥

कण्डिका ॥ ८० ॥

सू० १ ।—अथान्त्येष्टिपितृमेधं व्याख्यास्यामः । सू० २ ।—वृक्षवर्जिते देशे दहनं कर्तव्यमिति ब्राह्मणोक्तं । आहिताग्नेरेकाग्नेश्चायं संस्कारः । सू०३ ।—मुमूर्षन्तमग्निशालायां आवसथ्यशालायां वा शालातृणानि आस्तीर्य तेषूपरि दर्भै-स्तृणाति । सू० ५ ।–अथ यदि काकपिपीलिकासर्पव्याघ्रशृङ्गी श्वापदादिषु दंष्ट्रादि-दंशदोषात् म्रियते तदा इदं प्रायश्चित्तमुच्यते । "यत्ते कृष्णशकुनीत्यृचा तस्य दुष्टव्रणमग्निना दहति । सू० १० ।—सप्तगोत्रिणः स्पर्शं न कुर्वन्ति । सू० १२ ।—अथ शान्त्युदकं करोतीति कर्त्ता न सकलप्रतीकत्रयेण ओषधित्रयेण च मातृनामप्रतीकत्रयं शान्त्युदके आवपति । सू० १६ ।—स्नजोग्निं हरन्ति । सू० १९ ।—एकाग्नौ च उषाः कुर्वन्ति । सू० २३ ।–अथ देशान्तरमृते आहिताग्नेश्च कर्म उच्यते । सू० २६ ।—दर्शपौर्णमासयोर्विधानमुच्यते । सू० २८ ।—तिल्पि-ञ्जानां इध्माग्रहणं । सू० ३० ।—देशान्तरमृतस्य दर्भाज्याग्निहोत्रं वा समा-रोपणं समाप्तम् । सू० ३१ ।—अथ प्रकृतमुच्यते उत्थापनं । सू० ३४ ।—वृषभौ अभिमन्त्र्य शकटे युनक्ति अन्यः शयने पुरुषान् वा । सू० ३५ ।—अति-द्रवेत्यष्टौ ऋचो हरिणीत्युच्यते । दहनदेशे नीयमानं हरिणीभिरभिमन्त्रयते । सू० ३६ ।—कर्त्ता अग्नयः प्रेतस्याग्रे कृत्वाभिमन्त्रयते । सू० ४८ ।—वेदयष्टिं प्रेतह-स्ताद् गृह्णाति पुत्रः ॥४९॥ धनुर्हस्तादिति क्षत्रियहस्तात् । सू० ५०।—अश्मां हस्ता-दितिमन्त्रविकारं कृत्वा । सू० ५३ ।—केचित्प्रतिदिशं शिरः कुर्वन्ति । सू० ५५ । आचार्योऽनुमन्त्रयते ।

कण्डिका ॥ ८१ ॥

सू० २१ ।—गां निऋतिदेशे जघनप्रदेशे लकुटेन घातयित्वा । हन्यमानां गामुपवेश्य । सू० ४५ ।—उपतिष्ठते । सू० ४८ ।—समाप्तं दहनकर्म ।—

कण्डिका ॥ ८२ ॥

अथ प्रथमे दिवसे पुत्रगोत्रिणां शान्तिरुच्यते । सू० ५ ।—सर्वे बान्धवाः ।

सू० ९ ।—एकविंशति दर्भपिजूलीर्नद्यां ह्रदे वा आवपति । सू० १७ ।—यवानाल-भते । सू० १९ ।—अप नः शोशुचदिति सूक्ताभ्यां शाम्याकीः समिध आद-धाति । सू० २० ।—बान्धवाः । सू० २१ ।—अथ द्वितीयेऽहनि कर्मोच्यते । दिवो नभ इत्यृचाग्निं प्रज्वाल्य स्थालीपाकं सक्तुसर्वहुतं करोति । सू० २४ ।—समाप्तं द्व्यहकर्म । सू० २५ ।—तृतीये नास्ति कर्म । चतुर्थेऽहनि कर्मोच्यते…। श्वक्तिकं-शुक्तिकं । सू० २९ ।—ततः संचयनं करोति । सू० ३३ ।—समाप्तं संचयनं चतुर्थेऽहनि केचिद्यवीयः प्रथमानि कर्माणि कुर्वन्ति । तथा च माहकिः—

कण्डिका ॥ ८३ ॥

अथ पितृमेध उच्यते । संवत्सरे कुर्यादिति श्रुतिः । अथवा संवत्सरमध्ये । सू० ३ ।—शतछिद्रं सहस्रच्छिद्रं द्वितीयं मृन्मये द्वे कुर्यात् । सू० ४ ।—द्वे जीर्ण-वाससी नीललोहितसूत्रे प्रसिद्धे प्रसव्यं रज्जुं । इति पितृनिधानसंभाराः । सू० ५ । —अथ पितृनिधानकाल उच्यते । सू० ९ । —अथावसानमस्थिगृहमुच्यते तत्स्थानमुच्यते । सू० १२ ।—अथ चतुर्दश्यां इदं कर्म । सू० १७ ।—संप्रोक्ष-ण्यौ । सू० २१ ।—अस्थिनाशे प्रायश्चित्तकर्मोच्यते । अस्थिनाशे तद्देशात्पां-सून्गृहीत्वावसानं समोप्य तत उत्थापयति । सू० ३४ ।—अथवा त्रीणि शतानि षष्टिश्च पलाशत्सरुप्रान्तैः पुरुषं कल्पयित्वा तत उत्थापनीभिरुत्थाप्य हरिणीभिर्ह-रेयुः । शरीरनाशे दग्धे वैतत्प्रायश्चित्तं भवति । सू० २५ ।—मण्डपः…तस्योत्तर-द्वारं दक्षिणद्वारं कुर्यात् । सू० २७ ।—अस्थीनि मण्डपे प्रवेशयति ।—

कण्डिका ॥ ८४ ॥

सू० । ६ ।—सयवस्य चरोः सर्वे स्वगोत्रजा भोजनं कुर्वन्ति । सू० ८ । अथ प्रैषं ददाति गोत्रिणां । वीणां वादयेत् । वाद्यानि वादयेत् । सू० १३–१४—अथा-मावस्यायाः प्रभाते कर्मोच्यते । तान्यस्थीनि मण्डपादुत्थाप्य हरिणीभिर्हरेयुः । ततः पादे निधाय । अथ विधानमुच्यते । पश्चात् पूर्वकृतेभ्यः पितृभ्यः । सू० १५ ।—प्रागुद्क्षिणां दिशमभिमुखमारभ्याणि उत्तरस्यां दिशि समाप्यन्ते—

कण्डिका ॥ ८५ ॥

सू० १ ।—अथ प्रमाणमुच्यते । सू० ४ ।—एवं विधं मण्डपं मिमीते । सू० ८ ।—अयुग्मानि कुर्यात् । परिमण्डलानि वर्तुलानि । चतुरस्राणि वाश्मशानि कार्याणि विकल्पेन शौनकिनां । सू० २० ।—जीर्णवस्त्रगास्तृणाति । सू० २२ । जीर्णवस्त्रं स्तृणाति ततो द्वितीयं परिचैलवस्त्रं । सू० २३ ।—तत्रैव बर्हिर्धारयित्वा अग्नेः कर्म भविष्यति । तेन वस्त्रेण उक्तो होमः स्तरणं च । सू० २४ ।—सर्वाण्य-स्थीनि तस्मिन् गर्ते निवपति । सू० २५ ।—कुले ज्येष्ठो अस्थीनि यथापरु… ।

सू० २७ ।—"यास्ते धाना"–इति द्वे धाना धेनुरित्येका एतास्ते असौ धेनव इत्येका यास्ते धान्य अस्त्वित्येका एताभिस्तिलमिश्रधानाः···अस्थिषूपरि आदधाति··· ।

कण्डिका ॥ ८६ ॥

सू० १ ।—तान्यस्थीनि गर्तस्थितानि । सू० २ ।–द्वौ चरू···अष्टौ चरवः प्रतिदिशं दधाति । सू० ४ ।—एकं मध्ये निधाय ततोऽभिमन्त्रयते प्रतिमन्त्रं क्षीरादिपूर्णा मन्त्रोक्ता अपूपाः पिधानाः सर्वे कर्तव्याः प्रसव्या दातव्याः । सू० ५ ।—अस्थीनि । सू० ६ ।–मध्यमपलाशपत्रैः शतच्छिद्रसहस्रच्छिद्रादि चरवश्च । सर्वं आच्छादयन्ति ॥ १० ॥ शिलाभिर्विषमाभिरिष्टकाभिर्वा प्रसव्यं चिन्वन्ति । श्मशानं । सू० १४ ।—शरस्तम्बस्य अन्तर्हितमघमिति मंत्रेण कटिकामभिमन्त्र्य ग्रामश्मशानमन्तर्धानं करोति । सू०१५ ।—अष्टाङ्गुलां कटिकां प्रसव्यं कुशेन त्रिः परिषिच्य भ्रामयित्वा सिञ्चति पश्चिमायां दिशि स्फाटयन्ति । सू० १६ ।—समेत विश्व इत्यनया ऋचा सर्वे बान्धवाः परिषिञ्चन्ति ध्रुवनान्युपयच्छन्ते । त्रिः प्रसव्यं परिकीर्णकेश्यः परियन्ति दक्षिणानुरूनाघ्नाना इति ध्रुवनानि । सू० १७ ।···इन्द्रक्रतुमित्यन्तं । एतैः पश्चात्स्थिता उपतिष्ठन्ते कर्ता गोत्रिणश्च । सू० १८ ।—समासं श्मशाने चित्तस्य कर्म । सू० १९ ।–शुभकर्म । सीसे मृड्ढ्वमित्यादि क्रव्याच्छमनेन व्याख्यातं । सू० २२ ।—पदानि लोपयति । सू० २८ ।—सप्तशर्करा पाणिष्वावपते इत्यादि···तासां धूमं भक्षयन्ति इत्येवमन्तं सर्वं कुर्वन्ति गोत्रिणः । सू० २९ । वैवस्वतं स्थालीपाकं श्रपयित्वा इत्यादि यमव्रतान्तं सर्वं भवति ॥

कण्डिका ॥ ८७ ॥

सू० ८ । त्रीनधो मुष्टीन्निर्वपति···। सू० १४ । तिर्यगङ्गुलिं—। सू० १५ ।–अवागङ्गुलिं । सू० २७ ।—एताभिर्बर्हिस्तृणाति बर्हिषि आयवनं करोति । सू० २८ ।–आ यत पितर इत्यृचा आच्य जान्वित्यृचा संविशन्त्वित्यृचा एतैस्तिलान्विकीर्य ।

कण्डिका ॥ ८८ ॥

सू० १ ।—चरुमभिघारयति । सू० ६ ।–संवर्हिरक्तमिति सदर्भास्तण्डुलाञ्जुहोति । ततः पर्युक्षणं । सू० १४ ।—पिञ्जूलीर्घृताक्ताः पिण्डेषु निदधाति । सू० १८ ।—अत्र पितर इति प्रतिपिण्डं जपति । सू० २० ।—त्रींस्त्रीन्प्राणायामान् कुर्यात् । सू० २१ ।—पिण्डेषूपतिष्ठन्ते । सू० २९ ।—यन्न इदमिति मनो न्वा व्हामहेति सूक्तं हृदये अन्वालभ्य जपेत् ।

कण्डिका ॥ ८९ ॥

सू० १६ ।—गृह्येप्यनाहिताग्नेर्होमः । सू० १४ ।—इदं मे कृतमस्तीति मंत्रेणाग्निमुपतिष्ठते यस्मात्कोशादिति । इति पिण्डपितृयज्ञः समाप्तः ॥ ११ ॥

॥ इति एकादशोऽध्यायः ॥

कण्डिका ॥ ९० ॥

सू० १ ।—अथ मधुपर्कं उच्यते । आचार्ये गृहमागते इदं कर्म करोति । सू० ९ ।—सूक्तं जपित्वा पुनराचार्यं उदकमभिमंत्रयते ।

कण्डिका ॥ ९२ ॥

सू० १४ ।—आचार्यो ब्रूते तृणानि गौरस्त्विति । तृणानि ददाति गवे । सू० २५ ।—भूयसो भूयस्मेति मंत्रेण ॥— ॥ इति द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

कण्डिका ॥ ९३ ॥

अद्भुतकर्मपरिभाषा उच्यन्ते।'''लोकविरुद्धं दृश्यते यत्तदद्भुतमित्युच्यते। अद्भुतशान्तिर्यत्र न क्रियते तत्र दोषो भवति । अद्भुतं यत्र भवति तत्पराभवति विनश्यति । विनाशार्थे अद्भुतं देवाः सृजन्ति । सू० ९ ।—श्वौषस्यामनुदित्यां '' उषामनुदित्यां । सू० १० ।—दारुणसंवत्सरे दुर्भिक्षे मारके वा । सू० १३ ।— देवतेषु'''सू० २१ ।—धेनुर्धेनुं धयत्यां । सू०२२ ।—आकाशफेनं पिबति । सू० २६।— अनाज्ञातमद्भुतं दृश्यते । यदद्भुतेन पठितं तदनाज्ञातमद्भुतमथवालौकिकं जुगुप्सितं वा अदृष्टं वा । सू० ३२ ।—यूपो । सू० ३४ ।—धूमकेतुः सप्तऋषीन् । सू० ३६ ।—मांसमुखो । सू० ३७ ।—अनग्नावभासे । सू० ३८ ।—श्वसति । सू० ४० ।—ग्रास्योऽग्निः । सू० ४२ ।—कुम्भोदधाने—

कण्डिका ॥ ९४—१२० ॥

१०० क०—सू० ३ ।—शकधूममिति सूक्तेनाज्यं जुहुयात् । विषासहिमित्यनुवाकेन । रोहितैरुपतिष्ठते । १०३—अवर्षणे ग्रहनक्षत्राणां समापेक्षे'''शान्तिः । १०४—सू० २ ।—या असुरा इति द्वाभ्यां ।—१०५—या असुरा ।—१०६ ।—सीतामध्ये लाङ्गलसंसर्गे पुच्छसंसर्गे च ।—११५ ।—सू० १ ।—पुरुषो वा आकाशफेनं भक्षयति ।—११६ । सू० ३—४ ।—पिपीलिकायां शान्तिः समाप्ता । अथ पिपीलिकाभिचार उच्यते—११८ ।—अथ मधुजालके गृहे लग्ने शान्तिरुच्यन्ते—११९ । अथ सर्वाद्भुतेषु शान्तिरुच्यते । भार्गव्याणि । गार्ग्याणि । बार्हस्पत्याद्भुतानि । महाऽद्भुतानि औशनसाद्भुतानि । यद् ग्रंथे न पठ्यते तत्सर्वमनाज्ञातमित्युच्यते । यदपि परिशिष्टेषु पठ्यते । इतिहासपुराणज्योतिःशास्त्रे अश्ववैद्यके नरवैद्यकेषु पठितेषु अद्भुतेषु सर्वाद्भुतेषु एषा शान्तिः । अथवा महाशान्तिरमृता घृतकम्बलकोटिहोम सर्वाद्भुतेषु कौशिकअपठितेषु एषा शान्तिः । महाशान्तिर्वा विकल्पात् इति भाष्यकारः । इति त्रयोदशोऽध्यायश्चतुर्दशश्च ॥ १३ ॥ १४ ॥

शुद्धिपत्रम् ॥

—❀—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७	५	सूर्य्योदयनतः	सूर्य्योदयतः
,,	१२	हाम	होम
१९	१०	शमा	शमी
,,	१२	यजकर्ताक	यज्ञ कर्ता को
,,	१३	कम	कर्म
,,	१५	प्रयाग	प्रयोग
२०	३	प्रमन्दा	प्रमन्दो
,,	६	तल	तिल
,,	६	प्रिङ्ग	प्रियङ्गु
२१	७	वनस्पतानिति	वनस्पतीनिति
,,	१९	श्रोत्रियाय	श्रोत्राय
२२	७	जिह्वा	जिह्वां
,,	१८	अथव	अथर्व
२३	२७	आग्रयण	आग्रहायण
२५	१६	मथन	मन्थ
२६	११	लोभानि	लोमानि
,,	१३	॥ ६२ ॥	॥ २ ॥
२७	९	॥ ६ ॥	॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥
,,	१०	लोमणि	लोममणि
,,	१३	अङ्गल	अङ्गुल
,,	१७	किलासमये	किलासमजे
२८	६	समिंध	समिध
३१	२१	अङ्गर	अङ्गार
३५	१	भूतो	भूतो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४९	१७	अभिमंत्रण	अभिमंत्रण
५१	४	निवति	निर्वपति
५५	२८	बहुमूल	बहुमूत्र
५६	१३	मूस्त्र	मूस
५६	१७	अग्निमंत्रण	अभिमंत्रण
,,	२४	उपर	ऊपर
५७	४	भूमि	भूमिं
५८	१७	अवसेचत	अवसेचन
,,	,,	जलोदरक	जलोदरके
५९	११	हाथ धनुष को	हाथ में धनुष को लेकर
६३	२०	ओलनी	ओलती
६९	१४	विस्गिी	विलिगी
७०	२१	शीर	शीभ
७५	२३	सिंचन कर	सिञ्चन करे
८०	१६	तेहतीसवी	तेतीसवीं
८४	२९	पैहाने	पैताने
८६	२७	॥ ७ ॥	॥ १७ ॥
,,	२९	॥ ११ ॥	॥ १८ ॥
९१	१५	अकवीन	अकवन
९६	१६	सत	सूत
९७	२२	पिवे	पीवे
१०९	५	बभूथ	बभूव
१११	५	मन्याशायां	मन्याशालायां
११२	२३	पांशों	पाशों
१२८	१०	गड्डूजी	गुड्ची
१२९	२६	ही	हो
१३५	१४	माता और पिता माता	माता और पिता
१५०	१५	भूमिका	भूमिको
१५६	१७	दाता देवे	देवे
१६२	१०	सव	सवको

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६२	११	सव	सवको
,,	१२		
,,	१३		
,,	१४		
,,	१५		
,,	१६		
,,	१७		
,,	१८		
१६४	२४	सदसठ	सरसठ
१६५	१९	यजमा को	यजमान से
१५९	२४	रवि	रवीं
,,	२७	रवि	रवीं
१७४	१८	पुतावे	न बुझावे
१८३	१८	कमर इजर	कमर में इजार
१९०	२३	हय	यह
२०७	१७	कह	कहे
२०९	१८	नावे	नाव को धरे
२१८	२४	भो	भोः
२३१	२६	चारवी	चौथी
२३४	२२	आठहवी	आठवीं
२४३	२३	वन के आध टीका संग्रह शुद्धा शुद्धि	वन के आधे
९	८	मध्यमधर	मध्यमा धर
२४	२७	अमिमृ	अभिमृ
२५	२५	काराणि	द्वाराणि
२५	३०	मृगारव	मृगाखर
३०	१६	तदक्षन्	तद्वदत्
३०	२२	चिन्त्याद्या	चित्त्याद्या
३१	२३	वा प्रताप	वा प्रतापयति
३१	२८	यांत्वे	यां त्वे
३१	२९	न शिश्नस्य	शिश्नस्य

विज्ञापन ।

प्रत्येक बड़े २ रोगों, भूत, प्रेतादिक उपद्रवों, जादू टोनादिको दूर करना, इनकी अचूक दवा, वेदोक्त यन्त्र, आभिमंत्रित बूटियों द्वारा रोगों को दूर करना, युद्ध, मोकदमा, की जीत होगी। इत्यादि।

१ मृतवत्सा रोग—गर्भ या जन्मते ही या छोटे या स्याने होने पर बच्चे मर जाया करते।

२ वन्ध्या—अनेक प्रकार की होती है। इनको नहीं जानने से लोग प्रारब्ध पर तकेया करके निरुपाय हो बैठ जाते हैं।

३ सन्तान न होना, जन्म भर दुःखी रहना—प्रेतादि के आवेश से, डाइन के करतूत से, शाप से, पूर्व-जन्म कृत पाप से, तथा अन्यान्य अज्ञात कारणों से, ऐसा होता है।

४ सूतिका को—बच्चा होते समय ऐसी पीड़ा होने लगती जो ३-४ दिन तक उसकी मरण की दशा हो जाती या तो मरजाया करती या उसका डाक्टर द्वारा औपरे-शन होता है, ऐसी स्त्री ३ प्रकार की होती है। विकृतगर्भा, (टेढ़ा मेढ़ा, उलटा) मूढ़गर्भा (पता नहीं लगता कि क्या कारण है) और मृतगर्भा (पेट ही में बच्चा मरजाता) में बहुत ख़र्च करने पर अत्यल्पसंख्यकों की जान बच जाती है। अधिकांश की मृत्यु ही हो जाती है।

५ प्रेत, भूत, पिशाच, व चूडैल, यक्ष (जिन्न) अप्सरा (परी) आदि के आवेश से प्रायः स्त्रियां बालक और छोटे बच्चे तथा कतिपय पुरुष भी दुःखी होते हैं।

६ भूतादि आविष्ट व्यक्ति रोगयुक्त होने पर, रोगों की दवा करते करते, आविष्ट रोगी मरजाते परन्तु केवल दवा से रोगी अच्छे नहीं हो पाते) जब तक भूतादि को यन्त्रादि अलौकिक शक्ति से काम न लिया जाय।

७ बहुत सी स्त्रियाँ, पुरुष, बालक, आदि प्रयोग से वशी करण, पागलपन, उच्चाटन, मारण, मोहन आदि का प्रयोग करने पर लोग बेकार हो जाते हैं।

८ जिन्न, परी, जबरदस्त प्रेत, विनायक जो मामूली मन्त्र प्रयोक्ता से नहीं हटते, मकान, पाखाना, स्कूल, आदि में भी बदमास प्रेत लोगोंको कष्ट पहुँचाते हैं।

बहुत से नये मकान बनवा कर लोग उनमें रह नहीं पाते—रहने से आ जन्म दुःखी या बहुत से मरने लगते हैं।

कतिपय रोगों का नाम—कोष्ठबद्ध (कब्ज), अतीसार (बहुत दस्त होना या आंव), पाण्डु (कामला), तक्षण (कठिन ज्वर), काश, पामन् (चर्मरोग, खुजली), बलास (क्षयरोग, थैसिस) कुष्ठ व्याधि, रक्त स्राव (खून बहना) प्रस्राव बन्द (पेशाबबन्द), वक्षःपीड़ा, क्षेत्रिय रोग (Hiriditary diseases) गठिया (पक्षाघात) कृमिरोग (मनुष्य का), कृमिरोग (पशुका)।

नष्टवीर्य, विष, सर्पविष, क्षत (जख्म) नेत्र की बीमारी, बालों का उड़-जाना, शोथ, गण्डमाला, शूल रोग, यक्ष्मा (तपेदिक), पागलपन, धातुक्षीणता, वातव्याधि। इत्यादि अनेक रोग जिनका इलाज करने पर भी भला नहीं होता हो।

पाञ्चभौतिक शरीर या स्थूल शरीर, लिङ्गशरीर और कारण शरीर-ये तीन शरीर होते हैं। आयुर्वेद, एलो पैथिक, होमिओपैथिक आदि का जो इलाज या दवा करायी जाती है वह केवल भौतिक वा स्थूल शरीर का ही इलाज होता है। यह बात जानने की है जो रोग तीन प्रकार से अच्छा किया जाता है। दवा देकर (खिलाकर, सूंघाकर, लगाकर, सूई देकर, घाव को चीर कर, मलहमादि से) यह तो हुआ एक प्रकार। दूसरा प्रकार मन्त्रों से झाड़ कर, तीसरा यन्त्र वा एक जड़ी के उपयोग से पहिले प्रकार से जो इलाज होता है वह कम सफल होता-प्रत्युत अनाड़ी वैद्य, डाक्टर से काम पड़ा तो मुक्ति हो जाती है या शरीर बेकार हो जाता, हमारे आर्य्य पूज्य महर्षियों ने अथर्ववेदादि द्वारा प्रत्येक रोगों को मन्त्रों से यन्त्रों द्वारा और केवल एक २ जड़ी के उपयोग से छुड़ाने का उपाय बतलाया है आज मुझे ८१ वर्ष को उमर हुई एक समय मुझको चित्रकूट जाने का संयोग हुआ। और वहां एक मुझे सिद्ध साधु का दर्शन हुआ जो वेद का भी ज्ञाता थे इन से १ सप्ताह संग हुआ इनके द्वारा हमको हिन्दू धर्म, मन्त्र, तन्त्र, यन्त्रादि का रहस्य मालूम हुआ। इन्हीं कारणों से हमने अपने अन्तिम जीवन में जनता की सेवा करने के विचार से यह विज्ञापन दिया है कि सर्व साधारण इस कार्य्यालय से पत्र व्यवहार कर इन अलौकिक शक्ति निहित यन्त्र, मन्त्र, जड़ियों से फायदा उठावें। केवल एक जड़ी का दाम एवं इसके काम बताते हैं। स्त्रियों को बच्चा जनने समय जो असह्य कष्ट होता है प्रत्युत बहुतों को मृत्यु तक हो जाया करती। चाहे जिस प्रकार का कष्ट हो—इस जड़ी से प्रसव दुःख न होकर बच्चा मरा या जिन्दा अवश्य वेदना रहित दश मिनट के भीतर गर्भ से निकल बाहर हो जावेगा। जड़ी का दाम २॥) डाक व्यय सहित। इसको पत्थर पर घस कर सूतिका स्त्री अपने दोनों हाथों में लगा कर ५ मिनट तक एक दृष्टि से देखेगी इतने ही में बच्चा सुख पूर्वक बाहर आयेगा। स्मरण रहे कि घड़ी में ५ मिनट से अधिक समय न हो, अन्यथा स्त्री का आन्त्र सहित बाहर हो जावेगा और-यह जड़ी उपविष है इसलिये शीघ्र ही हाथों को साबुन आदि

से भलीभांति साफ कर लेना चाहिये—दाम २॥) रु० है। इसमें ५ सूतिका का काम चलेगा और किसी पुरुष के धातु क्षीणता चाहे असाध्य हो, उसका यन्त्र, दवा, तरकीब दाम ५) और थैसिस—जो १ सालके भीतर का हो। यन्त्र, दवा, तरकीब १०)। बाकी रोगों का हाल लिखकर जवाबो टिकट या पोस्टकार्ड भेजना। पत्र लिखते समय रोगी या दुःखी व्यक्ति स्त्री हो या पुरुष उसकी उमर, जाति, शरीर का रंग, स्वभाव हो सके तो उसका फोटो एवं पत्र को उसके दहीने (पुरुष) या बायें हाथ (यदि स्त्री हो) से स्पर्श करा कर भेजना चाहिये। रोगी किस धर्म को मानने वाला है, मांस खानेवाला है या निरामिष, ईश्वर में उसे विश्वास है या नास्तिक है। इत्यादि बातें लिखनी चाहिये। लिफाफा के भीतर तीन पैसे या डेढ़ आने का टिकट जवाब के लिये -)॥ पैसे का टिकट यों ≡)॥ का टिकट अवश्य भेजना चाहिये। पत्र हिन्दी, संस्कृत या अंग्रेजी में होना चाहिये। एवं अपना पता पूरा देना चाहिये।

ठाकुर गणेशदत्त सिंह,

शास्त्रप्रकाशभवन, मधुरापुर,

डाक, बिदूपुर बाजार।

जि. मुज़फ्फरपुर, (बिहार)।